आधुनिक भारतीय शासन

[MODERN INDIAN ADMINISTRATION

लेखक

गोरखनाथ चौबे एम्०

भूमिका लेखक

स्वर्गीय डाक्टर बेनीप्रसाद

एम्० ए०, डी० एस-सी० (लंदन)

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

तृतीय संस्करण] १९४६ [मूल्य ४॥)

प्राक्कथन

कई वर्षों से इच्छा थी कि भारतीय शासन-विधान पर एक पुस्तक लिखूँ। इस दृष्टिकोण को सामने रखकर शासन-विधान सम्बन्धी ग्रन्थों का अवलोकन आरम्भ किया। दो चार मित्रों की सलाहें भी लीं। कुछ लोगों की राय हुई कि वर्तमान परिस्थिति में भारतीय शासन-विधान बहुत ही डाँवाँडोल है। योरोप की मौजूदा लड़ाई को देखते हुये संसार की राजनीतिक परिस्थिति बहुत ही नाजुक है। ऐसी दशा में भारतीय शासन-विधान इस समय कौन-सा रूप धारण करेगा, यह कठिन है। मेरा ग्रन्थों का अध्ययन जारी रहा। अँग्रेजी साहित्य में भारतीय शासन पर अच्छे और बुरे सभी तरह के ग्रन्थ मिले। १६३५ के संघ-शासन-विधान के ऊपर जो जो ग्रन्थ लिखे गये हैं उन्हें भी देखने का अवसर मिला। इन्हें समाप्त करने के बाद ग्रन्थ लिखने की अभिलाषा और भी बढ़ने लगी। विचार हुआ कि हिन्दी साहित्य में शासन-विधान के ऊपर ऐसे ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं जो अँग्रेजी में भी उपलब्ध न हों! इंगलैंड, अमेरिका, जापान तथा स्विटजरलैंड के शासन-विधान के ऊपर लिखे गये ग्रन्थों के मुक़ाबिले में भारतीय शासन-विधान सम्बन्धी ग्रन्थ इतने अपूर्ण और अवैज्ञानिक मालूम पड़े कि मैंने अपना विचार दृढ़ कर लिया कि एक वर्ष के अन्दर हिन्दी साहित्य में एक ऐसा भारतीय शासन-विधान लिखने का प्रयत्न करूँगा जो राजनीतिक साहित्य के पाठकों के लिये सभी प्रकार से सहायक हो।

हिन्दी साहित्य में भारतीय शासन सम्बन्धी ग्रन्थों की खोज आरम्भ की। संख्या की दृष्टि से एक दर्जन से अधिक पुस्तकें उपलब्ध हो सकीं। कुछ ग्रन्थ तो ऐसे मिले जिनसे हिन्दी साहित्य का गौरव रत्ती भर भी आगे नहीं बढ़ता। लेखक की कोटि में नाम लिखाने अथवा पैसे के प्रलोभन से ये ग्रन्थ लिखे गये हैं। मैं यह मानता हूँ कि किसी भी देश की शासन-पद्धति नीरस और अपूर्ण है, परन्तु लेखकों के हाथ में पड़कर यह साहित्य इतना रोचक और सरस हो गया है कि पाठकगण इसे समाप्त किये बिना नहीं रह सकते। मुझे खेद है कि हिन्दी साहित्य में इस विषय के लिखने वालों ने उन ग्रन्थों

का अवलोकन नहीं किया। १९३५ के शासन-विधान पर हिन्दी में मुझे कुछ ऐसे ग्रन्थ मिले जिनके मुक़ाबिले में सरकारी ऐक्ट कहीं सरस मालूम पड़ा। कोई भी ग्रन्थ ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश नहीं डालता। कुछ ग्रन्थों में ऐक्ट और क़ानूनों की सूची इतनी बुरी तरह भर दी गई है कि उन्हें देखने को भी चित्त नहीं करता। कुछ लेखक राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को शासन-विधान में इतना अधिक जोड़ देते हैं कि ग्रन्थ अपने असली विषय से दूर चले जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि १९०५ के बाद भारतीय शासन और राष्ट्रीय आन्दोलन दोनों की प्रगति साथ-साथ चल रही है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन दोनों को एक में जोड़ दिया जाय। शासन-विधान स्वयं एक गम्भीर चीज़ है। प्रसंगवश हम अनेक राष्ट्रीय आन्दोलनों का हवाला दे सकते हैं। फिर भी हमारा विषय आइने की तरह साफ़ होना चाहिये।

भारतीय शासन-विधान घने जंगल की तरह उलझा हुआ है। इस पर वैज्ञानिक साहित्य इतना कम है कि पाठकों की जिज्ञासा पूरी नहीं होती। लोगों की यह आम शिकायत है कि हिन्दी साहित्य में ग्रन्थों का सर्वथा अभाव है। यदि अभाव से उनका तात्पर्य केवल पुस्तकों की संख्या से है तो उनका कहना ठीक है, वरन् अँग्रेज़ी साहित्य में भी भारतीय राजनीतिक साहित्य उतना विस्तृत नहीं है जिसकी आज हमें ज़रूरत है। अँग्रेज़ी भाषा में भारतीय शासन सम्बन्धी एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिसके अनुवाद की ज़रूरत हमें महसूस हुई हो। हिन्दी साहित्य-सेवियों का यह सौभाग्य है कि वे निःसन्देह इस क्षेत्र में मौलिक ग्रन्थ लिख सकते हैं। अपने हाथों में लेकर मातृभाषा द्वारा यह साहित्य इतना विकसित किया जा सकता है कि अन्य साहित्य इसका मुक़ाबिला नहीं कर सकता। इस देश का राजनीतिक इतिहास सेवकों और त्यागियों से ओत-प्रोत है। इसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं जो अन्य देशों में नहीं पाई जातीं। यहाँ की भौगोलिक परिस्थिति, प्राचीन रसम-रवाज, भाषा की विभिन्नता, राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक संगठन— इनके कारण इस देश के राजनीतिक साहित्य में जो सरसता लाई जा सकती है वह योरप के अन्य देश के नसीब नहीं हो सकती। मेरा अनुमान है कि भारतीय शासन-विधान अच्छे लेखकों के हाथ में पड़ कर हितोपदेश और पंचतन्त्र की कहानियों से भी अधिक

रोचक बन सकता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस ग्रन्थ में मुझे इतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई। जब तक शासन-विधान, कहानी, तथा उपन्यास तीनों एक समान सरस न हो जायँ तब तक मैं लेखक की प्रतिभा को पूर्ण नहीं समझता। योरप के कुछ राजनीतिज्ञों ने इसमें सफलता प्राप्त की है।

स्कूल तथा कालेज के विद्यार्थियों को यह अधिकार दिया गया है कि वे परीक्षाओं में अपने विचार हिन्दी भाषा में स्पष्ट कर सकें। इधर राष्ट्रीय आन्दोलन की वृद्धि के कारण आम जनता भी राजनीतिक साहित्य में रस लेने लगी है। हिन्दी के लेखकों का यह कर्त्तव्य है कि वे इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करें। इससे न केवल साहित्य की वृद्धि होगी, बल्कि राष्ट्रीय भावना का भी प्रचार होगा। लोगों में राजनीतिक विषय की जानकारी बढ़ेगी। राजनीतिक साहित्य के मूल में उस देश का शासन-विधान होता है। किसी देश की सामाजिक उन्नति अथवा अवनति की सच्ची कहानी वहाँ के शासन-विधान में मिलती है। यदि हिन्दू, मुसलमान और बृटिश इन तीनों कालों का रोचक शासन-विधान हमारे सामने आ जाय तो हमारी जानकारी कहीं अधिक बढ़ सकती है। परन्तु भारतीय शासन-विधान के लिखने वालों ने इन्हें देने का कष्ट नहीं किया। समय के अभाव तथा किसी विशेष परिस्थिति के आ जाने के कारण मैं भी इस अपराध का भागी हूँ। प्रसंगवश स्थान-स्थान पर कुछ प्राचीन बातें आ गई हैं लेकिन मैं उतने से सन्तुष्ट नहीं हूँ। भारतीय शासन-विधान पर सभी ग्रन्थ ईस्ट इंडिया कम्पनी के जन्म से ही आरम्भ हों, मैं इसका क़ायल नहीं हूँ। इन तमाम राजनीतिक उथल-पुथल के बावजूद भारतीय संस्कृति वैसी ही बनी हुई है जो आज से २५०० वर्ष पहले थी। हमारा दृष्टिकोण बहुत ही संकुचित है कि हम अपने सामाजिक संगठन का महत्व नहीं समझते। यदि शासन-विधान में इस विषय का समावेश न किया जाय तो कालेज और यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी एक बहुत ही उपयोगी विषय से वंचित रह जायँगे।

विचार ग़लत हों अथवा सही लेकिन वे साफ़ होने चाहिये। भारतीय शासन-विधान लिखते समय यदि लेखक ने इसे अपने सामने न रक्खा तो उसके विचारों में उलझन की भरमार दिखाई देगी। हिन्दोस्तान परतन्त्र होने के नाते कुछ बृटेन से और कुछ अपने आप शासित होता है। लेखक को अपनी दृष्टि दोनों देशों पर एक-

सी रखनी पड़ती है। यदि हम किसी भारतीय ऐक्ट का अध्ययन करना चाहें तो हमें तुरन्त बृटेन की कैबिनेट तथा पार्लियामेंट पर नज़र डालनी पड़ती है। कहने के लिये इस देश के राजनीतिक प्रश्न बृटेन की राजनीति से अलग समझे जाते हैं, परन्तु कार्य रूप में बृटेन की सारी राजनीतिक कार्रवाइयाँ हमारे देश को काफ़ी प्रभावित करती हैं। जिस राजनीतिक दल का पार्लियामेंट में बहुमत होता है उसी की सरकार भारतीय राजनीति को सँभालती है। भारत-सरकार कोई स्वतन्त्र नीति नहीं रखती। इसका फ़ैसला बृटेन की कैबिनेट में होता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर जितनी कड़ी नज़र गृह-सरकार की होती है उतनी भारत-सरकार की नहीं। भारत-सरकार जिन बातों का एलान करती है उसकी आज्ञा उसे भारत-मन्त्री से लेनी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि भारतीय शासन-विधान लिखते समय बृटेन की राजनीति की अच्छी जानकारी होनी चाहिये। आँख मूद कर ऐक्ट के आधार पर जो ग्रन्थ लिखे जायेंगे वे सर्वथा नीरस और अपूर्ण होंगे। इसी प्रकार केन्द्रीय शासन की शक्ति को भी पहचानना नितान्त आवश्यक है। प्रान्तीय-स्वराज तथा स्वायत्त शासन के बावजूद केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम नहीं की गई है। वर्तमान संघ-शासन-विधान, जिसके अन्दर स्वराज विश्लेषण की ताईद की गई है, शासन-सूत्र के एकीकरण में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं करता। कार्यकारिणी विभाग के प्रधान शासकों के विशेषाधिकारों को देखते हुए एकीकरण की नीति भली भाँति स्पष्ट हो जाती है। लेखकों को इस राजनीतिक कौशल पर विचार कर क़लम उठानी चाहिये। भारतीय संघ-शासन-विधान की शकल वैसी नहीं है जो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में दिखाई पड़ती है।

भारतीय राजनीति इंगलैंड के साथ मिली हुई है। या हम यह कह सकते हैं कि यहाँ के राजनीतिक प्रश्नों का सम्बन्ध सारे योरप की राजनीति से है। बृटेन और जर्मनी की मौजूदा लड़ाई को देखते हुये इसमें किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। एक छोटी-सी मिसाल से यह बात साफ़ हो जाती है कि वर्तमान तथा भविष्य में कोई भी स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र देश अपनी अलग राजनीति नहीं रख सकता। यदि योरप की वर्तमान लड़ाई आरम्भ न हुई होती तो संघ-शासन विधान किसी न किसी शकल में पूरी तरह हिन्दोस्तान पर लागू हो गया होता। लेकिन इच्छा रखते हुये भी बृटेन इसे

कार्यान्वित नहीं कर सकता। इसका परिणाम यह हुआ है कि केन्द्रीय शासन तथा स्वायत्त शासन की मशीन वही है जो १९१९ ई० में बनाई गई थी। इन दोनों के बीच में प्रान्तों का शासन १९३५ ई० के संघ-शासन-विधान के अनुसार हो रहा है। इतनी उलझनें होते हुये शासन-विधान लिखना बहुत बड़ी कठिनाइयों का सामना करना है। समूचे देश में कोई एक शासन-विधान कार्यान्वित नहीं हो रहा है। नदी के बहाव की तरह इसकी अनेक धारायें जगह-जगह पर जाकर समाप्त हो जाती हैं। पाठकों को यह समझने के लिये इस बात का काफ़ी ध्यान रखना होगा कि किस ऐक्ट के अनुसार किस क्षेत्र का शासन-विधान चलाया जा रहा है।

भारतीय शासन-विधान में समय-समय पर जो परिवर्तन हुये हैं उनका वैज्ञानिक अध्ययन किये बिना शासन का विकास नहीं समझा जा सकता। भारतीय राजनीतिज्ञों में इस विषय में बड़ा मतभेद है कि किस ऐक्ट का कितना महत्व है। कुछ लोग १९१९ के शासन-सुधार को इंगलैंड के महान् चार्टर (Magna Charta) से कम नहीं समझते। परन्तु एक दूसरी श्रेणी के लोग इसे कोई ख़ास महत्व नहीं देते। इसी प्रकार नवीन संघ-शासन-विधान पर लोगों की विभिन्न रायें हैं। पक्षपात की दृष्टि से हम इसे अच्छा और बुरा दोनों कह सकते हैं। लेकिन जिसे शासन-विधान का गहराई के साथ निष्पक्ष भाव से अध्ययन करना है उसके सामने यह नीति काम नहीं दे सकती। साधारण लोग राजनीति को एक धोखे की टट्टी भले ही समझें, परन्तु यदि वे गहराई के साथ विचार करें तो उन्हें मालूम होगा कि मनुष्य के विचार की शृंखलाबद्ध सामग्री जितनी इस शास्त्र में मौजूद है उतनी साहित्य के किसी भी अंग में नहीं मिल सकती। शासन-विधान मनुष्य की सामाजिक मनोवृत्तियों का एक कोष है। ईस्ट इंडिया कम्पनी का जो उद्देश्य १६०० ई० में था वही उद्देश्य बृटेन आज भी हमारे देश में रखता है। दोनों की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में महान् अन्तर भले ही हो, लेकिन इनका सम्बन्ध आज तीन शताब्दियों से एक सा चला आ रहा है। राष्ट्रीय उथल-पुथल के कारण यदि बृटेन ने अपने उद्देश्य-पूर्ति में कुछ कमी की तो उसे किसी न किसी मार्ग से पूरा ज़रूर किया। भारतीय शासन-विधान इस बात का प्रमाण है कि हमारे देशवासियों को स्वतन्त्रता की कभी घोषणा नहीं की गई। संसार के प्रजातन्त्रवादी

देश बीसवीं सदी में इस अपमान को सहन नहीं कर सकते। यदि हिन्दोस्तान इसे सहन कर लेता है तो इसका कारण इस देश की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति है।

हमारे देश के शासन-विधान में एक ऐसी विशेषता है जो और देशों में नहीं पाई जाती। शासन के विकास का मुख्य उद्देश्य प्रजा की राजनीतिक स्वतन्त्रता की वृद्धि करना है। इस दृष्टि से जब हम अपने देश के शासन-विधान का अध्ययन करते हैं तो अपने आपको सदियों पीछे पाते हैं। यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि हमारी सामाजिक उन्नति का स्रोत बहुत ही धीरे-धीरे बहता रहा है। राजनीतिक रुकावटों के कारण इसे वे अवसर प्राप्त नहीं हुये जो अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के मुक़ाबिले होने चाहिये। सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी हम घूम फिर कर उसी पुरानी जगह पर आ जाते हैं। अधिकारों का प्रलोभन दिखलाकर हमें संतुष्ट करने की कोशिश की जाती है, लेकिन जब हम शांतिपूर्वक विचार करते हैं तो अपने आपको एक गोले चक्कर के चारों ओर घूमता हुआ पाते हैं। १९१९ में हमें यह आश्वासन दिलाया गया था कि अब हम स्वतन्त्रता की उस चोटी तक पहुँच गये हैं जहाँ से हमें आगे बढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। पूरे दस वर्ष भी बीतने न पाये कि सारी आशायें मिट्टी में मिल गईं। फिर वर्तमान संघ-शासन-विधान में वही पुरानी बात दुहराई गई। लेकिन देश के राजनीतिक वर्गों ने जब इसका अध्ययन किया तो उन्हें पता चला कि सेमर के फूल की तरह इसमें सुगन्धि का नाम भी नहीं है। यदि एक ओर से हिन्दोस्तानियों को कुछ अधिकार प्रदान किये जाते हैं तो दूसरी ओर से वे छीन लिये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारा राजनीतिक विकास उस चींटी की चाल की तरह हो रहा है जो धीरे-धीरे कुमारी अन्तरीप से हिमालय की चोटी पर पहुँचना चाहती है।

इस पुस्तक के लिखने में मेरा सबसे बड़ा उद्देश्य विद्यार्थियों की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करना है। शुरू से अन्त तक इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि भारतीय शासन-विधान के सम्बन्ध में ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों को जिन जिन चीजों की आवश्यकता है उन्हें यथास्थान उचित मात्रा में रक्खा जाय। साथ ही इसका भी ध्यान रक्खा गया है कि विषय नीरस और दुरूह न होने पायें। शासन-विधान को अधिक-से-अधिक रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है। जब तक कोई विषय कहानी की तरह पाठकों

के मस्तिष्क में नहीं बैठता तब तक वे उसके रस को नहीं समझते। इसीलिये प्रत्येक विषय को रोचक बनाने के लिये उसके ऐतिहासिक विकास का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है। शासन-विकास की एक भी धारा ऐसी नहीं है जिसके पिछले इतिहास पर विचार न किया गया हो। विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य पाठकों की रुचि का भी ध्यान रक्खा गया है। पुस्तक को सरकारी ऐक्ट का संस्करण मात्र नहीं बनाया गया है। हर बात को पूरे प्रमाण के साथ भारतीय दृष्टि से समझने की कोशिश की गई है। किसी भी प्रकार का पक्षपात अथवा भेदभाव नहीं किया गया है। निष्पक्ष भाव से जितनी सामग्री एकत्र हो सकी है उसी को अपनी बुद्धि-कौशल के अनुसार रख दिया गया है। भाषा के सम्बन्ध में आरम्भ से ही मेरी यह नीति रही है। कि वह इतनी पुष्ट हो कि गम्भीर विचारों को ग्रहण कर सके। कुछ लोग इसे सरल हिन्दी कहेंगे और कुछ हिन्दोस्तानी। इन दोनों में चाहे जो भी नाम पसन्द हो, भाषा के कारण विषय की गम्भीरता को मैंने नष्ट नहीं होने दिया है।

पाठकों की सुविधा के लिये अन्त में पुस्तकों की एक सूची जोड़ दी गई है। इन्हीं के आधार पर मैंने अपनी तुच्छ भेंट हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। इनके अतिरिक्त कुछ पत्र-पत्रिकाओं से भी सहायता ली गई है। मैं इन लेखकों तथा सम्पादकों का सर्वथा ऋणी रहूँगा। इनके विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों से मुझे जो सहायता मिली है उसका मैं अत्यन्त आभारी हूँ। अपने पूज्य गुरु डाक्टर बेनीप्रसाद का, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर इस पुस्तक की भूमिका लिखने का कष्ट किया है, मैं सबसे अधिक ऋणी हूँ। इतने पर भी पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ मौजूद होंगी, जिन्हें पाठकगण खोज निकालने का कष्ट करेंगे। यदि मेरे इस प्रयत्न से पाठकों की रुचि भारतीय शासन-विधान के अध्ययन की ओर अग्रसर हुई तो इतने लेखकों के ऋण से मैं अपने आपको बहुत कुछ मुक्त समझूँगा।

प्रयाग
१ मई, १९४१ ई० }

गोरखनाथ चौबे

भूमिका

आजकल के हिन्दोस्तान का शासन सम्बन्धी विकास इंगलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस और दूसरे देशों के राजनीतिक संगठन से बहुत कुछ भिन्न है। राजनीतिक गहराई की दृष्टि—जो पश्चिमी देशों के सार्वजनिक जीवन की विशेषता थी, हममें न थी। हमारी 'पब्लिक लाइफ़' (सार्वजनिक जीवन या ख़िदमते ख़ल्क) पर जल्दी और बार-बार होने वाली तब्दीलियों का वैसा असर कभी नहीं पड़ा जैसा और देशों के लोगों पर। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यहाँ की राजनीतिक तरक्क़ी का ढंग नीरस या निस्सार रहा है। इसमें पूर्वी लोगों और पश्चिमी राष्ट्र के मिलन का अनुभव है। उनके आपस में मिलने-जुलने की तसवीर आइने की तरह साफ़-साफ़ दिखाई देती है। १८६१ के बाद हिन्दोस्तान की शासन-पद्धति का विकास साम्प्रदायिक ढंग पर हुआ है। हिन्दोस्तानी समाज के बहुत से हिस्सों के अलग-अलग बढ़ने की लगातार कहानी इसके अन्दर पाई जाती है।

जिसे हिन्दोस्तानी राजनीति की थोड़ी भी जानकारी हासिल करनी है और जिसके अन्दर राजनीतिक कामों में हाथ बँटाने की इच्छा है उसके लिये हिन्दोस्तान की शासन-पद्धति का पढ़ना बहुत ही ज़रूरी है। इस मुल्क में अब ३ करोड़ से ज्यादे लोगों को वोट देने का इख़्तयार हासिल हो चुका है और राजनीतिक उन्नति इतनी हो चुकी है कि राजनीतिक संस्थाओं की जानकारी और भी ज़रूरी हो जाती है। पं० गोरखनाथ चौबे एम० ए० ने इन दोनों ज़रूरतों को पूरा करने की कोशिश की है। हमें विश्वास है कि हिन्दी ज़बान-

वालों की राजनीतिक जानकारी के लिए यह किताब सब तरह से मदद देगी। इसमें लेखक ने हिन्दोस्तानी इतिहास और राजनीति दोनों का इतनी ख़ूबी के साथ बयान किया है कि शासन-पद्धति ऐसा कठिन मजमून हर पहलू से सहल और साफ़ हो गया है। राजनीतिक संस्थाओं की बारीकियों और उनकी कमज़ोरियों का इतना अच्छा वर्णन किया गया है कि पढ़ने वाले लेखक की मिहनत की तारीफ़ किये वग़ैर नहीं रह सकते। होम गवर्नमेंट, हिन्दोस्तान की सरकार और सूबों की सरकारों के काम करने के तरीके और इनके आपस के सम्बन्ध के बयान करने में लेखक को जो कामयाबी हासिल हुई है वह उसके बख़ूबी पढ़ने और समझने का नतीजा है। १९३५ के संघ शासन (फ़ेडरेशन) विधान की जाँच-पड़ताल में किसी भी तरह की तरफ़दारी और खींचातानी नहीं की गई है।

लोगों का ख़याल है कि आजकल की अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों की वजह से मौजूदा शासन-विधान की कोई अहमियत नहीं है। केन्द्र और सात सूबों में शासन-विधान के स्थगित हो जाने से उनका ऐसा सोचना बहुत कुछ ठीक हो सकता है, लेकिन आये दिन हमें इस पर विचार तो करना ही होगा। हुकूमत के मामले में कितनी ही तब्दीलियाँ क्यों न हो जायँ, उसकी तवारीख़ी जानकारी के लिये तमाम पिछले तरीक़ों का जानना निहायत जरूरी है। ऐसी हालत में मौजूदा संघ-शासन की गहरी जानकारी हर हिन्दोस्तानी के लिये उसके राजनीतिक जीवन के वास्ते बहुत ही जरूरी है। आगे चल कर हुकूमत के जो तरीक़े काम में लाये जायेंगे उनकी बुनियाद बहुत कुछ इसी पर रक्खी जायगी। विद्यार्थियों और दूसरे लोगों के लिये इसीलिये यह ज़रूरी है कि वे इसकी जानकारी पूरी तरह हासिल करें, ताकि मौक़ा आने पर वे मुल्क की तरक्क़ी में कन्धा टेक सकें।

स्थानिक शासन (Local self-government) और गाँव की पंचायतों के महत्व को लेखक ने पूरी तरह समझा है। पंचायत पर एक अलग बयान लिखकर इसके फ़ायदे पर अच्छी रोशनी डाली गई है। हिन्दोस्तानी हुकूमत के सभी पहलुओं पर नज़र डालते हुये ऐसा कोई सवाल नहीं उठता जिसका जवाब किताब के अन्दर मौजूद न हो। अगर कुछ पेचीदे सवाल पूरी तौर से बयान नहीं किये गये हैं तो इसकी वजह सिर्फ़ यही है कि हुकूमत का मजमून अपने दायरे से बाहर न जाने पाये। कोई भी लेखक बड़ी-से-बड़ी किताब के

अन्दर तमाम पेचीदगियों को हल नहीं कर सकता। कचहरियाँ, स्वास्थ्य और सफ़ाई, सरकारी आमदनी और खर्च तथा नौकरियाँ इनका अलग-अलग बयान किया गया है। देशी रियासतों की मौजूदा राजनीतिक हालत, हिन्दोस्तानी सरकार से उनका सम्बन्ध और उनकी आगे आने वाली हालत पर भी रोशनी डाली गई है। मतलब यह है कि हिन्दोस्तान की राजनीतिक संस्थाओं की जानकारी के लिये वे तमाम बातें इसमें मौजूद हैं जो हर एक हिन्दोस्तानी के लिये ज़रूरी हैं। यह सौभाग्य की बात है कि अब हिन्दी में भी इस तरह की गम्भीर राजनीतिक किताबें लिखी जाने लगी हैं। इसकी ज़बान बहुत ही साफ़ और सहल है। इसलिये पढ़ने वालों को किसी कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा।

राजनीति विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
१ मई, १९४१ ई०

बेनीप्रसाद

द्वितीय संस्करण की भूमिका

"आधुनिक भारतीय शासन" के पहिले संस्करण की उपयोगिता को देखते हुये यह स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षितवर्ग अपने देश के शासन-विधान में अधिक रुचि लेने लगा है। लोगों में शासन सम्बन्धी बातों की जिज्ञासा बढ़ रही हैं। मेरे पास कितने ऐसे पत्र आये जिनमें यह सुझाव दिया गया कि अमुक-अमुक अध्याय और बढ़ाकर पुस्तक अधिक विस्तृत कर दी जाय। मुझे खेद है कि राज-नीति तथा नागरिक शास्त्र के विद्यार्थियों के हित का ध्यान रखते हुये ऐसा न कर सका। कुछ विद्वानों का यही निर्णय रहा कि अपने क्षेत्र में पुस्तक परिपूर्ण है और इसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

दूसरे संस्करण में पुस्तक को पूर्णरूप से सामयिक कर दिया गया है। भाषा सम्बन्धी त्रुटियों के सुधार पर विशेष ध्यान रखते हुये कितने ही नये वाक्य यथा स्थान घटाये बढ़ाये गये हैं। मूल विषय में कोई परिवर्तन नहीं है और अध्यायों के क्रम आदि पूर्ववत् रक्खे गये हैं। चूँकि भारतीय शासन-विधान की रूप-रेखा मे पहले से कोई अन्तर नहीं है, इसीलिये नये अध्यायों को जोड़कर पाठकों को भ्रम में डालने के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं। आशा है पाठकगण को इस दूसरे संस्करण में कुछ नई बातें अवश्य मिलेंगी। पुस्तक को छपने में काफी देर हुई और विद्यार्थियों को इससे अनेक प्रकार की असुविधायें आईं। इसके लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

हिन्दू महिला विद्यालय
प्रयाग
जनवरी १९४५

गोरखनाथ चौबे

तीसरे संस्करण की भूमिका

भारतीय शासन के पठन-पाठन की जिज्ञासा लोगों में कितनी बढ़ रही है, इसका अनुमान लेखक पुस्तक के संस्करणों से करता है। 'आधुनिक भारतीय शासन' का दूसरा संस्करण एक वर्ष में ही समाप्त हो गया। इस तीसरे संस्करण में केवल इतना संशोधन किया गया है कि सब बातें सामयिक कर दी गई हैं। १९४६ तक की भारतीय राजनीति की जानकारी विद्यार्थी अच्छी तरह कर सकते हैं।

ऐसे समय में जब कि भारतीय शासन-विधान हर पहलू से डाँवाँ-डोल है और कोई बात निश्चित नहीं है, शासन की ठोस व्याख्या सर्वथा असम्भव है। संघ-शासन की बुनियाद क्या है इसका स्पष्ट उत्तर 'विधान-सम्मेलन' की सफलता पर निर्भर है। तब तक विद्यार्थी इसी शासन-विधान की रूप-रेखा का अध्ययन करें। राजनीतिक उथल-पुथल शासन-विधान पर क्या असर डालती है—इस कठिनाई को लेखक भलीभाँति महसूस करते हैं। यही वजह है कि भारतीय शासन-विधान कोई स्थाई रूप नहीं रखता।

महिला-शिक्षा-परिषद्
इलाहाबाद
अगस्त १९४६ ई०

गोरखनाथ चौबे

विषय-सूची

पहिला खंड

गृह सरकार

(Home Government)

दूसरा खंड

केन्द्रीय सरकार

(Central Government)

अध्याय ७

गवर्नर-जनरल और वाइसराय

अध्याय ८

केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा

(Central Executive)

अध्याय ९

केन्द्रीय धारा-सभा

(Central Legislature)

अध्याय १०

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध

तीसरा खंड

प्रान्तीय सरकार

अध्याय ११

गवर्नर

अध्याय १२

प्रान्तीय मन्त्रिमंडल

अध्याय १३

प्रान्तीय धारा-सभा

अध्याय १४

प्रान्तीय स्वराज

(Provincial Autonomy)

चौथा खंड

स्थानीय स्वायत्त-शासन

(Local Self-Government)

अध्याय १५

प्रान्तीय विभाग

अध्याय १६

स्थानीय स्वराज

अध्याय २१

न्यायालय

(Judiciary)

अध्याय २२

सरकारी नौकरियाँ

अध्याय २३

शिक्षा

आधुनिक भारतीय शासन

अध्याय १

शासन का विकास

भौगोलिक स्थिति

भारतवर्ष का क्षेत्रफल १८०८६७६ वर्ग मील है जिसमें बृटिश भारत का क्षेत्रफल १०६६१७१ वर्ग मील और भारतीय रियासतों का ७१२५०८ वर्ग मील है। बृटिश भारत में २६५८२७००० व्यक्ति तथा भारतीय रियासतों में ६२६७३००० व्यक्ति रहते हैं। उत्तर से दक्खिन तक इस देश की लंबाई २००० मील और चौड़ाई २५०० मील है। भारत-वर्ष स्वयं एक संसार है। सारे संसार का भ्रमण करने पर भी इस देश में कुछ नवीनता दिखलाई पड़ेगी। समूचे देश की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ के है। पिछले दस वर्षों में यहाँ की आबादी १५ फ़ी सदी बढ़ गई है। चीन के सिवाय यह देह संसार में सबसे बड़ा है। रूस को छोड़कर यह सारे योरुप के बराबर है। बृटेन के बराबर बराबर इसके १५ टुकड़े किए जा सकते हैं। समुद्र के किनारों की लंबाई ५००० मील के लगभग है। इतना लंबा किनारा बहुत कम देशों को नसीब होगा। इन्हीं किनारों पर कराँची, बम्बई, मद्रास और कलकत्ता ऐसे बन्दरगाह हैं।

बृटिश-साम्राज्य में दूसरे दर्जे का शहर कलकत्ता इसी देश में मौजूद है। इसकी जनसंख्या २१२०००० है। संसार की सबसे पवित्र नदी गंगा इसी देश में बहती है। इसकी प्रशंसा वेदों के अतिरिक्त यूनान के सबसे बड़े दार्शनिक सुकरात ने भी की है। जिस बौद्ध धर्म को

आज भी संसार का आठवाँ भाग मान रहा है, उसका जन्मदाता भगवान बुद्ध इसी देश में पैदा हुए थे। कृष्ण ऐसे महापुरुष ने, जिसका दर्शन-शास्त्र संसार की सभी भाषाओं में अनुवादित हो चुका है, इसी देश में जन्म लिया था। आज भी संसार का सबसे महान् व्यक्ति महात्मा गाँधी यहीं निवास करते हैं। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि इस देश में कोई ऐसी विशेषता है जो महान् व्यक्तियों को उत्पन्न करती रहती है। समय के प्रवाह में यह देश आज पिछड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, परन्तु इसका पिछला इतिहास सोने के अक्षरों में अभी तक हमारे सामने मौजूद है। विदेशियों ने भी मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा की है। फ़्रान्सीसी यात्री बरनियर लिखता है, 'यह हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों ओर से अनेक रास्तों से आ आकर जमा होता है, और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।" सम्भव है हमें फिर वे दिन देखने को मिलें।

भौगोलिक दृष्टि से हिन्दोस्तान की स्थिति संसार के सभी देशों से अच्छी है। जापान की तरह यहाँ बार बार भूचाल और ज्वार भाटे नहीं आते। अफ्रीका की तरह यहाँ कोई रेगिस्तान नहीं है। इस देश की प्राकृतिक बनावट उस क़िले की तरह है, जिस पर दुश्मन का एक भी हमला काम नहीं कर सकता। उत्तर में २६००२ फ़ीट ऊँचा हिमालय पर्वत है। इतना ऊँचा पहाड़ संसार के किसी भी देश में नहीं पाया जाता। बाक़ी तीन तरफ़ अथाह समुद्र है। इन्हीं से सारे देश को पानी मिलता है। अन्तर्राष्ट्री दृष्टि से यह देश उस स्थान पर बसा हुआ है जहाँ से संसार के सभी रास्ते गुज़रते हैं। यही कारण है कि एक समय यह देश संसार भर से तिजारत करता था। यहाँ की बनी हुई चीज़ें दुनियाँ की बाज़ारों में चौगुनी क़ीमत पर बिकती थीं।* सड़कों का समूचे देश में एक जाल सा फैला हुआ है। नदियों के कारण व्यापार में और भी आसानी पड़ती है। कच्चे माल की जो सुविधा इस देश में पाई जाती है वह किसी और देश में नहीं मिलती। यदि यहाँ का कच्चा माल बाहर जाने से रोक दिया जाय तो योरुप के कितने ही देश ग़रीबी से तबाह हो जायँगे। यह देश संसार भर को जूट प्रदान करता है। दुनिया में जितनी चाय की खपत है उसका ६० फ़ीसदी यहीं पैदा

*Ruins of the Indian Trade and Industries—B. D. Basu.

होता है। ६० फ़ीसदी लाह संसार को यही देता है। इस देश को कच्चे माल का एक बहुत बड़ा कारख़ाना कहा जाय तो अनुचित न होगा।

सारा देश सूबों और रियासतों में बँटा हुआ है। प्रत्येक हिस्सा अपनी अपनी विशेषतायें रखता है। जिस प्रकार योरुप का एक निवासी अपने ही महाद्वीप में दूसरे देशवासियों की बोली नहीं समझता, उसी तरह हिन्दोस्तान के एक हिस्से का रहने वाला दूसरे प्रान्त की बोली नहीं जानता। समूचे देश में २१५ भाषाएँ बोली जाती हैं। इस देश की बदनसीबी यह है कि सब से उपजाऊ होते हुए भी यह सब से ग़रीब है। अमेरिका, रूस और हिन्दोस्तान—ये तीनों संसार के सबसे धनी देशों में गिने जा सकते हैं। हिन्दी इस देश की मातृ-भाषा है। चीनी भाषा को छोड़कर इसके बोलने वाले संसार में सब से अधिक हैं। सारे भारतवर्ष में १५०० संस्थायें हिन्दी प्रचार का कार्य कर रही हैं। लगभग २३ करोड़ आदमी हिन्दी बोलते हैं। इस देश की जलवायु न अधिक ठंढी है और न गर्म। मध्यम दर्जे की गर्मी और सर्दी दोनों ही पड़ती हैं। साल में चार चार महीने के तीन मौसम होते हैं। ये क्रमशः एक दूसरे के बाद आते रहते हैं। मौसमों का इतना सुन्दर क्रम किसी और देश में नहीं पाया जाता।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि इस देश की भौगोलिक परिस्थिति सर्वथा अनुकूल है। उन्नति के सभी साधन प्रकृति ने इसे दे रक्खा है। नदी, पहाड़, झील, समुद्र और जंगल, इनसे न केवल यहीं के निवासी, बल्कि संसार के बहुत से लोग लाभ उठाते हैं। इस देश की अच्छी से अच्छी लकड़ी विदेशों में भेज दी जाती है। शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से इस देश की जलवायु व्यक्ति के लिए सर्वथा अनुकूल है। यहाँ का वातावरण धार्मिक विचारों से ओत-प्रोत है। यहाँ के निवासियों का जीवन सरल और उनके विचार उच्च होते हैं। अधिकतर व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। इन्हीं के अनुकूल इस देश का सामाजिक संगठन भी बनाया गया था, जो किसी न किसी रूप में आज भी दिखाई पड़ता है। ग्राम-पंचायतें इस देश की सब से पुरानी संस्थायें हैं। अंगरेज़ी राज के पहले केन्द्रीय शासन कभी भी स्थानीय संगठनों में बाधा नहीं डालता था। पंचायतें स्वतंत्र रूप से राज्य करती थीं। सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता की भावना दिखाई पड़ती थी। भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के राष्ट्रीय जीवन को एक विशेष ढाँचे में ढाल दिया था।

अँगरेज़ों का आगमन

सर टामस रो १६१५ ई० में जहाँगीर के दरबार में आया। तब से बराबर अँगरेज़ों के आने का एक ताँता आरम्भ हुआ। १६०० ई० में एलिज़ाबेथ के समय में ईस्ट इंडिया-कम्पनी की स्थापना हुई। इस कम्पनी का उद्देश्य हिन्दोस्तान से व्यापार करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तिजारती अँगरेज़ इस देश में लगातार आते रहे। उस समय इस देश की राजनीतिक परिस्थिति काफ़ी अच्छी थी। औरंगज़ेब की मृत्यु तक, अर्थात् सन् १७०७ ई० तक यहाँ का शासन-प्रबन्ध बहुत ही सुदृढ़ और सर्वप्रिय था। किसी विदेशी के दिल में यह ख़याल तक नहीं आ सकता था कि मुग़ल राज्य का सितारा किसी दिन अस्त हो जायगा। पुर्तगीज़, फ़्रान्सीसी, डच और अँगरेज़ सभी अपनी अपनी तिजारत में लगे हुए थे। व्यापार में एक दूसरे को दबा देने के लिए इनमें आपस में छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी होती रहीं। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि ये लड़ाइयाँ औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद आरम्भ हुईं। मुग़लों में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ जो इतने बड़े राज्य को चलाता। केन्द्रीय शासन कमज़ोर होने लगा। प्रान्तों के सूबेदार और नव्वाब मनमानी करने लगे।

इस बिगड़ती हुई राजनीतिक परिस्थिति से विदेशियों ने पूरा पूरा लाभ उठाया। इनके आपसी झगड़े दक्खिनी हिन्दोस्तान के कोने कोने में फैल गये। हिन्दोस्तानियों ने भी इनमें हिस्सा लिया। अन्त में अँगरेज़ों की विजय हुई। १७५७ ई० में प्लासी की लड़ाई ने इस बात का फ़ैसला कर दिया कि अंगरेज़ भारतीय व्यापार में सर्वेसर्वा हैं। १७६५ ई० में अँगरेज़ों को बंगाल की दीवानी मिली। उन्हें यह अधिकार मिला कि वे बंगाल प्रान्त की मालगुज़ारी वसूल कर सरकारी ख़ज़ाने में भेज दें। इसके बदले में उन्हें कुछ हिस्सा दे दिया जाता था। अभी तक अँगरेज़ केवल व्यापारी समझे जाते थे, लेकिन १७६५ के बाद वे धीरे धीरे राजनीतिक मामलों में हाथ डालने लगे। ज्यों ज्यों इस देश का शासन प्रबन्ध कमज़ोर होता गया, अँगरेज़ों को राजनीतिक मामलों में हाथ बटाने का मौक़ा मिलता गया। परिणाम यह हुआ कि १८५७ ई० तक ईस्ट-इंडिया कम्पनी हिन्दोस्तान के एक बहुत बड़े हिस्से का मालिक बन गई। हिन्दोस्तानियों ने होश सँभाला और १८५७ ई० में अपनी खोई हुई आज़ादी को हासिल करने का एलान किया। इसी को गदर के नाम से सूचित किया जाता है। हिन्दोस्तानी इसमें असफल रहे। १८५८ ई०

में ईस्ट-इंडिया कम्पनी तोड़ दी गई। इंगलैंड की पार्लियामेंट ने भारतीय शासन का भार अपने हाथों में ले लिया। तब से आज तक यही पार्लियामेंट इस देश का शासन कर रही है। भारत की राजसत्ता इसी के हाथ में दी गई है।

ऐतिहासिक विभाग

अमेरिका की शासन-पद्धति की तरह भारतवर्ष का शासन-विधान एक या दो दिन में नहीं बनाया गया है। कहा जाता है कि अमेरिका की शासन-पद्धति को २० मिनट में कोई भी पढ़ सकता है। १७८३ ई० में वहाँ की शासन-पद्धति का निर्माण किया गया था। भारतवर्ष की शासन-पद्धति इतनी सूक्ष्म नहीं है। इसे समझने के लिए काफ़ी समय और सामग्री की आवश्यकता है। इसका विकास क्रमशः हुआ है। हिन्दू और मुसलमानी ज़माने में जो शासन-पद्धति यहाँ थी उसका वर्णन करना हमारी इस पुस्तक के बाहर की चीज़ है। हमें केवल यही देखना है कि अँगरेज़ी राज में जो शासन-पद्धति बनी उसका विकास कैसे हुआ। किस समय यह शासन-पद्धति बनी, कब कब इसमें परिवर्तन किए गए और वर्तमान शासन-पद्धति किन सीढ़ियों से होकर आज स्थापित की गई है। साथ ही हम यह भी देखेंगे कि नये शासन-विधान का स्वरूप कैसा है। इसमें कौन कौन सी त्रुटियाँ हैं।

भारतीय शासन-पद्धति के विकास का वर्णन करते हुए १९०६ ई० में ३ दिसम्बर को ब्रिटिश सम्राट् की ओर से एक विवरण प्रकाशित किया गया था, जिसका आशय निम्नलिखित है :—

"१७७३ और १७८४ ई० में जो क़ानून पास किए गये थे, उनका आशय हिन्दोस्तान में ईस्ट इंडिया कम्पनी की मातहती में एक सुव्यवस्थित शासन पद्धति की स्थापना करना था। १८३३ ई० के कानून ने भारत वासियों के लिए नौकरी आदि का दरवाज़ा खोल दिया। १८५८ के क़ानून ने भारतवर्ष का शासन-प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से सम्राट् के हाथ में दे दिया। उसी समय जनता को बहुत से अधिकार, जो अभी तक मौजूद हैं, दिए गये थे। १८६१ ई० के क़ानून ने प्रतिनिधित्व शासन की नीव डाली। १९०९ ई० के क़ानून के अनुसार भारतीयों के अधिकार की और भी वृद्धि हुई।" १९१९ के क़ानून ने भारतीय प्रतिनिधियों को शासन में बहुत बड़ा हिस्सा देकर यह स्पष्ट कर दिया कि किस प्रकार वे प्रान्तीय स्वराज से बढ़ते बढ़ते पूर्ण स्वराज प्राप्त कर सकते हैं। १९३५

ई० के शासन-विधान ने भारतवासियों को प्रान्तीय स्वतंत्रता की पूरी बाग-डोर सौंप दिया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए भारतीय शासन के विकास को हम तीन भाँगों में बाँट सकते हैं। पहले काल में कम्पनी केवल व्यापारिक संस्था थी। धीरे धीरे वह एक बहुत बड़े राज्य का मालिक बन बैठी। दूसरे काल में पार्लियामेंट ने शासन प्रबन्ध का भार अपने हाथ में ले लिया और एक दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना की। तीसरे काल में भारतवासियों को शासन-प्रबन्ध में थोड़ा बहुत अधिकार दिया गया। यही अधिकार आज प्रान्तीय स्वराज के नाम से सूचित किया जाता है।

प्रथम काल (१७५७—१८५८)

ऊपर कहा गया है कि ईस्ट-इंडिया-कम्पनी की स्थापना १६०० ई० में हुई थी। इसका उद्देश्य भारतवर्ष से केवल व्यापार करना था। कुछ लोगों की यह धारणा है कि आरम्भ में ही अँगरेज़ों का उद्देश्य एक राज्य की स्थापना करना था, लेकिन यह बात सरासर गलत है। इंगलेंड और हिन्दोस्तान के इतिहास को देखते हुए, इस कथन को कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता। दक्षिणी हिन्दोस्तान में कम्पनी ने अपना व्यापार आरम्भ किया। मुग़ल साम्राज्य धीरे धीरे कमज़ोर हो रहा था। प्रान्तों के हाकिम मनमानी करने लगे थे। कम्पनी ने शासन की कमज़ोरी से काफी लाभ उठाया। उसके नौकर राजनीतिक मामलों में हाथ डालने लगे। धीरे धीरे उनकी तिजारत भी बढ़ती गई। इसलिए कम्पनी का दबदबा दक्षिणी हिन्दोस्तान में बढ़ने लगा। उधर १७६५ ई० में बंगाल की दीवानी ले लेने से कम्पनी को काफ़ी मुनाफ़ा होने लगा। उसे अपनी तिजारत में उतना फ़ायदा नहीं दिखलाई देता था जितना बंगाल की लगान-वसूली में। प्रजा से मनमाना धन वसूल करने में कम्पनी ने कोई कसर बाक़ी न रक्खी। अब उसे इस बात का चस्का लगा कि इसी तरह और भी सूबों में अधिकार प्राप्त किए जाएँ। नतीजा यह हुआ कि दक्खिनी हिन्दोस्तान में वर्षों तक तिजारत का बहाना लेकर लड़ाइयाँ चलती रहीं।

१७७३ ई० का चार्टर ऐक्ट

राज्य की स्थापना तो कम्पनी ने कर दिया लेकिन उसके पास शासन प्रबन्ध की सामग्री काफ़ी नहीं थी। बंगाल के गवर्नर ने ११ नवम्बर १७७३ ई० के एक पत्र में यह लिखा कि "जो कुछ भी जगह कम्पनी के अधिकार में आ

गई है उसके प्रबन्ध का कोई माकूल इन्तज़ाम नहीं है।" उसने यह भी प्रगट किया कि जल्दी से जल्दी एक ऐसी मशीन बनानी चाहिए जिससे शासन का कार्य चलाया जाय। इंगलैंड की पार्लियामेंट ने १७७३ ई० में रेग्यूलेटिंट ऐक्ट (Regulating Act) पास करके हिन्दोस्तान में एक गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिल के लिए विधान बनाया। कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम के स्थान पर एक न्यायालय भी इसी ऐक्ट के अनुसार स्थापित किया गया। मद्रास और बम्बई के गवर्नर अपना सब काम गवर्नर-जनरल की सलाह से करने लगे। पार्लियामेंट को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह कम्पनी के मामलों में हाथ डाल सके। गवर्नर जनरल को सलाह देने के लिए ४ सदस्यों की एक सभा बनाई गई। इसका उद्देश्य यह था कि जो कुछ राज्य कम्पनी के हाथ में आ गया है उसे अच्छी तरह चलाया जाय। साथ ही और भी नई नई जगहें शामिल की जायँ।

पिट्स इन्डिया बिल १७८४

१७८४ ई० में पिट इंडिया बिल पास किया गया। अब तक कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स कम्पनी के कामों की देख रेख करते थे, लेकिन इस ऐक्ट के अनुसार एक नये संगठन का जन्म हुआ जिसका नाम बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल रक्खा गया। अब से कम्पनी की कार्रवाइयों की देख रेख बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल और कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स दोनों करने लगे। यह भी कहा जा सकता है कि एक प्रकार से कम्पनी के लिए दोहरा शासन स्थापित किया गया। यह दोहरा प्रबन्ध १८५८ ई० तक चलता रहा। वैसे तो यह कहा गया कि १७८४ के क़ानून का उद्देश्य हिन्दोस्तान में अच्छे शासन की नीव डालना है, परन्तु इसका उद्देश्य हिन्दोस्तान में अँगरेज़ी राज को और दृढ़ करना था। कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स में थोड़े से सदस्यों की एक गुप्त सभा थी। हिन्दोस्तान के गहरे मामलों पर यही सभा विचार करती थी। शासन-प्रबन्ध का भार आने से कम्पनी की ज़िम्मेदारी हिन्दोस्तान में बढ़ती जा रही थी। गुप्त-सभा के काम बड़ी ज़िम्मेदारी के थे और वे क्रमशः बढ़ रहे थे। बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल को यह अधिकार दिया गया कि वह हिन्दोस्तान के राजनीतिक मामलों में गहराई के साथ विचार करे और अपनी राय गुप्त सभा को दे। कम्पनी के अधिकारी हिन्दोस्तान में किसी तरह की लड़ाई या सुलह तब तक नहीं कर सकते थे, जब तक वे बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल से इसकी आज्ञा प्राप्त न कर लें। इस सभा में ६ सदस्य थे। सम्राट् ने इन्हें इसलिए नियुक्त किया था कि वे हिन्दोस्तान

के सारे मामलों की जानकारी रक्खें और उन पर अपनी उचित राय दें। यह पहला ऐक्ट था जिसने पार्लियामेंट को हिन्दोस्तान के राजनीतिक मामलों में हाथ डालने का अवसर दिया। यदि बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल और कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता तो सम्राट् इसका फ़ैसला करता था। इस ऐक्ट के अनुसार सम्राट् को यह अधिकार दिया गया कि वह गवर्नर जनरल को जब चाहे हिन्दोस्तान से वापस बुला ले। गवर्नर-जनरल और उसकी सभा को बहुत से अधिकार प्रदान किए गये।

१८१३ का चार्टर ऐक्ट

१७९३ ई० में एक नया क़ानून पास किया गया। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी को ही पूर्वीय देशों में व्यापार करने का अधिकार था। इस ऐक्ट में यह अधिकार कम्पनी को २० साल के लिए और दे दिया गया। गवर्नर-जनरल के अधिकारों में और वृद्धि की गई। वह अपनी कौन्सिल के फ़ैसले को रद्द कर सकता था। सूबों के गवर्नर बिना उसकी आज्ञा के कोई लड़ाई या सन्धि नहीं कर सकते थे। १८०० ई० तक गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिल जो कुछ नियम बनाते थे, अन्य प्रान्त के गवर्नरों को उनका पालन करना पड़ता था। उन्हें कोई क़ानून बनाने का अधिकार न था। १८०० ई० में मद्रास प्रान्त के गवर्नर को यह अधिकार दिया गया कि वह शासन को चलाने के लिए एक छोटी सी कौन्सिल द्वारा क़ानून बना सकता है। इसी तरह का अधिकार बम्बई के गवर्नर को १८०७ में दिया गया। १८१३ ई० में एक दूसरा नियम पार्लियामेंट ने पास किया जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि भारतवर्ष में कम्पनी जो कुछ राज्य स्थापित कर रही है उसकी राज-सत्ता सम्राट् के हाथ में रहेगी। सारी अँगरेज़-जाति को यह आज्ञा दी गई कि जो चाहे हिन्दोस्तान से व्यापार कर सकता है। लेकिन चाय की तिजारत हिन्दोस्तान में कम्पनी के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था। कम्पनी को छोड़कर चीन से तिजारत करने की आज्ञा किसी को न थी। इसी क़ानून के अनुसार पहले पहल हिन्दोस्तान में बड़े पादरी का एक स्थान बनाया गया। पार्लियामेंट ने यह निश्चित किया कि कम्पनी अपनी आमदनी में से एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा के लिए ख़र्च करे।

१८३३ का चार्टर ऐक्ट

१८३३ ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी को फिर बीस वर्ष के लिये अधिकार पत्र दिये गए। कम्पनी से चीन के साथ व्यापार की बपौती छीन ली गई। अब चीन के साथ व्यापार करने की आज्ञा सभी इंगलैण्ड निवासियों को

दे दी गई । टी० बी० मेकाले लिखता है, "कम्पनी से इस बपौती को तोड़ कर यह आवश्यक कर दिया गया है कि उसके संगठन में परिवर्तन किया जाय।" इस ऐक्ट में यह भी निश्चित किया गया कि अब से कम्पनी केवल एक ठेकेदार संस्था की तरह रहेगी। लार्ड मार्ले का कहना है कि, "१७८४ और १८५८ ई० के बीच में जितने भी ऐक्ट पास किए गये उनमें १८३३ ई० का नियम भारतीय सरकार के लिए सब से महत्वपूर्ण है।" इसके अनुसार मुख्य ६ बातें निश्चित की गईं :—

(१) चीन के साथ व्यापार करने का अधिकार सभी अँगरेजों को एक समान मिल गया।

(२) कम्पनी जितनी भी भूमि हिन्दोस्तान में अपने अधिकार में रक्खेगी उस पर एक मात्र अधिकार बृटेन के सम्राट् तथा उनकी औलाद का होगा।

(३) बम्बई और मद्रास के गवर्नरों से क़ानून बनाने का अधिकार छीन लिया गया। केवल गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि वह सारे हिन्दोस्तान के लिये क़ानून बनाए।

(४) गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। तीन के बदले अब उसमें चार सदस्य हो गये। नये सदस्य का कार्य यह था कि वह गवर्नर जनरल को क़ानून बनाने में मदद दे। इसका नाम क़ानूनी मेम्बर (Law Member) था। लार्ड मेकाले पहिला क़ानूनी मेम्बर बनाया गया।

(५) भारतीय क़ानूनों में संशोधन करने के लिये लार्ड मेकाले की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया।

(६) हिन्दोस्तानियों को यह आश्वासन दिया गया कि ईस्ट-इन्डिया कम्पनी की नौकरी के लिये रूप, रंग, धर्म, जाति इत्यादि का भेद-भाव नहीं किया जायगा।

इङ्गलैण्ड से कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स और ईस्ट इन्डिया कम्पनी के बीच में कोई भी पत्र-व्यवहार बिना बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल की जानकारी के नहीं हो सकता था। बंगाल का गवर्नर-जनरल सारे हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल बना दिया गया। एक नई प्रेसीडेन्सी क़ायम करने के लिये, जिसकी राजधानी आगरे में हो, एक योजना बनाई गई। परन्तु दो वर्ष बाद यह विचार स्थगित कर दिया गया। बंगाल के गवर्नर-जनरल को, जो कि अब

सारे हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हो गया था, बंगाल के लिए एक सहायक गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। मद्रास और बम्बई के लिए दो पादरी नियुक्त किए गए। क़ानून बनाने का अधिकार केवल गवर्नर- जनरल और उसकी कौन्सिल को देकर कानूनी अधिकार केन्द्रित कर दिया गया। केन्द्रीय शासन की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

१८५३ का चार्टर ऐक्ट

१८५३ ई० के ऐक्ट के अनुसार ईस्ट इन्डिया कम्पनी व्यापारी संस्था के बदले राज्य करने वाली शक्ति मान ली गई। इस ऐक्ट के अनुसार कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स के १८ सदस्यों में से ६ सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार सम्राट् को दिया गया। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। इसके अतिरिक्त क़ानून बनाने के लिए ६ विशेष सदस्यों की नियुक्ति की गई। बंगाल में एक लेफ्टीनेन्ट गवर्नर नियुक्त किया गया। इङ्गलैण्ड में भारतीय क़ानूनों पर विचार करने के लिए एक कमीशन बनाया गया। सिविल सर्विस का दरवाज़ा सबके लिये मुक़ाबले की बुनियाद पर खोल दिया गया।

उपरोक्त ऐक्ट को व्यतीत हुए अभी पूरे पाँच साल भी न हुए थे कि हिन्दोस्तान में एक बहुत बड़ी क्रान्ति आरम्भ हुई। यह १८५७ ई० के ग़दर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके विषय में ऐतिहासिकों के भिन्न भिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि यह एक सिपाही-विद्रोह था। लेकिन दूसरे लोग यह साबित करते हैं कि यह हिन्दोस्तान की आज़ादी की पहिली लड़ाई थी, जिसमें हिन्दोस्तानियों ने तलवार और बन्दूक़ की मदद से अपने मुल्क को आज़ाद करने का बीड़ा उठाया था। जो कुछ भी हो हिन्दोस्तानियों को हारना पड़ा। हज़ारों देश-वासियों और विदेशियों की जानें गईं। ग़दर ने इङ्गलैण्ड की सरकार को चौकन्ना कर दिया। उसे यह विश्वास हो गया कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी का शासन हिन्दोस्तानियों के लिए उपयुक्त नहीं है। यहीं से भारतीय शासन का दूसरा युग आरम्भ होता है।

द्वितीय काल (१८५८—१९१८)

१८५८ का चार्टर ऐक्ट

१८५८ ई० में पार्लियामेन्ट ने एक नया ऐक्ट पास किया। मुग़ल राज्य का सितारा हमेशा के लिए डूब गया। मुग़ल सम्राट् को वहिष्कृत कर दिया गया और उसकी सारी शक्ति बृटेन के सम्राट् को दे दी गई। ईस्ट इन्डिया

कम्पनी भारतीय शासन से अलग कर दी गई। इङ्गलैण्ड की पार्लियामेन्ट ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसने यह घोषणा की कि अब से हिन्दोस्तान का राज्य सम्राट् के हाथों में सुपुर्द कर दिया जाता है। एक भारत मन्त्री की नियुक्ति की गई। बोर्ड-आफ़-कन्ट्रोल और कोर्ट-आफ़-डाइरेक्टर्स के सारे अधिकार उसे दे दिए गये। १५ सदस्यों की कौन्सिल-आफ़-इन्डिया नामक एक सभा बनाई गई जिसका कार्य भारतीय शासन को चलाना और भारत मंत्री को सभी प्रकार से सहायता देना था। पार्लियामेन्ट हिन्दोस्तान के लिए सर्वेसर्वा बन बैठी। १८७६ ई० में जब महारानी विक्टोरिया हिन्दोस्तान की साम्राज्ञी हुईं तो यह बात और भी स्पष्ट कर दी गई।

वैसे तो पार्लियामेन्ट ने भारतीय शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली, परन्तु उसे भारतीय मामलों का तजुरबा बिलकुल न था। उसे हिन्दोस्तान के मामलों में कोई ख़ास दिलचस्पी न थी। इङ्गलैण्ड स्वयम् अपने घरेलू मामलों में लगा हुआ था। पार्लियामेन्ट के सामने आयरलैण्ड और योरप की समस्यायें पड़ी हुई थीं। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं था कि वह ६००० मील दूर हिन्दोस्तान के शासन में दिलचस्पी लेती। पार्लियामेन्ट के सदस्य भारतीय रहन-सहन से परिचित न थे। आवागमन की सुविधा भी आजकल जैसी न थी। हिन्दोस्तान में पाश्चात्य रहन-सहन अपना घर बना रही थी। इन्हीं सब बातों का विचार करते हुए पार्लियामेन्ट ने भारत मन्त्री की नियुक्ति की, और उसे यह आज्ञा दी कि वह प्रति वर्ष हिन्दोस्तान के आर्थिक तथा सामाजिक विषयों पर एक रिपोर्ट पार्लियामेन्ट के सामने पेश करे। उसे यह भी आदेश दिया गया कि वह हर साल हिन्दोस्तान की आय-व्यय का पूरा ब्योरा पार्लियामेन्ट के सामने रक्खे। भारत मन्त्री की सहायता के लिए जो १५ सदस्यों की एक कौन्सिल बनाई गई उसमें ८ सदस्यों को सम्राट् ने और बाक़ी को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने नियुक्त किया। यह भी तय किया गया कि यदि कौन्सिल (India Council) में कोई जगह ख़ाली हो तो उसकी भर्ती सम्राट् करेगा। कौन्सिल के सदस्य तब तक नहीं हटाये जा सकते थे जब तक पार्लियामेन्ट की दोनों सभाएँ इसके लिए सम्राट् के सामने नम्र निवेदन पेश न करतीं। सदस्यों को राजनीतिक मामलों से अलग रखने के लिए यह आज्ञा दी गई कि वे पार्लियामेन्ट में नहीं बैठ सकते।

कौन्सिल का काम भारत मन्त्री को सलाह देना था। यदि वह चाहता तो कौन्सिल के फ़ैसले को रद्द कर सकता था। केवल भारतीय

एक साधारण सदस्य घोषित कर दिया गया। १८६१ ई० में पार्लियामेन्ट ने एक नया कौंसिल ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार एक अर्थ-सदस्य की नियुक्ति की गई। १८७४ ई० में कौंसिल में एक और सदस्य बढ़ा दिया गया जिसके ज़िम्मे सरकारी इमारतों की देखरेख का काम सौंपा गया। कौंसिल का प्रत्येक सदस्य किसी विभाग का प्रधान होता था। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह कौंसिल के फ़ैसले को रद्द कर सके।

१७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से हिन्दोस्तान का शासन प्रबन्ध केन्द्रित होने लगा था। शासन का भार धीरे-धीरे केन्द्रीय सरकार के हाथों में आने लगा। प्रान्तीय सरकारों की शक्ति घटने लगी। प्रान्तों के गवर्नर केन्द्रीय सरकार के एजेन्ट मात्र रह गये। शासन-प्रबन्ध में प्रान्तीय सरकारों को यह आज्ञा थी कि वे गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के हुक्म की तामील करते रहें। साथ ही उन्हें हर मामले की सूचना केन्द्रीय सरकार को देनी पड़ती थी। प्रान्त की सरकारें, केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के बिना क़र्ज़ नहीं ले सकती थीं। नये टैक्स लगाने के लिये उन्हें केन्द्रीय सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती थी। कोई भी बिल गवर्नर की कौंसिल में तब तक पेश नहीं हो सकता था जब तक गवर्नर-जनरल की आज्ञा न ले ली जाती। बिल पास हो जाने पर भी अन्तिम निर्णय गवर्नर-जनरल का ही होता था। एक राजनीतिज्ञ ने लिखा है, "आर्थिक, राजनीतिक तथा क़ानूनी सभी दृष्टियों से १६०६ ई० के पहले केन्द्रीय सरकार की शक्ति बड़ी ही ज़ोरदार थी।" प्रान्तों के शासक उसी की आज्ञा पर चलते थे। वह किसी भी समय उनके अधिकार छीन सकती थी।

धारा सभाओं का विकास

१८३३ का चार्टर एक्ट

शासन के द्वितीय काल में (१८५८-१६१८) धारा सभाओं का भी विकास हुआ। आरम्भ में कार्य-कारिणी और धारा-सभा में कोई अन्तर न था। जब कभी कोई क़ानून बनाना होता तो गवर्नर-जनरल या प्रान्तों के गवर्नर कुछ विशेष व्यक्तियों से सलाह ले लिया करते थे। १८३३ ई० में पहिली बार एक क़ानूनी मेम्बर गवर्नर-जनरल की कौंसिल में भर्ती किया गया। यहीं से क़ानून बनाने का कार्य कार्यकारिणी से अलग समझा जाने लगा। १८५३ ई० में ६ मेम्बर गवर्नर-जनरल की कौंसिल में और भर्ती

किये गये। इनका एक मात्र काम क़ानून बनाने में उसकी मदद करना था। इनमें दो बंगाल की बड़ी कचहरी (Bengal Supreme Court) के जज थे और बाक़ी मद्रास, बम्बई, बंगाल और आगरा की सरकारों द्वारा नियुक्त किये गये थे। यही सभा बढ़ते बढ़ते केन्द्रीय सरकार की धारा सभा बन गई।

१८६१ का चार्टर ऐक्ट

१८६१ ई० के इंडियन कौंसिल ऐक्ट के अनुसार ६ सदस्य और भर्ती किये गये। अर्थात् क़ानूनी मामलों में गवर्नर-जनरल को सलाह देने के लिये सदस्यों की संख्या अब १२ कर दी गई। इनमें ६ सदस्य किसी सरकारी विभाग में काम नहीं कर सकते थे। कुछ हिंन्दोस्तानियों को भी इसमें हिस्सा लेने का मौक़ा मिला। इस ऐक्ट के अनुसार मद्रास और बम्बई प्रान्तों की सरकारों को क़ानून बनाने का वह अधिकार, जो १८३३ ई० में उनसे छीन लिया गया था, पुनः प्रदान किया गया। लेकिन ये अधिकार नाम मात्र के थे। उन्हें क़ानूनी मामलों में बिलकुल स्वतंत्रता नहीं दी गई थी। गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेकर वे कोई क़ानून धारा-सभा में पेश कर सकते थे और फिर उसकी पुष्टि केन्द्रीय सरकार से कराते थे। लार्ड मेकडानल्ड के शब्दों में "प्रान्तीय धारा सभाएँ कानून बनाने के लिये छोटी-छोटी कमेटियाँ थीं।" उन्हें यह अधिकार न था कि वे कार्य-कारिणी के कामों में हस्तक्षेप करें।

१८९२ का चार्टर ऐक्ट

१८९२ ई० में फिर एक इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट पास किया गया। इसके अनुसार केन्द्रीय धारा सभा में सदस्यों की संख्या १२ से १६ कर दी गई। ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। बड़ी-बड़ी संस्थाओं को इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपनी इच्छानुसार धारा सभाओं के लिये लोगों के नाम सरकार के सामने पेश करें। यद्यपि सरकार उन्हें स्थान देने के लिये वाध्य न थी, फिर भी उन्हीं में से लोग नियुक्त किये जाते थे। उस समय "चुनाव" की प्रथा न थी। अप्रत्यक्ष रूप से सदस्यों की भरती में प्रजा की राय ले ली जाती थी।

१९०९ का मार्ले मिंटो सुधार

१९०९ ई० के मार्लेमिंटो सुधार ने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं में और भी परिवर्तन किया। सदस्यों की संख्या और उनकी ज़िम्मेवारी पहले से अधिक कर दी गई। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या

बढ़ा दी गई। धारा-सभा के सदस्यों को अधिकार दिया गया कि वे सरकार से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं, तथा बजेट के ऊपर वादाविवाद कर सकते हैं। लार्ड कर्ज़न की नीति से भारतीय प्रजा बहुत ही नाराज़ थी। १६०५ में बंगाल को दो टुकड़ों में बाँटने का जो प्रश्न उठाया गया था, उससे न केवल बंगाल की बल्कि सारे हिन्दोस्तान की प्रजा असन्तुष्ट थी। १६०५ में अखिल-भारतीय काँग्रेस कमेटी का २१ वाँ वार्षिकोत्सव काशी में हुआ। इसमें बंगाल के टुकड़े करने की नीति का बुरी तरह खंडन किया गया। १६०६ ई० में काँग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में यह पास किया कि सम्पूर्ण देश की आवाज़ बृटिश शासन की नीति के विरुद्ध है।*

असन्तोष को दूर करने के लिये १६०६ ई० में बृटिश सरकार को भारतीय शासन में सुधार की आवश्यकता महसूस हुई। चुनाव का सिद्धान्त भी इसी समय स्वीकार किया गया। मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन प्रदान किया गया। धारा-सभा के सदस्यों को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वे सरकार के कामों की उचित टीका टिप्पणी कर सकते हैं। किन्तु अभी तक भारतीय प्रजा को शासन की वास्तविक जिम्मेवारी नहीं दी गई थी। सुधार का जन्मदाता लार्ड मार्ले स्वयं इस बात की ताईद करता है कि बृटिश सरकार की नियत यह कतई नहीं थी कि भारतीय प्रजा को शासन की ज़िम्मेवारी दी जाय।

इस सुधार के अनुसार वाइसराय की कार्यकारिणी सभा में एक हिन्दोस्तानी को भी स्थान दिया गया। सत्येन्द्रप्रसन्न सिनहा, जिन्हें आगे चल कर लार्ड की उपाधि दी गई, पहिले पहिल इसके सदस्य बनाये गये। प्रान्तों की कार्यकारिणी सभाओं में भी इसी प्रकार के स्थान निश्चित कर दिये गये। ऊपर कहा गया है कि भारतीय प्रजा के असन्तोष को दूर करने के लिये इस सुधार की योजना बनाई गई थी। परन्तु इसका परिणाम सन्तोष-जनक नहीं हुआ। कार्य-कारिणी पहिले की तरह कमज़ोर और विदेशी बनी रही। केन्द्रीय सरकार का दबदबा प्रान्तीय सरकारों पर कम न हुआ।

---

*यह देखते हुये कि देश के शासन में यहाँ के लोगों का कोई हाथ नहीं है और वे सरकार से जो प्रार्थनायें करते हैं उन पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है, इस काँग्रेस की राय है कि बंग-विच्छेद के विरोध में उस प्रान्त में जो बहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया वह न्याय संगत था और है।

भारत-मंत्री के अधिकारों में कोई कमी नहीं की गई। प्रान्तीय सरकारों को आर्थिक क्षेत्र में थोड़ा भी हक़ प्राप्त न हुआ। अपने ख़र्च के लिये उन्हें केन्द्रीय सरकार का मुँह ताकना पड़ता था।

भारत में राजनीतिक असन्तोष और सहयोग की नीति :—

बृटिश राज्य की जड़ धीरे-धीरे मज़बूत होती जा रही थी। शासन के सभी क्षेत्रों में केन्द्रीय सरकार की शक्ति दृढ़ हो रही थी। इसका प्रभाव देश की आम जनता पर बहुत ही बुरा पड़ रहा था। हिन्दोस्तानियों के दिलों में अँग्रेज़ी राज्य के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जा रही थी। देश में राष्ट्रीय भावना फैल रही थी। शासन की एकता, अँग्रेज़ी शिक्षा, अँग्रेज़ी साहित्य और इतिहास, आवागमन की सुविधा, तथा सबसे बढ़ कर अँग्रेज़ी भाषा ने राष्ट्रीयता को आगे बढ़ाया। पाश्चात्य देशों की प्रजातन्त्र भावना तथा योरप और अमेरिका आदि स्वतन्त्र देशों के इतिहासों ने हिन्दोस्तानियों के दिलों में वर्तमान राष्ट्रीय जीवन का संचार किया। आरम्भ में यह भावना एक छोटे से दायरे में सीमित थी, लेकिन अब उसका क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ने लगा। जिस कांग्रेस की नीव अँग्रेज़ी सरकार से छोटी-छोटी बातों की माँग पेश करने के लिये डाली गई थी वही कांग्रेस अँग्रेज़ी सरकार से टक्कर लेने का दावा करने लगी।

अँग्रेज़ी शासन का प्रभाव हिन्दोस्तानियों पर क्या पड़ रहा था, इसका ज्ञान अँग्रेज़ों को पूरी तौर से न था। ज्यों-ज्यों अँग्रेज़ी शासन दृढ़ होता जाता था, और शासन की मशीन शान्ति उत्पन्न करती जाती थीं, त्यों-त्यों हिन्दोस्तान में राष्ट्रीयता की लहर बढ़ती जा रही थी। देश में नई-नई समस्यायें पैदा होने लगी थीं।

एक ओर देश में राष्ट्रीयता की लहर फैल रही थी, परन्तु दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार अपनी नीति को बदलने के लिये तैयार न थी। वह नहीं चाहती थी कि शासन में अधिक से अधिक हिन्दोस्तानियों का हाथ हो। इसलिये उसने 'सहयोग' की एक नई नीति का आश्रय लिया। इसका तात्पर्य यह था कि कुछ थोड़े से हिन्दोस्तानियों को शासन प्रबन्ध में शामिल कर लिया जाय। बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों में इने-गिने हिन्दोस्तानी भर्ती कर लिये गये। गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल की कार्य-कारिणी सभाओं में हिन्दोस्तानियों की संख्या कुछ और बढ़ा दी गई। समय-समय पर धारा सभाओं में भी हिन्दोस्तानियों की संख्या बढ़ाई गई। परन्तु केवल 'सहयोग' की नीति से हिन्दोस्तानी सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे। इस नीति की विफलता ज़ाहिर भी होने लगी।

इसी बीच १९१४ में योरप में एक भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। इस बड़ी लड़ाई ने सब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

१९१७ का घोषणा पत्र

हिन्दोस्तानियों ने दिल खोल कर बृटिश सरकार की मदद की। राजा-महाराजाओं ने भी धन और जन दोनों से सरकार की मदद की। हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने इङ्गलैंड और फ्रांस में जिस वीरता का परिचय दिया उसकी सराहना अँग्रेज़ों ने भी की है। बृटिश सरकार ने यह मान लिया कि हिन्दोस्तानियों ने ऐसे कठिन समय में उसकी मदद की। बृटिश अधिकारी लड़ाई के ज़माने में यह एलान कर चुके थे कि "यह लड़ाई संसार में एकता, स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन के लिये लड़ी जा रही है।" इन शब्दों को सुन कर हिन्दोस्तानियों के दिलों में बड़ी-बड़ी आशायें पैदा हो रही थीं। मांटेगू साहब ने, जो कि उस समय भारत मंत्री थे, अपनी सहानुभूति दिखलाने के लिये २० अगस्त सन् १९१७ ई० को एक घोषणा की। इसका आशय यह था कि हिन्दोस्तानियों को क्रमशः स्वतन्त्रता की ओर बढ़ने का अवसर मिलता जायेगा। घोषणा पत्र इस प्रकार था :—

"बृटिश सरकार की यह नीति है, और उससे भारत सरकार पूरी तरह सहमत है, कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो, जिससे अधिकाधिक प्रगति करते हुये स्वशासन-प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह बृटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे। उसने यह तै कर लिया है कि इस दिशा में, जितना शीघ्र हो, ठोस रूप से कुछ क़दम आगे बढ़ाया जाय। मैं इतना और कहूँगा कि इस नीति में प्रगति सीढ़ी दर सीढ़ी होगी। बृटिश सरकार और भारत सरकार ही जिनके ऊपर भारतीयों के हित और उन्नति का भार है, इस बात के निर्णायक होंगे कि कब और कितना क़दम आगे बढ़ाना चाहिये। वे एक तो उन लोगों के सहयोग को देखकर ही आगे बढ़ाने का निश्चय करेंगे जिन्हें इस तरह सेवा का नया अवसर मिलेगा, और दूसरे यह देखा जायगा कि किस हद तक उन्होंने अपनी जिम्मेवारी को ठीक ठीक अदा किया है और उन पर कितना विश्वास किया जा सकता है। पार्लियामेंट के सामने जो प्रस्ताव पेश होंगे उन पर सार्वजनिक रूप में वाद-विवाद करने के लिये पर्याप्त समय दिया जायगा।"

हिन्दोस्तान के राजनीतिक इतिहास में इस घोषणा पत्र को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यहाँ से भारतीय स्वतंत्रता का आरम्भ

माना जाता है। यद्यपि इसका अक्षरशः पालन नहीं किया गया, फिर भी भारतीय प्रजा का एक वर्ग इससे काफ़ी सन्तुष्ट रहा। यहीं से शासन के विकास का तीसरा युग आरम्भ होता है।

तृतीय काल (१९१९ - १९४६)

१९१९ ई० का शासन सुधार

भारत मंत्री मांटेग्यू साहब हिन्दोस्तान आये और वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ सारे हिन्दोस्तान का भ्रमण किया। इसके बाद दोनों ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इसी रिपोर्ट के आधार पर पार्लियामेंट ने १९१९ ई० में एक क़ानून पास किया, जिसके अनुसार भारतीय शासन में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये :—

१—धारा-सभाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई। प्रजा के प्रतिनिधियों की संख्या नामज़द सदस्यों से अधिक कर दी गई। मताधिकार का क्षेत्र और भी व्यापक कर दिया गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों धारा सभाओं को सरकार की टीका-टिप्पणी करने का अधिकार दे दिया गया। बजेट के ऊपर विचार करने का अधिकार भी उन्हें प्रदान किया गया।

२—प्रान्तों में दोहरे शासन (Dyarchy) की नींव डाली गई। केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को एक दूसरे से अलग कर दिया गया। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय विषयों को फिर दो हिस्सों में बाँटा गया। एक कोटि में (Transferred subjects) वे विषय थे जिनमें भारतीय मंत्रियों की पूरी ज़िम्मेवारी थी। वे इन विषयों में स्वतंत्रता पूर्वक कार्य कर सकते थे और अपने कार्य के लिये प्रान्तीय धारा सभा के प्रति उत्तरदायी थे। स्वायत्त शासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, सफाई इत्यादि विषय इनके अधिकार में दिये गये थे। दूसरे प्रकार के विषय (Reserved subjects) वे थे जो गवर्नर की कार्यकारिणी को सौंपे गये थे। इनके लिये कार्यकारिणी के सदस्य धारा-सभा की मातहती में न होकर गवर्नर के प्रति ज़िम्मेवार होते थे। शान्ति, क़ानून, भूमिकर, आय-व्यय इत्यादि आवश्यक विषय कार्यकारिणी के हाथों में दिये गये थे। इस ऐक्ट के अनुसार केन्द्रीय शासन में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। इसकी शक्ति पहले की तरह बनी रही।

घरेलू सरकार पर भी इस क़ानून का असर पड़ा। इंडिया कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ और १२ के बीच में निश्चित कर दी गई। इसके आधे सदस्य ऐसे होने चाहिये जो कम से कम १० वर्ष तक हिन्दोस्तान में रह चुके हों। कौंसिल की आयु ५ वर्ष निश्चित कर दी गई। अब तक भारत

मंत्री की तनख़्वाह भारतीय ख़ज़ाने से दी जाती थी, परन्तु इस ऐक्ट के अनुसार यह निश्चत किया गया कि उसे अंग्रेज़ी ख़ज़ाने से तनख्वाह दी जाय। उसके दफ़्तर का बाक़ी ख़र्च भारतीय ख़ज़ाने से ही दिया जाना निश्चित किया गया। ऐसा इसलिये किया गया कि पार्लियामेंट भारतमंत्री की कार्रवाइयों पर कड़ी नज़र रक्खे। इंगलैंड में एक नये अफ़सर की नियुक्ति की गई जिसे हाई कमिश्नर कहा जाता है। इस अफ़सर की ज़िम्मेवारी भारतीय सरकार के प्रति कर दी गई। इस ऐक्ट में यह भी बात साफ़ कर दी गई कि १० वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा जो इस बात का पता लगायेगा कि अब हिन्दोस्तानियों को कितनी आजादी मिलनी चाहिये।

सत्याग्रह आन्दोलन

१६१६ ई० के सुधार से हिन्दोस्तानी सन्तुष्ट न थे। नरम दल वालों ने तो इसका स्वागत किया, परन्तु देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था, काँग्रेस ने इसका पूर्ण वहिष्कार किया। पिछली लड़ाई के कारण चीज़ों का दाम बढ़ने लगा। पानी न बरसने से फ़सल भी ख़राब हो गई थी। इधर हिन्दोस्तानी मुसलमानों को यह पूरी उम्मीद थी बड़ी लड़ाई में विजयी होने के पश्चात् मित्र सरकार (Allies) टर्की के सुल्तान को फिर वही दर्जा दे देगी जो लड़ाई के पहिले उसे प्राप्त था। तात्पर्य यह है कि हिन्दोस्तान में बृटिश सरकार के प्रति असन्तोष के सारे कारण इकट्ठे हो गये थे। १६२१ में महात्मा गाँधी ने मुहम्मद अली और शौकत अली को साथ लेकर सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया। ख़िलाफ़त आन्दोलन कांग्रेस सत्याग्रह के साथ जोड़ दिया गया। नरम दल वालों ने कौंसिल के चुनाव में हिस्सा लिया और शासन को चलाना आरम्भ किया। परन्तु सितम्बर १६२१ ई० में उन्होंने भी एक प्रस्ताव द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय शासन में पुनः सुधार होने चाहिये।

अहिंसा की नीति पर सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया गया। देश भर में इस बात का प्रचार किया गया कि सरकार को कोई टैक्स न दे; सरकारी क़ानूनों का बहिष्कार किया जाय। इसका उद्देश्य यह था कि सरकार को हर प्रकार से असफल साबित कर दिया जाय। यद्यपि आन्दोलन की नीति में हिंसा का कोई स्थान न था, फिर भी परिणाम भयंकर हुआ। गोरख-पुर ज़िले में चौरी-चौरा नामक स्थान पर सत्याग्रहियों ने २१ पुलिस के सिपाहियों को जान से मार डाला। काँग्रेस में एक ऐसा दल उठ खड़ा हुआ जो कौंसिल के चुनाव में हिस्सा लेना चाहता था। इसका नाम 'स्वराज दल'

था। देशबन्धु चितरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू इसके नेता थे। यद्यपि केन्द्रीय धारा-सभा में इनका बहुमत न हो सका, परन्तु प्रन्तीय धारा-सभाओं में इन्हें अच्छी सफलता मिली। बंगाल और मध्यप्रान्त में इनका बहुमत रहा। फिर भी शासन में रोड़े अटकाने की नीयत से इन्होंने मन्त्रिपद ग्रहण करने से इनकार कर दिया। एक ही प्रस्ताव में मन्त्रियों का वेतन घटा कर २ रुपया सालाना कर दिया गया। ऐसी दशा में शासन का कार्य रुक गया और विवश होकर गवर्नरों को १६१६ के द्वैध शासन प्रणाली का अन्त करना पड़ा।

पं० मोतीलाल नेहरू ने सरकार को इस बात की सलाह दी कि अँग्रेज़ और हिन्दोस्तानी दोनों प्रकार के कुछ राजनीतिज्ञ किसी गोलमेज़ सभा में बुलाये जायँ और उसमें इस बात का फ़ैसला हो कि हिन्दोस्तानियों को किस प्रकार ज़िम्मेवार शासन दिया जाय। बृटिश सरकार अभी हाल के बने हुए शासन प्रबन्ध को बदलना नहीं चाहती थी। परन्तु वह इस बात के लिये तैयार थी कि एक कमेटी नियुक्त की जाय जो यह राय दे कि १६१६ के शासनविधान के अन्दर कौन-कौन सी तब्दीलियाँ की जा सकती हैं। मुद्दिमान कमीटी (Mudiman Committee) के बहुसंख्या सदस्यों ने यह राय ज़ाहिर की कि शासन प्रबन्ध अच्छी तरह चल रहा है और अभी इसमें तब्दीली की कोई जरूरत नहीं है। इसके विपरीत अल्पसंख्यक दल ने यह तै किया कि द्वैध शासन (Dyarchy) अत्यन्त दूषित है इसलिये सम्पूर्ण शासन विधान तब्दील होना चाहिये। १६२५ ई० के सितम्बर महीने में यह बात निश्चित की गई कि बृटिश सरकार एक गोलमेज़ सभा बुलायेगी।

साइमन कमीशन

देश में शासन के प्रति असन्तोष बढ़ता जा रहा था। बृटिश सरकार ने भी यह तै कर लिया कि भारतीय शासन में सुधार होने चाहिये। इस स्थान पर हमें यह याद रखना चाहिये कि १६१६ ई० के ऐक्ट के अनुसार बृटिश सरकार १६२६ ई० में स्वयं इस बात की जाँच करती कि हिन्दोस्तानियों को और कौन कौन से अधिकार देने चाहिये। परन्तु दो वर्ष पहले ही ८ नवम्बर सन् १६२७ ई० को हिन्दोस्तान के गवर्नर-जनरल लार्ड इरविन ने इस बात की घोषणा की कि पार्लियामेंट ने एक कमीशन नियुक्त किया है जो निम्नलिखित बातों की जाँच करेगा :—

१—१६१६ ई० का शासन विधान किस प्रकार काम कर रहा है।

२—हिन्दोस्तान में शिक्षा की प्रगति कैसी है?

३—किस हद तक हिन्दोस्तानी इस बात के योग्य हैं कि उन्हें एक ज़िम्मेवार शासन दिया जाय।

४—प्रान्तीय धारा सभाओं में बड़ी सभा का बनाना कहाँ तक अच्छा होगा।

५—भारतीय रियासतों और बृटिश प्रान्तों में सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय।

कमीशन को इन्हीं बातों की जाँच करके अपनी राय ज़ाहिर करनी थी। सर जान साइमन इस कमीशन के सभापति थे। जिस समय कमीशन की नियुक्त हुई थी उसी समय १६२७ ई० में काँग्रेस ने इस बात का एलान किया कि पूर्ण स्वराज्य इसका एक मात्र उद्देश्य है। देश के सभी राजनीतिक दलों ने यह निश्चय किया कि पूर्ण स्वतंत्रता हासिल करनी चाहिये। जिस समय देश में राष्ट्रीयता की लहर इतने ज़ोरों पर थी उसी समय साइमन कमीशन ने अपना कार्य आरम्भ किया। सबसे बड़े मार्के की बात तो यह थी कि इसमें एक भी हिन्दोस्तानी शरीक़ नहीं किया गया था। एक सज्जन ने इसे "सफ़ेद कमीशन" घोषित किया है। हिन्दोस्तानियों के इस तिरस्कार से देश में खलबली सी मच गई। चारों ओर से इसका बायकाट आरम्भ हुआ। काँग्रेस के नरम और गरम दोनों दलों ने एक स्वर से इसका बायकाट किया। सर जान साइमन ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे केन्द्रीय और प्रान्तीय कमीटियों से पूरा सहयोग करेंगे, फिर भी काँग्रेस की नीति पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। लेजिस्लेटिव असेम्बली ने कमीशन के बायकाट का एक प्रस्ताव भी पास कर दिया।

इरविन की घोषणा

इस विकट राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए लार्ड इरविन ने ३१ अक्टूबर सन् १६२६ ई० को सम्राट् की ओर से एक घोषणा की। इसमें उन्होंने यह कहा कि पार्लियामेंट ने यह निश्चय किया है कि कमीशन की रिपोर्ट के बाद हिन्दोस्तान के राजनीतिक नेता एक गोलमेज़ सभा में बुलाये जायेंगे और वहाँ उनकी राय ली जायेगी। लिबरल दल वालों को इससे कुछ सन्तोष हुआ, परन्तु काँग्रेस सन्तुष्ट न रही। १६२६ ई० में दिसम्बर के महीने में काँग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसमें एक प्रस्ताव पास किया गया कि काँग्रेस गोलमेज़ सभा का बायकाट करती है और महात्मा गाँधी को इस बात का अधिकार देती है कि वे सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दें। १६३० ई० के मार्च के महीने में सत्याग्रह की आग सारे देश में फैल गई। साल भर तक

आन्दोलन बड़े ज़ोरों से चलता रहा। महात्मा गाँधी तथा और बड़े बड़े नेता उठा कर जेलों में डाल दिये गये। इनके अतिरिक्त हज़ारों आदमी जेल भेज दिये गये।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट

जिस समय सत्याग्रह आन्दोलन इतने ज़ोरों पर था, उसी समय १९३० ई० के जून के महीने में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। देश के किसी भी दल ने इसे पसन्द नहीं किया। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में संघ शासन की आवश्यकता को निरर्थक साबित किया था। उसका यह विचार था कि फ़िलहाल हिन्दोस्तान में संघ शासन की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने प्रान्तीय स्वराज्य (Provincial Autonomy) की एक योजना पेश की थी। केन्द्रीय शासन में परिवर्तन की चर्चा तक नहीं की गई। ९ जुलाई सन् १९३० ई० को वाइसराय लार्ड इरविन ने धारा सभा के सामने यह घोषित किया कि गोलमेज़ सभा एक बहुत ही उपयोगी चीज़ है और हिन्दोस्तानियों को उसमें हिस्सा लेना चाहिये।

पहली गोलमेज़ सभा

१२ नवम्बर सन् १९३० ई० को सम्राट् पंचम जार्ज ने गोलमेज़ सभा का उद्घाटन किया। रैम्ज़े मेकडानेल्ड, जो कि उस समय इंगलैंड के प्रधान मंत्री थे, सभा के सभापति बनाये गये। पहली ही बैठक में भारतीय राजाओं ने इस बात की इच्छा प्रकट की कि वे सभी प्रकार से भारतीय संघ शासन के लिये तैयार हैं। सभा में बहुत सी कमेटियाँ बना दी गईं और अलग अलग मसलों पर उन्हें विचार करने का काम सौंपा गया। १९ जनवरी सन् १९३१ ई० को गोलमेज़ सभा का कार्य समाप्त किया गया। प्रधान मंत्री ने अपने अन्तिम व्याख्यान में यह कहा कि हिन्दोस्तान में एक संघ शासन की स्थापना होनी चाहिये।

गाँधी-इरविन समझौता

गोलमेज़ सभा के सदस्य राज़ी खुशी अपने घर लौटे। लोगों ने उनका सम्मान किया। कुछ सदस्यों ने काँग्रेस से यह इच्छा प्रकट की कि वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का विश्वास करे और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें अपनी उचित सलाह दे। इस प्रकार की चर्चाओं का प्रभाव काँग्रेस पर अच्छा पड़ा। १९३१ ई० के मार्च के महीने में महात्मा गाँधी और लार्ड इरविन में एक सुलहनामा हुआ। सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया गया। सारे राजनीतिक

कैदी छोड़ दिये गये। काँग्रेस इस बात पर तैयार हो गई कि वह दूसरी गोलमेज सभा में हिस्सा लेगी।

दूसरी गोल मेज़ सभा

७ सितम्बर सन् १६३१ ई० को गोलमेज़ सभा की दूसरी बैठक लन्दन में आरम्भ हुई। काँग्रेस की ओर से प्रतिनिधि बन कर महात्मा गाँधी स्वयं इस सभा में उपस्थित हुए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि इङ्गलैण्ड की सरकार में सहसा परिवर्तन न हो गया होता तो हिन्दोस्तान का इतिहास आज बहुत कुछ बदल गया होता। ब्रिटिश सरकार और काँग्रेस के बीच में कोई न कोई समझौता हो कर रहता। परन्तु इसी समय इंगलैण्ड की सरकार बदल गई। मज़दूर दल ने इस्तीफ़ा दे दिया। नया चुनाव किया गया जिसमें सरकार की बागडोर अनुदार दल के हाथ में आगई। मज़दूर दल के भारत मंत्री हट गये और उनका स्थान अनुदार दल के भारत मंत्री ने ले लिया। गोलमेज़ सभा पर इस परिवर्तन का गहरा असर पड़ा। सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया। साम्प्रदायिक मसले को सुलझाने का कोई मार्ग न निकल सका। प्रधान मंत्री ने यह घोषित किया कि उसी के हाथों में यह अधिकार दे दिया जाय कि वह इस मसले को हल कर दे। काँग्रेस बिलकुल ही असन्तुष्ट रही। महात्मा गाँधी लन्दन से हिन्दोस्तान के लिये रवाना हुये। अभी वे जहाज से उतरे भी नहीं थे कि रास्ते में ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। १६३२ ई० के आरम्भ में फिर गिरफ़्तारियाँ शुरू हो गई। मिस्टर बाल्डविन इस समय इगलैण्ड के प्रधान मंत्री थे। उनकी सरकार ने हिन्दोस्तान के सभी बड़े लीडरों को जेल में डाल दिया।

साम्प्रदायिक निर्णय
Communal Award

१६ अगस्त सन् १६३१ ई० को इङ्गलैण्ड के प्रधान मंत्री ने साम्प्रदायिक निर्णय घोषित किया। इसके अनुसार मुसलमान, अँग्रेज़, ईसाई, सिक्ख, अछूत तथा स्त्री—इन सब को अलग अलग निर्वाचन का अधिकार दिया गया। महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन व्रत द्वारा इस साम्पदायिक निर्णय का विरोध किया। उनकी दृष्टि में अछूतों को अलग निर्वाचन देकर भारतीय समाज को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया था। उन्होंने यहाँ तक फ़ैसला कर लिया कि यदि ब्रिटिश सरकार इस साम्प्रदायिक निर्णय को तब्दील न करेगी तो वे अनशन द्वारा अपना प्राण दे देंगे। उनका अनशन आरम्भ हो गया। इङ्गलैण्ड और हिन्दोस्तान दोनों देशों में खलबली सी मच गई। बहुत जल्दी सुलह की कार्रवाई आरम्भ की गई और पूना में

एक सुलहनामा (Poona Pact) किया गया। इसमें अछूत वर्ग को धारा-सभाओं में पहले से दूने स्थान दिये गये और उन्हें हिन्दू जाति का एक घनिष्ठ अंग मान लिया गया। बृटिश सरकार ने भी पूना के इस सुलहनामें को स्वीकार कर लिया।

तीसरी गोलमेज़ सभा

१६३२ ई० केसितम्बर महीने में हिन्दोस्तान के वाइसराय लार्ड विलिंग्टन ने यह घोषित किया कि पार्लियामेंट हिन्दोस्तान के शासन विधान में परिवर्तन करने पर तैयार है। वह चाहती है कि हिन्दोस्तान में एक ऐसे संघ शासन की स्थापना की जाय जिसमें केन्द्र और प्रान्त दोनों जगह जिम्मेवार शासन कायम कर दिया जाय। इसी बुनियाद पर १७ नवम्बर सन् १६३२ ई० को तीसरी गोलमेज़ सभा का कार्य आरम्भ किया गया जो २४ दिसम्बर सन् १६३२ ई० को समाप्त भी हो गया।

सफ़ेद पत्र White Paper और १६३५ का शासन-विधान

बृटिश सरकार ने १६३३ ई० के मार्च के महीने में एक सफ़ेद पत्र (White Paper) प्रकाशित किया जिसमें भारतीय शासन सुधार की योजनायें घोषित की गई थीं। हिन्दोस्तान के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड लिनलिथ गो की अध्यक्षता में १६३३ के अप्रैल के महीने में एक ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमेटी बनाई गई। इसके ज़िम्मे यह काम सौंपा गया कि वह सफेद पत्र पर अपना विचार प्रकट करे। कुछ भारतीय भी इसमें सम्मिलित किये गये थे। बड़ी छान बीन के बाद २२ नवम्बर सन् १६३४ ई० को इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट पार्लियामेंट को दे दी। पार्लियामेंट की दोनों सभाओं ने इसे मंजूर कर लिया। ५ फरवरी सन् १६३५ ई० को पहिली बार यह रिपोर्ट पार्लियामेंट में पढ़ी गई। ६ जून सन् १६३५ को लार्ड सभा में इसकी पेशी हुई। २४ जुलाई सन् १६३५ ई० को कुछ थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ लार्ड सभा ने इसे पास कर दिया। कामन सभा ने भी इन परिवर्तनों को मान लिया। २ अगस्त सन् १६३५ ई० को सम्राट् ने इस पर अपनी दस्तख़त कर दी और गवर्नमेंट इंडिया ऐक्ट इतनी माथापच्ची के बाद पास हो गया। पार्लियामेंट के इतिहास में यह सबसे बड़ा ऐक्ट कहा जाता है। पूरे ऐक्ट में १६ बड़े बड़े हिस्से हैं और ४७८ सुर्खियाँ हैं। इसके अन्दर बर्मा ऐक्ट भी शामिल है।

१६३५ ई० के नये शासन विधान में मुख्य ४ बातें हैं :—

१—सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिये एक संघशासन विधान की योजना बनाई गई है।

२—केन्द्रीय शासन में दोहरे शासन विधान (Dyarchy) का सिद्धान्त माना गया है।

३—प्रान्तीय स्वराज्य का जन्म दिया गया है।

४—गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल को अनेक विशेषाधिकारों से सुसज्जित किया गया है।

वैसे तो संघशासन का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया गया है, परन्तु यहाँ पर इतना कह देना काफ़ी है कि इस नये शासन विधान में थोड़ा भी दम नहीं है। देश के किसी वर्ग ने इसे स्वीकार नहीं किया है। इसके विपरीत कुछ वर्गों ने इसे अत्यन्त भयंकर साबित किया है।

नये शासन विधान का श्री गणेश

यह बात पहिले ही निश्चित कर दी गई थी कि नया शासन विधान पहले प्रान्तों से आरम्भ किया जायगा। इसी के अनुसार पहली अप्रैल सन् १९३७ ई० को प्रान्तों में यह शासन जारी किया गया। चुनाव में कांग्रेस ने दिल खोल कर हिस्सा लिया और ६ सूबों में इसका बहुमत रहा। जब मंत्रिपद ग्रहण करने का प्रश्न उठा तो काँग्रेस ने इसे इनकार कर दिया। इसका उद्देश्य शासन को चलाना न था बल्कि इसे तोड़ना था। काँग्रेस को यह डर था कि गवर्नरों के विशेषाधिकार के सामने उसका बहुमत कोई काम नहीं कर सकता। जब तक मंत्रिपद सम्बन्धी झगड़ा चलता रहा तब तक शासन को चलाने के लिये गवर्नरों ने छोटे छोटे मंत्रिमंडल (Interim Ministries) बना कर अपना कार्य आरम्भ कर दिया। १९३७ ई० में जुलाई के महीने में भारतमंत्री और गवर्नर-जनरल के आश्वासन दिलाने पर काँग्रेस ने मंत्रिपद का भार स्वीकार कर लिया। बम्बई, मद्रास, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, बरार, बिहार और उड़ीसा—इन सूबों में काँग्रेस सरकार क़ायम हो गई। बाद में पश्चिमोत्तर प्रदेश और आसाम में भी काँग्रेस ने संयुक्त मंत्रि-मंडल कायम कर लिया।

प्रान्तों में शासन का काम अच्छी तरह चलने लगा। काँग्रेस ने अपनी बुद्धि का अच्छा परिचय दिया। अनेक नये विभाग खोल कर उसने जनता के सामने यह सिद्ध कर दिया कि एक स्वतंत्र सरकार अपने देश की कहाँ तक भलाई कर सकती है। विदेशी-राज्य का पर्दा थोड़े समय के लिये जनता के सामने से दूर कर दिया गया। संयुक्तप्रान्त तथा मध्यप्रान्त में कुछ ऐसी घटनायें उपस्थित हुई जिनसे शासन में फिर रुकावट पड़ने के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। संयोग वश यह विपत्ति कुछ दिनों के लिये टल गई। प्रान्तीय

शासन की सफलता को देखते हुए केन्द्रीय संघ शासन का समय भी धीरे धीरे निकट आ रहा था। परन्तु कोई वर्ग इस बात के लिये तैयार न था कि संघशासन अपने इसी रूप में जारी कर दिया जाय।

कांग्रेसी सरकारों का इस्तीफ़ा

१९३९ के आरम्भ में योरप में एक भयंकर लड़ाई के आसार नज़र आने लगे। बृटिश सरकार की परिस्थिति नाज़ुक होने लगी। १९३९ के सितम्बर के महीने में लड़ाई आरम्भ हो गई। हिन्दोस्तान पर भी इस लड़ाई का तात्कालिक असर पड़ा। बृटिश सरकार ने जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई का एलान किया और उसी में हिन्दोस्तान को भी अपना साथी करार दिया। जीवन-मरण की इतनी बड़ी लड़ाई में हिन्दोस्तान शरीक तो कर दिया गया परन्तु हिन्दोस्तानियों की राय बिलकुल न ली गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतवासियों की सहानुभूति बृटिश सरकार के प्रति थी। वे नहीं चाहते थे कि दुनियाँ में नाज़ी सरकार का दबदबा हो जाय। कांग्रेस ने बृटिश सरकार से इस बात की माँग पेश की कि लड़ाई के अन्त में वह हिन्दोस्तानियों को यह अधिकार दे दे कि वे विधान सभा (Constituent Assembly) द्वारा अपनी शासन पद्धति स्वयं बना सकें। इसको दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता की माँग पेश की थी। इस पर भारत मंत्री ने घोषित किया कि हिन्दोस्तान में इतनी साम्प्रदायिक उलझनें हैं कि वह अभी आज़ादी के मुस्तहक नहीं है। लड़ाई के समय शासन विधान में किसी तरह का परिवतन नहीं किया जा सकता।

इस कड़े जवाब को सुनते ही नवम्बर सन् १९३९ ई० में ८ प्रान्तों की कांग्रेस सरकार ने इस्तीफ़ा दे दिया। गवर्नरों ने इस बात की कोशिश की कि दूसरी पार्टियाँ शासन का भार ले लें, परन्तु आसाम को छोड़कर और किसी सूबे में उन्हें सफलता न मिल सकी। अन्त में विवश होकर उन्हें घोषित करना पड़ा कि शासन की मशीन फेल कर गई। १९३५ के शासन विधान की ९३ धारा के अनुसार गवर्नरों ने शासन की पूरी बागडोर अपने हाथों में ले ली। धारा-सभायें बर्ख़ास्त कर दी गईं, और गवर्नरों ने दो चार सरकारी अफ़सरों को अपना सलाहकार नियुक्त कर शासन को चलाना आरम्भ किया।

सत्याग्रह आन्दोलन

भारतीत जनता की अनुमति के बिना ही हिन्दोस्तान लड़ाई में शरीक कर दिया गया। बृटिश सरकार यह चाहती थी कि कांग्रेस पिछली लड़ाई की तरह इसमें भी बृटेन का पूरा सहयोग दे। कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में यह स्पष्ट कर दिया था कि जब तक हिन्दोस्तान स्वतन्त्र नहीं किया जाता, तब तक

वह मित्र राष्ट्रों की अच्छी तरह मदद नहीं कर सकता। अप्रैल १९४० ई० में रामगढ़ के कॉंग्रेस अधिवेशन में यह बात फिर दुहराई गई कि पूर्ण स्वराज्य से कम किसी भी तरह की चीज़ स्वीकार न की जायगी। व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ और हज़ारों आदमी जेल में डाल दिये गये। एक साल से अधिक सत्याग्रह चलता रहा और सरकार तथा कॉंग्रेस में समझौते का कोई रास्ता न निकला। २१ जुलाई सन् १९४१ ई० को वाइसराय ने यह घोषणा की कि केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा में सदस्यों की संख्या बढ़ाई जायेगी और एक 'राष्ट्रीय रक्षा समिति' का निर्माण किया जायगा। कॉंग्रेस को इस घोषणा से सन्तोष न हुआ और वह अपनी नीति पर डटी रही।

सर स्टैफ़ोर्ड क्रिप्स का आगमन

कॉंग्रेस के अपनी नीति पर डटे रहने के बावजूद बृटिश सरकार एक एक करके सत्याग्रहियों को जेल से निकालने लगी। इसी बीच मार्च १९४२ में इंगलैंड के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सर स्टेफ़ोर्ड क्रिप्स बृटेन के सम्राट् की ओर से सुलह का एक पैगाम लेकर हिन्दोस्तान में आये। भारतीय नेताओं को निमन्त्रित किया गया कि वे उनसे दिल्ली में मिलें। बड़ी, बड़ी आशायें लेकर कॉंग्रेस तथा लीग के नेता दिल्ली को रवाना हुये। क्रिप्स ने एक लम्बी योजना उनके सामने पेश की और उन्हें आश्वासन दिलाया कि सब लोग इस पर विश्वास कर अमल करें। वैसे तो इस योजना में बहुत सी कमजोरियाँ थीं परन्तु सबसे बड़ी कमजोरी रक्षा का प्रश्न था। इसके अनुसार रक्षा का पूर्ण अधिकार कमान्डर इन-चीफ़ के दिया गया था। कॉंग्रेस का कहना था कि, "रक्षा का पूरा भार किसी हिन्दोस्तानी के दिया जाय। हिन्दोस्तान इस समय ख़तरे में है और इसकी रक्षा का सवाल सबसे पहला सवाल है। हिन्दोस्तानियों के छोड़कर कोई और इसकी रक्षा नहीं कर सकता।" बात भी ठीक थी क्यों कि फ़रवरी १९४२ में सिंगापुर पर जापनियों का कब्ज़ा हो गया था और वे लगातार बढ़ते आ रहे थे। हिन्दोस्तानी अपने देश की रक्षा के लिये अपना खून पानी की तरह बहा सकते थे। सुलह का पैगाम फेल कर गया। लीग और कॉंग्रेस दोनों ने इसे नामंजूर कर दिया। क्रिप्स चुपचाप इंगलैंड के वापिस चले गये।

सर स्टेफ़ोर्ड क्रिप्स हिन्दोस्तान के एक हितैषियों में गिने जाते थे, परन्तु सुलह के पैगाम ने उन्हें इतना बदनाम कर दिया कि उन पर तरह तरह की बौछारें फेंकी जाने लगीं। कॉंग्रेस का कहना था कि क्रिप्स के ऐसी निस्सार

योजना लेकर कभी नहीं आना चाहिये था। इस प्रस्ताव में केन्द्रीय राष्ट्रीयकरण का कोई उल्लेख नहीं किया गया था। इससे हिन्दोस्तान के १३ या १४ छोटे छोटे टुकड़ों में बँट जाने का डर था। महात्मा गाँधी का कहना था कि 'क्रिप्स साहब उस बैंक का एक चेक हिन्दोस्तान को देना चाहते थे जिसका दिवाला निकल चुका हो।' उनके प्रस्तावों का कुल लुब्बो लवाब यही था कि 'अपनी वर्तमान स्थिति पर ही सन्तोष करो और युद्ध के बाद तुम्हें औपनिवेशिक पद प्रदान किया जायगा।" मुसलिम लीग के एक सदस्य का कहना है कि "यदि क्रिप्स के प्रस्ताव मान लिये गये होते तो १० करोड़ मुसलमानों की मिट्टी पलीद हो जाती।" हिन्दोस्तान से विदा होते समय कराँची में क्रिप्स साहब ने कहा कि "कांग्रेस सब कुछ चाहती थी या कुछ नहीं, इसलिये उसे कुछ नहीं मिला।" उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि "महात्मा गाँधी अपने ही दल को सम्पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्रदान करना चाहते हैं।" इन बातों से हिन्दोस्तान में बृटेन के प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी।

अगस्त की तोड़ फोड़ और बृटिश सरकार की ज़िम्मेवारी

क्रिप्स के चले जाने के बाद हिन्दोस्तान के राजनीतिक आकाश में बादल सा छा गया। चारों ओर असन्तोष की ज्वाला बढ़ने लगी। कांग्रेस वर्किंग कमीटी ने यह प्रस्ताव पास किया कि "अंग्रेज हमारे देश को छोड़ दें" (Quit India)। इसी प्रस्ताव के समर्थन के लिये ६ अगस्त १९४२ को बम्बई में कांग्रेस कमीटी की बैठक हुई। कमीटी का कार्य अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि रात में ही बड़े बड़े नेता गिरफ़्तार कर लिये गये। १० अगस्त १९४२ को भारत मन्त्री, लार्ड एमरी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ कि कांग्रेस बृटिश सरकार का अन्त करना चाहती थी और उसके कार्य-क्रम में तार तोड़ना, स्टेशन जलाना, दफ़्तर फूँकना इत्यादि इत्यादि बातें थीं। इस वक्तव्य ने मुल्क को चौकन्ना कर दिया और कांग्रेस तथा अन्य लोग जगह जगह सरकारी सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने लगे। किसी किसी जिलों में तो रेल और तार के सारे खम्भे उखाड़-कर फेंक दिये गये। अगस्त के महीने भर यही हाल रहा। सरकार ने भी अपना रुख़ बदला और बड़ी बेरहमी के साथ फ़ौजी सिपाही इसे दबाने लगे। कितने घर जला दिये गये और सैकड़ों आदमी बन्दूक के निशाने बने। अक्टूबर के अन्त तक सब मामला ठंडा हो गया। काफी लोग जेलों में डाल दिये गये और शहर तथा गाँव दोनों से नुकसान की सारी रकम सामूहिक जुर्माने के रूप में वसूल की गई। कहा जाता है कि इस तोड़ फोड़ की ज़िम्मेवारी

काँग्रेस के ऊपर है। परन्तु जब उसके बड़े बड़े नेता पहले ही जेल में डाल दिये गये तो उसकी ज़िम्मेदारी कैसे हो सकती है। लार्ड एमरी के १० अगस्त के वक्तव्य ने इस कार्य क्रम का प्रचार किया।

वृटिश मंत्रि-मण्डल का प्रस्ताव

१९४५ ई० तक वृटिश सरकार की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसी वर्ष लड़ाई समाप्त हो जाने पर भारतीय राजनीति में फिर परिवर्तन की चर्चा होने लगी। मार्च १९४६ तक प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव समाप्त हो गये और कांग्रेस का काफ़ी बहुमत रहा। कांग्रेस ने मंत्री पद स्वीकार कर शासन को चलाने का भार अपने ऊपर लिया। अप्रेल १९४६ में पार्लियामेन्ट ने एक मंत्रि दल इस आशय से हिन्दोस्तान में भेजा कि हिन्दोस्तान के साथ एक स्थायी सुलह कर ली जाय। वृटिश मंत्रि दल ने हिन्दोस्तान के सभी बड़े लीडरों से परामर्श करने के बाद १६ मई सन् १९४६ को पाँच हजार शब्दों की 'अखिल-भारतीय-यूनियन' बनाने की एक योजना प्रकाशित की। इसमें पाकिस्तान की योजना नामंजूर कर दी गई। प्रान्तों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई और और उन्हें समूह अथवा उपसंघ में संगठित होने की आजादी दी गई। इसके जवाब में २४ मई सन् ४६ को काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक हज़ार शब्दों का एक प्रस्ताव पास कर यह घोषित किया कि वृटिश मंत्रिदल का प्रस्ताव तभी स्वीकार किया जायगा जब कि उसमें नीचे लिखी बातें साफ़ तौर से मान ली जायँ :—

१—भारत की स्वाधीनता।

२—यद्यपि सीमिति किन्तु दृढ़ केन्द्रीय सरकार।

३—प्रान्तों को पूर्ण शासनाधिकार।

४—केन्द्र तथा प्रान्तों में लोकतन्त्र वादी व्यवस्था।

५—प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा।

वर्तमान स्थिति

मंत्रिदल के प्रस्तावों पर हिन्दोस्तान के सभी दल गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहे हैं। प्रान्तों में काँग्रेस सुचारू रूप से शासन को चला रही है। भारतीय राजनीति में कौन सी ठोस योजना निकट भविष्य में कार्यान्वित होगी, इस पर अभी कुछ नहीं जा सकता।

अध्याय २

शासन से गुण-दोष

प्रत्येक संघ सरकार के लिये दो चीज़ें आवश्यक हैं। एक तो बहुत सी रियासतें अथवा सूबे एक दूसरे के पड़ोसी हों। इनके इतिहास, इनकी परम्परा और इनकी रहन सहन में एकता की झलक हो। दूसरी आवश्यकता इन सूबों के अन्दर एक ऐसी भावना की है जो इन्हें मिलाने के लिये प्रेरित करती हो। इनके अन्दर यह प्रबल इच्छा हो कि वे स्वतन्त्र रहते हुए एक केन्द्रीय सरकार बनावें। संघ सरकार की उत्पत्ति इन्हीं भावनाओं से होती है। भारतीय संघ शासन में ये दोनों भावनायें पाई जाती हैं। इस देश में ६०० के लगभग छोटी छोटी रियासतें और १७ सूबे हैं। बहुत दिनों से इनकी इच्छा रही है कि एक संघ शासन बनाया जाय। वर्तमान शासन विधान इसी का फल है।

संघ शासन की आवश्यकता

संघ शासन की परिभाषा राजनीतिज्ञों ने कई प्रकार से की है। यह राजनीतिक टुकड़ों का वह संगठन है जो सब की ओर से किसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये बनाया जाता है। संघ शब्द ही यह सूचित करता है कि बहुत से छोटे छोटे समूह इसमें सम्मिलित हैं। यदि किसी दबाव के कारण बहुत सी रियासतें एक सम्मिलित सरकार कायम कर लें तो उसे संघ नहीं कहा जा सकता। यद्यपि सबके लिये एक केन्द्रीय शासन की स्थापना हो जाती है, परन्तु इसमें उन्हें वह स्वतन्त्रता नहीं है जो एक सच्चे संघ शासन के अन्दर होनी चाहिये। संघ शासन के लिये यह आवश्यक है कि छोटे छोटे विभाग अपनी स्वतन्त्रता से एक सम्मिलित सरकार बनावें। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ४८ रियासतों ने अपनी इच्छा से एक केन्द्रीय शासन की स्थापना की है। इन्हें यह अधिकार है कि जब चाहे संघ से अपने को अलग कर लें। प्रत्येक रियासत को यह पूरी स्वतन्त्रता है कि वह अपनी शासन पद्धति जैसी चाहे रक्खे। वास्तव में संघ शासन एक प्रकार का सुलहनामा है, जो स्वतंत्र रियासतें अपने लाभ की दृष्टि से करती हैं। वे अपना कर्त्तव्य अपने आप निश्चित करती हैं। प्रत्येक रियासत अपनी राजसत्ता को कायम रखती है। संघ शासन से एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है जो सभी रियसतों की रक्षा और उन्नति की ज़िम्मेवार बन जाती है।

संघ शासन क्या है?

संघ शासन के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है। इनकी अनुपस्थिति में इस शासन पद्धति का निर्माण नहीं हो सकता।

संघ शासन की शर्तें

(१) प्रत्येक संघ सरकार शासन से ही अपनी शक्ति प्राप्त करती है। शासन विधान में यह बात स्पष्ट कर दी जाती है कि सुलह की कौन कौन सी शर्तें है। संघ सरकार की स्थापना के बाद रियासतें उन बातों को मानने के लिए बाध्य हैं, जिनकी प्रतिज्ञा उन्होंने की है। संघ सरकार और रियासतों की सरकारें दोनों के अधिकार की सीमा शासन विधान में निश्चित कर दी जाती है। इसीलिये ऐसे शासन विधान के लिये यह आवश्यक है कि वह लिखित हो और सरकार की साधारण मशीन उसे बदल न सके। रियासत और संघ सरकार किसी एक को यह अधिकार नहीं दिया जाता कि वह शासन विधान में जैसा चाहें परिवर्तन कर दे। इसे बदलने का अधिकार केवल विशेष अधिकारियों को दिया जाता है। जब कभी इसमें परिवर्तन की आवश्यकता होती है तो अनेक शक्तियों से राय लेनी पड़ती है। संघ शासन को बदलना उतना ही मुश्किल है, जितना किसी कानून को रद्द करना।

शासन की प्रधानता

(२) संघ शासन के लिये दूसरी शर्त शक्तियों का विभाजन है। अर्थात् प्रत्येक रियासत को यह अच्छी तरह मालूम हो कि उसके क्या क्या अधिकार हैं। केन्द्रीय सरकार और रियासती सरकारों के अधिकार एक दूसरे से अच्छी तरह अलग होने चाहिये। एक ऐसी सूची बननी चाहिये जिसमें विस्तार पूर्वक विषयों को बाँटा गया हो कि अमुक विषय केन्द्रीय सरकार के और शेष रियासतों के हाथ में हैं। इस विभाजन में कोई विशेष कठिनाई नहीं हो सकती। जो जो विषय स्थानीय हों वे रियासतों को दे दिये जायँ और जिन विषयों का सम्बन्ध सम्पूर्ण देश से हो वे केन्द्रीय सरकार को दिये जायँ। इससे आपस में मतभेद के अवसर उत्पन्न नहीं हो सकते। इसीलिये संघ शासन विधान बहुत ही स्पष्ट और सुलझा हुआ होना चाहिये।

शक्ति विभाजन

(३) यद्यपि संघ शासन विधान में सारी बातें लिखित होती हैं; अधिकारों का विभाजन कर दिया जाता है; फिर भी ऐसे अवसर पैदा हो जाते हैं जब कि शासन विधान में कुछ कमी दिखलाई पड़ने लगती है। कभी कभी दो रियासतें

संघ न्यायालय

आपस में उलझ जाती हैं। केन्द्रीय और रियासती सरकार में भी मतभेद उत्पन्न हो जाता है। शासन की किसी धारा के दोहरे अर्थ पैदा कर दिये जाते हैं। अधिकारों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता उत्पन्न होती रहती है। इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि एक प्रधान शक्ति बना दी जाय। इसी का नाम संघ न्यायालय कहा जाता है। यही न्यायालय शासन विधान सम्बन्धी कठिनाइओं को दूर करता है। जैसे वकील कचहरियों में कानून के अर्थ को स्पष्ट करता है, उसी तरह संघ-न्यायालय शासन को व्यक्त करता है। इस मशीन से सबसे बड़ा लाभ यह है कि किन्हीं भी दो शक्तियों में असन्तोष उत्पन्न नहीं हो पाता। संघ-न्यायालय को शासन का संरक्षक कहा गया है। सबसे प्रवीण राजनीतिज्ञ और कानून के ज्ञाता इस संघ न्यायालय के न्यायाधीश बनाये जाते है। इन्हें सभी प्रकार से निष्पक्ष और स्वतंत्र रक्खा जाता है।

भारतीय संघ शासन का विकास

भौगोलिक दृष्टि से भारतवर्ष एक प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल लगभग १६ लाख वर्गमील है, और जनसंख्या ४० करोड़ के लगभग है। राजनीतिक दृष्टि से यह देश दो टुकड़ों में विभाजित किया गया है—भारतीय रियासतें और अंग्रेज़ी सूबे। सूबों का क्षेत्रफल ८ लाख ६२ हज़ार वर्गमील और जनसंख्या ३० करोड़ के लगभग है। रियासतों का क्षेत्रफल ७ लाख वर्गमील और जनसंख्या ६ करोड़ से कुछ ऊपर है। सारे हिन्दोस्तान में ६०० के लगभग रियासतें हैं। इन रियासतों को अधिकार की दृष्टि से दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहिली श्रेणी में वे रियासतें हैं जो सभी प्रकार से ख़ुद-मुख़्तार हैं। केवल बाहरी मामलों में वे बृटिश सरकार की मातहत है। बाकी रियासतें भीतरी और बाहरी दोनों दृष्टियों से परतंत्र हैं।

रियासतों का सम्बन्ध सीधे सम्राट् से है। सम्राट् ने अपनी शक्ति गवर्नर-जनरल को वाइसराय के रूप में दे रक्खी है। इस शक्ति को सर्वोच्चता (Paramount) कहा गया है। यह अधिकार सम्राट् को विभिन्न संधियों और सुलहनामें में प्राप्त हुये हैं। यद्यपि इस सम्बन्ध को स्थापित हुये लगभग १०० वर्ष हो रहे हैं, परन्तु अभी तक इसका स्पष्टीकरण ठीक नहीं है। बटलर कमेटी ने इसे स्पष्ट करने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी। यह सम्बन्ध समय समय पर बदलते रहे हैं। कभी कभी बृटिश सरकार इनमें हस्तक्षेप की नीति चलाती रही है और कभी इन्हें स्वतंत्र भी रक्खा है। इन रियासतों को बाह्य रक्षा का पूरा आश्वासन दिया गया है। वाइसराय को यह अधिकार है कि वह जब चाहे इनके भीतरी मामलों में दख़ल दे।

रियासत को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी विदेशी राज्य से अपना सम्बन्ध जोड़े। समय पड़ने पर बृटिश सरकार उनसे मनमानी सहायता ले सकती है। अपने राज्य में शान्ति रखने के लिये ये रियासतें बाध्य हैं। आर्थिक, और राजनीतिक दृष्टि से भी इनमें बड़ा मतभेद है। ३० रियासतों में धारा सभायें पाई जाती हैं। ४० रियासतों में अंगरेज़ी ढंग के न्यायालय स्थापित किये गये हैं।

भीतरी मामलों में शासन चलाने के लिये इन रियासतों को काफ़ी स्वतंत्रता है। ये अपने तरीके पर अपना धन खर्च कर सकती हैं। बाहरी सम्बन्ध सम्राट् के हाथों में है। केन्द्रीय सरकार में एक राजनीतिक विभाग (Political Department) स्थापित किया गया है, जो इन रियासतों की देख रेख करता है। प्रत्येक रियासत में एक अंगरेज़ रेज़ीडेन्ट रहता है। पहिली अप्रैल सन् १६३७ ई० से सम्राट् वाइसराय द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। बृटिश प्रान्तों में सम्राट् का अधिकार पहले से ही कायम हैं। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से हिन्दोस्तान के दोनों विभाग एक ही राजसत्ता के अन्तर्गत हैं। बृटिश परम्परा तथा स्वार्थ ने इन्हें एक दूसरे से अलग कर रक्खा है।

रियासतों और सूबों में चाहे जितना भी अन्तर हो, दोनों का हित एक दूसरे से मिला हुआ है। दोनों एक ही पेड़ की दो शाखायें हैं। एक की उन्नति-अवनति का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रह सकता। नकशे पर नज़र डालने से लाल और पीले रंग एक दूसरे से भिन्न मालूम पड़ते हैं, परन्तु उनके घनिष्ठ सम्बन्ध की छाया हमारी आँखों के सामने आ जाती है। भौगोलिक दृष्टि से रियासतों और सूबों में कोई भेद नहीं है। स्थान की दृष्टि से ये दोनों एक दूसरे से लिपटे हुये हैं। इनकी आबादी भी लगभग एक सी हैं। दोनों ही ग्रामीण और उपजाऊ प्रदेश हैं। ऊपर कहा गया है कि दोनों की राजसत्ता सम्राट् के हाथों में है। आर्थिक दृष्टि से समूचा हिन्दोस्तान एक है। देश की भलाई के सारे साधन एक दूसरे से मिले जुले हैं। राष्ट्रीयता की दृष्टि से सम्पूर्ण भारतवर्ष एक ही राष्ट्र है, दोनों की संस्कृति एक है। धार्मिक आचार विचार सूबे और रियासतों दोनों में एक हैं। इतनी एकता होते हुये यदि संघ शासन की स्थापना की जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सभी दृष्टियों से यह देश संघशासन के योग्य है।

इधर कुछ वर्षों से भारतीय रियासतें इस बात की माँग पेश कर रही थीं

कि बृटिश प्रान्तों के साथ उनका व्यापारिक सहयोग स्थापित हो जाय। बटलर कमेटी ने इस बात पर विचार किया था कि किस प्रकार रियासतें और सूबे एक प्लेटफ़ार्म पर आ सकते हैं। मान्टेग्यू और चेम्स फ़ोर्ड के दिमाग़ में यह बात पूरी तरह आई थी कि सारे हिन्दोस्तान के लिये एक शासनविधान बनना चाहिये। यह बात मान ली गई थी कि हिन्दोस्तान में शासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ तभी दूर हो सकती हैं जब इस देश का शासन-विधान संघशासन के आधार पर बना दिया जाय। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक सूबों और रियासतों में सहयोग उत्पन्न नहीं हो सकता। जिस समय मान्टैग्यू चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई उस समय रियासतें संघशासन के प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिये तैयार न थी। साइमन कमीशन की रिपोर्ट भी टुकरा दी गई। कारण यह था कि उपरोक्त किसी भी सुधार में केन्द्रीय शासन में परिवर्तन की कोई चर्चा न थी। केवल प्रान्तों में थोड़े बहुत अधिकार देकर बृटिश सरकार हिन्दोस्तानियों को सन्तुष्ट करना चाहती थी। ऐसी दशा में संघशासन की बातें करना अधिकार की एक हँसी उड़ाना था।

देशी राजाओं के मन में यह बात आने लगी कि बृटिश प्रान्तों का प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रह सकता। उन्हें यह ध्यान आया कि प्रान्तों के निवासी उनके भाई हैं। साथ ही उन्हें यह भय था कि वे हिन्दोस्तान की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति से अपने को अलग नहीं रख सकते। राष्ट्रीय् भावनायें रियासतों में भी काम कर रही थीं। उनकी जनता सूबों की देखा देखी ज़िम्मेवार शासन की माँग पेश कर रही थी। इन बातों ने राजाओं को इस बात के लिये सचेत कर दिया कि उनका राजनीतिक भविष्य प्रान्तों से अलग नहीं हैं। इसलिये उन्होंने यह फ़ैसला किया कि वे संघशासन में प्रवेश करने के लिये तैयार है। पहली गोलमेज़ सभा में राजाओं ने अपने इस विचार को बृटिश सरकार के सामने रक्खा। कांग्रेस ने पहली सभा की कार्यवाइयों को स्वीकार कर लिया और १६३१ ई० की दूसरी गोलमेज़ सभा में महात्मा गाँधी को अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजा। तीनों गोलमेज़ सभायें समाप्त हो जाने के बाद २ अगस्त सन् १६३५ ई० को नया शासनविधान पास किया गया। इसके अनुसार हिन्दोस्तान में एक संघ शासन की स्थापना की गई। इस ऐक्ट ने गवर्नर-जनरल और वाइसराय दोनों के पदों को अलग अलग बाँट दिया। इस समय एक ही व्यक्ति दोनों शक्तियों को धारण किये हुए है, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर ये पद अलग अलग दो व्यक्तियों को दिये जा सकते हैं।

भारतीय संघ-शासन के गुण दोष

भारतीय संघ-शासन-विधान संघ-शासन की सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता है। सम्पूर्ण शासन-विधान लिखित कर दिया गया है। इसमें परिवर्तन करना आसान नहीं है। केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों का विभाजन भी कर दिया गया है। एक संघ-न्यायालय की भी स्थापना की गई है। फिर भी भारतीय संघ शासन-विधान अपनी एक विशेषता रखता है। इस विशेषता का बहुत कुछ कारण इस देश की राजनीतिक परिस्थिति है। इस शासन विधान में कुछ ऐसे दोष हैं जो इसकी उपयोगिता को कम कर देते हैं।

(१) संघ-शासन में यह आवश्यक है कि इसमें शामिल होने वाले सूबे या रियासतें पूर्ण स्वतंत्र हों। उनकी राजसत्ता उन्हीं के अन्दर मौजूद हो। किसी विशेष सामूहिक हित की दृष्टि से वे एक संघ की स्थापना करते हैं। भारतीय संघ-शासन में ये दोनों बातें नहीं पाई जातीं। रियासतें और सूबे दोनों ही परतन्त्र हैं। दोनों की राजसत्ता सम्राट् के हाथों में है। अँग्रेज़ी सूबे संघ-शासन में आने के लिये बाध्य हैं। ये दोनों बातें इस बात को सिद्ध करती हैं कि यह संघ-शासन उनकी इच्छा के विरुद्ध है। इसकी स्थापना होने पर भी इस देश की राजसत्ता सम्राट् और पार्लियामेंट के हाथों में रहेगी। शासन के निर्माण में जनता की राय नहीं ली गई है। सारी कार्रवाई स्वयं पार्लियामेंट ने की है। इसीलिये कहा जाता है कि भारतीय संघ-शासन-विधान हिन्दोस्तानियों पर ' ज़बरदस्ती लादा गया है। "

(२) शासन की मशीन को देखते हुये यह स्पष्ट है कि यह संघ-शासन एक ऊपरी ढोंग है। बृटिश सरकार की पुरानी नीति उसी प्रकार बनी हुई है। केन्द्रीय शासन की बागडोर ढीली नहीं की गई है। प्रान्तों के गवर्नरों तथा गवर्नर-जनरल को तरह तरह के विशेष अधिकार देकर पार्लियामेंट ने अपने अधिकारों को कम नहीं किया है। जिस लाभ की दृष्टि से सूबे और रियासतें एक स्थान पर आना चाहती हैं वह लाभ ही ग़ायब है। इसका फ़ैसला पार्लियामेंट के हाथों में छोड़ दिया गया है।

(३) संघ-शासन में यह आवश्यक है कि जो इकाइयाँ इसमें शरीक हों उनमें काफ़ी समानता हो। उनके पद और अधिकार एक से हों। भारतीय संघ-शासन में इस नियम का अभाव है। रियासतें पद और अधिकार में सूबों से इतनी भिन्न हैं कि उनमें समानता का कोई भाव नहीं है। राजाओं की पुरानी दकियानूसी अभी तक जारी है। उनका शासन प्रजा के ऊपर इतना कड़ा होता है कि वह राजनीतिक अधिकारों का स्वप्न भी नहीं देखती। रियासतों में प्रजा

की दशा गिरी हुई है। उन्हें छोटे छोटे अधिकारों के लिये तरसना पड़ता है। कुछ रियासतों में प्रजा की दशा अच्छी है, परन्तु प्रश्न तो ६०० रियासतों का है। इसके विपरीत सूबे किसी हद तक शासन के लिये स्वतन्त्र हैं। वहाँ प्रजा को कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। प्रान्तों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपना प्रतिनिधि चुन कर संघ धारा सभाओं में भेजें। चुनाव में केवल प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्य वोट देने के अधिकारी होंगे। रियासतों में प्रजा को इतना भी अधिकार नहीं दिया गया है। वहाँ से जो सदस्य संघ-धारा सभाओं में जायेंगे वे राजाओं द्वारा मनोनीत होंगे। इस प्रकार के भेद भाव से बृटिश सरकार ने संघ शासन के महत्व को बिगाड़ दिया है। जनता को समान नागरिक अधिकार नहीं दिये गये हैं।

(४) संघ धारा सभाओं द्वारा जो क़ानून पास किए जायेंगे वे हिन्दोस्तान पर एक से लागू न होंगे। प्रान्तों में वे समान रूप से अवश्य बर्ते जायेंगे, परन्तु रियासतों में उनका प्रभाव भिन्न भिन्न होगा। प्रत्येक रियासत के साथ बृटिश सरकार की जैसी शर्त है, क़ानूनों का वैसा ही असर उस पर पड़ेगा। यह बात राजाओं की इच्छा पर छोड़ दी गई है कि वे कुछ विषयों में संघ धारा सभाओं की बातें मानें। इस प्रकार का भेद-भाव एकता के स्थान पर कटुता उत्पन्न करता है। जो शक्ति सारे हिन्दोस्तान के लिये बनाई गई है उसकी नीति सब जगह एक-सी न बर्ती जाय, यह बात कुछ समझ में नहीं आती।

(५) संघ सरकार को यह अधिकार नहीं है कि वह शासन-विधान में परिवर्तन करे। यह अधिकार केवल पार्लियामेंट को दिया गया है।

(६) ऊपर कहा गया है कि संघ धारा सभाओं में रियासतों के सदस्य राजाओं द्वारा मनोनीत होंगे इसके विपरीत प्रान्तों के सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि होंगे। लेकिन प्रजा को यह अधिकार नहीं है कि प्रत्यक्ष रूप से वह अपना प्रतिनिधि चुने। प्रान्तीय धारा सभाओं के सदस्य इन्हें निर्वाचित करेंगे। निर्वाचन क्षेत्र साम्प्रदायिकता के आधार पर बनाये गये हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय को पृथक्-पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया है। इससे देश में साम्प्रदायिक भावनाओं का प्रचार होगा और राष्ट्रीयता में बाधा पड़ेगी। प्रजा और धारा सभा के सदस्यों में सीधा सम्पर्क न होने से धारा सभा की जिम्मेदारी कम हो जाती है। संघ-शासनों में प्रायः छोटी धारा सभाओं के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं और बड़ी सभायें प्रत्येक रियासत के प्रतिनिधित्व की प्रतीक होती हैं। अर्थात् बड़ी सभा में रियासतें अपने आपको औरों के बराबर समझती हैं। क्षेत्रफल या जनसंख्या में कोई छोटी

हो अथवा बड़ी परन्तु उनका दर्जा बराबर होता है। भारतीय संघ में ऐसा नहीं किया गया है।

(७) वर्तमान शासन-विधान जनता को कोई अधिकार प्रदान नहीं करता। संघ धारा सभाओं की बनावट दोषपूर्ण है। उनके अधिकार बहुत ही सीमित हैं। क़ानून के क्षेत्र में धारा सभा के अधिकार नाम मात्र के लिये हैं। आय-व्यय में भी उसके अधिकार कम हैं। पग पग पर गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों से वह दबी हुई है। धारा सभा की इच्छा के विरुद्ध वह फर्मान जारी कर सकता है। उसकी अनुमति के बिना उसे क़ानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि धारा सभा किसी मद के ख़र्चे को बन्द कर देती है तो गवर्नर-जनरल उसे जारी कर सकता है। तात्पर्य यह है कि प्रजा के धन को उसके प्रतिनिधियों को खर्च करने का अधिकार नहीं है। शासन प्रबन्ध में संघ सरकार की आधी शक्ति एक मात्र गवर्नर-जनरल के हाथ में रक्खी गई है। बाक़ी मामलों में भी वह जब चाहे हाथ डाल सकता है। उसकी व्यक्तिगत ज़िम्मेवारियाँ (Special Responsibilities) इतनी अधिक हैं कि उनकी कोई सीमा नहीं है। उनके सामने भारतीय मन्त्रियों के अधिकार सूर्य के सामने चिराग़ की तरह हैं।

इन तमाम कमज़ोरियों को एकत्र करने पर यह पता चलता है कि भारतीय संघ-शासन-विधान से 'संघ' शब्द निकाल देना चाहिए। पार्लियामेंट के अधिकार वैसे ही हैं जैसे १९१९ के पहिले थे। रियासतों में राजाओं के अत्याचार वैसे ही होते रहेंगे जैसे आज तक होते आये हैं। नये शासन विधान में इसकी कोई दवा नहीं की गई है। यह शासन विधान प्रजा के अधिकारों की घोषणा नहीं करता। संयुक्तराज्य अमेरिका अथवा रूस से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। शासन-विधान में यह बात बार बार कही गई है कि हिन्दोस्तान की राजसत्ता बृटिश सम्राट् के हाथ में है। संघ-शासन की मशीन को चलाने का अधिकार भारत मंत्री के हाथ में दिया गया है। वह इंजिन के ड्राइवर की तरह जैसे चाहेगा हमें ले चलेगा। गवर्नर-जनरल के अधिकार इतने अधिक हैं कि आवश्यकता पड़ने पर वह सम्पूर्ण शासन-विधान को रद्द कर सकता है। उसे अधिकार है कि स्वतन्त्र रूप से हिन्दोस्तान पर राज्य करे। सरकार की आमदनी का ८० प्रतिशत उसे ख़र्च करने का अधिकार है। संघ सरकार के बजट में ⅘ हिस्से पर धारा सभा का कोई अधिकार नहीं है।

सूबों तथा रियासतों को यह अधिकार नहीं है कि वे जब चाहें संघ से अलग हो जायँ। रियासतों को सूबों से कहीं अधिक स्वतन्त्रता दी गई है।

संघ में आना और न आना उनकी इच्छा पर है। एक ऐसी संख्या निश्चित कर दी गई है जिससे कम रियासतों के सम्मिलित होने पर संघ-शासन आरम्भ नहीं किया जा सकता। संघ-धारा-सभा की बड़ी सभा में यदि रियासतों के ५२ प्रतिनिधि नहीं होंगे तो संघ की कार्रवाई आरम्भ नहीं की जायेगी। रियासतों की सम्राट् के साथ जो शर्तें हुई हैं वे उसी तरह बनी रहेंगी। संघ की आमदनी का ६० प्रतिशत प्रान्तों से लिया जायेगा और केवल १० प्रतिशत रियासतें देंगी। प्रत्येक राजा को यह अधिकार है कि वह जब और जैसे चाहे संघ शासन में शरीक हो।

रेलवे तथा बैङ्क की कार्रवाइयाँ संघ-शासन की मातहती से अलग रक्खी गई हैं। संघ-धारा सभा को यह अधिकार नहीं है कि वह मंत्रियों को भर्ती करे तथा उन्हें निकाल सके। यह अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया है। वही विभागों को बाँटेगा और जब चाहे मंत्रियों को निकाल सकेगा। इससे स्पष्ट है कि मत्री अपनी कार्रवाइयों के लिये धारा सभा के प्रति ज़िम्मेदार न होंगे। सुरक्षित विभाग (Reserved Department) गवर्नर-जनरल की मातहती में रहेगा। इसके लिये उसे मंत्रियों और धारा सभा के सलाह की कोई ज़रूरत न होगी। धारा सभा के बुलाने और बर्ख़ास्त करने का अधिकार उसी को होगा।

शासन-विधान की १२ वीं धारा में यह स्पष्ट कहा गया है कि गवर्नर जनरल प्रान्तीय मामलों में हाथ डाल सकता है। उसके विशेष अधिकार प्रान्तों में भी लागू होंगे। किसी भी संघ में संघ न्यायालय का फ़ैसला अंतिम माना जाता है। लेकिन भारतीय संघ शासन-विधान इससे वंचित रक्खा गया है। संघ न्यायालय के फ़ैसले के बाद कुछ मुक़दमों की अपील प्रिवी कौंसिल में होगी। बड़ी बड़ी सरकारी नौकरियाँ भारत मंत्री की मर्ज़ी से दी जायेंगी। कहा जाता है कि संसार के इतिहास में इस प्रकार का संघ-शासन कहीं नहीं मिलता। इसके अन्दर अनेक वर्गों के स्वार्थ सुरक्षित रक्खे गये हैं। बृटिश साम्राज्य, भारतीय रियासतें, धनी वर्ग आदि के हितों का विशेष ध्यान रक्खा गया है। लार्ड लोथियन लिखते हैं, * "नया शासन विधान तमाम बुराइयों के बावजूद हिन्दोस्तान की मौजूदा हालत के इतने अनुकूल है कि इसकी

---

*The new Act, with all its defects and anomalies, corresponds far more closely to the present day realities in India than its Indian critics are willing to admit.

समालोचना करने वाले इसे स्वीकार नहीं कर सकते।" हिन्दोस्तानियों की राष्ट्रीय भावनाओं के विकास और उसकी रक्षा पर थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया गया। एक सज्जन लिखते हैं* शासन के बनाने वालों ने एक ऐसा ग़लत रास्ता इख्तियार किया कि वे ठीक रास्ते से सही उद्देश्य पर नहीं पहुँच सके।" डाक्टर अम्बेदकर के शब्दों में † "शासन-विधान का सर और पैर दोनों ग़लत है।"

एक विद्वान् संघ-शासन विधान की समालोचना करते हुए लिखते हैं "राजनीतिक आवश्यकताओं ने दो अजनबी आदमियों को एक ही चारपाई पर सुला दिया है। अब यह देखना है कि कितने दिन तक इन दोनों की बनती है।" समालोचक का उद्देश्य प्रान्तों और रियासतों से है। इसकी समालोचना करते हुए श्रीयुत सुबास चन्द्र बोस लिखते हैं, 'भारतीय सरकारी ऐक्ट में जिस संघ-शासन की कल्पना की गई है वह एक धोखे की टट्टी है। इसमें बृटिश राजनीतिज्ञों ने हिन्दोस्तान को ग़ुलाम रखने की तरकीबें सोची हैं। यह शासन एक प्रकार से प्रजातन्त्रवाद और फ़्यूडल प्रथा दोनों को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश करता है।"

१९१९ में बृटिश प्रान्तों में जो दोहरे शासन की नींव डाली गई थी वह सर्वथा असफल रही, हिन्दोस्तान का कोई वर्ग इससे सन्तुष्ट न रहा। १९३५ के संघ-शासन-विधान में प्रान्तों का दोहरा शासन दूर कर दिया गया, परन्तु केन्द्र में फिर यही स्थापित किया गया है। केन्द्रीय सरकार के कुछ विषय गवर्नर-जनरल के हाथ में और कुछ मंत्रियों के हाथ में रहेंगे। अपनी विशेष जिम्मेवारियों को चलाने के लिये उसे यह अधिकार होगा कि वह तीन व्यक्तियों को नियुक्त कर ले। धन सम्बन्धी मामलों में राय देने के लिए वह एक आर्थिक सलाहकार (Financial Adviser) भी नियुक्त कर सकता है। शासन-विधान में मंत्रियों के आर्थिक अधिकारों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हिन्दोस्तानियों को आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं है।‡

---

*The framers, therefore, started wrongly and could not go on the right road to reach the right goal.

†The federal constitution is wrong in its conception and wrong in its basis.

‡ The political swaraj will be an empty husk without the economic swaraj, India, therefore, wants economic swaraj with the political swaraj. The Government of India Act, 1935, however, does not grant that.

१६१६ के शासन-विधान में बृटिश सरकार ने यह वादा किया था कि १० वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त करके यह जाँच की जायेगी कि सुधार की योजना कहाँ तक ठीक है। इससे स्पष्ट है कि शासन के बनाने वालों ने अपनी ईमानदारी में कोई कसर बाक़ी न रक्खी थी। परन्तु नये संघ-शासन विधान में कोई ऐसा मार्ग नहीं है। सभी चीज़ें भविष्य पर छोड़ दी गई हैं। उपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) की इस विधान में चर्चा तक नहीं है। यह ज़िक्र कहीं नहीं आता कि हिन्दोस्तान को उपनिवेशिक स्वराज्य कब दिया जायगा। सर सेमुअल होर ने जो कि उस समय भारतमंत्री थे, कामन सभा में कहा था, हिन्दोस्तान को अगली बार भी इसे मिलने की उम्मीद नहीं है। श्री सत्यमूर्ति ने इस शासन-विधान पर राय प्रकट करते हुए कहा है* "हिन्दोस्तान की बढ़ती हुई राष्ट्रीय भावनाओं को देखते हुए यह शासन-विधान स्वीकार नहीं किया जा सकता।" भारत के राजनीतिक दलों में केवल हिन्दू सभा ने इसका समर्थन किया है। वह भी इसलिये कि इससे "अखंड हिन्दोस्तान" का समर्थन होता है। †"कॉंग्रेस ने इसे विदेशी कह कर ठुकरा दिया है।"

आधुनिक भारतीय संघ शासन अपनी निजी विशेषता रखता है। न तो हम इसे सच्चा संघ-शासन कह सकते हैं और न इसमें प्रजातन्त्रवाद की कोई झलक है। इस देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए इस तरह का शासन विधान उपयोगी नहीं हो सकता। प्रान्तों और रियासतों में इतना राजनीतिक भेद है कि दोनों एक सूत्र में नहीं बाँधे जा सकते। संघ-शासन का स्वरूप ऐसा विचित्र है जो कहीं सुना भी नहीं गया होगा। कारण यह है कि एक तरफ सूबों को और दूसरी तरफ रियासतों को बाँधा जायेगा;

---

*Such a constitution cannot be accepted by India as a suitable dwelling-place for her new consciousness of nationhood.

‡ The Indian National Congress has rejected it because it is not a 'Swadeshi' constitution, having been forged in London by the combined efforts of the British Imperialists.

एक की सरकार प्रजातन्त्रवाद के आधार पर बनाई गई होगी और दूसरे में पूर्वीय एकतन्त्रवाद होगा।"

मुस्लिम लीग ने संघ-शासन की कड़े शब्दों में आलोचना की है। २० दिसम्बर सन् १९३८ ई० को बम्बई से एक वक्तव्य देते हुये मि० जिन्ना ने कहा था "नया शासन-विधान उस पौदे की तरह है जिसे लगाने की इजाज़त हमें एक रेगिस्तान में दी गई है। मेरी समझ में बृटिश सरकार ने इस शासन-विधान को बनाकर एक बहुत बड़ी विपत्ति हमारे सर पर वैसे ही लाद दी है जैसे वर्साइल की सन्धि ने योरप के ऊपर।" साम्प्रदायिक दृष्टि से हिन्दुओं का यह कहना है कि संघ-धारा सभा में किसी भी प्रकार से उनका बेहुमत नहीं हो सकता। यही डर मुसलमानों को भी है। काँग्रेस स्वयं डरी हुई है कि वह बहुमत नहीं प्राप्त कर सकती। एक वक्तव्य देते हुए सर ए० एच० ग़ज़नवी ने कहा था "छोटी सभा में काँग्रेस अधिक से अधिक ४० सीट प्राप्त कर सकती है।" अल्पसंख्यक वर्ग सभी प्रकार से असन्तुष्ट हैं।

संघ-शासन के भयंकर परिणाम

संघ-शासन की योजना कुछ प्रान्तों में किसी किसी तरह २७ महीने तक चली। अन्त में काँग्रेस को इस्तीफा देना पड़ा। इस २७ महीने के शासन का प्रभाव राजनीतिक दृष्टि से देश पर बहुत ही बुरा पड़ा। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि काँग्रेस सरकार बुरी थी, बल्कि संघ-शासन की कमजोरियाँ देश में भली भाँति स्पष्ट हो गईं। साम्प्रदायिक प्रश्न बढ़ने लगे। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को शत्रु समझने लगे। हिन्दू महासभा अपनी एक अलग राग अलापने लगी। स्वयं काँग्रेस में ३ दल बन गये। गाँधी जी के विचार वाले मंत्रिपद से सन्तुष्ट रहे। काँग्रेस-समाजवादी धारा सभाओं में चले तो गये किन्तु मंत्रिपद ग्रहण नहीं किया। अग्रगामी दल प्रान्तीय स्वराज्य का विरोध करता रहा। तात्पर्य यह

* "The Indian Federal System," writes Mr. H. B. Lees Smith, "Will be of a kind hitherto unknown, for there will be one set of federal powers for the provinces and another for each of the Indian Native States. The government of one part of the Federation will be based upon Parliamentary principles, that of the other upon oriental absolutism."

है कि अभी संघ-शासन पूरी तरह लागू नहीं हुआ लेकिन इसके भयंकर परिणाम दिखाई पड़ने लगे। जो प्रश्न राष्ट्रीय उत्थान में दबे हुये थे और जिनके उभड़ने की आशा निकट भविष्य में न थी, वे आज इतने भयंकर रूप धारण कर लिये हैं कि इन्हें हल किये बिना हमारी राष्ट्रीय उन्नति नहीं हो सकती। यदि संघ-शासन-विधान से यही परिणाम निकलना था तो इसे हम दूर से ही नमस्कार करते हैं। जो शासन-विधान हमें थोड़ा भी अधिकार प्रदान नहीं करता, और जिससे देश में अनेक दल पैदा होते हैं, उसके चलाने की चेष्टा हमें भूल कर भी नहीं करनी चाहिये। इसका बुरा प्रभाव यहाँ तक पड़ा है कि मुसलमान हिन्दोस्तान को दो राष्ट्रों में बाँटना चाहते हैं। उनकी 'पाकिस्तान' योजना देश के लिये घातक नहीं तो और क्या है ?

यह कोई भी इनकार नहीं कर सकता कि संघ-शासन से बढ़कर हिन्दोस्तान के लिये दूसरी शासन-पद्धति नहीं हो सकती।

सीधा मार्ग इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि देश की राजनीतिक समस्या तभी सुलझ सकती है जब संघ-शासन-विधान जारी कर दिया जाय। यह तभी हो सकता है जब बृटिश सरकार अपने हितों का कुछ त्याग करने पर तैयार हो। रियासतों के साथ जो उसके सुलहनामें हैं वे बदल दिये जायँ। राजाओं को सरकार इस बात के लिये बाध्य करे कि वे अपनी रियासतों में जिम्मेवार शासन स्थापित करें। साथ ही वह प्रान्तों को स्थानीय स्वराज्य दे दे। इसके बाद सूबों और रियासतों को इस बात की स्वतंत्रता दी जाय कि वे अपनी इच्छानुसार एक संघ-शासन-विधान बना लें। काँग्रेस की विधान-समिति (Constituent Assembly) वाली माँग सभी दृष्टियों से मुनासिब है। इससे हिन्दोस्तान में प्रजातंत्र की स्थापना के साथ बृटेन के प्रति सच्ची सहानुभूति उत्पन्न होगी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका मौजूद है। बृटेन इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि अमेरिका ने हर विपत्ति में उसकी सहायता की है। पिछली लड़ाई में इंगलैंड के विजयी होने का बहुत कुछ श्रेय अमेरिका को है। वर्तमान विकट परिस्थिति में चारों ओर से निराश होकर इंगलैंड ने अमेरिका की शरण ली है। आज इंगलैंड की सरकार पैसे की कमी महसूस कर रही है। वह वर्तमान लड़ाई के खर्चे को बर्दाश्त नहीं कर सकती। अन्त में अमेरिका से उसे प्रार्थना करनी पड़ी है। अमेरिका ने धन और जन दोनों से बृटेन की सहायता का बीड़ा उठाया है। वर्तमान युद्ध की समाप्ति यह सिद्ध करती है कि लोकमत सरकार का बहुत बड़ा साथी है। बृटिश सरकार अपनी नीति बदल कर भारतीय लोकमत से पूरी सहायता प्राप्त कर सकती है।

पहिला खंड

गृह-सरकार

(HOME GOVERNMENT)

अध्याय ३

सम्राट् तथा पार्लियामेन्ट

राजनीतिक दृष्टि से हिन्दोस्तान को स्वतन्त्र देशों का पद प्राप्त नहीं है। इस देश की राजनीतिक शक्ति आधी हिन्दोस्तान और आधी बृटेन में है। कोई क़ानून तब तक पास नहीं समझा जा सकता जब तक पार्लियामेंट और सम्राट् उसे मंजूर न कर दें। भारतीय सरकार की नीति का फ़ैसला पार्लियामेंट और सम्राट् ही करते हैं। हिन्दोस्तान में बड़ी-बड़ी नौकरियाँ सम्राट् तथा भारतमंत्री के हाथों में रक्खी गई हैं। वे जिसे चाहें नियुक्त कर सकते हैं। सम्राट्, पार्लियामेंट-भारतमंत्री और इंडिया कौंसिल इनकी शक्ति भारतीय सरकार में सबसे बड़ी है। इन्हीं का निर्णय भारतीय सरकार के लिये अन्तिम समझा जाता है। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार नहीं है कि वह इनकी बात टाल सके। भारतीय स्वराज्य तब तक स्थापित नहीं किया जा सकता जब तक पार्लियामेंट की शक्ति थोड़ी कम न कर दी जाय। ये सारी शक्तियाँ, जिनका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा, 'गृह-सरकार'' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका तात्पर्य यह है कि बृटिश सरकार हिन्दोस्तान का शासन-प्रबन्ध कुछ अपने घर से और कुछ अपने प्रतिनिधियों को भेज कर करती है।

गृह-सरकार

हिन्दोस्तान और इंगलैंड में ६,००० मील का फ़ासला है। अतएव यह सम्भव नहीं है कि गृह-सरकार भारतीय शासन की छोटी छोटी बातों को अपने हाथ में रक्खे। यद्यपि आजकल आवागमन की सुविधा काफ़ी है। बेतार-बर्क़ी, केबुल ग्राम, रेडियो, टेलीफ़ोन आदि से शीघ्र ख़बरें फैलाई जा सकती हैं फिर भी बृटेन के लिये यह असम्भव है कि वह इतनी दूर से हिन्दोस्तान में अमन व अमान क़ायम रक्खे। साथ ही हिन्दोस्तानी इस बात को सहन नहीं कर सकते कि उनकी राजकीय शक्ति सर्वथा दूसरों के हाथों में हो। कांग्रेस, जो देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था है, बृटेन की 'गृह-नीति' से असन्तुष्ट है। स्वराज्य आन्दोलन का यही तात्पर्य है कि 'गृह-सरकार' हिन्दोस्तान को अपना प्रबन्ध करने के लिए आज़ाद कर

दे। कारण यह है कि हिन्दोस्तान स्वयं एक महाद्वीप के बराबर है। इसकी जनसंख्या बृटेन की सात गुनी है। दोनों देशों की संस्कृति और जलवायु एक दूसरे से भिन्न हैं। हमारी रहन-सहन तथा सामाजिक संगठन का महत्व बृटेन निवासी तब तक नहीं समझ सकते जब तक वे इस देश में आकर बस न जायँ। मुसलमान भी विदेशी थे, परन्तु उनके दिमाग़ में भूल कर भी यह बात नहीं आई कि अरब या फ़ारस से इस देश का शासन किया जाय। उन्होंने हिन्दोस्तान को ही अपना घर बना लिया। सरकारी ख़ज़ाने की एक कौड़ी भी उन्होंने देश से बाहर न जाने दिया। यदि थोड़े से अँग्रेज़ मुसलमानों की तरह इस देश में आकर बस जायँ और यहीं के निवासियों की मदद से शासन का भार चलावें तो वर्तमान शासन-प्रबन्ध से वह कहीं अच्छा होगा।

'गृह-सरकार' भारतीय शासन की वह मशीन है जो बृटेन में काम कर रही है। इस सरकार की शक्ति स्थानीय सरकार से बड़ी है। वह अपने आपको भारतीय सरकार की संरक्षक समझती है। छोटी से छोटी बातें उसके सामने से होकर गुज़रती हैं। यद्यपि उसने कड़ी चेतावनी के साथ इस देश में अपने कर्मचारियों को भेज रक्खा है, फिर भी उनके कामों पर चौबीस घंटे नज़र रखती है। हिन्दोस्तान से प्रतिवर्ष ४० करोड़ रुपया गृह-सरकार के ख़र्च को चलाने के लिए भेजा जाता है। और मदों में कमी भले ही पड़ जाय लेकिन गृह-सरकार का ख़र्च भेजना ज़रूरी है। इस ख़र्च को होमचार्ज (Home Charges) कहते हैं। इसमें बड़े-बड़े अँग्रेज़ अफ़सरों की पेन्शन और भारतमंत्री के दफ़्तर का ख़र्च शामिल है। भारत सरकार की ओर से बृटेन में एक हाई कमिश्नर रक्खा जाता है। इसका वेतन भी यहीं के ख़ज़ाने से दिया जाता है। बृटिश सरकार की नीति से हिन्दोस्तान क़र्ज़ के भार से दबा हुआ था। इसके ऊपर १३ सौ करोड़ रुपया क़र्ज़ था। जिसके लिए हर साल १४ करोड़ रुपया सूद देनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त व्यापार में करोड़ों रुपया हर साल इंगलैंड को जाता है। इन बातों से स्पष्ट है कि हिन्दोस्तान और इंगलैंड का सम्बन्ध केवल राजनीतिक नहीं है। आर्थिक दृष्टि से दोनों देश एक दूसरे के इतने निकट हैं कि इनके सम्बन्ध को जाने बिना किसी भारतीय राजनीतिज्ञ को नहीं रहना चाहिये। 'गृह-सरकार' की मशीन के अन्दर जितने पुर्ज़े काम कर रहे हैं उनका अलग-अलग वर्णन करना अच्छा होगा। इससे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि वे पुर्ज़े किस प्रकार फ़िट किये गये हैं और उनकी गति का प्रभाव भारतीय शासन पर क्या पड़ता है।

१८५८ ई० के नियम के अनुसार हिन्दोस्तान की राजसत्ता सम्राट् के हाथों में रक्खी गई है। इनके शासन-काल का हिसाब लगाते हुए एक राजनीतिज्ञ लिखता है 'हर सम्राट् औसतन २० वर्ष राज्य करता है" अब तक केवल ४ स्त्रियों ने सम्राट् के आसन को ग्रहण किया है। विक्टोरिया ने सबसे अधिक अर्थात् ६४ वर्ष तक राज्य किया। एडवर्ड पंचम ने जो कि १४८३ ई० में गद्दी पर बैठे थे, सब से कम दिन तक राज्य किया। इंगलैंड के इतिहास में केवल ११ वर्ष ऐसे आते हैं, जब कि वह देश बिना सम्राट् के था। सम्राट् का पद उसकी मृत्यु के बाद सब से बड़े लड़के को दिया जाता है। यह नियम १७०१ ई० से अब तक चालू है। १६१० ई० तक सम्राट् को राज्याभिषेक के समय रोमनकैथोलिक चर्च के नियम के अनुसार शपथ खानी पड़ती थी; परन्तु अब इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यह बात सदैव के लिये घोषित कर दी गई कि "सम्राट् एक सच्चा प्रोटेस्टेंट है।" सम्राट् की आयु १८ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये। उसका ख़र्च इंगलैण्ड के ख़ज़ाने से दिया जाता है। प्रतिवर्ष पार्लियामेंट यह निश्चित करती है कि सम्राट् तथा उसके कुटुम्ब को कितना ख़र्च दिया जाय। इस इम्दाद को 'सिविल लिस्ट' (Civil List) कहते हैं। आज कल सम्राट् को उसके कुटुम्ब के सहित ६ लाख रुपया महीना दिया जाता है।

सम्राट्

कहा जाता है कि सम्राट् की शक्ति अनन्त है। इतनी शक्ति संसार के किसी अन्य शासक को नहीं दी गई है। वह आज ५० करोड़ व्यक्तियों पर राज्य कर रहा है। पार्लियामेंट को वही बुलाता है। इसे भंग करने का अधिकार उसी को है। बृटिश साम्राज्य में जितने क़ानून बनते हैं उन पर अन्तिम हस्ताक्षर उसी का होता है। बड़े-बड़े सरकारी नौकर उसी की आज्ञा से नियुक्त किये जाते हैं। सम्पूर्ण साम्राज्य की फ़ौज उसी के हाथों में है। लड़ाई की आज्ञा वही देता है। सन्धि करने का अधिकार उसी को है। पार्लियामेंट का काम तब तक वैधानिक नहीं समझा जाता जब तक सम्राट् उसे स्वीकार न कर ले। किसी भी क़ानून को वह भंग कर सकता है। इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री, जिसके हाथों में बृटिश साम्राज्य की बागडोर है, उसी के द्वारा नियुक्त किया जाता है। बृटिश साम्राज्य में बड़ी-बड़ी पदवियाँ वही प्रदान करता है। लार्ड सभा के अधिकतर सदस्य उसी के बनाये हुये हैं। कचहरियों में उसी के नाम पर फ़ैसला किया जाता है। बृटिश साम्राज्य की सरकार उसी की सरकार कहलाती है।

उसके अधिकारों को देखते हुए किसी को भी यह सन्देह हो सकता है

कि इतनी बड़ी शक्ति को एक आदमी कैसे धारण कर सकता है ? बृटेन का सम्राट् कोई देवता नहीं है। जापानियों के सम्राट् की तरह उसकी उत्पत्ति सूर्य भगवान से नहीं हुई है। वह हमी लोगों की तरह एक साधारण मनुष्य है। राजनीतिक परिपाटी ने उसे कुछ असाधारण अधिकार दे रक्खा है। कहने के लिये सम्राट् की शक्ति अनन्त है; लेकिन कार्य रूप में वह कुछ नहीं करता। केवल नाम के लिये वह साम्राज्य का प्रधान घोषित किया गया है। इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री और केबिनेट सब कुछ करते हैं। यह एक स्वप्न है कि सम्राट् पार्लियामेंट के बनाये हुए क़ानूनों को रद्द कर सकता है। एक राजनीतिज्ञ तो यहाँ तक लिखता है "यदि पार्लियामेंट सम्राट् की फाँसी के लिए कोई नियम पास कर दे तो सम्राट् को इसे भी मंजूर करना होगा।" ऐसी दशा में यह कैसे कहा जाय कि उसकी शक्ति पार्लियामेंट से बढ़ कर है। इंगलैण्ड में यह प्रश्न उठाया गया था कि सम्राट् से कोई लाभ नहीं है। लेकिन यह बात सर्वसम्मति से मान ली गई है कि इतने बड़े साम्राज्य के लिए एक सर्वप्रधान व्यक्ति का होना आवश्यक है। सम्राट् का दैनिक जीवन नियमों से इस क़दर बँधा हुआ है कि वह आज़ादी का स्वप्न भी नहीं देख सकता। किसी सभा-सोसाइटी में वह तब तक भाग नहीं ले सकता जब तक प्रधान मंत्री इसकी अनुमति न दे दे। अपनी इच्छानुसार वह हर एक से नहीं मिल सकता। विदेशों में यात्रा करने के लिये उसे आज़ादी नहीं है। किसी से मित्रता करने तक के लिये वह स्वतंत्र नहीं है। अपनी इच्छा के अनुसार वह विवाह तक नहीं कर सकता। स्वतन्त्रता के लिये आठवें एडवर्ड ने सम्राट् पद से त्याग पत्र दे दिया।

सम्राट् और भारत सरकार

सम्राट् और भारत सरकार का सम्बन्ध घनिष्ठ है। सम्पूर्ण भारतीय सेना उसके हाथ में रक्खी गई है। भारतीय सरकार के उच्च पदाधिकारी उसी के द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। कमान्डर-इन-चीफ़, जो कि भारतीय सेना का प्रधान है, उसी के द्वारा नियुक्त किया जाता है। नये शासन विधान में यह बात स्पष्ट है कि "सरकारी विभाग में हर एक कार्यकर्ता तभी तक स्थायी समझा जायेगा जब तक सम्राट् की कृपा उस पर बनी रहेगी।" हाईकोर्ट के जजों को वही नियुक्त करता है। गवर्नर-जनरल और प्रान्तों के गवर्नर उसी के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। भारतीय सरकार जिन कानूनों को पास करती है वे तब तक लागू नहीं हो सकते जब तक उन पर सम्राट् की दस्तख़त न हो जाय। भारतीय रियासतों के साथ, बृटिश सरकार के सुलहनामे सम्राट् के नाम से किये गये हैं। रियासतों में हस्तक्षेप करने का अधिकार

सम्राट् को छोड़ कर और किसी को नहीं है। इस अधिकार को उन्होंने वाइसराय को दे रक्खा है। किसी नये शासन विधान का श्रीगणेश हिन्दोस्थान में सम्राट् ही कर सकता है। १६३५ का संघ-शासन-विधान कब से काम में लाया जाय, इस ा निश्चय करना सम्राट् के हाथों में था। इसीलिए कहा जाता है कि 'वर्तमान संघ-शासन सम्राट् की मातहती में रहेगा।" यदि वह चाहे तो गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकार किये गये क़ानूनों को एक वर्ष तक लागू करने से रोक सकता है। हिन्दोस्तान के राजनीतिक विभाग तब तक नहीं किये जा सकते जब तक सम्राट् से इसकी आज्ञा न ले ली जाय। नये सूबों का निर्माण उसकी आज्ञा से किया जाता है। यदि एक सूबे के कुछ ज़िले दूसरे सूबों में मिलाये जायँ तो इसकी आज्ञा सम्राट् से लेनी होगी।

भारतीय शासन में सम्राट् सब कुछ प्रधान मंत्री की सलाह से करता है। सम्राट् को भारतीय विषयों की जानकारी बहुत कम है। हमें तो यह भी शक है कि वह सब सूबों का नाम भी जानता है। व्यक्तिगत सहानुभूति रखते हुए भी यदि वह हिन्दोस्तान को आज़ाद करना चाहे तो नहीं कर सकता। भारत सरकार सम्बन्धी कार्रवाइयों में उसकी दिलचस्पी अधिक नहीं रहती। कैबिनेट तथा पार्लियामेंट के सदस्य हिन्दोस्तान के शासन सम्बन्धी बातों में विशेष जानकारी नहीं रखते। सब कुछ भारतमंत्री और उसकी सहायक सभा (India Council) के हाथों में छोड़ दिया गया है। कार्य रूप में भारतीय सरकार और सम्राट् का कोई सम्बन्ध नहीं है। भारतीय सरकारी दफ़्तरों में सम्राट् और साम्राज्ञी की तसवीरें अवश्य दिखाई पड़ेंगी। भारतीय सिक्कों पर उसका नाम और उसकी तसवीर मिलेंगी। जब से इस देश में बृटिश साम्राज्य स्थापित हुआ तब से केवल दो सम्राटों ने यहाँ पदार्पण किया है। १७ नवम्बर सन् १६२१ ई० को प्रिंस आफ़ वेल्स जब हिन्दोस्तान आये उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर देश में फैल रही थी और स्वागत के बदले उनका बहिष्कार किया गया। जब उन्होंने बम्बई में प्रवेश किया तो शहर के कोने कोने में अशान्ति आरम्भ हो गई। ४ दिन तक शहर में बेचैनी रही। ५३ आदमियों की मृत्यु हुई और ४०० आदमी घायल हुये। इसी के उपलक्ष में महात्मा गाँधी ने ५ दिन का अनशन व्रत किया था।

पार्लियामेंट

पार्लियामेंट इगलैण्ड की धारा सभा को कहते हैं जो न केवल बृटेन बल्कि बृटिश साम्राज्य भर के लिए क़ानून बनाती है। बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत जिन देशों को आजादी (Dominion Status) हासिल है वे पार्लियामेंट के बन्धन से बहुत कुछ मुक्त हैं। भारतीय सरकार से इसका इतना घनिष्ठ

सम्बन्ध है कि इसके अध्ययन के बिना भारतीय शासन-विधान का ज्ञान नहीं हो सकता। भारतीय शासन में पार्लियामेंट का कितना हाथ है, इस पर विचार करने के पहिले यह देखना चाहिये कि इसकी रूप रेखा कैसी है, किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई, और इसमें कितने सदस्य हैं। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि संसार की धारा-सभाओं में इसका क्या स्थान है।

लार्ड सभा
House of Lords

एक साधारण विद्यार्थी के लिये 'पार्लियामेंट' शब्द कुछ मानी रख सकता है, लेकिन किसी राजनीति के विद्यार्थी के लिये इसका कोई अर्थ नहीं है। पार्लियामेंट कोई एक सभा नहीं है जिसका आभास एक ही शब्द से हो जाय। पार्लियामेंट में दो सभायें हैं। बड़ी सभा को 'लार्ड सभा' और छोटी सभा को 'कामन सभा' कहते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से लार्ड सभा कामन सभा से पुरानी है। यह १००० वर्षों से चली आ रही है। केवल थोड़े समय के लिए इंगलैण्ड के शासक क्रामवेल ने इसे तोड़ दिया था। आरम्भ में यह सभा सम्राट् के सभापतित्व में हुआ करती थी। इसके सदस्य बड़े बड़े ज़मींदार, सेठ-साहूकार और धर्मगुरु आदि होते थे। सारे अधिकार इसी सभा को प्राप्त थे। परन्तु ज्यों ज्यों लोकमत का मूल्य बढ़ता गया त्यों त्यों इसकी शक्ति क्षीण होती गई। आजकल इसकी दशा यह है कि इसके पास कोई अधिकार बाक़ी नहीं रह गये। सारी शक्ति कामन सभा के हाथों में आ गई है। वर्तमान समय में लार्ड सभा में लगभग ७०० सदस्य हैं। ये सदस्य प्रजा के चुने हुए नहीं होते। इनमें ६०० ग्रेट ब्रिटेन के, १६ स्काटलैंड के और २८ आयर लैंड के होते हैं। इनके अतिरिक्त २६ सदस्य वे हैं जो धर्म गुरु कहलाते हैं। इन सदस्यों में कई कोटि के सदस्य होते हैं। सबके लिये यह अनिवार्य है कि उन्हें लार्ड की पदवी दी गई हो। कुछ सदस्य ऐसे होते हैं जिन्हें यह पैतृक अधिकार होता है कि वे लार्ड सभा के सदस्य रह सकें। उनकी मृत्यु के बाद उनके बड़े लड़के अपने आप लार्ड सभा के सदस्य हो जाते हैं। उन्हें निकालने का अधिकार किसी को नहीं है। इनके अतिरिक्त दूसरी श्रेणी के सदस्य वे हैं जो केवल अपने जीवन काल के लिये सदस्य बनाये जाते हैं।

'लार्ड' की उपाधि देने का अधिकार केवल सम्राट् को प्राप्त है। वह अनगिनत व्यक्तियों को यह उपाधि प्रदान कर सकता है। जब कभी सम्राट् किसी व्यक्ति को यह उपाधि देना चाहता है तो प्रधान मंत्री से इसकी सलाह लेता है। ऐसे अवसर बहुत कम आये हैं, जब कि सम्राट् ने बिना किसी की राय के लार्ड बना दिया हो। प्रतिवर्ष कुछ लार्ड बनाये जाते

सभा से पास किये हुये बिल को लार्ड सभा इनकार कर दे तो वह बिल पास नहीं हो सकता। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। कारण यह है कि सम्राट् अपने पक्ष के बहुत से व्यक्तियों को लार्ड की उपाधि देकर उस बिल को पास करा सकता है। १६०६ ई० में एक बिल के ऊपर दोनों सभाओं में गहरा मतभेद हो गया था। भविष्य में इस प्रकार के मतभेद को दूर करने के लिये १६११ ई० में एक नियम बना कर लार्ड सभा की शक्ति कम कर दी गई। लार्ड सभा के सदस्यों को वेतन नहीं दिया जाता।

Privy Council

भारतीय शासन विधान में लार्ड सभा पर बहुत अधिक विचार करना किसी भी दृष्टि से उपयोगी नहीं है। केवल 'पार्लियामेंट' शब्द के नाते इसका कुछ वर्णन कर दिया गया है। कार्य रूप में यह सभा भारतीय सरकार के मामलों में कुछ नहीं करती। इसके सदस्य हिन्दोस्तान को ऊँची दृष्टि से नहीं देखते। उन्हें इस देश की बहुत कम जानकारी होती है। यहाँ तक सुना गया है कि लार्ड लोग इस देश में आना कम पसन्द करते हैं। हिन्दोस्तान के गवर्नर-जनरल के लिये यह आवश्यक है कि वह लार्ड की उपाधि प्राप्त किये हों। यह बात क़ानून में लिखी नहीं है, लेकिन परिपाटी ने इसे क़ानून से भी बढ़ कर बना दिया है। सूबों के गवर्नर भी लार्ड घराने के होते हैं। जहाँ तक गवर्नर-जनरल और गवर्नर का सम्बन्ध है, अगले अध्यायों में इन पर विचार किया जायेगा। यहाँ पर यह देखना है कि लार्ड सभा का सम्बन्ध भारतीय सरकार से क्या है। यह सम्बन्ध प्रिवी कौंसिल द्वारा अधिक आवश्यक और दृढ़ बनाया गया है। यदि प्रिवी कौंसिल का सम्बन्ध हिन्दोस्तान से तोड़ दिया जाय तो लार्ड सभा का सम्बन्ध अपने आप टूट जायेगा।

प्रिवी कौंसिल आरम्भ में आयरलैंड और ग्रेटब्रिटेन के लिए न्यायालय के रूप में स्थापित की गई थी। इसकी उत्पत्ति और विकास का इतिहास बहुत ही लम्बा है। उसका वर्णन करना किसी भी दृष्टि से न्याय संगत नहीं है। हिन्दोस्तान के लिये अपील का सबसे बड़ा न्यायालय प्रिवी कौंसिल है जो लार्ड सभा का एक अंग है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लार्ड सभा के ७०० सदस्य मुक़दमों का फ़ैसला करते हैं। कोई न्यायालय ऐसा नहीं हो सकता जिसमें ७०० न्यायाधीश एक साथ बैठ कर मुक़दमों का फ़ैसला करें। प्रिवी कौंसिल में लार्ड सभा का सभापति और ६ अन्य लार्ड एक साथ बैठ कर मुक़दमों का फ़ैसला करते हैं। 'इन्हें क़ानूनी लार्ड' (Law Lords)

कहा जाता है। ये ६ सदस्य अपने जीवन काल के लिये लार्ड की उपाधि प्राप्त किए होते हैं। क़ानूनी मामलों में ये विशेषज्ञ होते हैं। जब कभी ग्रेट बृटेन तथा उत्तरी आयरलैंड से लार्ड सभा में कोई अपील की जाती है तो उसका फ़ैसला करना इन्हीं सातों सदस्यों के हाथों में दिया जाता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि हिन्दोस्तान के मुक़दमों की अपील इन्हीं सातों सदस्यों के सामने पेश की जाती है; लेकिन यह बात ग़लत है।

लार्ड सभा में सदस्यों की एक दूसरी कमेटी होती है। इसी के सामने हिन्दोस्तान के मुक़दमें पेश किये जाते हैं। इसी कमेटी को प्रिवी कौंसिल (Judicial Committee of the Privy Council) कहते हैं। हिन्दोस्तान, इंगलैण्ड, आयरलैंड तथा बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अन्य देशों से अपील के सारे मुक़दमें प्रिवी कौंसिल में आते हैं। भौगोलिक दृष्टि से इस न्यायालय का क्षेत्र बहुत बड़ा है। इसकी तुलना किसी कचहरी से नहीं की जा सकती। इसमें लार्ड चांसलर, पिछले सभी लार्ड चांसलर, ६ क़ानूनी लार्ड, प्रिवी कौंसिल का लार्ड प्रेसीडेन्ट तथा हिन्दोस्तान तथा अन्य उपनिवेशों की बड़ी कचहरियों द्वारा नियुक्त किए हुए न्यायाधीश रहते हैं। कुल मिलाकर इसमें २० न्यायाधीश होते हैं। लेकिन कार्यरूप में लार्ड चांसलर, ६ क़ानूनी लार्ड और कुछ भारतीय जज मुक़दमों का फ़ैसला करते हैं। जिस देश का मुक़दमा होता है वहाँ के कुछ न्यायाधीशों की उपस्थिति आवश्यक है।

ऊपर कहा गया है कि प्रिवी कौंसिल तथा अन्य कचहरियों में भेद है। दूसरी कचहरियों में न्यायाधीश अपना अन्तिम फ़ैसला देते हैं, लेकिन प्रिवी कौंसिल के सदस्य-आख़िरी फ़ैसला नहीं दे सकते। यह सम्राट् को सलाह के रूप में फ़ैसला देती है कि वह अमुक बात को मान ले या इनकार कर दे। हर फ़ैसले का अन्तिम वाक्य यही होता है कि "हम लोग सम्राट् को नम्रता पूर्वक यह सलाह दे रहे हैं, इत्यादि इत्यादि।" यह किसी फ़ैसले से कम नहीं होता। सम्राट् इसे मान लेता है। यह इसलिये किया जाता है कि इससे एक बहुत बड़े सिद्धान्त की रक्षा होती है। सम्राट् का दर्जा क़ानून से ऊपर माना गया है। उसे यह अधिकार है कि वह किसी फ़ैसले को रद्द कर दे। इंगलैण्ड की कचहरियाँ इस नियम के विरुद्ध अपना फ़ैसला दे देती हैं, लेकिन हिन्दोस्तान तथा अन्य उपनिवेशों में सम्राट् के इस अधिकार की रक्षा की जाती है।

प्रिवी कौंसिल दीवानी मुक़दमों की सबसे बड़ी अदालत है। फ़ौज़दारी के मुक़दमें अधिक से अधिक हाईकोर्ट तक आ सकते हैं। इससे आगे उनकी अपील नहीं हो सकती। हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद माल के मुक़दमें प्रिवी

कौंसिल में अपील किये जा सकते हैं, लेकिन इसके लिये दो शर्तें हैं। एक तो हाईकोर्ट अपील करने की इजाज़त दे, और दूसरे वह अपील कम से कम १० हज़ार रुपये की हो। प्रिवी कौंसिल का फ़ैसला अन्तिम होता है। किसी विशेष मामले में फ़ौजदारी की अपील इसमें हो सकती है लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। संघ-न्यायालय से भी प्रिवी कौंसिल में अपील की जाती है। प्रिवी कौंसिल में कोई नया मुक़दमा दायर नहीं किया जाता। संघ न्यायालय की स्थापना होने से कुछ लोग यह समझते हैं कि प्रिवी कौंसिल का अधिकार भारतीय मामलों में कुछ कम हो गया है, लेकिन ऐसी बात नहीं है। अब भी प्रिवी कौंसिल हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी अदालत रहेगी। कुछ हिन्दुस्तानियों को प्रिवी कौंसिल के आजीवन सदस्य रहने की उपाधि दी गई है। इन्हें प्रिवी कौंसिलर (Privy Councillor) कहते हैं। आज तक इस देश में ७ या ८ व्यक्तियों को यह उपाधि दी गई है। इसी प्रिवी कौंसिल के नाते लार्ड सभा का सम्बन्ध भारतीय-सरकार के साथ माना जाता है। 'न्यायालय' नामक अध्याय में इस बात पर अच्छी तरह विचार किया जायगा कि प्रिवी-कौंसिल के इस अधिकार का भारतीय सरकार पर क्या प्रभाव पड़ता है। भारतीय न्यायालयों की स्थिति पर इस कौंसिल का जो प्रभाव पड़ता है उस पर भी विचार किया जायगा। हिन्दोस्तान तथा अन्य उपनिवेशों की यह माँग है कि प्रिवी कौंसिल से उनका नाता छुड़ा दिया जाय, परन्तु गृह सरकार इस पर कुछ भी ध्यान नहीं देती।

कामन सभा
House of Commons

१६११ ई० के बाद लार्ड सभा की शक्ति क्षीण होती गई। आर्थिक मामलों में कामन सभा की सत्ता सर्व प्रधान मान ली गई। तब से कामन सभा इतनी प्रसिद्ध हो गई कि साधारण बोलचाल में पार्लियामेंट का तात्पर्य इसी सभा से समझा जाता है। कार्लाइल का कहना है कि "कामन सभा की शक्ति संसार की सभी धारा सभाओं से बढ़ कर है।" इसकी उत्पत्ति हुए ६०० वर्ष से ऊपर व्यतीत हो गये। कहा जाता है कि कामन सभा ही पार्लियामेंट है। इसकी कार्य पद्धति बड़ी ही प्रसिद्ध और मनोरंजक है। किसी भी धारा सभा में जाने के लिये लोग इतने लालायित नहीं रहते जितने कामन सभा में। इसकी बैठक वेस्ट मिन्स्टर में होती है। १८३४ ई० में एक भयंकर अग्नि कांड में जल कर यह भवन राख हो गया था। १५ वर्षों के कठिन परिश्रम से १८५२ ई० में पार्लियामेंट का वर्तमान भवन बनाया गया। टेम्स नदी के बायें किनारे पर ९ एकड़ की चौहद्दी में यह भवन बना हुआ है। इसमें १२०० से अधिक कमरे हैं। वैटिकन

(Vatican) को छोड़कर योरप में इतनी बड़ी इमारत कोई दूसरी नहीं है। एक बहुत बड़े हाल के दक्खिन तरफ कामन सभा भवन और इसके उत्तर लार्ड सभा भवन है।

कामन सभा में ६०० से कुछ अधिक सदस्य हैं। परन्तु केवल ४५० आदमियों के बैठने की जगह बनाई गई है। ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं जब कि सभी सदस्य उपस्थित हो जायँ। २०० से अधिक सदस्य हमेशा गैर हाज़िर रहते हैं। सभी सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि होते हैं। कामन सभा का सभापति स्पीकर कहलाता है। प्रतिनिधि स्वयं इसे चुनते हैं, परन्तु सम्राट् से इसकी मंजूरी लेनी पड़ती है। सभापति बनने के पहले स्पीकर किसी भी दल का क्यों न हो, परन्तु इसके बाद उसे निष्पक्ष भाव से कार्य करना पड़ता है। कामन सभा की बैठक सोमवार, मंगलवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को होती है। साढ़े ग्यारह बजे रात तक वाद-विवाद चलते रहते हैं। १८८१ ई० में एक बार सोमवार को दोपहर से बैठक शुरू हुई और बुध को प्रातः काल समाप्त हुई। शुक्रवार को ११ बजे दिन से लेकर साढ़े चार बजे सबेरे तक बैठक होती है। ४० सदस्य कोरम पूरा करते हैं।

स्पीकर वाद-विवाद में कभी भाग नहीं लेता। १३७६ ई० में पहिला स्पीकर चुना गया था। कार्य रूप में स्पीकर का चुनाव प्रधान मंत्री कैबिनेट की सलाह से करता है। यही चुनाव कामन सभा का चुनाव मान लिया जाता है। जो व्यक्ति एक बार स्पीकर चुन लिया जाता है वही बार-बार स्पीकर बनता रहता है। स्पीकर का पद बहुत ही ऊँचा है। उसे वेतन भी दिया जाता है। वेस्टमिन्स्टर भवन में उसे एक सरकारी बंगला रहने के लिये दिया जाता है। अपने पद से अलग होने पर उसे पेंशन दी जाती है और उसे लार्ड सभा का सदस्य बना दिया जाता है। आम तौर से कामन सभा में एक घंटे के व्याख्यान होते हैं। परन्तु यदि कोई सदस्य चाहे तो इससे अधिक भी बोल सकता है। कोई समय का निश्चित परिमाण नहीं रक्खा गया है। कामन सभा में अभी तक सबसे बड़ा व्याख्यान ब्रोगम (Brougham) ने दिया है। १८२८ ई० में वे लगातार ६ घंटे तक बोलते रहे। भारतीय धारा सभाओं में इससे अधिक लम्बे व्याख्यान दिये गये हैं। जलियान वाला बाग की घटना (१३ अप्रेल सन् १९१९) के बाद हिन्दोस्तान की केन्द्रीय धारा सभा में जब इनडेमनिटी बिल पेश हुआ तो पं० मदनमोहन मालवीय लगातार ३ दिन तक बोलते रहे। इतना लम्बा व्याख्यान संसार की किसी भी धारा सभा में अभी तक नहीं दिया गया है।

कैबिनेट
Cabinet

कामन सभा अपना सब काम विभिन्न कमीटियों द्वारा करती है। प्रत्येक कमीटी में ४० से ६० तक सदस्य होते हैं। कैबिनेट इस सभा की सबसे बड़ी कमीटी है। संख्या में कैबिनेट के सदस्य केवल २० या २१ होते हैं; लेकिन इस कमीटी की शक्ति और कमीटियों से कहीं अधिक है। वास्तव में बृटिस साम्राज्य का शासन इसी कमीटी के अधिकार में है। साम्राज्य की नीति यही निश्चित करती है। जब कामन सभा के सदस्यों का चुनाव हो जाता है तो सम्राट् बहुसंख्यक दल के सबसे बड़े नेता को बुलाता है। उसी को वह प्रधान मंत्री घोषित करता है। उसे यह अधिकार दिया जाता है कि वह अपनी इच्छानुसार २० या २१ सदस्यों का एक मत्रिमंडल बना ले। यह प्रधान मंत्री की मर्ज़ी पर है कि वह सारे मंत्रियों को अपने ही दल से चुने या और दलों से भी कुछ सदस्यों को भर्त्ती कर ले। लार्ड सभा से भी वह कुछ सदस्यों को भरती कर सकता है। इतना ज़रूर है कि अपने दल के अधिक से अधिक मंत्री मत्रिमंडल में रक्खे जाते हैं। यही मंत्रिमंडल कैबिनेट कहलाता है। मत्रिमंडल के बनने के बाद कामन सभा की सारी कार्रवाई इसी की इच्छानुसार होती है। कैबिनेट के मंत्रियों के लिये पार्लियामेंट का सदस्य होना आवश्यक है।

कामन सभा और भारतीय सरकार

भारत सरकार का नाता कामन सभा के साथ बहुत घनिष्ठ है। इस देश की राजसत्ता नाम मात्र के लिये सम्राट् के हाथ में रक्खी गई है। पार्लियामेंट ही सब कुछ करती है। जो क़ानून भारतीय धारा सभाओं में पास होते हैं वे कामन सभा में विचारार्थ पेश किये जाते हैं। हिन्दोस्तान के साथ गृह-सरकार की नीति कामन सभा ही निश्चित करती है। भारतमंत्री, जिसके द्वारा कामन सभा भारतीय सरकार को चलाती है, इस सभा का एक सदस्य होता है। हिन्दोस्तान में होने वाली सभी घटनाओं के लिये वह इस सभा के प्रति उत्तरदायी है। उसकी ज़िम्मेवारी को बढ़ाने के लिये १६१६ ई० से पार्लियामेंट ने यह निश्चित किया कि इसका वेतन अँगरेज़ी ख़ज़ाने से दिया जाय। कामन सभा में कुछ सदस्य ऐसे होते हैं जो हिन्दोस्तान की विशेष जानकारी रखते हैं। इस सभा में ३ राजनीतिक दल हैं, उदार, अनुदार और मज़दूर। मज़दूर दल हिन्दोस्तान के प्रति अधिक ही सहानुभूति रखता है। अनुदार दल भारतीय स्वतंत्रता का कट्टर विरोधी है। इस दल के सभी सदस्य इस बात के विरोधी हैं कि हिन्दोस्तान को पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया जाय। इस देश में जो नीति बर्ती जाती है वह

कामन सभा की नीति होती है। यदि कामन सभा इस बात पर तुल जाय कि हिन्दोस्तान को आज़ादी मिलनी चाहिये तो यह देश एक दिन में आज़ाद हो सकता है। इंगलैण्ड के राजनीतिक दलों की नीति को देखते हुए मज़दूर दल से हमको बहुत कुछ आशा है। इस समय इंगलैंड की सरकार इसी दल के हाथ में है।

अध्याय ४

भारत-मंत्री और इंडिया कौंसिल

भारतमंत्री की आवश्यकता

१८५८ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार हिन्दोस्तान में समाप्त कर दिया गया। इस समय तक कम्पनी लगभग सारे हिन्दोस्तान को अपने अधिकार में कर चुकी थी। १७५७ से, जब कि प्लासी का युद्ध हुआ था, कम्पनी निरन्तर १०० वर्ष तक हिन्दोस्तान पर शासन करती रही। कम्पनी की नीति व्यापारिक थी। हिन्दोस्तान के राज्य को वह अपने व्यापार का एक अंग समझती थी। १०० वर्ष का इतिहास देखने से यह स्पष्ट है कि अनेक अनुचित तरीक़ों का प्रयोग करके कम्पनी के नौकर हिन्दोस्तान से पैसे वसूल करते रहे। इस बढ़ते हुए अत्याचार का परिणाम बड़ा ही भयंकर हुआ। १८५७ की राज्य क्रान्ति इसी का एक परिणाम था। हिन्दोस्तानी और अँग्रेज़ दोनों को एक चेतावनी मिली। बृटिश पार्लियामेंट ने हिन्दोस्तान का राज्य कम्पनी के हाथ से छीन लिया। उसने सारी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले ली और इंगलैण्ड की तरह हिन्दोस्तान की राजसत्ता बृटिश सम्राट् के हाथ में रख दी गई। इस परिस्थिति में यह आवश्यक था कि भारतीय सरकार की पूरी जिम्मेवारी एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में दी जाय जो सम्राट् और पार्लियामेंट की मातहती में रहे। यह कार्य भारतमंत्री को सौंपा गया। लार्ड स्टैनली (Earl of Derby) पहिले पहल भारतमंत्री नियुक्त किये गये। इन्हें वे सारे अधिकार दे दिये गये जो अब तक कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स और बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल को प्राप्त थे। पार्लियामेंट के प्रति इसकी ज़िम्मेवारी क़ायम रखने के लिये यह निश्चत किया गया कि भारतमंत्री पार्लियामेंट का सदस्य हो। उसका स्थान बृटिश कैबिनेट में स्थायी कर दिया गया। एक प्रकार से वह पार्लियामेंट का नौकर नियुक्त किया गया। तब से आज तक उसके अधिकार एक समान चले आ रहे हैं। उसी के द्वारा

पार्लियामेंट भारत सरकार के ऊपर अपना अधिकार रखती है। गृह-सरकार के अन्तर्गत जितने अधिकारी भारत सरकार से सम्बन्ध रखते हैं, उनमें भारतमंत्री का स्थान सबसे ऊँचा है। इसे ७५०००) सालाना वेतन दिया जाता है। १८५८ ई० से १६१६ तक यह वेतन भारतीय खज़ाने से दिया जाता था, परन्तु १६१६ से यह अँग्रेज़ी ख़ज़ाने से दिया जाता है।

भारत-मंत्री की नियुक्ति

भारत-मंत्री की नियुक्ति के लिये कई शर्तें हैं। सभी व्यक्ति भारत-मंत्री नहीं बनाये जा सकते। सबसे पहली शर्त तो यह है कि वह अँग्रेज़ जाति का हो। कोई हिन्दोस्तानी, भारत-मंत्री नहीं बन सकता। प्रत्येक भारत-मंत्री के लिये पार्लियामेंट का सदस्य होना आवश्यक है। जब पार्लियामेंट के सदस्यों का चुनाव हो जाता है तो उन्हीं में से एक व्यक्ति भारत-मंत्री बनाया जाता है। कामन सभा या लार्ड सभा किसी का भी वह सदस्य रह सकता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति, जो पार्लियामेंट का सदस्य नहीं है, भारत-मंत्री बना दिया जाता है; लेकिन ६ महीने के अन्दर उसे पार्लियामेंट का सदस्य बन जाना पड़ता है। यदि वह नहीं बन सका तो उसे हटा कर दूसरा भारत-मंत्री नियुक्त किया जाता है। जब कभी कोई बाहरी व्यक्ति भारतमंत्री बना दिया जाता है तो वह दो तरीकों से ६ महीने के अन्दर पार्लियामेंट का सदस्य बन सकता है। या तो उसका कोई मित्र कामन सभा से इस्तीफा दे दे और अपनी जगह अपने मित्र के लिये ख़ाली कर दे। उसी के निर्वाचन क्षेत्र से भारत-मंत्री अपना निर्वाचन करा लेता है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सम्राट् उसे लार्ड की उपाधि देकर लार्ड सभा का सदस्य बना सकता है।

पार्लियामेंट के अतिरिक्त भारत-मंत्री बृटिश कैबिनेट का सदस्य होता है। इससे वह उन राजनीतिज्ञों की श्रेणी में आ जाता है, जो बृटिश साम्राज्य को चलाते हैं। बृटेन के सबसे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और योग्य व्यक्ति कैबिनेट के सदस्य होते हैं। इससे स्पष्ट है कि भारत-मंत्री बृटेन के सबसे योग्य व्यक्तियों में गिना जाता है। जो व्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त किये होते हैं उन्हीं को यह पद दिया जाता है। किसी न किसी राजनीतिक दल का सदस्य होना उसे आवश्यक है। यह ज़रूरी नहीं है कि वह हिन्दोस्तान के विषय में गहरी जानकारी रखता हो। इस देश के इतिहास, भूगोल तथा रस्म-रिवाज़ों से परिचित होना उसके लिये आवश्यक नहीं है। इससे हिन्दोस्तान को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है। जो व्यक्ति इस देश से अनभिज्ञ है वह इसका योग्य शासक नहीं बन सकता। प्रश्न यह है कि

जानकारी न रखते हुए भारत-मंत्री किस प्रकार भारतीय सरकार को चलाता है ? इसके लिये उसे कई सहायक दिये गये हैं। इन्हीं की मदद से वह शासन की मशीन को चलाता है। इंगलैंड का प्रधान मंत्री इस बात को निश्चित करता है कि कौन भारत मंत्री बनाया जाय। इसका अंतिम फैसला बृटिश सम्राट् करता है। कैबिनेट और पार्लियामेंट के अतिरिक्त वह प्रिवी कौंसिल का भी सदस्य होता है।

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि भारत-मंत्री कितने दिन के लिये नियुक्त किया जाता है। उसकी कोई निश्चित अवधि नहीं है। बृटिश कैबिनेट के साथ उसकी नियुक्त होती है। और जब कैबिनेट भंग होती है तो उसे भी अपने पद से हट जाना पड़ता है। कैबिनेट तब तक बनी रहती है जब तक पार्लियामेंट का बहुमत उसके पक्ष में होता है। पार्लियामेंट की अवधि ५ वर्ष है। लेकिन इसके बीच में सम्राट् उसे किसी भी समय भंग कर सकता है। यदि पूरे समय तक पार्लियामेंट बनी रहे और एक ही कैबिनेट में उसका विश्वास रह जाय तो कैबिनेट ५ वर्ष तक जीवित रह सकती है। इसके साथ भारत-मंत्री भी ५ वर्ष तक अपने पद पर आरुढ़ रह सकता है। लेकिन राजनीतिक दल बन्दियों के उलट फेर के कारण ऐसा बहुत कम होता है। १८५८ से १९४६ ई० तक ३१ भारत-मंत्री नियुक्त किये गये हैं। इससे प्रत्येक की अवधि ३ वर्ष से भी कम होती है।

भारत-मंत्री की ज़िम्मेवारी

ऊपर कहा गया है कि पार्लियामेंट ने अपनी ज़िम्मेवारी को निबाहने के लिये भारत-मंत्री का पद निर्माण किया है। इसलिये वह सभी प्रकार से अपने कामों के लिये पार्लियामेंट के प्रति ज़िम्मेवार है। कैबिनेट का एक सदस्य होने के नाते वह सबसे पहिले अपने साथियों के प्रति ज़िम्मेवार है। वह जो कुछ काम हिन्दोस्तान में कर रहा है, या करना चाहता है, उसकी पूरी सूचना अपने सहकारियों को देता है। कैबिनेट के अन्य सदस्य उसके प्रथम सहकारी हैं। उसकी नीति का फ़ैसला सबसे पहिले कैबिनेट में होता है। हिन्दोस्तान के सम्बन्ध की सारी बातें वह कैबिनेट में विचार करता है। मेम्बरों के वाद-विवाद के पश्चात् जो नीति निर्धारित की जाती है वही भारत-मंत्री की नीति कहलाती है। कैबिनेट के सदस्यों की ज़िम्मेवारी अलग-अलग नहीं है। उसका प्रत्येक सदस्य सबकी ग़लती के लिये जिम्मेवार है। एक की गलती के कारण सभी सदस्य निकाल दिये जाते हैं। भारत-मंत्री के लिये भी यह आवश्यक है कि वह अपने सहकारियों (Colleagues) से मिल कर अपनी ज़िम्मेवारी को पूरा करे। यदि कभी

प्रधान मंत्री और दूसरे मन्त्रियों में मतभेद हो जाता है तो कैबिनेट को चलाना मुश्किल हो जाता है। ऐसी दशा में दोनों में से किसी को त्याग पत्र देना पड़ता है। १६२२ ई० में मान्टेग्यू भारत मंत्री और सर सेमुअलहोर प्रधान मंत्री थे। इनके विचारों में अन्तर पड़ने के कारण दोनों ने कैबिनेट से त्याग-पत्र दे दिया।

कैबिनेट के बाद भारत-मंत्री की ज़िम्मेवारी पार्लियामेंट के प्रति है। दोनों का सम्बन्ध स्वामी और सेवक की तरह है। पार्लियामेंट की सभी आज्ञाओं का उसे पालन करना पड़ता है। वह तभी तक अपने पद पर कायम है जब तक पार्लियामेंट की इच्छा होती है। जब वह इसका प्रीतिभाजन नहीं रह जाता, तो उसे अपने पद को छोड़ना पड़ता है। पार्लियामेंट कई प्रकार से भारत-मंत्री को अपने अधिकार में रखती है। कैबिनेट में अविश्वास का प्रस्ताव पास कर वह इसे अपने पद से हटा सकती है। जब तक इसका वेतन भारतीय ख़ज़ाने से दिया जाता था तब तक पार्लियामेंट का इसके ऊपर पूरा अधिकार न था। अपनी जीविका के लिये स्वतंत्र रह कर वह पार्लियामेंट की अवहेलना कर सकता था। ज़िम्मेवारी को और दृढ़ बनाने के लिये १६१६ ई० में यह नियम बनाया गया कि भारत-मंत्री का वेतन भारतीय ख़ज़ाने से बन्द करके इंगलैंड के ख़ज़ाने से दिया जाय। तब से पार्लियामेंट और अधिक कड़ाई के साथ उसके कामों की देखरेख करती है। थोड़ी भी नाफरमानी होने पर वह उसका वेतन कम कर सकती है। इस भय से वह अपने कामों में अधिक चैतन्य रहता है।

जो अधिकार कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स और बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल को दिये गये थे वे सब १८५८ में भारत-मंत्री को दे दिये गये। भारतीय शासन के चलाने का सारा अधिकार उसे दिया गया है। भारतीय मामलों में सम्राट् और पार्लियामेंट को सलाह देने का अधिकार उसी को दिया गया है। भारतीय सरकार के जो महकमें इंगलैंड में काम कर रहे हैं उनका सारा प्रबन्ध उसी के हाथों में दिया गया है। १६१६ ई० के ऐक्ट में उसके अधिकारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उसके अधिकार ४ श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं :—

भारत-मंत्री के अधिकार

१—कैबिनेट तथा पार्लियामेंट के सदस्य की हैसियत से वह बहुत से अधिकार रखता है। सम्राट् जिन सरकारी अफ़सरों को हिन्दोस्तान में नियुक्त करता है उसकी सलाह वह भारत-मंत्री से लेता है। कमान्डर-इन चीफ़, प्रान्तों के गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की नियुक्त की सलाह भारत-मंत्री ही देता है। केवल गवर्नर-जनरल की नियुक्ति में उसका

हाथ नहीं रहता। सम्राट् प्रधान मंत्री की सलाह से गवर्नर-जनरल को नियुक्त करता है।

२—१९१९ ई० तक भारत-मंत्री को भारत-सरकार की एजेन्सी का पूरा अधिकार प्राप्त था। भारत सरकार को जिन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती उन्हें ख़रीदने का अधिकार भारत-मंत्री को था। १९१९ में यह अधिकार हाई कमिश्नर को दे दिया गया।

३—भारत-सरकार की सभी सम्पत्ति पर सम्राट् का अधिकार है। भारत भूमि सम्राट् की भूमि कहलाती है। इस पर निवास करने वाले व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के नाम से पुकारे जाते हैं। 'सकल भूमि गोपाल की' के कथनानुसार सम्राट् ही इस देश का स्वामी है। उसकी शक्ति का उपयोग भारत-मंत्री करता है। हिन्दोस्तान में, अथवा इससे बाहर भारत-सरकार का जो धन खर्च होता है वह सब भारत-मंत्री के अधिकार से किया जाता है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह भारतीय सरकारी आय को जैसे चाहे ख़र्च कर सकता है। इसके लिये पार्लियामेंट तथा अपनी कौंसिल से उसे सलाह लेनी पड़ती है। भारत-सरकार की कोई सम्पत्ति वह बेच सकता है तथा बन्धक रख सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वह नई सम्पत्ति ख़रीद सकता है। परन्तु इसके लिये उसे अपनी कौंसिल से सलाह लेनी पड़ती है। भारतीय सरकार की मातहती में काम करने वाले अफ़सरों पर वह मुक़दमें चला सकता है। परन्तु उस पर कोई मुक़दमा नहीं चला सकता।

४—हिन्दोस्तान की केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें उसकी मातहती में काम करती हैं। गवर्नर-जनरल को उसकी सारी आज्ञायें माननी पड़ती हैं। वह कोई काम बिना उसकी सलाह के नहीं कर सकता। प्रान्तों के गवर्नर उसके हुकुम की तामील करने के लिये बाध्य हैं। भारतीय धारा सभायें कोई क़ानून तब तक पास नहीं कर सकती जब तक भारत-मंत्री उसकी आज्ञा न दे दे। शासन की नीति में उसकी आज्ञा के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। भारत-सरकार अपने टैक्स को उसकी सलाह के बिना नहीं बढ़ा सकती।

गृह-सरकार और भारत सरकार के बीच जो पत्र-व्यवहार होता है उस पर भारत-मंत्री की दस्तख़त आवश्यक है। कोई सरकारी कागज़ इंगलैंड से उसकी दस्तख़त के बिना हिन्दोस्तान में नहीं आ सकता। उसकी कौंसिल के सदस्य उसी के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। अपनी सहायता के लिये वह दो सहायक मंत्रियों को भर्त्ती करता है। इनमें से एक कोई सरकारी अफ़सर रहता है जिसका पद स्थायी होता है और दूसरा पार्लियामेंट का सदस्य होता है।

पार्लियामेंट के साथ यह भी बदलता रहता है। आमतौर से वह दूसरा अनस्थायी मन्त्री पार्लियामेंट की उस सभा का सदस्य होता है जिस सभा का भारत-मंत्री सदस्य नहीं होता। इससे पार्लियामेंट की दोनों सभाओं का सम्पर्क भारतीय विषयों में बना रहता है। भारत-सरकार इसकी आज्ञा के बिना ख़र्च का कोई नया ज़रिया नहीं निकाल सकती। भारत-सरकार की ओर से कोई बड़ी इमारत, पुल तथा रेल आदि तब तक नहीं बनाये जा सकते जब तक भारत-मंत्री की आज्ञा प्राप्त न कर ली जाय। अपनी अनुपस्थिति में इंडिया कौंसिल का सभापति वही नियुक्त करता है। यदि कौंसिल के सदस्यों तथा उसके विचारों में कोई मतभेद हो जाय तो कौंसिल को झुकना पड़ता है। हिन्दोस्तान में बृटिश सरकार के लाभ हानि की जिम्मेवारी उसी के ऊपर है। भारत-सरकार के अन्तर्गत किसी बड़े पद का बनाना और बिगाड़ना उसी के हाथों में है। यदि भारत-सरकार १२०० रुपये मासिक के ऊपर का कोई नया स्थायी पद बनाना चाहती है तो इसकी मंजूरी भारत-मंत्री से लेनी पड़ती है। अनस्थाई पद के लिये ४००० रुपया मासिक तक का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया है। इससे अधिक के लिये भारत-मंत्री की आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है।

१९३५ के शासन विधान में भारत-मंत्री का स्थान

१९३५ का शासन-विधान पिछले शासन-विधानों से सर्वथा भिन्न है। बृटिश प्रान्तों को किसी दर्जे तक प्रान्तीय शासन की ज़िम्मेवारी दे दी गई है। बृटिश सम्राट् की छत्र-छाया में सूबों और देशी रियासतों को एक में जोड़ा गया है। कहने के लिए इस शासन विधान में भारत-सरकार की आज़ादी बढ़ा दी गई है, परन्तु गहराई के साथ इसका अध्ययन करने पर पता चलता है कि घरेलू सरकार के अधिकार कम नहीं हुए हैं। भारत-मंत्री की शक्ति पहले की ही तरह बनी हुई है। जब कभी गवर्नर-जनरल अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करेगा उस समय उसकी सलाह आवश्यक होगी। इन अधिकारों का प्रयोग होने की सम्भावना इतनी अधिक है कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति पहिले से भी अधिक बढ़ जाती है। सभी आवश्यक विषय – सेना, पुलिस, रेलवे, रिज़र्व बैंक, बाह्य संबंध— गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार के अन्तर्गत रक्खे गये हैं। यह कहा गया है कि नये शासन-विधान में भारत-सरकार बृटिश सम्राट् की मातहती में काम करेगी, भारत-मन्त्री के अन्दर नहीं। क़ानूनी दृष्टि से यह परिवर्तन ठीक हो सकता है, लेकिन कार्य रूप में इसका कोई अर्थ नहीं है। गवर्नर-जनरल और प्रान्तों के गवर्नर उसी की मातहती में कार्य करेंगे। हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में

सम्राट् को वही सलाह देगा। सम्राट् द्वारा भारतीय धारा-सभाओं के किसी भी क़ानून को वह रद्द कर सकेगा।

सबसे बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन भारत-मन्त्री की कौंसिल में किया गया है। इसका विस्तृत वर्णन आगे चल कर इसी अध्याय में किया जायेगा। इंडिया कौंसिल, जिसका काम भारत-मन्त्री को सलाह देना था, नये शासन-विधान के अनुसार तोड़ दी गई है। कौंसिल के सारे अधिकार भारत मन्त्री को दे दिये गये हैं। १ अप्रैल सन् १९३७ ई० से भारत-मन्त्री के अधिकार पहिले से कहीं अधिक बढ़ा दिये गये हैं। अब तक कौंसिल उसके कामों में किसी हद तक हस्तक्षेप कर सकती थी, परन्तु उसके हट जाने से उसकी आज़ादी बढ़ गई है। १९३७ ई० से वह कुछ सलाहकारों की मदद से कार्य करता है। ये सलाहकार सभी प्रकार से उसकी मुट्ठी में रक्खे गये हैं। वह उनकी सलाह को ठुकरा सकता है। यह बात ठीक है कि भारत-मन्त्री उस मदारी की तरह है जो भारत-सरकार रूपी बन्दर को जैसे चाहे नचा सकता है।*

इंडिया कौंसिल

भारत-मंत्री के साथ १८५८ ई० में इंडिया कौंसिल का जन्म हुआ। यह कौंसिल भारत-मंत्री को हिन्दोस्तान के विषय में सलाह देती थी। आरम्भ में इसमें १५ सदस्य थे। इनमें से ८ की नियुक्ति सम्राट् द्वारा की गई और बाक़ी ७ को ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने नियुक्त किया। इन सदस्यों में अधिकतर हिन्दोस्तान में कम से कम १० वर्ष तक रह चुके थे। यही उनकी नियुक्ति की शर्त थी। यह भी ज़रूरी था कि हिन्दोस्तान से लौटे उन्हें १० वर्ष से अधिक न हुये हों। कम से कम ९ सदस्य उपरोक्त शर्तों के साथ भर्ती किये गये। यह भी बात स्पष्ट कर दी गई कि जब कभी कोई स्थान ख़ाली हो तो सम्राट् नये सदस्यों की भर्ती करेगा। इस कौंसिल की कोई निश्चित अवधि नहीं बनाई गई। जब तक इसके सदस्य सन्तोषजनक कार्य करते रहें तब तक वे रह सकते थे। सदस्यों के ऊपर यह बन्धन लगा दिया गया कि वे पार्लियामेंट की किसी सभा के सदस्य नहीं हो सकते। उन्हें निकालने का अधिकार पार्लियामेंट को दिया गया। प्रत्येक सदस्य का वेतन १५०० रुपया मासिक रक्खा गया। भारत-मंत्री इसका सभापति बनाया गया। सभी कामों में कौंसिल भारत-मंत्री को सलाह देती थी। जो काम अत्यन्त आवश्यक तथा गुप्त

* The Office of the Secretary of State is a pivot round which the whole Indian administration evolves.

होते उन्हें वह स्वयं करता था। कौंसिल की बैठक सप्ताह में एक बार होती थी।

१८६९ ई० में पार्लियामेंट ने इंडिया कौंसिल के विषय में एक नया क़ानून पास किया। इसमें नये सदस्यों को भर्त्ती करने का अधिकार भारत-मंत्री को दिया गया। यह भी निश्चित हुआ कि कौंसिल की आयु १० वर्ष रहा करेगी। आवश्यकता पड़ने पर भारत मंत्री इसकी आयु ५ वर्ष और बढ़ा सकता था। १८८९ ई० में कौंसिल के सदस्यों की संख्या १५ से घटा कर १० कर दी गई। १९०७ ई० में एक दूसरा क़ानून पास करके यह बात निश्चित की गई कि सदस्यों की संख्या कम से कम १० और अधिक से अधिक १४ हो। इसकी आयु १० वर्ष से घटा कर ७ वर्ष कर दी गई। सदस्यों का वेतन १५०० रुपया मासिक से घटा कर १२५० रुपया मासिक कर दिया गया। इसी साल इंडिया कौंसिल में २ हिन्दोस्तानी पहिले पहिल भर्त्ती किये गये।

१९१९ ई० के क़ानून ने भारतीय शासन-विधान में कुछ परिवर्तन किया। कौंसिल के सदस्यों की संख्या घटा दी गई। अब यह तै हुआ कि इसमें कम से कम ८ और अधिक से अधिक १२ सदस्य रहेंगे। इसका फ़ैसला भारत-मंत्री स्वयं करे कि सदस्यों की संख्या कितनी रक्खी जाय। कौंसिल में कोई जगह ख़ाली होने पर वह नये सदस्यों की भर्ती कर सकता था। इस ऐक्ट के अनुसार कौंसिल के अधिकतर सदस्य ऐसे होने चाहिये जो कम से कम १० वर्ष तक हिन्दोस्तान में रह चुके हों। नियुक्ति के समय उन्हें हिन्दोस्तान से लौटे अधिक से अधिक ५ वर्ष हुए हों। कौंसिल की अवधि ७ वर्ष से घटा कर ५ वर्ष कर दी गई। ऐसा इसलिये किया गया कि नये नये तजुर्बेकार सदस्यों को इसमें कार्य करने का अवसर मिलता रहे। सदस्यों की अवधि पूरी हो जाने के बाद भारत-मंत्री उन्हें फिर नियुक्त कर सकता था। परन्तु इसका कारण उसे पार्लियामेंट को बताना पड़ता था। कोई सदस्य कौंसिल से जब चाहे इस्तीफा दे सकता था। पार्लियामेंट सदस्यों को निकाल सकती थी। उनका वेतन १२५० रु मासिक से बढ़ा कर फिर १५०० रु० मासिक कर दिया गया। कौंसिल में भर्ती होने के समय जो सदस्य हिन्दोस्तान के नागरिक होते उन्हें वेतन के अलावा ६००० रुपया सालाना भत्ता दिया जाता था। वह वेतन हिन्दोस्तान अथवा इंगलैंड किसी भी खज़ाने से दिया जा सकता था। कौंसिल के सदस्यों को पार्लियामेंट में बैठने की इजाज़त न थी। हिन्दोस्तानी सदस्यों की संख्या २ से तीन कर दी गई। भारत-मंत्री और इंडिया कौंसिल की एजेन्सी का काम हाई कमिश्नर को दे

दिया गया। इससे कौंसिल का काम कुछ हल्का हो गया। वैसे तो भारत-मन्त्री कौंसिल के फ़ैसले से बँधा नहीं था; परन्तु भारत-सरकार के ख़र्चे तथा कुछ बड़े सरकारी अफ़सरों की भर्ती में उसे इनकी बात माननी पड़ती थी।

कौंसिल अपना काम कमीटियों द्वारा करती रही। थोड़े-थोड़े सदस्यों की कमीटियाँ बना दी जाती थीं। जिस प्रकार वाइसराय की कौंसिल में प्रत्येक सदस्य को एक विभाग दे दिया जाता है उसी तरह इंडिया कौंसिल की प्रत्येक कमीटी को एक विभाग सौंप दिया जाता था। प्रत्येक कमीटी स्वतंत्र रूप से अपना काम करती थी। फिर सभी कमीटियों का काम पूरी कौंसिल के सामने रक्खा जाता था। इंडिया कौंसिल में राजनीतिक, फ़ौजी, इमारत, अर्थ, स्टोर, कर आदि विभाग बनाये गये थे। कौंसिल की बैठक महीने में एक बार होती थी। भारत मन्त्री इसका सभापति होता था। उसकी अनुपस्थिति में उप-सभापति उसका आसन ग्रहण करता था। यदि दोनों ही उपस्थित न हो सके तो उपस्थित सदस्य अपने में से किसी को भी सभापति चुन लेते थे। सभापति को निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार था। भारत-मन्त्री की अनुपस्थिति में जो कुछ कौंसिल में पास होता वह तब तक पक्का नहीं समझा जाता था जब तक उसकी दस्तख़त न हो जाती थी। १६१७ ई० में मान्टेग्यू ने, जो उस समय भारत-मन्त्री थे, कमीटियों द्वारा काम करने की पद्धति को दोषपूर्ण ठहराया था। कैबिनेट के एक सदस्य होने की हैसियत से भारत-मन्त्री का स्थान बृटिश राजनीतिज्ञों में बहुत ही ऊँचा समझा जाता था। उसके प्रभाव से कौंसिल दबी रहती थी। वह इससे जब चाहता सलाह लेता अथवा मनमानी करता था। सलाह लेने पर भी वह उससे बाध्य नहीं था।

आरम्भ से ही भारतीय राजनीतिज्ञ इंडिया कौंसिल को नापसन्द करते रहे हैं। उनका कहना था कि यह सभा बेकार थी और उल्टे यह हिन्दोस्तान के मामलों में टाँग अड़ाया करती थी। वे शुरू से ही इसे तोड़ देने के पक्ष में थे। कारण यह है कि इसमें हिन्दोस्तानियों का हाथ नहीं के बराबर था। ६ या १० अँग्रेज़ सदस्यों के सामने विचारे ३ हिन्दोस्तानी कुछ नहीं कर सकते। इसके खटकने का एक और कारण था। जब हिन्दोस्तान के मामले में यही सभा अन्तिम निर्णय देती थी तो भारतीय स्वतन्त्रता का कोई अर्थ ही नहीं था। इन्हीं सब कारणों से १६३५ ई० के नव-शासन में इंडिया कौंसिल तोड़ दी गई है। १ अप्रैल सन् १६३७ ई० को यह सभा सदैव के लिये भंग कर दी गई। इसके स्थान पर कुछ सलाहकार भारत-मन्त्री को दिये गये हैं।

१९३५ का शासन-विधान और भारत मन्त्री के

१९३५ के शासन-विधान की २७८ धारा के अनुसार इंडिया कौंसिल तोड़ दी गई। इसके स्थान पर भारत-मन्त्री को कुछ सलाहकार नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। सलाहकारों की भर्ती के विषय में चन्द नियमों का जानना आवश्यक है। १९३७ से ये सलाहकार भारत-मंत्री की सहायता कर रहे हैं।

सलाहकार

सलाहकारों की संख्या कम से कम ३ और अधिक से अधिक ६ होनी चाहिये। उन्हें नियुक्त करने का अधिकार भारत-मन्त्री को दिया गया है। यदि वह उचित समझे तो इंडिया कौंसिल के पिछले सदस्यों को अपना सलाहकार नियुक्त कर सकता है। परन्तु इन्हें वह ५ वर्ष से अधिक के लिये नियुक्त नहीं कर सकता। शासन-विधान बनते समय यह बात निश्चित की गई थी कि जब तक यह हिन्दोस्तान पर पूरी तरह लागू न हो जाय तब तक सलाहकारों की संख्या कम से कम ८ और अधिक से अधिक १२ रहेगी। इसी के अनुसार इस समय इनकी संख्या ८ रक्खी गई है। इनमें ३ हिन्दोस्तानी हैं।

सलाहकारों की योग्यता के विषय में कुछ बातें निश्चित कर दी गई हैं। कम से कम आधे सलाहकार ऐसे होने चाहिये जो हिन्दोस्तान में सरकारी विभाग में कम से कम १० वर्ष तक कार्य कर चुके हों। इंगलैंड में उन्हें हिन्दोस्तान से गये दो वर्ष से अधिक न हुये हों। आमतौर से यह सलाहकार बड़े बड़े सरकारी ओहदेदार होंगे। वे भारत के राष्ट्रीय विचारों के हिमायती न होंगे। अपनी पेन्शन का ध्यान रखते हुए वे सरकार की नीति का विरोध नहीं कर सकते। इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि वही सलाहकार बनाये जायँ जो हिन्दोस्तान के विषय में अच्छी जानकारी रखते हों। उन्हें पार्लियामेंट का सदस्य होने की आज्ञा नहीं है। ऐसा इसलिये किया गया है कि वे दलबन्दियों में न पड़ें। ऐसा न किया जाय तो वे पार्लियामेंट में भारत-मन्त्री का विरोध कर सकते हैं। इससे कार्य में बाधा पड़ने की सम्भावना है। भारत-मन्त्री इस बात को सहन नहीं कर सकता कि उसकी मातहती में काम करने वाले पार्लियामेंट में उसका विरोध करें।

सलाहकार ५ वर्ष के लिये नियुक्त किये जायेंगे। कोई भी सलाहकार दोबारा नियुक्त नहीं किया जा सकता। सलाहकार को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वह जब चाहे अपने पद से इस्तीफ़ा दे दे। भारत-मन्त्री को यह अधिकार है कि वह किसी सलाहकार को शारीरिक अथवा मानसिक

दुर्बलताओं के कारण निकाल दे। प्रत्येक सलाहकार का वेतन १७०० रुपये मासिक के लगभग रक्खा गया है। यदि नियुक्ति के समय वह हिंन्दोस्तान का नागरिक है तो उसे वेतन के अतिरिक्त ६००० रु० सालाना भत्ता दिया जायगा। इससे हिन्दोस्तानी सलाहकार अँग्रेज़ सलाहकारों से अधिक वेतन पाने के अधिकारी होंगे। सलाहकारों का वेतन इंगलैंड के ख़ज़ाने से दिया जायगा। अर्थात् इंडिया आफ़िस का पूरा ख़र्च इंगलैंड बर्दाश्त करेगा। वेतन आदि घटाने-बढ़ाने का अधिकार पार्लियामेंट को होगा। इस परिवर्तन से हिन्दोस्तान को इतना लाभ अवश्य हुआ है कि ख़र्च का एक बहुत बड़ा भार इसके सर से उतार दिया गया है।

यह बात भारत-मन्त्री की इच्छा पर छोड़ दी गई है कि वह अपने सलाहकारों से जब चाहे राय ले। वह चाहे तो उनसे एक साथ या अलग-अलग राय ले सकता है। उनकी राय से वह बँधा नहीं है। कुछ सरकारी नौकरियों, ठीकों, तथा जायदाद के मामलों में उनका बहुमत उसे मानना होगा। यदि उनके कार्यों की ओर दृष्टि-पात करें तो देखेंगे कि क़ानून बनाने, इन्साफ़ करने तथा किसी क़ानून को कार्यान्वित करने का उन्हें अधिकार नहीं है। उनका काम भारत-मन्त्री को हिन्दोस्तान के मामलों में केवल सलाह देना है। भारत-मन्त्री को यह अधिकार है कि वह इसकी सलाहों को ठुकरा दे।

ऊपर कहा गया है कि आरम्भ से ही हिन्दोस्तानी इंडिया कौंसिल के विरोधी रहे हैं। भारतीय ख़ज़ाने का जो रुपया इस पर ख़र्च होता रहा है वह एक फजूल सी चीज़ रही है। हिन्दोस्तान को उससे कोई लाभ न था। इंडिया कौंसिल के तोड़ देने से हिन्दोस्तान की एक बहुत बड़ी बला टल गई। परन्तु यह सभा तोड़ कर इसके स्थान पर सलाहकारों की नियुक्ति कर दी गई है। यद्यपि इनकी शक्ति कौंसिल के सदस्यों से कम है; परन्तु इससे हिन्दोस्तान को कोई लाभ नहीं पहुँचता। जिस सभा का नाम इंडिया कौंसिल था अब उसे सलाहकार के नाम से कर दिया गया है। हमें जो शिकायतें इंडिया कौंसिल की ओर से थीं वे सलाहकारों की ओर से रहेंगी। भारत-मन्त्री का स्थान गृह सरकार के अन्दर महत्वपूर्ण है। इसका प्रभाव भारत-सरकार के ऊपर सबसे अधिक पड़ता है। यदि नये शासन-विधान में इसके तथा इसकी कौंसिल के पद में कोई परिवर्तन न हुआ तो यह कैसे कहा जाय कि हमारी राजनीतिक स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है।

अध्याय ५

हाई कमिश्नर

(The High Commissioner for India)

हाई कमिश्नर का पद पहले पहल १९१९ ई० के ऐक्ट के अनुसार बनाया गया। इसके पहिले भारत-मन्त्री इसके कार्य को करता था। १९१९ ई० में एक कमीटी (The Crew Committee) इस बात के लिये नियुक्त की गई थी कि वह इंडिया आफ़िस के पुनर्संगठन पर विचार करे।

हाई कमिश्नर की नियुक्ति

इसी कमीटी ने इस आफ़िसर के पद की आवश्यकता महसूस की। १९१९ के ऐक्ट के पश्चात् १९२० ई० में पहिला हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया। सर मेअर आई० सी० एस० ने पहिले पहिल इस पद को सुशोभित किया। इसके पश्चात् सर मर्वान जी दलाल १९२३ ई० में हाई कमिश्नर नियुक्त किये गये। २ वर्ष बाद अतुलचन्द चटर्जी हाई कमिश्नर बनाये गये। लगभग ६ वर्ष तक ये इस पद पर कार्य करते रहे। १९३१ ई० में सर भूपेन्द्र नाथ मिश्रा हाई कमिश्नर हुए। जब वे १९३६ ई० में इस पद से अलग हुए तो सर फीरोज़ ख़ाँ नून हाई कमिश्नर बनाये गये। आजकल एक भारतीय मुसलमान इस पद पर नियुक्त किये गये हैं। हाई कमिश्नर का आफ़िस लन्दन में है। मार्च १९३० ई० में इसका दफ़्तर नये मकान में चला गया जो इसी दफ़्तर के लिये ४८ लाख रु० की लागत से बनाया गया है। इसकी भीतरी बनावट में भारतीय कला दिखलाई पड़ेगी। यह मकान १२ मंज़िल का बना हुआ है, जिसकी ऊँचाई १०० फ़ीट के लगभग है। ज़मीन की सतह पर वाली मंज़िल के बीच में एक बहुत बड़ा हाल बना हुआ है, जिसमें भारतीय कलाकारों की बनाई हुई चीज़ों की नुमाइश सदैव लगी रहती है। मकान में जगह-जगह लाल पत्थर लगाये गये हैं।

१९१९ के ऐक्ट की २९ अ धारा के अनुसार यह बात निश्चित की गई कि बृटिश सम्राट् इंगलैंड में एक हाई कमिश्नर नियुक्त करे। उसके अधिकार, उसकी तनख़्वाह, उसकी पेन्शन और उसके कर्त्तव्य आदि का नियम वही निश्चित करे। उसके सहायकों की नियुक्ति भी वही करे। १३ अगस्त सन् १९२० ई० को सम्राट् ने सरकारी गज़ट में इसकी घोषणा करवाई। इसी

घोषणा के अनुसार हिन्दोस्तान के गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह समय-समय पर भारत-मन्त्री की सलाह से हाई कमिश्नर की नियुक्ति करेगा। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह जब चाहे उसे निकाल दे। यह तै किया गया कि हाई कमिश्नर की नियुक्ति प्रत्येक ५ वर्ष के लिये की जायेगी और कोई व्यक्ति दूसरी बार नियुक्त किया जा सकता है। गवर्नर-जनरल अपनी कौंसिल की सलाह से उसे छुट्टी देगा और उसकी ग़ैरहाज़िरी में किसी दूसरे को भर्ती कर सकेगा। उसकी तनख़्वाह ४ हज़ार रु० मासिक निश्चित की गई, जो भारतीय ख़ज़ाने से आरम्भ से अब तक दी जाती है। हाई कमिश्नर की हैसियत से कोई पेन्शन लेने का हक़दार नहीं है, परन्तु जब कोई व्यक्ति सरकारी नौकरी से इस पद पर नियुक्त किया जाता है तो उसे पेंशन दी जाती है।

इसके कर्त्तव्य

आम तौर से हाई कमिश्नर के पद पर वे ही व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं जो सरकारी विभाग में किसी अच्छे पद पर काम करते हों। शुरू से अब तक आठ हाई कमिश्नर हो गुजरे हैं। सभी 'सर' की उपाधि प्राप्त-कर्ता हैं।

इसके मुख्य ३ कर्तव्य हैं :—

१—वह इंगलैंड में गवर्नर-जनरल का एक एजेन्ट है।

२—बृटिश प्रान्तों के कुछ कर्तव्य उसके हाथों में दिये गये हैं। गवर्नर-जनरल की आज्ञा के अनुसार वह इन्हें पूरा करता है।

३—१६१६ ई० तक भारत-मंत्री हिन्दोस्तान की तिजारत के सम्बन्ध में कुछ कार्य करता था। १६२० ई० से ये कार्य हाई कमिश्नर को करने पड़ते हैं।

गृह-सरकार भारत-सरकार से घनिष्ठ सम्बंध रखती है। इस देश के शासन-प्रबन्ध की बागडोर घरेलू सरकार के हाथ में है। घरेलू सरकार और भारत-सरकार के संबन्ध का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा। यहाँ इस बात पर विचार किया गया है कि हाई कमिश्नर की आवश्यकता क्या है! इंगलैंड में हिन्दोस्तानियों की संख्या कम नहीं है। लगभग १० हज़ार हिन्दोस्तानी वहाँ निवास करते हैं। २ हज़ार के निकट तो विद्यार्थी हैं जो ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिये वहाँ गये हुए हैं। इनकी देखरेख तथा सहायता का भार हाई कमिश्नर को दिया गया है। वर्तमान युग भौतिकवाद का युग है। अँग्रेज़ी कौम व्यापार में इतनी कुशल है कि उसे हमारे देश में 'बनियों की कौम' कहा जाता है। जिन-जिन देशों में अँग्रेज़

जाति ने पैर रक्खा है वहाँ इसकी पहली गरज तिजारत रही है। इसीलिये कहा जाता है कि* "व्यापार राष्ट्रीय झंडे से आगे-आगे चलता है।" यह सिद्धान्त योरप की सभी जातियों पर एक-सा लागू होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अँग्रेज़ी क़ौम ने राजनीति और अर्थ-शास्त्र दोनों को एक में जोड़ दिया है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हाई कमिश्नर के पद से ज़ाहिर होता है। इस अफ़सर के आधे कर्त्तव्य राजनीतिक हैं और आधे व्यापारिक। अच्छा होगा कि इस दो अमली दफ़्तर की कहानी कुछ विस्तार से कही जाय। इसके लिये यह आवश्यक है कि सरकार के कर्त्तव्य सम्बन्धी सिद्धान्तों पर हम दृष्टिपात करें।

नागरिक और उसकी आवश्यकतायें

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अपनी आवश्यकताओं के वशीभूत होकर वह समाज में निवास करता है। एकान्त जीवन में वह इनकी पूर्ति नहीं कर सकता। यदि आवश्यकतायें न हों तो समाज नहीं बन सकता। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा और भी तरह-तरह की आवश्यकतायें व्यक्ति को प्रेरित करके एक दूसरे के सम्बन्ध में लाती हैं। केवल दो चार व्यक्तियों तक यह संम्पर्क सीमित नहीं रहता। इसका दायरा क्रमशः बढ़ता जाता है। इसी को समाज कहते हैं। यही बढ़ते-बढ़ते राष्ट्र अथवा राज्य का रूप धारण कर लेता है। एक दूसरे से आवश्यकताओं की इतनी घनिष्ठता हो जाती है कि इसे जल्दी कोई नहीं तोड़ सकता। सहवास तथा व्यवहार और दृढ़ होता जाता है। लाखों व्यक्ति एक प्रकार के रीति-रिवाज़ों द्वारा बाँध दिये जाते हैं। व्यक्तियों के इस पारस्परिक सम्बन्ध को सुचारु रूप से चलाने के लिये राजनीतिक संगठन की आवश्यकता है, जिससे सरकार की उत्पत्ति होती है। वही बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार की शान्ति रखती है। साथ ही विभिन्न प्रकार की उन्नति द्वारा राष्ट्र को आगे बढ़ाती है। उन्नति शब्द के अन्दर उन सारे कर्त्तव्यों का समावेश हो जाता है जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक करता रहता है। नागरिक को उन्नति का पूर्ण साधन देने के लिये सरकार को बहुत सी सामग्रियाँ एकत्रित करनी पड़ती हैं। मनुष्य के अन्दर कुछ ऐसी पाशविक शक्तियाँ हैं, जिन्हें दबाये बिना उसकी उन्नति सम्भव नहीं है। इसीलिए सरकार को सेना, पुलीस, हथियार आदि रखने पड़ते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति के युग में इनकी मात्रा इतनी बढ़ गई है कि सरकार को विवश होकर अपनी आमदनी का

---

*Trade follows the flag.

एक बहुत बड़ा भाग लड़ाई के सामानों पर ख़र्च करना पड़ता है। नागरिक की सुविधा के लिये रेल, तार, डाक, टेलीफ़ोन, तार घर, बेतार बर्की तथा रेडियो आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। उसकी शिक्षा के लिये स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय आदि खोलने पड़ते हैं। स्वास्थ्य के लिये अस्पताल तथा औषधालयों की व्यवस्था करनी पड़ती है।

सरकार की आवश्यकतायें

साधन के बिना व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को पूरा नहीं कर सकता। राज्य व्यक्ति का ही एक बृहत् रूप है।* उसे अपने कर्त्तव्य पालन के लिये नाना प्रकार की सामग्रियाँ एकत्रित करनी पड़ती हैं। क़लम, काग़ज़, स्याही, टाइपराइटर, मोटर, मशीनें, बिजली की सामग्रियाँ, दवाइयाँ तथा और भी हज़ारों चीज़ें उसे सरकारी कामों के लिये तैयार करनी पड़ती हैं। यदि राज्य इतना उन्नतिशील है कि वह अपने यहाँ इन सामग्रियों को तैयार कर लेता है तो उसे बाहर अपने पैसे भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्यथा इनके लिये करोड़ों रुपया देश से बाहर भेज देना पड़ता है। उदाहरण के लिये हम अपने देश को सामने रख सकते हैं। हिन्दोस्तान में लगभग ६० करोड़ रुपये का कपड़ा बाहर से आकर बिकता है। १९वीं सदी के मध्य तक इस देश का माल योरप में जाकर ६० फ़ी सदी मुनाफ़े पर बिकता था। यहाँ कपड़ा इतना प्रसिद्ध था कि दुनिया के बड़े-बड़े लोग इसके लिये लालायित रहते थे। काश्मीर के दुशाले अभी तक प्रसिद्ध हैं। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि १८४६ ई० में अँग्रेज़ों की काश्मीर राज्य से जो सन्धि हुई है, उसमें एक शर्त यह भी रक्खी गई थी कि काश्मीर राज्य प्रतिवर्ष काश्मीर का बना हुआ एक शाल भारत-सम्राट् को भेजता रहेगा। यह शाल क़रीब ८ हज़ार रुपये का होता है। इसके सिवाय ३ ऊनी रुमालें शाल के साथ भेजी जाती हैं। इतना उन्नति-शील देश आज अपने पहिनने तक के लिये विदेशियों पर भरोसा करता है। इस महान् अवनति की ज़िम्मेवारी भारत सरकार के ऊपर है। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ इस विषय में सहमत हैं कि प्रत्येक राज्य को स्वावलंबी होना चाहिये। यदि ऐसा हो जाय तो साम्राज्य-पिपासा बहुत कुछ अपने आप शान्त हो जायेगी। किसी देश की उन्नति तब तक सम्भव नहीं है जब तक वहाँ का व्यापार और व्यवसाय उन्नत दशा में न हो।

कमज़ोर से कमज़ोर राज्य अपने देश को धन-धान्य से पूर्ण रख सकता

---

* Individual is the State in Miniature.

है। जिस राज्य के अन्दर इतनी कार्य-कुशलता मौजूद है वह कमज़ोर नहीं कहा जा सकता। भौगोलिक दृष्टि से कुछ राज्य ऐसे हैं जिन्हें खानपान की चीज़ें बाहर से मँगानी पड़ती हैं। इसके विपरीत कुछ राज्यों को अन्य बातों में अपने पड़ोसी राज्यों से सहायता की आवश्यकता होती है। इसमें कोई बुराई नहीं है। देश की सरकार इस बात के लिये विदेशी राज्यों से उचित शर्त कर सकती है कि वह किन-किन वस्तुओं को बाहर भेजे और किन्हें बाहर से मँगाये। इसके लिये सरकार एक विभाग ऐसा बना सकती है जिसका काम विदेशों से ख़रीद-फ़रोख़्त करना हो। इससे उसकी आवश्यकतायें पूरी होंगी और नागरिक को लाभ भी होगा। बड़े पैमाने पर सुविधा के साथ सरकार इस कार्य को कर सकती है। अपनी ज़िम्मेवारी पर वह किसी विदेशी या स्वदेशी चीज़ को सस्ते मूल्य पर ले सकती है। किसी व्यक्ति के लिये इतनी तक़लीफ़ गवारा करना सम्भव नहीं है। यदि हम दो पैसे की सूई के लिये जर्मनी से बात-चीत करें तो यह निरी बेवक़ूफ़ी होगी। अच्छा तो यह होगा कि सरकार हमें यह अवसर न दे कि हम विदेशियों का मुँह ताकें। यदि किसी कार्य-विशेष से हमारे देश-वासियों को कुछ विदेशी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, तो सरकार उन्हें मँगाने का प्रबन्ध करे। यहाँ पर हमें याद रखना चाहिये कि सरकार एक राजनीतिक संगठन है। वह कोई तिजारती कम्पनी नहीं है। ख़रीद-ख़रोख़्त का काम वह इसलिये न करे कि उसे मुनाफ़ा हो। मुनाफ़े का ध्यान तो उसे रखना ही नहीं चाहिये। उसका उद्देश्य नागरिक को सुखी और प्रसन्न रखना है। उसके कार्यों का महत्व इन्हीं दोनों प्रकार के बाँटों से तौला जाता है।

सम्पर्क और सम्बन्ध कोई बुरी चीज़ नहीं है। यदि एच० जी० वेल्स विश्व संघ-शासन का विधान बनाना चाहते हैं तो उनका उद्देश्य मानव समाज का कल्याण करना है। संसार के राष्ट्र एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रक्खें तो इससे उन्हें अनेक प्रकार के लाभ होंगे। एक के विचारों से दूसरों को लाभ पहुँचेगा; एक देश की अच्छी वस्तुयें दूसरे देशों को प्राप्त होंगी, एक के उन्नत विचार दूसरे को प्रभावित करेंगे ; एक के सुख-दुख में दूसरा सहायक होगा। स्वावलम्बन की भावना तो अच्छी है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हम दूसरों से रत्ती भर चीज़ का लेनदेन न रक्खें। यह तभी सम्भव है जब कोई देश किसी ऐसे विकट स्थान पर हो जहाँ किसी प्रकार से कोई दूसरा मनुष्य न जा सके। वह देश कितना भी स्वावलम्बी और उन्नतिशील क्यों न हो, उससे मानव-समाज को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। इतना ज़रूर है कि एक देश दूसरे से अच्छी नीयत के साथ सम्पर्क रक्खे।

यदि कोई देश अपने कमज़ोर सम्बधिन्यों को दबाना और लूटना चाहता है तो ऐसे सम्पर्क से नमस्कार करना चाहिये। वास्तव में सरकार की आवश्यकतायें उसके नागरिकों की आवश्यकतायें हैं। उन्हीं की भलाई का ध्यान रखते हुए वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

भारतीय सरकार की आवश्यकतायें

हिन्दोस्तान किसी महाद्वीप से कम नहीं है। चीन को छोड़ कर इस देश की आबादी संसार में सबसे अधिक है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि यहाँ के निवासियों की आवश्यकतायें भी अधिक हों। १६ वीं सदी तक हिन्दोस्तानियों की सारी आवश्यकतायें अपने देश में पूरी होती रही हैं। कपड़े के विषय में, 'सुलेमान' नाम का एक मुसलमान व्यापारी, जो ६वीं सदी के आरम्भ में हिन्दोस्तान आया था, लिखता है, "इस देश में रूई के वस्त्र इतने बारीक़ और कौशल के साथ तैयार किये जाते हैं कि उस वस्त्र का बना हुआ एक चोग़ा मुहर की अँगूठी में होकर निकल सकता है।" सूर्य नारायण राव ने अपनी एक पुस्तक में* इसका वर्णन किया है। पंडित गणेशदत्त शर्मा अपने 'खादी का इतिहास' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं, "एक कारीगर जुलाहे ने एक अत्यन्त बारीक वस्त्र बाँस की छोटी सी नली में डालकर अकबर बादशाह को भेंट किया था। वह वस्त्र इतना लम्बा-चौड़ा था कि उससे एक हाथी हौदे सहित अच्छी तरह ढँक सकता था।" इतिहास लेखक हंटर लिखता है, 'कलिंग देश के राजा ने अयोध्या के राजा को एक रेशमी वस्त्र भेजा था। राजकन्या के उसे पहिनने पर उस पर यह आक्षेप किया गया था कि वह नंगी तो नहीं है।" श्री तालचरेकर† लिखते हैं "भारतीय कारीगरों के हाथ का काता हुआ सूत इंगलैंड के ३३० नम्बर के सूत से चौगुना बारीक़ होता था।"

तात्पर्य यह है कि १६वीं सदी के पहिले हिन्दोस्तान को बाहर के कपड़े की आवश्यकता न थी। वह स्वयं अपना माल विदेशों को भेजता था। इसके अतिरिक्त मसाले और हीरे जवाहिरात काफ़ी तादाद में विदेशों में जाकर बिकते थे। यह देश सभी तरह से स्वावलम्बी और समृद्धिशाली था। फ्राँसीसी यात्री बर्नियर लिखता है, "यह हिन्दोस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है, जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों तरफ़ से अनेक रास्तों से आ आ कर जमा होता है, और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता

---

*History of the never to be forgotten Empire.

† Charkha yarn.

नहीं मिलता।" इतना स्वावलम्बी और समृद्ध होते हुये भी यहाँ के निवासी विदेशियों के साथ बहुत ही आदर का व्यवहार करते थे। जिस समय वास्कोडिगामा जहाँगीर के दरबार में आया उस समय सम्राट् जहाँगीर ने एक सोने के पत्ते पर यह लिख कर उसे दिया था कि "आप लोग हमारे देश में व्यापार कर सकते हैं।" यह पहिला अवसर था जब कि एक योरप-निवासी को हिन्दोस्तान में व्यापार करने की आज्ञा दी गई थी। जिस समय यह समाचार पुर्त्तगाल पहुँचा उस समय लोगों की खुशी का वारापार न रहा। उस दिन लिस्बन नगर में दीवाली मनाई गई, जिसके प्रकाश से आकाश प्रज्वलित हो उठा था। इतना समृद्धशाली देश आज इस दशा को पहुँच गया है कि ५ करोड़ आदमियों को भर पेट भोजन तक नहीं मिलता। विदेशी मालों के लिये यह बाज़ार का काम कर रहा है। आज यहाँ आस्ट्रेलिया का गेहूँ और डेनमार्क का बनावटी दूध बेचा जा रहा है। इस प्रकार का विदेशी सम्पर्क सर्वथा त्याज्य और निन्दनीय है।

जो विदेशी चीज़ें हमारे देश में आती हैं उनकी सूची काफ़ी लम्बी है। १५ करोड़ रुपये से ऊपर का तो केवल तेल हम बाहर से ख़रीदते हैं। एक करोड़ रुपये से ऊपर का तम्बाकू प्रति वर्ष इस देश में आता है। जो देश किसी समय विदेशियों के मुँह मीठे करता था वही आज लगभग ४६ लाख रुपये की चीनी प्रति वर्ष बाहर से मँगाता है। ३८ लाख रुपये के लगभग का नमक हमें बाहर से मँगाना पड़ता है। १६ लाख रुपये हम केवल चाय के लिये विदेशों को भेज देते हैं। २४ लाख रुपये की दियासलाइयाँ हर साल हम अपने चूल्हों पर फूँक देते हैं। जिस हिन्दोस्तान के कोने-कोने में बबूल के पेड़ फैले हुए हैं; जहाँ के जंगलों की लकड़ियाँ विदेशों में भेज दी जाती हैं, वही देश ३० लाख रुपये से ऊपर का गोंद हर साल मँगाता है। तात्पर्य यह है कि हर साल हमारे देश से डेढ़ अरब रुपया बाहर चला जाता है। यद्यपि हम भी बहुत सी चीज़ें बाहर भेजते हैं, लेकिन इस अदल बदल में हमें इतना घाटा उठाना पड़ता है कि हम प्रति वर्ष ग़रीब होते जा रहे हैं। यदि हमारे देश की सरकार इस ओर थोड़ा ध्यान देती तो हमारी दशा आज इतनी गिरी हुई न होती। व्यवसायों के नष्ट होने से, हमें छोटी-छोटी आवश्यकताओं के लिये विदेशियों का आश्रय लेना पड़ता है। इस वैज्ञानिक युग में, जब कि वस्तुओं की अधिकता के कारण हमारी आवश्यकतायें रात दिन बढ़ती जा रही हैं, हमें दूसरों पर भरोसा करना पड़ता है। भारत-सरकार को विभिन्न वस्तुयें विदेशों से सबसे अधिक लेनी पड़ती हैं। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि लेन-देन का सिद्धान्त देश के सर्वथा अनुकूल हो। बहुत सोच-विचार

के साथ आयात और निर्यात की नीति बनानी चाहिये, वरन् नागरिकों की गाढ़ी कमाई बेकार नष्ट हो जायगी। यह सभी स्वीकार करते हैं, कि सरकार के विदेशी होने से हमें सरासर घाटा उठाना पड़ता है। हर मामले में हमें लेने के देने पड़ते हैं। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये डेढ़ अरब रुपया हमें विदेशी लोगों की जेब में डालना पड़ता है। हमारे देश में किसी चीज़ की कमी नहीं है। हमारी रक़म हर साल बाहर को न भेज दी जाय तो आज भी हम एक वर्ष की उपज १० साल तक बैठे खा सकते हैं। देश में शारीरिक शक्ति इतनी अधिक है कि मशीनें उसका मुक़ाबिला नहीं कर सकतीं। परन्तु उसके संगठन का अभाव है। इस देश का भाग्य कुछ ऐसा पलटा खाया है कि जो देश किसी समय 'सोने की चिड़िया' कहलाता था वही आज ११०० करोड़ रुपये के क़र्ज़ से लदा हुआ है। भारतीय सरकार जो विदेशियों के हाथ में है कान में रूई डाले चुपचाप सो रही है। उसे पाँच करोड़ भूखों के आहत शब्द सुनाई नहीं पड़ते। इतने पर भी आयात और निर्यात की दूषित नीति बदली नहीं जाती।

लन्दन में ख़रीद

भारतीय सरकार को जिन विदेशी चीज़ों की आवश्यकता पड़ती है वह उन्हें लन्दन में ख़रीदती है। अधिकतर चीज़ें इंगलैंड की बनी हुई होती हैं। थोड़ी सी चीज़ें योरप के अन्य मुल्कों से लेनी पड़ती हैं जो इंगलैंड में नहीं मिल सकतीं। कारण यह है कि बृटिश सरकार भारतीय मुनाफ़े को इंगलैंड से बाहर क्यों भेजे। वह एक तिजारती सरकार है। लन्दन को हिन्दोस्तान की बाज़ार का केन्द्र बनाया गया है। अतएव यह आवश्यक है कि वहाँ पर भारत-सरकार की ओर से चीज़ें ख़रीदने का उचित प्रबन्ध हो। कोई ऐसा जिम्मेवार व्यक्ति इस कार्य के लिये नियुक्त किया जाय जो भारतीय सरकार की मातहती में इस कार्य को करे; भारत सरकार समय-समय पर अपनी आवश्यकताओं की सूची उसे भेजती रहे और वह इस हुकुम की तामील चुप-चाप करता रहे। इससे सरकार की परेशानी दूर हो जाती है। और इंगलैंड को बहुत बड़ा मुनाफ़ा भी होता है। इतना अवश्य है कि लन्दन में जिस व्यक्ति को यह कार्य सौंपा जाय उसे भारत सरकार के अधिकार में रहना चाहिये।

यदि उपरोक्त ढंग पर ख़रीद की व्यवस्था की गई होती तो कोई हानि न थी। परन्तु यह कार्य भारत-मन्त्री को सौंपा गया। जब कभी भारत-सरकार को किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती तो वह भारत-मन्त्री को सूचित करती और वह उन्हें ख़रीद कर भेज देता था। भारतीय दृष्टि से यह व्यवस्था

दोषपूर्ण थी। ऊपर कहा गया है कि ख़रीदने वाले व्यक्ति को भारत-सरकार की मातहती में रहना चाहिये। भारत मन्त्री को यह कार्य नहीं मिलना चाहिये था। वह भारतीय सरकार का प्रधान है। उसकी आज्ञा भारत-सरकार को माननी पड़ती है। यह उससे प्रश्न नहीं कर सकती कि अमुक वस्तु महँगी क्यों ख़रीदी गई। एक प्रकार से मालिक को ही नौकर का काम सौंप दिया गया। जिन लोगों के पैसे वह ख़र्च करता उनके प्रति वह ज़िम्मेवार न था। हिन्दोस्तान के पैसे का मूल्य वह जैसे चाहता लगाता। चीज़ों की आवश्यकता न होने पर भी वह अपने देश का हित सोचते हुए भारत-सरकार को इस बात के लिये वाध्य कर सकता था कि वह उन्हें ख़रीद ले। परिणाम यह हुआ कि इस आर्थिक सम्बन्ध से हिन्दोस्तान को गहरी हानि उठानी पड़ी। जिस समय बृटिश सरकार ने यह विधान बनाया उस समय इंगलैंड का व्यापार धीरे-धीरे बढ़ रहा था। १८५१ ई० में लन्दन नगर में एक बहुत बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी करने का आयोजन किया गया। सर थामस मनरो लिखता है "बृटिश कारख़ानेदारों ने प्रदर्शिनी के बहाने भारतीय कारीगरों के हुनर का रहस्य खोज निकालने का कमाल परिश्रम किया।"

स्वर्ण अवसर

बृटिश सरकार को इस बात की चिन्ता थी कि अँग्रेज़ी माल की खपत कैसे की जाय। व्यावसायिक क्रांति के कारण माल की खपत के लिये बाज़ार ढूँढ़ निकालना आवश्यक था। इसी समय भारत-मन्त्री को यह अधिकार दिया गया कि वह हिन्दोस्तान के लिये माल ख़रीद सकता है। इस अधिकार ने इंगलैंड निवासियों को अपना व्यापार बढ़ाने का अच्छा अवसर प्रदान किया। इंगलैंड की बनी हुई चीज़ें चींटी की बारात की तरह एक के बाद दूसरी हिन्दोस्तान में आने लगीं। यही कारण है कि योरप के और देश-वासी भारतीय व्यापार में अँग्रेज़ों से पीछे रहे। अँग्रेज़ी तिजारत के साथ अँग्रेज़ी राज्य भी हिन्दोस्तान में बढ़ने लगा। दोनों के मेल से बृटिश सरकार की शक्ति धीरे-धीरे दृढ़ होती गई। इसके विपरीत, हिन्दोस्तान की तिजारत और राजा-महाराजाओं की शक्ति नष्ट होती गई। भारत-मन्त्री पर बृटिश पार्लियामेन्ट का अधिकार है। वह अपने कामों के लिये उसी के प्रति ज़िम्मेवार है। पार्लियामेंट के सदस्य इंगलैंड के बड़े बड़े तिजारती अथवा आम जनता के प्रतिनिधि होते हैं। उनका उद्देश्य जनता की भलाई के लिये अँगरेज़ी तिजारत को बढ़ाना है। इसलिये यह स्वाभाविक था कि वे भारत-मन्त्री को इस बात के लिये प्रेरित करते कि वह इंगलैंड का अधिक से अधिक माल हिन्दोस्तान में बेचने का प्रबन्ध करे।

भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस कमज़ोरी को अच्छी तरह पहिचान लिया। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि भारत-मंत्री के हाथों में इस अधिकार के रहने से हिन्दोस्तान की बहुत बड़ी हानि है। यह बात साफ़ दिखलाई पड़ने लगी कि वह हिन्दोस्तान का अधिक से अधिक पैसा देकर अँग्रेज़ी माल ख़रीद लेता। उससे कम मूल्य में वही चीज़ जर्मनी या जापान से नहीं खरीदी जाती। इंगलैंड के हित का इतना अधिक ध्यान किया जाता था कि हिन्दोस्तान को प्रति वर्ष करोड़ों रुपये की हानि उठानी पड़ती। इस राजनीतिक विधान से हिन्दोस्तान को जो हानि उठानी पड़ी है उसकी पूर्ति निकट भविष्य में होने की सम्भावना नहीं है। यदि यही सिलसिला कुछ दिन और जारी रहता तो इस देश की और भी मिट्टी पलीद हुई होती। अँगरेज़ों तक ने इस नीति का विरोध किया। परन्तु वे कर ही क्या सकते थे। "जहाँ साँप का बिल वहीं पूत का सिरहान" वाला क़िस्सा था। जो भारत-मंत्री भारतीय सरकार का सर्वेसर्वा था उसी के प्रति आवाज़ कैसे उठाई जा सकती थी। कोई अन्याय बहुत दिनों तक चालू नहीं रह सकता।

उघरे अन्त न होहिं निवाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥

राष्ट्रीयता की लहर हिन्दोस्तान में बढ़ती जा रही थी। १६१४ की लड़ाई में हिन्दोस्तान ने बृटिश सरकार को १५ अरब रुपये का दान दिया। हज़ारों हिन्दोस्तानी लड़ाई में काम आये। लड़ाई के मध्य में बृटिश सरकार ने अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिये भारत-मन्त्री मान्टेग्यु को १६१७ ई० में हिन्दोस्तान भेजा। इसके फलस्वरूप १६१६ ई० का शासन-विधान बनाया गया। इसी विधान के अनुसार भारत-मंत्री से एजेन्सी का काम लेकर हाई कमिश्नर को सुपुर्द किया गया।

हाई कमिश्नर के कार्य और इसकी ज़िम्मेवारी

हिन्दोस्तान की एजेन्सी का काम ६२ वर्ष तक भारत-मंत्री के हाथ में रहने के बाद १६२० ई० में हाई कमिश्नर को दे दिया गया। इसकी नियुक्ति, अवधि तथा वेतन का वर्णन आरम्भ में किया जा चुका है। इसका मुख्य कार्य भारत-सरकार की ज़रूरी चीज़ों को ख़रीदना है। भारत-सरकार को जिन विदेशी चीज़ों की आवश्यकता होती है उनकी सूची हाई कमिश्नर के पास भेज दी जाती है। चीज़ों को ख़रीद कर कुछ तो वह हिन्दोस्तान में भेज देता है और कुछ अपने स्टोर में

जमा रखता है। आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें भेजता रहता है। इस प्रकार वह लन्दन में हिन्दोस्तान के एक बहुत बड़े स्टोर का मालिक है। जितनी चीज़ें वह ख़रीदता है उनका पूरा हिसाब, मय रसीद के भारत-मंत्री के गणक (Auditor) के सामने पेश करता है। गणक की रिपोर्ट के साथ हिसाब की पूरी नक़ल गवर्नर-जनरल के पास उसे भेजना पड़ता है। एक अक्टूबर सन् १६२० ई० को हाई कमिश्नर के जिम्मे स्टोर विभाग के अतिरिक्त भारतीय विद्यार्थी विभाग तथा और भी छोटे मोटे काम कर दिये गये। १ अप्रेल सन् १६२१ ई० को इंडिया आफ़िस से कुछ और कार्य अलग करके हाई कमिश्नर को दे दिये गये। १ वर्ष बाद १६२१ ई० में उसके अधिकारों में और वृद्धि की गई। इतने पर भी एजेन्सी का पूरा काम इंडिया आफ़िस से अभी अलग न हुआ।

बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत जितने उपनिवेश हैं वे सब अपना हाई कमिश्नर लन्दन में रखते हैं। इनका कर्तव्य ख़रीद-फ़रोख्त के अतिरिक्त कुछ राजनीतिक ज़िम्मेवारियों को पूरा करना है। कहा जाता है कि ये उपनिवेशों की स्वतंत्रता के प्रतीक हैं। हिन्दोस्तान को भी स्वतंत्रता के प्रतीक के लिये एक हाई कमिश्नर रखने की आवश्यकता पड़ी। यह बात कुछ समझ में नहीं आती कि औपनिवेशिक स्वराज्य की अनुपस्थिति में इस देश का दर्जा अन्य उपनिवेशों के बराबर कैसे हो सकता है। केवल हाई कमिश्नर की नियुक्ति से स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं हो सकता। इसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल अपनी कौंसिल की सलाह से ५ वर्ष के लिये करता है। इसकी तनख़ाह भत्ता और इसके दफ़्तर का पूरा ख़र्च भारतीय ख़ज़ाने से दिया जाता है। अपने कामों के लिये वह भारत-सरकार के प्रति ज़िम्मेवार है। गवर्नर-जनरल की सभी आज्ञायें उसे माननी पड़ती हैं।

यह बात ऊपर स्पष्ट कर दी गई है कि हाई कमिश्नर का काम व्यापारिक है। उसके ज़िम्मे कोई राजनीतिक कार्य नहीं सौंपा गया है। हिन्दोस्तान में रेल तथा बड़े पुल आदि बनाने के लिये जिन चीज़ों की आवश्यकता होती है, उन्हें भेजने का कार्य उसे सौंपा जाता है। इनका ठीका लन्दन में ही दिया जाता है। व्यापार सम्बन्धी सूचनायें वह भारत-सरकार को देता रहता है। हिन्दोस्तान के लगभग दो हज़ार विद्यार्थी इंगलैण्ड में अध्ययन करते हैं। उनकी देख-रेख की ज़िम्मेवारी उसी को सौंपी गई है। विद्यार्थियों को सुविधायें देना तथा विश्वविद्यालयों में प्रवेश करना उसके ज़िम्मे किया गया है। जहाँ कहीं अन्तर्राष्ट्रीय सभाएँ होती हैं, उनमें भारत का प्रतिनिधित्व वही ग्रहण

करता है। साम्राज्यवादी महासभाओं में हिन्दोस्तान का नेता बन कर वही उपस्थित होता है।

१९३५ के शासन-विधान में हाई कमिश्नर का स्थान

१९३५ का संघ-शासन-विधान अभी पुस्तकों में सुरक्षित है। कार्य रूप में इसका थोड़ा सा अंश लाया गया है, परन्तु इसकी पूरी व्यवस्था नहीं हुई। कुछ तो इसकी कमी और कुछ विश्व व्यापी युद्ध ने संघ-शासन को कुछ दिनों के लिये स्थगित कर दिया है। नये शासन विधान की ३०२ धारा के अनुसार गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपनी निजी शक्ति द्वारा एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति करे। उसका वेतन और अवधि भी वही निश्चित करे। समय समय पर गवर्नर-जनरल उसे जो जो सलाह दे वह उन्हें करता रहे। अब तक हाई कमिश्नर गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल की आज्ञाओं का पालन करता था, परन्तु संघ-शासन की स्थापना के बाद गवर्नर जनरल अपनी निजी शक्ति द्वारा उस पर अधिकार रक्खेगा। संघ मंत्रि-मंडल को यह अधिकार न होगा कि वह हाई कमिश्नर के मामले में हस्तक्षेप करे। बड़े आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति भारतीय ख़ज़ाने का करोड़ों रुपया प्रति वर्ष ख़र्च करे, वही भारतीय मन्त्रियों के प्रति ज़िम्मेवार न हो। गवर्नर-जनरल अपने व्यक्तिगत अधिकार से हाई कमिश्नर पर शासन करेगा। भारत-मन्त्री सभी प्रकार से गवर्नर-जनरल पर अधिकार रक्खेगा। इसका तात्पर्य यह है कि वह गवर्नर-जनरल द्वारा हाई कमिश्नर पर भी हावी होगा। सीधी बात यह है कि जो कमी १९१९ ई० में अनुभव की गई थी और जिसके कारण हाई कमिश्नर का स्थान बनाया गया था वह फिर १९३५ ई० में जारी कर दी गई। हाई कमिश्नर के पद से जो लाभ हिन्दोस्तान को पहुँच सकता था वह अब नहीं पहुँच सकता।

अच्छा होता कि भारत-सरकार के इस कर्मचारी पर भारतीय धारा सभा का अधिकार होता। परन्तु नये शासन-विधान में इसकी गुंजाइश नहीं है। यह बात सचाई से कोसों दूर है कि जो स्थान उपनिवेशों के कमिश्नरों को प्राप्त है वही हिन्दोस्तान के हाई कमिश्नर को दिया गया है। हाई कमिश्नर भारत-सरकार, बृटिश प्रान्तों, देशी रियासतों, तथा बर्मा सबके लिये चीज़ें ख़रीद कर हिन्दोस्तान में भेजेगा। एक ओर तो उसके अधिकार इतने अधिक हैं, परन्तु दूसरी ओर उसकी ज़िम्मेवारी भारतीय जनता के हाथों से अलग कर दी गई है। सर तेजबहादुर सप्रू का कहना है कि हाई कमिश्नर पर भारतीय सरकार का पूरा अधिकार होना चाहिये। उसके कर्तव्यों का वर्णन करते हुए

सर सेमुअल होर ने पार्लियामेंट में यह कहा था कि अच्छा होगा कि यह अफ़सर केवल गवर्नर-जनरल के प्रति ज़िम्मेवार रहे।*

नये शासन-विधान में हाई कमिश्नर के कर्तव्य और उसके दर्ज़े में कोई बड़ी तब्दीली नहीं की गई है। उसका दर्जा अभी तक अन्य हाई कमिश्नरों से छोटा है। इसका कारण यह है कि हिन्दोस्तान को वह राजनीतिक पद प्राप्त नहीं है जो अन्य बृटिश उपनिवेशों को प्राप्त है।

मन्त्रीदल के नये सुझाव में तथा हिन्दोस्तान के भावी शासन विधान में इस पद में क्या परिवर्तन होगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता! इतना ज़रूर है कि कोई भी स्वतन्त्र देश इस प्रकार का पद सहन नहीं कर सकता। देश की आवश्यकता देश में पूरी होनी चाहिये, हाई कमिश्नर की ख़रीद से नहीं।

---

* The High Commissioner will have two kinds of duties, one for the Federal Government and the Provincial Government in India, and the other for the Governor-General acting in his discretion for the reserved departments and for the sphere of Government that does not come within the Federal Government of India. As the High Commissioner will have to act in these two capacities it was thought that the proper method of action was that it should be the individual judgment of the Governor-General, namely, that the initiative in suggesting names will be with the Ministers, but that the final word should be with the Governor-General.

अध्याय ६

गृह-सरकार और भारत-सरकार का सम्बन्ध

(Relation of Home Government with the Government of India)

राजनीतिक सम्बन्ध

गृह-सरकार और भारत-सरकार के राजनीतिक सम्बन्ध पर पिछले अध्यायों में प्रकाश डाला गया है। पार्लियामेंट, सम्राट् तथा भारत मन्त्री और उसकी कौंसिल का भारतीय सरकार से जो सम्बन्ध है इस पर पिछले अध्याय में अलग अलग विचार किया जा चुका है। उसे ध्यान में रखते हुए यह बात साफ़ है कि भारत-सरकार गृह-सरकार की मातहती में काम करती है। गृह सरकार की आज्ञा अन्तिम समझी जाती है। भारत सरकार उसकी अवहेलना नहीं कर सकती। केन्द्रीय धारा सभा को क़ानून बनाने का अधिकार ज़रूर है, लेकिन शासन-विधान में उसकी शक्ति नहीं के बराबर है। शासन में सुधार करने तथा इसे बदलने का अधिकार केवल बृटिश पार्लियामेंट को है। गवर्नर-जनरल, जो भारत का सम्राट् है, भारत-मन्त्री की सलाह के बिना कोई काम नहीं कर सकता। यह बात ग़लत है कि भारत-सरकार अपनी कोई नीति रखती है। यद्यपि हिन्दोस्तान के राजनीतिक मामले बृटिश राजनीति से अलग रक्खे जाते हैं, परन्तु इस देश की नीति बृटिश सरकार ही निश्चित करती है। भारत सरकार राजनीतिक मामलों में थोड़ी भी स्वतन्त्र नहीं है। १६३१ ई० में जब दूसरी गोलमेज़ सभा की बैठक हो रही थी उस समय महात्मा गाँधी ने यह कहा था कि, "अँग्रेज़ों और हिन्दोस्तानियों के अधिकारों में बराबरी की बातें करना वैसे ही बेतुका है जैसे एक महाकाय धारी व्यक्ति और एक बौने का मुक़ाबिला करना।"

१६१६ के पहिले भारत-सरकार और गृह-सरकार में जो सम्बन्ध था उस पर विचार प्रकट करते हुए जॉन स्ट्रेची लिखता है, "यह बात ग़लत है कि भारत-मंत्री भारतीय सरकार के छोटे छोटे मामलों में हस्तक्षेप करता है।" जॉन स्टुअर्ट मिल लिखता है, "भारत की असली सरकार हिन्दोस्तान में ही निवास करती है। गृह-सरकार का काम भारतीय सरकार

को चलाना नहीं है, बल्कि शासन की नीति निर्धारित करना है।" यह बात आमतौर से कही जाती है कि भारत-मंत्री भारत सरकार के कामों में अनायास हस्तक्षेप नहीं करता। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ भारत-सरकार कोई कार्य नहीं कर सकती। प्रति सप्ताह गवर्नर-जनरल और उसमें जो गुप्त-पत्र व्यवहार होता है वह छोटी छोटी बातों से सम्बन्ध रखता है। गृह-सरकार भारत-सरकार के दैनिक कार्यों से भली भाँति परिचित रहती है। उसे यह अच्छी तरह पता है कि अमुक क्षेत्र में क्या हो रहा है। हिन्दोस्तान के ४० करोड़ व्यक्तियों की डायरी वह भले ही न रक्खे, परन्तु इस देश का कोई संगठन ऐसा नहीं है जिस पर वह कड़ी नज़र न रखती हो। वर्तमान आवागमन तथा सम्बन्ध की सुविधाओं को देखते हुए यह बात असम्भव नहीं है। राजनीतिक भावना की वृद्धि के कारण भारत-सरकार को थोड़ी बहुत ज़िम्मेवारी गृह सरकार से प्राप्त है। प्रान्तीय स्वतन्त्रता तथा स्वायत्त शासन (Local Self-Government) इसी भावना के परिणाम हैं। केन्द्रीय सरकार में जो ज़िम्मेवारी हिन्दोस्तानियों को दी गई है वह किसी से छिपी नहीं है। पार्लियामेंट ने गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय को अपनी ज़िम्मेवारियों के लिये बहुत कुछ स्वतंत्र कर रक्खा है; परन्तु उसके अधिकार इतने अधिक हैं कि उनके रहते हुए भारत-सरकार एक ज़िम्मेवार सरकार नहीं कही जा सकती।

सर तेज बहादुर सप्रू अपने एक लेख में लिखते हैं,* "यह बात भली भाँति स्पष्ट है कि भारत-सरकार एक स्वतंत्र सरकार नहीं है। हम इससे कितना भी इनकार करें; परन्तु सभी क्षेत्रों में हिन्दोस्तान की नीति दिल्ली और शिमला में निर्धारित नहीं होती। इसका निर्माण सफ़ेद भवन (Whitehall)† में किया जाता है।" मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के अनुसार भारत-सरकार और गृह-सरकार का सम्बन्ध बदलता रहता है। यह सम्बन्ध भारत-मंत्री तथा गवर्नर-जनरल की योग्यता पर निर्भर है। यदि गवर्नर-जनरल प्रभावशाली तथा योग्य है तो यह स्वाभाविक है कि गृह-सरकार उसके कामों में कम से कम हस्तक्षेप करेगी। लार्ड कैनिंग, लार्ड रीडिंग तथा कुछ अन्य वाइसरायों के कामों में बहुत कम हस्तक्षेप किये गये हैं। परन्तु गवर्नर-जनरल के अयोग्य होने पर गृह-सरकार उसे अपनी मुट्ठी में रक्खेगी। चूँकि

---

*Contemporary Review, November, 1923.

† पार्लियामेंट का दूसरा नाम सफ़ेद भवन है।

हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में अपना सब काम वह भारत-मन्त्री द्वारा करती है, इसलिये भारत-मन्त्री की योग्यता का प्रभाव इस देश पर गहरा पड़ता है।

कहा जाता है कि जब तक हिन्दोस्तान में कम्पनी का राज्य था तब तक भारत-सरकार की आज़ादी बहुत कुछ सुरक्षित थी। उस समय न तो भारत-मंत्री था और न उसकी कौंसिल। कम्पनी के डाइरेक्टर्स पार्लियामेंट को इस बात के लिये कम अवसर देते थे कि वह भारतीय मामलों में हस्तक्षेप करे। हिन्दोस्तान के गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल को जो आज्ञायें मिलतीं उन्हें वे अपनी ज़िम्मेवारी से काम में लाते थे। ६००० मील की दूरी पर बैठे हुए कम्पनी के डाइरेक्टर्स हिन्दोस्तान के मामलों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। वे इच्छा रखते हुए भी गवर्नर-जनरल के कामों में हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। उन्हें इस देश के रसम-रवाज़ तथा सामाजिक नियम मालूम न थे। उनके दिमाग़ में हिन्दोस्तान के सामाजिक संगठन का सही नकशा न था। जो कुछ जानकारी वे इस देश के सम्बन्ध में रखते थे, वह सब गवर्नर-जनरल द्वारा उन्हें पहुँचाई जाती थी। ऐसी दशा में वे गवर्नर-जनरल को अपने हाथ का लट्टू नहीं बना सकते थे। किसी ख़ास ग़लती के कारण वे उसे पदच्युत भले ही कर दें, परन्तु उसके कामों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता उन्हें कम महसूस होती थी। १८५८ ई० में जब कम्पनी का राज्य हिन्दोस्तान में समाप्त हो गया और पार्लियामेंट ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली तो भारत-मन्त्री और उसकी कौंसिल का निर्माण किया गया। कौंसिल के सदस्यों के लिये हिन्दोस्तान के मामलों की जानकारी रखना आवश्यक था। यह इसी दृष्टि से किया गया कि जब तक बृटेन में कोई संस्था भारत-सरकार के विषय में पूरी जानकारी न रक्खेगी, तब तक वह उसे अपने अधिकार में नहीं रख सकती। भारत-मंत्री और इंडिया कौंसिल ने इस कमी को पूरा किया।

आवागमन की सुविधायें, बेतार बरक़ी तथा टेलीफ़ोन, अँग्रेजों की भारतीय मामलों में अधिक दिलचस्पी, बृटिश पार्लियामेंट का झुकाव, बृटिश व्यापार की हिन्दोस्तान में वृद्धि, तथा अँग्रेज़ी क़ौम का व्यक्तिगत स्वार्थ— ये बातें बृटेन और हिन्दोस्तान के सम्बन्ध को दृढ़ करने में सहायक हुई हैं। एक दूसरे के विचार दोनों को प्रभावित करते हैं। कितने ही भारतीय विद्यार्थी इंगलैंड में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। कुछ लोग शौकिया वहाँ जाकर बस गये हैं। प्रतिवर्ष अनेक राजे महराजे तथा धनीमानी बृटेन की यात्रा के लिये जाते हैं। इसके विपरीत बृटेन निवासी रोज़ी या नौकरी की तलाश में हिन्दोस्तान आते हैं। वे यहाँ तरह तरह के व्यापार करते हैं।

उनकी सुविधा तथा रक्षा का ध्यान भारत-सरकार को रखना पड़ता है। ये सम्बन्ध ऐसे हैं जिनका दोनों सरकारों को ध्यान रखना पड़ता है। गृह-सरकार इस बात का ध्यान रखती है कि भारत सरकार बृटेन के हित में कोई बाधा न डाले। परन्तु इसके साथ ही वह यह भी ध्यान रखती है कि कोई विदेशी सरकार भारत-सरकार के कामों में दख़ल न दे। विदेशी हमले के समय बृटेन हिन्दोस्तान की रक्षा के लिये सब कुछ कर सकता है। इसमें दोनों को लाभ है, बृटेन का स्वार्थ और हिन्दोस्तान की रक्षा।

जेम्स स्टुअर्ट मिल लिखता है, "गृह-सरकार का मुख्य काम भारतीय शासन को छोटी-छोटी बातों को चलाना नहीं है। वह भारतीय-सरकार के पास किये गये क़ानूनों की केवल टीका टिप्पणी करती है, शासन के बड़े वसूलों को निर्धारित करती है तथा उसे अपनी नीति के अनुसार चलाने के लिये ख़ास-ख़ास सलाहें देती है। भारत-सरकार आर्थिक और राजनीतिक कार्यवाइयों की सलाह गृह-सरकार से लेती है। गृह-सरकार उन्हें मंजूर या नामंजूर कर सकती है।" कहने के लिये मिल का कथन भले ही ठीक हो, परन्तु गृह-सरकार इतने से ही संतुष्ट नहीं रहती। वह भारत-सरकार का विश्वास वहीं तक करती है, जहाँ तक वह ऐसा करने के लिये विवश है। चूँकि. हिन्दोस्तान बृटेन से काफ़ी दूर है, और यह सम्भव नहीं है कि एक ही मशीन दोनों जगह काम करे, इस लिये गृह-सरकार विवश होकर उस नीति का आश्रय लेती है जो उसके कानों में छोटी-छोटी बातों की ख़बरें पहुँचाती रहे। किसी असाधारण परिस्थिति की बात तो दूर रही, साधारण परिस्थिति में भी वह अपने कान खड़े किये रहती है। यह लिखना कोई बेजा न होगा कि गृह-सरकार भारत-सरकार की ओर से सदैव शंकित रहती है। गवर्नर-जनरल के अधिकारों तथा भारत-मंत्री से उसके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए कोई भी अनुमान कर सकता है कि पार्लियामेंट भारत-सरकार की ओर से कितनी शंकित रहती है।

यदि गहराई के साथ देखा जाय तो पता चलेगा कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अपने उद्देश्य पर तब तक नहीं पहुँच सकता जब तक गृह-सरकार और भारत-सरकार के सम्बन्ध बदल न जायँ। कुछ लोग समझते हैं कि ग्राम पंचायतों तथा प्रजा-तंत्रवादी संस्थाओं के स्थापित कर देने से हिन्दोस्तान एक आज़ाद मुल्क हो जायेगा। प्रान्तीय स्वराज्य उनके लिये एक बड़ी चीज़ मालूम पड़ती है। गवर्नर तथा कुछ सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों को थोड़ा कम करके वे आज़ादी का स्वप्न देखते हैं। मताधिकार की वृद्धि, धारा सभाओं के अधिकार, तथा शासन में हिन्दोस्तानियों का अधिक हाथ—ये

बातें ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों उन्हें सभी तरह की आज़ादी हासिल हो गई। ये बातें हमारे दिमाग़ को चक्कर खिलाने के लिये बनाई गई हैं। हमारी नज़र जब तक गृह-सरकार और भारत-सरकार के सम्बन्ध पर न जायेगी तब तक भारतीय राजनीति हमारी समझ में नहीं आ सकती। हम अपने मंज़िले मक़सूद पर तभी पहुँच सकते हैं जब इस सम्बन्ध को बदल दें। क्या यह सम्भव है कि गृह-सरकार अपने स्वार्थ और अधिकारों को एक तरह बनाये रक्खें और साथ ही हमें आज़ादी भी हासिल हो जाय ? हम स्वतंत्रता की ओर तभी क़दम बढ़ा सकते हैं जब गृह-सरकार और भारत-सरकार का सम्बन्ध मित्रवत हो जाय। जब तक इनका सम्बन्ध मालिक और नौकर अथवा शेर और बकरी की तरह बना रहेगा तब तक हिन्दोस्तान आज़ादी का स्वप्न नहीं देख सकता।

लार्ड मार्ले ने लार्ड मिन्टो को एक पत्र लिखते समय यह लिखा था कि "शिमला में यह बात प्रचलित है कि गृह-सरकार मूर्ख है।"* इस कथन में मार्ले का जो कुछ विचार रहा हो, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि इससे गृह सरकार की कमज़ोरी का पता चलता है। वह भारतीय रस्म-रिवाज़ों तथा विचारों की उतनी परवाह नहीं करती जितनी अपने स्वार्थ सिद्धि की। यदि शिमला में भारतीय प्रतिनिधियों की राय गृह सरकार से असंतुष्ट रहती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। शासन की ऊपरी सीढ़ी पर पहुँचने पर यह पता चलता है कि गृह-सरकार का बन्धन कितना सख्त है। केन्द्रीय शासन के अन्दर जिस हद तक वह अपना हाथ रखती है उससे किसी स्वाभिमानी प्रतिनिधि को वेदना उत्पन्न हो सकती है।

आर्थिक सम्बन्ध

हिन्दोस्तान और बृटेन के आर्थिक सम्बन्ध का इतिहास अत्यन्त हृदय विदारक है। आरम्भ से ही ईस्ट-इंडिया कम्पनी भारतीय व्यापार पर अपनी धाक जमाना चाहती थी। धीरे-धीरे इस देश के घरेलू कारोबार नष्ट होते गये। आज हम उस दशा को पहुँच गये हैं जबकि हमें भर पेट भोजन तक नहीं मिलता। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया इस देश से बृटेन को भेजा जाता है। यहाँ का कच्चा माल हम बाहर भेजते हैं और उसके बदले में बना बनाया माल बाहर से मँगाते हैं। यह हमारी अवनति की सबसे बड़ी सीमा है। यहाँ पर हमारा तात्पर्य हिन्दोस्तान का आर्थिक इतिहास लिखना नहीं है। हम यह दिखलाना

*The view seems to be profanely current at Simla that the Home Government is always a dammed fool.

चाहते हैं कि बृटेन को हिन्दोस्तान से जो आर्थिक लाभ होते हैं वे इतने अधिक हैं कि गृह-सरकार को उनकी रक्षा का सदैव ध्यान रखना पड़ता है। एक अँग्रेज़ महोदय का कहना है—"हम हिन्दोस्तान को कैसे छोड़ सकते हैं, जब कि हमारा चौथाई भोजन उसी देश से आता है।" इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि आर्थिक मामलों में बृटेन हिन्दोस्तान के ऊपर कितना आश्रित है। इस देश की रक़म कई ज़रियों से होकर बृटेन को पहुँचती है। बड़ी-बड़ी तनख्वाहें, पेन्शनें, व्यापारिक मुनाफ़े, होम सरकार का ख़र्च, क़र्ज़ की सूद तथा अन्य तरीक़ों से प्रतिवर्ष कई करोड़ रुपया यहाँ से बाहर भेजा जाता है।

गृह-सरकार की ओर से इंगलैंड में भारतीय दफ़्तर (India Office) की स्थापना की गई है। भारत-मन्त्री इस दफ़्र का प्रधान है। वास्तव में बृटिश साम्राज्य की रक्षा और उसे एक सूत्र में बाँधने के लिये इस संस्था का जन्म दिया गया है। जितने भी उपनिवेश हैं उनके मन्त्री बृटेन में निवास करते हैं। उन मन्त्रियों का वेतन तथा पूरा ख़र्च बृटिश सरकार स्वयं बर्दाश्त करती है। कारण यह है कि इनसे उपनिवेशों को कोई ख़ास लाभ नहीं पहुँचता। गृह-सरकार को उपनिवेशों की जानकारी रखने के लिये ये स्थान बनाये गये हैं। १९१९ ई० तक भारत मंत्री का वेतन हिन्दोस्तान के ख़ज़ाने से दिया जाता था। इस पर बहुत दिनों तक आक्षेप किया गया और अन्त में उसे यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत-मन्त्री का वेतन भारतीय ख़ज़ाने से नहीं आना चाहिये। भारतीय दफ़्र के ऊपर हर साल लगभग ३५००००० रुपया ख़र्च किया जाता है। इतने बड़े ख़र्च को १८५८ ई० से लेकर १९१९ तक हिन्दोस्तान बर्दाश्त करता रहा। जो मशीन बृटिश साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिये बनाई गई थी और जिससे हिन्दोस्तान को कोई फ़ायदा नहीं था, उसके लिये हर साल इस ग़रीब देश का इतना रुपया ख़र्च किया जाय, यह अन्याय नहीं तो और क्या है!

१९१९ ई० में पार्लियामेंट ने यह निश्चित किया कि भारत-मंत्री का वेतन अँग्रेज़ी ख़ज़ाने से दिया जाय। इसके अलावा भारतीय दफ़्र (India Office) का कुछ ख़र्च बृटेन के जिम्मे कर दिया गया। आज कल इस दफ़्तर का आधा ख़र्च इंगलैंड और आधा हिन्दोस्तान के ख़ज़ाने से दिया जाता है। गृह-सरकार इस बात का ध्यान रखती है कि हिन्दोस्तान से बृटेन के आर्थिक लाभ में बट्टा न पड़ने पायें। बड़े बड़े सरकारी पदों पर बृटेन निवासी नियुक्त किये जाते हैं। चन्द वर्षों में ही वे पेंशन लेकर अपने देश को चले जाते हैं। जब तक वे हिन्दोस्तान में रहते हैं तब तक मुश्किल से

अपनी आमदनी का छठवाँ हिस्सा इस देश में ख़र्च करते हैं। यदि उनकी लम्बी तनख्वाहें इस देश में ख़र्च की जाती तो हमें उतनी हानि उठानी न पड़ती। लेकिन वे अधिकतर विदेशी चीज़ें ख़रीद कर अपने ही देश को लाभ पहुँचाते हैं। जब वे पेंशन लेकर अपने देश को वापिस जाते हैं उस समय उनकी आमदनी का एक पाई भी हिन्दोस्तान में ख़र्च नहीं होती। इससे हमारे देश को दो बड़ी हानियाँ होती हैं। एक तो बड़े सरकारी पदों पर पहुँचने का हमें अवसर नहीं दिया जाता, दूसरे तनख्वाहों की लम्बी रक़म उस देश में ख़र्च की जाती है जहाँ से हमारे देश को थोड़ा भी लाभ नहीं पहुँचता। मुग़ल राज्य में यदि नव्वाबों तथा कर्मचारियों को बड़ी जागीरें और वेतन दिया जाता था तो वे इसे देश से बाहर ख़र्च नहीं करते थे। यही वजह है कि आर्थिक दृष्टि से हिन्दोस्तान को मुसलमानी राज्य से कोई घाटा नहीं पहुँचा। इसके अतिरिक्त साहित्य और कला में विशेष उन्नति हुई।

शासन सम्बन्धी मामलों में जो धन हिन्दोस्तान को ख़र्च करना पड़ता है वह आवश्यकता से अधिक है। प्रजा से टैक्स इसलिये नहीं वसूल किया जाता कि उसे जैसे चाहे ख़र्च किया जाय। यदि १०० रुपये वसूल करने में ७५ रुपया ख़र्च कर दिया तो शेष २५ रुपये में कोई सरकार अपनी प्रजा को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। शासन-कार्य में कम से कम ख़र्च करना चाहिये। सरकारी वेतनों तथा फ़ौज के ऊपर ८० प्रतिशत रुपया ख़र्च कर देना भारत-सरकार के लिये उचित नहीं कहा जा सकता। भारतीय सेना का ख़र्च इतना अधिक है कि सरकार की आधी आमदनी इसी पर ख़र्च कर दी जाती है। यही वजह है कि शिक्षा तथा सुधार सम्बन्धी कामों के लिये उसके पास पैसे की कमी रहती है। जिस समय उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये पैसों की माँग पेश की जाती है उस समय सरकार यह जवाब देती है कि रुपया नहीं है। कहा जाता है कि गृह-सरकार ने भारत-सरकार को विशेष रूप से इस बात की चेतावनी दे रक्खी है कि भारतीय उद्योग-धन्धे पनपने न पायें। केन्द्रीय धारा सभा के एक सदस्य ने इस आशय का प्रश्न किया था और इसे सिद्ध करने के प्रमाण भी एकत्र किये थे। यदि सरकारी बजट पर ध्यान दिया जाय तो यह साफ़ दिखलाई पड़ेगा कि प्रजा की भलाई के लिये कम से कम रुपया ख़र्च किया जाता है। इसके लिये हम भारत-सरकार को दोषी नहीं ठहरा सकते। गृह-सरकार ने पहले से ही इस लम्बे ख़र्च का विधान बना रक्खा है। उन मामलों में भारत-सरकार हाथ नहीं डाल सकती। जिन सरकारी पदाधिकारियों को भारत-मंत्री तथा सम्राट् नियुक्त करते हैं उनमें भारतीय केन्द्रीय सरकार का कोई हाथ नहीं है।

भारत-सरकार उन विषयों की रक्षा पर अधिक ध्यान देती है जो बृटिश साम्राज्य की दृढ़ता के लिये आवश्यक हैं। वे विषय भारतीय प्रजा की भलाई से बढ़ कर समझे जाते हैं। यदि भारत-सरकार को इन मामलों में आज़ादी होती तो वह ऐसा नहीं करती परन्तु गृह-सरकार भारतीय प्रजा की भलाई से बढ़ कर बृटिश साम्राज्य को समझती है। भारतीय इतिहास में कितने ही उदाहरण इस बात के प्रमाण है कि भारत-सरकार से गृह-सरकार ने अनुचित लाभ उठाया है। अफ़गानिस्तान की लड़ाई के लिये हिन्दोस्तान से जो रुपया ख़र्च किया गया था उसमें एक मात्र बृटिश साम्राज्य का हित था। यदि भारत-सरकार गृह-सरकार की मातहती में न होती तो वह अपनी फ़ौज को विना किसी लाभ के विदेशों में लड़ने को न भेजती। जब कभी हिन्दोस्तान और बृटेन की भलाई का प्रश्न उपस्थित होता है तो दूसरे का हित बड़ा समझा जाता है। गृह-सरकार की नीति से हिन्दोस्तान क्रमशः दरिद्र होता गया है। अर्थशास्त्र के किसी विद्वान् ने साबित किया है कि बृटिश राज्य की वृद्धि के साथ खाने की चीज़ें हिन्दोस्तान में महँगी और इंगलैंड में सस्ती होती गई हैं। अलाउद्दीन ख़िलजी के ज़माने में १ रुपये का ३० सेर घी और २ आने को बैल बिकता था। किसान और मज़दूर सबको अच्छी तरह भोजन और वस्त्र मिलता था; परन्तु बृटिश सरकार के समय में लाखों आदमी इस देश में ऐसे हैं जिन्हें पेट भर खाना नहीं मिलता। गृह-सरकार आर्थिक शोषण की नीति न बर्तती तो यह देश इतना दरिद्र क्यों होता? इस मामले में हम केन्द्रीय सरकार से कैसे लड़ सकते हैं। जो आज्ञाएँ उसे सफ़ेद भवन (Whitehall) से मिलती हैं उनका वह पालन करती है।

नैतिक संबन्ध

सरकार का मुख्य कर्त्तव्य प्रजा की भलाई करना है। हिन्दू ज़माने में यह ज़िक्र अक्सर मिलता है कि राजा रात के समय अपनी प्रजा की दशा देखने के लिये भ्रमण करते थे। कभी-कभी वे अपना वेश बदल कर महीनों अपने राज्य में दौड़ा करते थे। इससे उन्हें प्रजा की वास्तविक दशा मालूम होती रहती थी। राजा भोज की कितनी ही कहानियाँ प्रचलित हैं कि वह किस प्रकार अपनी प्रजा की अमीरी और ग़रीबी का पता लगाता था। प्रजा की भलाई का दर्जा इतना ऊँचा रक्खा गया था कि राज्य में कोई व्यक्ति भूखा और नंगा नहीं रह सकता था। जिस राज्य में ऐसा नहीं होता वहाँ का राजा पापी समझा जाता था। मुसलमानी ज़माने में शासक अपनी प्रजा के हित का ध्यान रखते थे। औरंगज़ेब, जो बहुत ही सख़्त बादशाह कहा गया है सरकारी ख़ज़ाने को प्रजा की सम्पत्ति समझता था। वह टोपियाँ बना

कर अपना गुज़र करता था। मुसलमान भी विदेशी शासक थे, लेकिन उनकी जानकारी में हिन्दोस्तान का पैसा अरब और फ़ारस को नहीं जा सकता था। इसके विपरीत दुनिया की रक़म इसी मुल्क में आ आकर जमा होती थी।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़माने से भारतीय राजनीति ने अपना पहलू बदल दिया। यहाँ का धन-दौलत मिट्टी की तरह विदेशों को जाने लगी। पहले तो यह धन बतौर लूट के देश से बाहर जाता था, परन्तु जब कम्पनी की स्थिति कुछ दृढ़ हो गई तो इसे क़ानून का रूप दे दिया गया। धन के अलावा इस देश की संस्थायें भी बदल दी गईं। जो प्रजातंत्र-राज्य ग्राम-पञ्चायतों के रूप में अनादि काल से चला आ रहा था उसे तोड़ कर केन्द्रीय शासन की नींव डाली गई। जनता के राजनीतिक अधिकार, जिन्हें किसी भी सरकार ने छीनने का साहस न किया था, धीरे-धीरे कम होते गये। पूर्वीय सभ्यता के ऊपर पाश्चात्य रहन-सहन का प्रभाव बढ़ता गया। यदि यह चीज स्वाभाविक ढंग से हुई होती तो हम इसे बुरा नहीं समझते, परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि पश्चिम की सभी चीज़ों को तरजीह देकर हमारे देश वासियों को उन्हें अपनाने के लिये उत्साहित किया गया। अपने देश-वासियों की सुविधा के लिये बृटिश सरकार ने उस नीति का आश्रय लिया जो इस देश के लिये घातक सिद्ध हुई। अँग्रेज़ों के सम्पर्क से हमारे देश को कुछ लाभ ज़रूर हुए हैं; परन्तु दुनिया के मुक़ाबिले में हमारी हालत इतनी बदतर है कि हम उन चन्द भलाइयों का ख़याल नहीं कर सकते। यदि अँग्रेज़ी भाषा से हमारे देश की राष्ट्रीयता में उन्नति हुई है तो अपनी मातृभाषा को खोकर हम उससे चौगुनी हानि उठा रहे हैं। आवागमन की सुविधा ने हमारे देश को एक सूत्र में अवश्य बाँधा है, परन्तु इससे बृटिश राज्य की नींव इतनी दृढ़ हो गई है कि इन चीजों ने हमारे देश को लोहे की जंज़ीर की तरह बाँध रक्खा है।

बृटिश सरकार ने अपने देश की भलाई के लिये जो कुछ किया है उनकी टीका-टिप्पणी हम नहीं कर सकते। सरकार को यह अधिकार है कि वह जैसे चाहे अपने देश को आगे बढ़ाये। परन्तु दूसरे देशों को दरिद्र और जाहिल बना कर अपने देश की उन्नति करना उचित नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गृह-सरकार ने हिन्दोस्तान को वह स्थान देने का प्रयत्न किया है जो अन्य स्वतंत्र देशों को प्राप्त है। लेकिन यह बात सचाई से कोसों दूर है कि हिन्दोस्तान एक स्वतन्त्र देश है। किसी भी मानी में हम दुनिया की बराबरी के हिमायती नहीं हैं। इसकी इच्छा रखते हुए भी हम अपनी परिस्थिति से

मजबूर हैं। यदि गृह-सरकार सचमुच हमें इसका अवसर देना चाहती, तो आज यह देश स्वतंत्र और उन्नतिशील देशों में गिना जाता।

गृह-सरकार क्या करे ?

गृह-सरकार की शक्ति और नेकनीयती दोनों में हमें विश्वास है। यदि पार्लियामेंट इस देश को स्वतंत्रता प्रदान करना चाहे तो किसी भी दिन कर सकती है। भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई आज ६० वर्षों से चल रही है। इस बीच गृह-सरकार की नीति रूढ़िवाद पर क़ायम रही है। यदि इसी तरह धीरे धीरे मुल्क आज़ादी की ओर बढ़ता गया और अन्त में विवश होकर पार्लियामेंट को इसे छोड़ना पड़ा तो बृटेन और हिन्दोस्तान दोनों के सम्बन्ध में कोई विशेषता नहीं रह जायेगी। पिछली नेकियाँ भी भूल जायेंगी। इससे श्रेयस्कर एक दूसरा मार्ग दोनों देशों के सामने मौजूद है। हिन्दोस्तान का दोहरा शासन हटा दिया जाय। १९१९ ई० में बृटिश प्रान्तों में जब दोहरे शासन की नींव डाली गई थी तो लोगों ने इसका विरोध किया। कुछ समय बाद इसकी असफलता अपने आप ज़ाहिर हुई। १९३५ ई० के संघ-शासन विधान में प्रान्तों से दोहरा शासन हटाकर केन्द्र में स्थापित किया गया है। यद्यपि संघ-शासन अभी पूरी तरह कार्यान्वित नहीं है, परन्तु इसकी टीका-टिप्पणी काफ़ी की गई है। हिन्दोस्तान के राजनीतिक दलों ने एक स्वर से इसका विरोध किया है।

हर देश में एक ही सरकार होती है, परन्तु हिन्दोस्तान ऐसा अभागा है कि यहाँ दो सरकारें हैं। एक तो इसी देश में निवास करती है, परन्तु दूसरी यहाँ से ६००० मील दूर है। जो सरकार यहाँ से दूर है, जिसे इस देश का बहुत कम ज्ञान है और जो इसकी भलाई को गौण समझती है, वही बड़ी सरकार कहलाती है। जो २४ घंटे यहीं मौजूद रहती है और जिसे इस देश का सबसे अधिक ज्ञान है, वह हर मामले में दब्बू बन कर अपना काम करती है। पार्लियामेंट इस देश की भलाई के लिये इस दोहरे शासन को सदैव के के लिये तोड़ दे। सरकारी बन्धन के टूट जाने से हिन्दोस्तान और बृटेन के सम्बन्ध में कोई कमी नहीं पड़ सकती। दोनों देशों में एक ऐसी गहरी दोस्ती रह सकती है जो संसार के अन्य दो मुल्कों में नहीं हो सकती। यह तभी सम्भव है जब बृटेन ख़ुशी ख़ुशी हमारी माँगों को पूरा कर दे। दोनों देशों का सम्बन्ध बराबरी के आधार पर किया जाय। भारतीय शासन की मशीन इसी देश में रक्खी जाय। बृटिश पार्लियामेंट, सम्राट्, प्रिवी कौंसिल, हाई कमिश्नर, इंडिया कौंसिल, भारत मंत्री आदि जितने गृह-सरकार के अंग हैं उनका सम्बन्ध भारत-सरकार से तोड़ दिया जाय।

इसके बदले में, यदि आवश्यकता महसूस हो तो हिन्दोस्तान में ही गवर्नर-जनरल से ऊपर कोई कौंसिल बना दी जाय। देश-हित की दृष्टि से यह प्रबन्ध कहीं अच्छा होगा। कोई सरकार जनता के प्रति तब तक ज़िम्मेवार नहीं हो सकती, जब तक वह उसी देश में निवास न करे।

गृह-सरकार के लिये ये बातें बृटेन के दृष्टि-कोण से काफ़ी हानि-प्रद प्रतीत होंगी। लेकिन गहराई से देखा जाय तो इससे बढ़ कर कोई दूसरा रास्ता बृटेन के सामने मौजूद नहीं है। हिन्दोस्तान को कभी न कभी आज़ादी ज़रूर मिलेगी। यदि इसे हासिल करने में इस देश को कठिन तपस्या करनी पड़ी तो इसमें बृटेन का कोई एहसान न होगा। ऐसे अवसर पर, जब कि आज़ादी के लिये हम इतने लालायित हैं और ग़ुलामी का धब्बा दुनिया की नज़रों से मिटाना चाहते हैं, बृटेन हमारा सर्व-प्रिय बन सकता है। भारत-सरकार पर इस देश की पूरी ज़िम्मेवारी दे देना उसके लिये गौरव की बात है। अन्तिम समय तक दोनों देश एक दूसरे की नेकी को नहीं भूल सकते। कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्खिनी अफ्रीका आदि देशों को बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत जो स्थान प्राप्त हैं वे हिन्दोस्तान के दिये जा सकते हैं। संयुक्त-राज्य अमेरिका की तरह पार्लियामेंट इस देश को एक स्वर से आज़ाद कर दे तो वह घाटे में नहीं रह सकती। अमेरिका और बृटेन के सम्बन्ध को देखते हुए किसी को भी इसका ज्ञान हो सकता है।

गृह-सरकार और भारत-सरकार का सम्बन्ध बृटेन और हिन्दोस्तान का सम्बन्ध है। यही वजह है कि इसका वर्णन कुछ विस्तार के साथ करना पड़ा है। इन दोनों देशों के सम्बन्ध में जो साहित्य लिखा जा सकता है वह अभी नहीं के बराबर है। पक्षपात छोड़कर इनके सम्बन्ध में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों मौजूद हैं। दोनों देशों की सरकारें अपने-अपने देश के हित का ध्यान रखती हैं। इनका स्थायी संबन्ध तब तक अच्छा नहीं रह सकता जब तक दोनों बराबरी के दर्जे से आपस में न मिलें। गृह-सरकार एक विदेशी सरकार है। अच्छी से अच्छी विदेशी सरकार हितकर नहीं होती। कुछ समय के लिये इसकी उपयोगिता भले ही हो, परन्तु इसे स्थायी क़रार देना हानिकर होता है। ग़ुलाम देशों के इतिहास इस बात के प्रमाण हैं कि स्वतन्त्र सरकार का मुक़ाबिला अच्छी से अच्छी विदेशी सरकार नहीं कर सकती।*

—:०:—

* A good foreign government is not an alternative to self-government.

दूसरा खंड

केन्द्रीय सरकार

(CENTRAL GOVERNMENT)

अध्याय ७

गवर्नर-जनरल और वाइसराय

पदों का स्पष्टीकरण

भारत-सरकार के अन्दर सबसे प्रधान व्यक्ति गवर्नर-जनरल और वाइसराय है। १७७४ ई० में वारेन हेस्टिंग्स पहिला गवर्नर-जनरल हुआ। तब से १८५८ ई० तक कुल १७ गवर्नर-जनरल हुए। जब हिन्दोस्तान का शासन-प्रबन्ध कम्पनी से पार्लियामेंट के हाथ में चला गया तो गवर्नर-जनरल वाइसराय कहलाने लगा। १८५८ से १९४६ तक कुल २२ वाइसराय अब तक हुये हैं। गवर्नर-जनरल और वाइसराय के पद अलग-अलग नहीं है। पार्लियामेंट ने १९३५ तक अपने किसी विधान में वाइसराय शब्द का प्रयोग नहीं किया था। वह गवर्नर-जनरल शब्द का ही प्रयोग करती रही है। सम्राट् का प्रतिनिधि होने के नाते वह वाइसराय कहलाता है, वर्ना क़ानून में अभी तक वह गवर्नर-जनरल के नाम से घोषित किया जाता है। १९३५ के शासन-विधान में गवर्नर-जनरल और वाइसराय के अलग अलग दो पद बना दिये गये हैं। सम्राट् को यह अधिकार है कि वह दो व्यक्तियों को इन पदों पर नियुक्त करे। यह बात कुछ समझ में नहीं आती कि दो प्रधान शासक साथ ही साथ किस प्रकार कार्य करेंगे। अभी एक ही व्यक्ति दोनों पदों पर काम कर रहा है।

गवर्नर-जनरल के पद का संक्षिप्त इतिहास

१७७३ ई० तक हिन्दोस्तान में केवल गवर्नर होते थे। एक कौंसिल की मदद से ये अपना काम स्वतंत्रता-पूर्वक करते थे। प्लासी की लड़ाई के बाद जब कम्पनी की ज़िम्मेवारी बढ़ने लगी तो उसने व्यापार को बढ़ाने की नीयत से कुछ छोटे-मोटे क़ानूनों को बनाने तथा नौकरों की देख-रेख करने का काम इन्हें सौंप दिया। कुछ सदस्यों की एक सभा उसकी सहायता के लिये बना दी गई। सभी गवर्नर

अधिकारों में समान समझे जाते थे और बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स से सीधा सम्बन्ध रखते थे। अभी तक कम्पनी को इस बात की ज़रूरत न थी कि गवर्नर के ऊपर वह कोई नया शासक बनाये। मुग़ल राज्य की कमज़ोरियों के कारण उसके मुनाफ़े बढ़ रहे थे। नई नई फैक्ट्रियाँ बढ़ने लगीं और उनकी रक्षा के लिये छोटे-मोटे क़िले बनाये जाने लगे। इनकी देख-रेख के लिये कम्पनी ने फ़ौज़ का भी इन्तज़ाम किया। कुछ तो योरोप के अन्य व्यापारियों का मुक़ाबिला करने और कुछ अपने राज्य को बढ़ाने के लिये इसकी संख्या बढ़ा दी गई।

अहातों के गवर्नरों की ज़िम्मेवारी काफ़ी बढ़ गई थी। व्यापारिक कामों की देख-भाल के अतिरिक्त उन्हें शासन का भी कार्य देखना पड़ता था। अतएव यह डर था कि ये भिन्न भिन्न स्थानों में अपने तरीक़े पर कोई ऐसा काम न करें जिससे कम्पनी को हानि हो। उसे सारे हिन्दोस्तान में एक वसूल बर्तना था। व्यापार और राज्य के एकीकरण (unity) के लिये एक नये पद की ज़रूरत महसूस हुई। इन गवर्नरों के ऊपर एक ऐसा शासक चाहिये था जो इनमें मेल रखने के अतिरिक्त कम्पनी के डाइरेक्टरों से सीधा सम्बन्ध रखता। १७७३ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पास करके इस कमी को पूरा किया गया। बंगाल का गवर्नर गवर्नर-जनरल बना दिया गया। उसे और उसकी कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि मद्रास, बम्बई और बंगाल अहातों के गवर्नरों की देख-रेख करे। गवर्नरों को उसकी सलाह के बिना लड़ाई और सुलह करने का अधिकार नहीं रह गया। हिन्दोस्तान में कम्पनी की आमदनी और ख़र्च की ज़िम्मेवारी उसे दे दी गई। फिर भी अहातों के गवर्नर उसकी आज्ञाओं की अवहेलना करते रहे। इसीलिये वारेनहेस्टिंग्स को, जो हिन्दोस्तान का पहिला गवर्नर-जनरल था, बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

गवर्नर-जनरल के कामों में परिवर्तन की आवश्यकता थी। अभी तक उसके अधिकार अधूरे थे। १७८४ ई० में पिट का इंडिया बिल पास करके यह कमी किसी हद तक दूर की गई। उसकी शक्ति और बढ़ा दी गई। लड़ाई और सुलह करने का एक मात्र अधिकार इसे दे दिया गया। कार्नवालिस और लार्ड वेलेजली के व्यक्तित्व ने इस पद के महत्व को और भी बढ़ा दिया। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को कम्पनी के राज्यों का सर्वप्रधान घोषित किया गया। १८३३ ई० के ऐक्ट के अनुसार बंगाल का गवर्नर-जनरल सारे हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल घोषित

कर दिया गया। कम्पनी के फ़ौजी और दीवानी अधिकार उसे दे दिये गये। परन्तु सारे हिन्दोस्तान की जिम्मेवारी के साथ उसे बंगाल का शासन-प्रबन्ध भी चलाना पड़ता था। ऐसी दशा में वह देख-रेख का काम अच्छी तरह नहीं कर सकता था।

१८५४ ई० में बंगाल के शासन के लिये एक लेफ्टनेंट गवर्नर की नियुक्ति की गई। इससे गवर्नर-जनरल का भार कुछ हलका हो गया। अब उसे देख-रेख का अधिक अवसर मिलने लगा। उसे चीफ़ कमिश्नरों की नियुक्ति का भी अधिकार दिया गया। इसी के अनुसार मध्य-प्रान्त, ब्रह्मा तथा आसाम आदि प्रान्तों में चीफ़ कमिश्नर नियुक्त किये गये। नये जीते हुए राज्यों का भार सीधे गवर्नर-जनरल के सिर पर आता था। चीफ़ कमिश्नरों की भर्ती के बाद भी वह उसके लिये ज़िम्मेवार था। चूँकी कम्पनी का राज्य काफ़ी बढ़ रहा था इसलिये उसकी ज़िम्मेवारी इस मामले में कम नहीं की जा सकती थी। लार्ड डलहौज़ी इन दिनों हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल था। उसकी नीति ने कम्पनी के राज्य को इतना बढ़ाया कि छोटे छोटे कितने ही राज्य अपनी स्वतंत्रता सदैव के लिये खो बैठे। इसी का परिणाम था कि १८५७ ई० में एक महान् क्रान्ति हुई। पार्लियामेंट ने भारतीय शासन का भार अपने हाथों में ले लिया। महारानी विक्टोरिया ने लार्ड कैनिंक को, जो उस समय हिन्दोस्तान के गवर्नर-जनरल थे, वाइसराय घोषित किया।

गवर्नर-जनरल की नियुक्ति, इसका काल और वेतन

गवर्नर-जनरल की नियुक्ति बृटिश-सम्राट् इंगलैंड के प्रधान मंत्री की सलाह से करता है। यह व्यक्ति बृटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में होता है। व्यक्ति की योग्यता ही इस स्थान के लिये काफ़ी नहीं है। इसके लिये किसी ऊँचे ख़ान्दान का होना आवश्यक है। अभी तक जितने गवर्नर-जनरल और वाइसराय हुए हैं वे सब लार्ड ख़ान्दान के हैं। यद्यपि इस पद के लिये किसी निश्चित उपाधि की आवश्यकता नहीं है; परन्तु प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा योग्य शासक ही इस पर नियुक्त किये जाते हैं। आमतौर से ये इंगलैंड के चुने हुए चन्द कुटुम्बों से भर्ती किये जाते हैं। नियुक्ति के पहिले यह आवश्यक है कि वह कहीं शासन का कार्य कर चुका हो। यह आवश्यक नहीं है कि वह हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में विशेषज्ञ हो। अधिकतर वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल कैबिनेट के मंत्री रहे हैं। लार्ड कर्ज़न, लार्ड चेम्सफोर्ड, लार्ड रीडिंग तथा लार्ड इर्विन बृटिश कैबिनेट के मंत्री

थे। गवर्नर जनरल का स्थान किसी पार्टी से सम्बन्ध नहीं रखता। यद्यपि यह व्यक्ति बृटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में से होता है, परन्तु इस पद पर उसे निष्पक्ष भाव से काम करना पड़ता है। बृटेन की सरकार और भारत-मंत्री बदल जाते हैं, परन्तु वह अपनी अवधि तक कार्य करता है। ऐसा भी देखा गया है कि दलबन्दी के कारण उसमें और भारत-मंत्री में मतभेद हो जाय। ऐसी हालत में उसे अपने पद से इस्तीफ़ा देना पड़ता है। यह प्रथा राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय है। हिन्दोस्तान के लिये यह सौभाग्य का विषय है कि यहाँ के प्रश्न बृटिश दल बन्दियों से अलग समझे जाते हैं। परन्तु कार्य रूप में ऐसा कम होता है।

गवर्नर-जनरल ५ वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते हैं। पहले इन्हें इस अवधि के अन्दर छुट्टी लेकर हिन्दोस्तान से बाहर जाने की आज्ञा न थी। यदि किसी कारण विशेष से ये बाहर जाना चाहते, तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ता था। १६२४ ई० में इस नियम में परिवर्तन किया गया। उस समय से उन्हें छुट्टी देने का विधान बनाया गया। भारत-मंत्री को यह अधिकार दिया गया कि अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें अधिक से अधिक ४ महीने की छुट्टी दे सकता है। यह केवल एक बार और एक ही साथ ली जा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर पार्लियामेंट उसके समय को बढ़ा सकती है। पिछले गवर्नर-जनरल की अवधि ५ वर्ष से बढ़ा कर ७ वर्ष कर दी गई थी। लार्ड डलहौजी ८ वर्ष तक हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल था। लार्ड कार्नवालिस ने ७ वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। आरम्भ से अब तक जितने गवर्नर-जनरल और वाइसराय हुए हैं इनमें लार्ड डलहौज़ी का समय सबसे बड़ा है। सर एल्फ्रेड क्लार्क, जान स्टेची और लार्ड नेपियर सबसे कम दिन तक इस पद पर काम कर सके। प्रत्येक का समय एक साल के अन्दर ही समाप्त हो गया।

गवर्नर-जनरल संसार में सबसे अधिक वेतन पाने वाला व्यक्ति है। जितनी तनख्वाह इसे दी जाती है उतनी अमेरिका का प्रेसीडेंट भी नहीं पाता। गवर्नर-जनरल को २,५०,८०० रुपया सालाना वेतन दिया जाता है, जो २,५६,००० रु० सालाना तक किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसे एक लम्बा भत्ता दिया जाता है। उसका अधिकतर समय एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आने जाने में व्यतीत होता है। ये सब ख़र्चे भारतीय सरकारी ख़ज़ाने से दिये जाते हैं। वेतन और भत्ता सब जोड़ने

पर उसे हर साल लगभग १८ लाख रुपया मिलता है। इतनी लम्बी रक़म इंगलैंड का प्रधान मंत्री भी नहीं पाता। हिन्दोस्तान संसार के सबसे ग़रीब देशों में गिना जाता है। ऐसी दशा में यहाँ के प्रधान शासक को इतनी लम्बी तनख़्वाह देना उचित नहीं है।

गवर्नर-जनरल के अधिकार

गवर्नर-जनरल के अधिकार के विषय में हमें एक बात का ध्यान रखना होगा। १९३५ ई० तक इसके अधिकार कुछ कम थे परन्तु नये शासन-विधान में काफ़ी वृद्धि कर दी गई है। इसलिये पहिले हम उसके अधिकारों का वर्णन नये शासन-विधान का ध्यान छोड़ कर करेंगे। ये अधिकार अब भी उसे प्राप्त हैं। १९३५ में जो अधिकार बढ़ा दिये गये हैं उनका वर्णन इसी अध्याय के अन्त में किया गया है।

गवर्नर-जनरल की ज़िम्मेवारी के विषय में यह कहा जाता है कि इतने बड़े रुतबे का दर्जा बृटिश साम्राज्य में कोई दूसरा नहीं है।*

रैम्ज़ेमेकडानेल्ड लिखते हैं—"यह हिन्दोस्तान में एक सम्राट् से कम नहीं है; शासन की ज़िम्मेवारी इसी को दी गई है; यही सब कुछ है।†

जिस समय वह हिन्दोस्तान में पदार्पण करता है अथवा यहाँ से विदा होता है उस समय बड़ी शान शौक़त के साथ उसका स्वागत और अलविदा होता है। हाईकोर्ट तक उस पर मुक़दमा नहीं चला सकती। वह हिन्दोस्तान में गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता। अमेरिका का प्रेसीडेन्ट लावेल लिखता है, "रूस का ज़ार और हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल दोनों वर्तमान युग के बहुत बड़े स्वच्छन्द शासकों (autocrats) में से हैं" ‡ यही वजह है कि बृटेन के अच्छे से अच्छे लोग इस पद के लिये लालायित रहते हैं।

---

* He occupies the most responsible as it is the most picturesque and distinguished office in the overseas service of the British Crown.

† He is the crown visible in India, the ceremonial head of the sovereignty, the great lord.

‡ The Governor-General or Viceroy of India, and The Czar of Russia are said to be the two great autocrats of the modern world.

गवर्नर-जनरल के अधिकारों को दो श्रेणियों में बाँटा गया है। पहिली श्रेणी में वे अधिकार हैं जिन्हें वह स्वयं कार्यान्वित करता है। दूसरी श्रेणी के अधिकारों को वह अपनी कौंसिल के साथ प्रयोग में लाता है। पहिले हम उन अधिकारों का वर्णन करेंगे जिन्हें वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लाता है।

गवर्नर-जनरल के निजी अधिकार

१९३५ के शासन-विधान में गवर्नर-जनरल के निजी अधिकार इतने अधिक हैं कि इसकी शक्ति पहिले से दूनी हो गई है। आवश्यकता पड़ने पर शान्ति और भारतीय हित की दृष्टि से वह अपनी इच्छानुसार फ़रमान (Ordinance) जारी कर सकता है। इसका प्रभाव अधिक से अधिक ६ महीने तक होगा। इसे जारी करने के पहले वह भारत-मंत्री से इसकी सलाह लेता है। ६ महीने बाद वह इसी फ़रमान को फिर ६ महीने के लिये जारी कर सकता है। १९२४ ई० में लार्ड रीडिंग ने बंगाल में फ़रमान जारी किया था। असहयोग आन्दोलनों के समय कितनी ही बार ये फ़रमान जारी किये गये हैं। आज भी लड़ाई के ज़माने में दर्जनों फ़रमान जारी किये गये हैं। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह अपनी कौंसिल के बहुमत को रद्द कर सके। उसके हाथ में तीन शब्दों के हथियार (Safety, Tranquillity and interests of British India) ऐसे दिये गये हैं कि वह सब कुछ कर सकता है। १८७९ ई० में लार्ड लिटन ने अपनी कौंसिल के बहुमत को ठुकरा दिया था।

१७८३ ई० से गवर्नर-जनरल को निजी अधिकारों से सुसज्जित करने का ताँता आरम्भ हुआ। तब से यह बराबर जारी है। जब वह दौरे पर रहता है और उसकी कौंसिल उसके साथ नहीं रहती, उस समय वह अपनी निजी शक्ति का प्रयोग करता है। इस दशा में वह उन सारे कामों को करने का अधिकारी है जिन्हें वह अपनी कौंसिल के साथ करता है। प्रान्तीय गवर्नरों तथा सरकारी कर्मचारियों को वह कोई भी हुक्म दे सकता है। इस प्रकार के हुक्मों की एक प्रति उसे भारत मन्त्री को भेजनी पड़ती है। वाह्य और राजनीतिक विभाग (Foreign and Political Departments) उसी के हाथों में दिये गये हैं। हिन्दोस्तान से बाहर सरकारी पत्र व्यवहार उसी के अधिकार से होते हैं। चेज़्नी का कहना है कि "यह विभाग सबसे महत्वपूर्ण और कठिन है।" भारतीय रियासतों में उसे दख़ल देने का पूरा अधिकार है।

लार्ड कर्ज़न लिखता है 'संसार में भारत सरकार के राजनीतिक विभाग से बढ़ कर कोई दूसरा ज़िम्मेवार महक़मा नहीं है ।''*

इन दोनों विभागों को चलाने के लिये गवर्नर-जनरल दो सहायक मंत्रियों से काम लेता है। इनके अतिरिक्त सात और मंत्री इसमें काम करते हैं। इस विभाग का विस्तृत वर्णन गवर्नर-जनरल की कौंसिल के साथ किया जायेगा।

गवर्नर-जनरल को बड़ा से बड़ा अपराध क्षमा करने का अधिकार है। यदि किसी को फाँसी की सज़ा दी गई है तो वह अपने निजी अधिकार से उसे मुक्त कर सकता है। बंगाल, मद्रास और बम्बई अहातों के गवर्नरों को छोड़ कर बाक़ी सूबों के गवर्नर सम्राट् द्वारा गवर्नर-जनरल की सलाह से नियुक्त किये जाते हैं। उसे अधिकार है कि किसी सूबे के एक हिस्से पर शासन करने के लिये डिप्टी-गवर्नर नियुक्त कर सके। सम्राट् की सलाह से लेफ़्टिनेंट गवर्नर और उनकी कौंसिल के सदस्यों को वह भर्ती करता है। अपनी कौंसिल की सहायता के लिये लेजिस्लेटिव असेम्बली से कौंसल सेक्रेटरी नियुक्त करने का अधिकार उसे प्राप्त है। नई-नई पदवियाँ—महाराजा, नवाब, राजा, महामहोपाध्याय, आगमपण्डिता, दीवान बहादुर, सरदार बहादुर, राय साहेब, ख़ाँ साहेब, शमशुलउल्मा—प्रदान करने का उसे अधिकार है। वह इन्हें ख़ानदानी अधिकार के रूप में किसी को प्रदान कर सकता है।

कहने के लिये वह सारा काम अपनी कौंसिल की सहायता से करता है, परन्तु वह जब चाहे इसकी अवहेलना कर सकता है। केन्द्रीय धारा सभा की अवधि वह बढ़ा सकता है। उसे जब चाहे बर्ख़ास्त भी कर सकता है। धारा-सभा द्वारा पास किये गये क़ानूनों को वह रद्द कर सकता है। यदि कोई क़ानून-धारा सभा द्वारा पास करने से इनकार कर दिया जाता है तो वह अपने निजी अधिकारों से उसे पास कर सकता है। केन्द्रीय आय का बहुत बड़ा हिस्सा वह अपनी इच्छानुसार ख़र्च कर सकता है। धारा सभा किसी मद में रुपया ख़र्च करने से इनकार कर दे तो गवर्नर-जनरल अपनी ताक़त से उस मद में ख़र्च

* There is no more varied or responsible service in the world than the Political Department of the Government of India.

कर सकता है। केन्द्रीय धारा-सभा में कुछ बिल तब तक पेश नहीं किये जा सकते, जब तक गवर्नर-जनरल की आज्ञा प्राप्त न कर ली जाय। प्रान्तों के गवर्नर उसकी मर्ज़ी के बिना अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते।

भारतीय रियासतों में हाथ डालने का अधिकार गवर्नर-जनरल और वाइसराय को दिया गया है। इन कामों के लिये वह भारत-मंत्री से सलाह लेता है। प्रति सप्ताह उसके तथा भारत मंत्री के बीच में हिन्दोस्तान की छोटी-छोटी घटनायें लिखी जाती हैं। भारत-मंत्री एक गुप्त पत्र द्वारा हर सप्ताह उसे नई नई बातों की सूचना देता रहता है। इन्हीं पत्रों द्वारा गवर्नर-जनरल को अपनी नीति निर्धारित करनी पड़ती है। कहने के लिये वह भारत-मंत्री की मातहती में कार्य करता है, परन्तु ६००० मील की दूरी से किस मात्रा में भारत-मंत्री उस पर अपना अधिकार रख सकता है, यह हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। जो सुविधायें और अधिकार उसे प्राप्त हैं वे किसी को शायद ही नसीब होते हों। यह कथन सर्वथा ठीक है कि अमेरिका का प्रेसीडेन्ट केवल शासन करता है, राज्य नहीं; इसके विपरीत इंगलैंड का सम्राट् केवल राज्य करता है शासन नहीं; परन्तु फ्रांस का प्रेसीडेन्ट राज्य और शासन कुछ भी नहीं करता।* हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल शासन और राज्य दोनों करता है।

१९३५ के शासन-विधान में गवर्नर-जनरल के अधिकार

१९३५ के संघ शासन-विधान में गवर्नर-जनरल के अधिकार और बढ़ा दिये गये हैं। इस शासन-विधान में उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं रक्खी गई है। निजी अधिकारों के अतिरिक्त उसे बहुत से विशेष अधिकार दिये गये हैं। उसकी शक्ति का विश्लेषण करने पर उसके अधिकार ७ कोटि में रक्खे जा सकते हैं।

१—वे अधिकार जो संरक्षित विभागों (Reserved Departments) में काम में लाये जायेंगे।

---

* The constitutional monarch of the United Kingdom reigns but does not rule, the President of the United States of America rules, but does not reign; the President of the French Republic neither reigns nor rules; The Governor-General of India both reigns as well as rules.

२—वे अधिकार जिन्हें वह मनमाना प्रयोग में ला सकता है।

३—वे अधिकार जो उसके निजी फ़ैसले पर काम में लाये जा सकते हैं।

४—वे अधिकार जिन्हें मंत्रियों की सलाह द्वारा वह काम में लायेगा।

५—प्रान्तीय शासन में उसके विशेषाधिकार।

६—रक्षा, बाह्य विभाग, तथा पिछड़े हुए भागों (Excluded Areas) में उसके अधिकार।

७—वे अधिकार जिन्हें वह वाइसराय की हैसियत से देशी रियासतों में प्रयोग में लायेगा।

इससे स्पष्ट है कि वह उन तमाम अधिकारों से सुसज्जित किया गया है जिनके सामने सरकारी क़ानून तुच्छ जान पड़ते हैं। केन्द्रीय सरकार की आमदनी का ८० प्रतिशत ख़र्च उसके हाथों में रहेगा। बाक़ी २० प्रतिशत में भी वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। संघ-शासन-विधान की १२६ धारा के अनुसार प्रान्तीय धारा सभाओं पर उसका पूरा अधिकार होगा। नये शासन-विधान में उसके अधिकार दो प्रकार के होंगे। एक को वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लायेगा और दूसरे प्रकार के अधिकार वे होंगे जिन्हें वह मन्त्रियों की सलाह से प्रयोग करेगा। बाह्य सम्बन्ध; रक्षा, धार्मिक विषय तथा पिछड़े हुए विभागों में उसके अधिकार स्वतन्त्र रूप से बर्ते जायेंगे। मन्त्रियों को उनमें दख़ल देने का कोई अधिकार न होगा। इस शासन-विधान में वह अपने कुछ अधिकारों का प्रयोग गवर्नर-जनरल की हैसियत से करेगा और कुछ का प्रयोग वाइसराय की हैसियत से। १६१६ के शासन-विधान के अनुसार बृटिश प्रान्तों में दोहरा शासन स्थापित किया गया था। इसके अन्तर्गत गवर्नर की शक्ति इतनी अधिक थी कि प्रान्तों का शासन बहुत ही दोष-पूर्ण साबित हुआ। १६३५ के शासन-विधान में प्रान्तों का दोहरा शासन तोड़कर केन्द्रीय शासन में लागू कर दिया गया है। इससे गवर्नर-जनरल की शक्ति दूनी बढ़ा दी गई है। अपने कौंसिल के सदस्यों को भर्ती करने का उसे पूर्ण अधिकार है। उनकी ज़िम्मेवारी धारा सभा के प्रति न होकर उसके प्रति होगी। कौंसिल सम्बन्धी बातों का विशेष वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों के सामने और अधिकार फीके पड़ जाते हैं। ये विशेषाधिकार ८ प्रकार के हैं:—

१—यदि हिन्दोस्तान के किसी हिस्से में अमन चैन में कमी पड़ जाय तो वह अपने विशेषाधिकारों द्वारा उसे शान्त कर सकता है।

२—यदि संघ सरकार की आर्थिक शक्ति डाँवाडोल हो जाय तो वह अपने विशेषाधिकारों द्वारा उसे ठीक कर सकता है।

३—अल्पसंख्यक वर्गों की रक्षा के लिये वह अपने विशेष अधिकारों को काम में ला सकता है।

४—सरकारी नौकरों तथा अफ़सरों के अधिकारों की रक्षा के लिये विधान बनाने का उसे विशेष अधिकार दिया गया है।

५—अँग्रेज़ी व्यापार की रक्षा के लिये वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

६—यदि बृटेन की बनी हुई चीज़ों पर हिन्दोस्तान में कोई प्रतिबन्ध लगा दिया जाय, तो उनकी रक्षा के लिये वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करेगा।

७—देशी रियासतों तथा राजाओं के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिये वह अपने विशेष अधिकारों को काम में ला सकता है।

८—यदि किसी प्रकार से शासन में कोई बाधा उत्पन्न हो जाय तो उसे दूर करने का उसे विशेष अधिकार दिया गया है।

इन विशेष अधिकारों से ज़ाहिर है कि गवर्नर-जनरल संघ शासन में एकतंत्र राज्य करेगा। इन अधिकारों के शब्द इतने गोलमाल हैं कि हम इन्हें स्पष्ट नहीं कर सकते। गवर्नर-जनरल जब और जहाँ चाहेगा दख़ल दे सकेगा। अशान्ति, आर्थिक डाँवाडोल, कुप्रबन्ध, शान्ति इत्यादि ऐसे गोल शब्द हैं कि इनका अर्थ मनमाना लगाया जा सकता है। इनके लिये कोई कोष अथवा लोग़द नहीं है। गवर्नर-जनरल इनका जो अर्थ चाहेगा निकाल लेगा। यह बात विचारणीय है कि संघ-शासन-विधान में गवर्नर-जनरल को इतने अधिकार क्यों दिये गये हैं। इस शासन-विधान में थोड़े बहुत अधिकार हिन्दोस्तानियों को भी प्राप्त हैं। वे इन अधिकारों का प्रयोग किसी सीमा के अन्दर करते रहें। इसीलिये विशेषाधिकारों की रचना की गई है। कीथ का कहना सर्वथा ठीक है कि, "गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकार मंत्रियों की ज़िम्मेवारी को कुचल सकते हैं।"

फ़ौज पर एकमात्र अधिकार गवर्नर-जनरल का रहेगा। हिन्दोस्तान की आमदनी का ५७ फ़ी सदी केवल फ़ौज पर ख़र्च किया जाता है। १९३८ ई० में भारत-सरकार की कुल आमदनी ७७ करोड़ रुपये थी। इसमें ४१ करोड़ रुपया फ़ौज पर ख़र्च किया गया था। यह फ़ौज गवर्नर-

जनरल के हाथों में रहेगी। वह अपनी इच्छानुसार इसे हिन्दोस्तान से बाहर भेज सकेगा। यद्यपि इसके लिये उसे मन्त्रियों से सलाह लेनी होगी, परन्तु वह अपने विशेष अधिकारों द्वारा इसका मनमाना उपयोग करेगा। अपने विशेषाधिकारों में वह मन्त्रियों से सलाह ले सकता है, परन्तु इससे वह बाध्य नहीं है। उसके तथा गवर्नर के विशेष अधिकार पूरी तरह प्रयोग में लाये जायँ, तो राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। १९३५ के ऐक्ट की १५ वीं धारा के अनुसार गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करेगा जो उसे आर्थिक विषयों में सलाह देगा। उसका समय और वेतन वही निश्चित करेगा। यह व्यक्ति अपने कार्यों के लिये उसी के प्रति ज़िम्मेवार होगा। संघ न्यायालय के जजों में से वह किसी को भी ऐडवोकेट जनरल नियुक्त कर सकता है। उसका वेतन निश्चित करने का अधिकार उसी को दिया गया है। उसका कार्य संघ सरकार को क़ानूनी मामलों में सलाह देना होगा, लेकिन वह सभी प्रकार से गवर्नर-जनरल के अधिकार में होगा। ऐडवोकेट-जनरल दोनों धारा सभाओं में बैठने तथा बोलने का अधिकारी होगा, परन्तु वोट नहीं दे सकता।

डिप्टी गवर्नरों, लेफ्टिनेंट गवर्नरों, कौंसिल आफ़ स्टेट के सभापति तथा अपनी कौंसिल का उपसभापति—इन्हें नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया गया है। धारा-सभा के सदस्यों के चुनाव की आज्ञा वही देगा। बैठक तथा विदाई उसी की आज्ञा से होगी। वह अपनी कौंसिल के बहुमत को ठुकरा सकेगा तथा बड़े से बड़े अपराध को क्षमा कर सकेगा। सरकारी आय-व्यय के सम्बन्ध में उसकी आज्ञा के बिना कोई सभा विचार नहीं कर सकती। धारा-सभा के विरोध करने पर भी वह जनता के ऊपर टैक्स लगा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वह सरकारी आमदनी को जैसे चाहे ख़र्च कर सकता है। खर्च के सम्बन्ध में धारा सभा के सदस्यों में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाय तो उसका फैसला सब को मानना होगा। श्रीमान् डेविड ग्रेनफ़ाल लिखते हैं, "संघ सरकार की आर्थिक स्थिति की रक्षा के लिये गवर्नर-जनरल सर्व-प्रधान है।"* यह निश्चित नहीं है कि गवर्नर-जनरल आर्थिक विषयों में

*In safeguarding the financial stability of the Federal Government the Governor-General is the supreme authority.

एक विशेषज्ञ होगा। ऐसी दशा में ८० प्रतिशत ख़र्च की ज़िम्मेवारी उसके हाथ में दे देना उचित नहीं है।

यदि गवर्नर-जनरल कोई क़ानून पास कराना चाहे तो वह इस आशय का बिल एक पत्र के साथ धारा-सभा में भेज देगा। यह बिल एक महीने बाद क़ानून का रूप धारण कर लेगा। यह क़ानून 'गवर्नर-जनरल के क़ानून' के नाम से पुकारा जायेगा। ऐसे क़ानून की सूचना वह तुरन्त भारत मन्त्री को देगा, जो उसे पार्लियामेंट के सामने रक्खेगा। यदि पार्लियामेंट चाहे तो उस क़ानून को रद्द कर सकती है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं द्वारा पास किये गये क़ानून तब तक पक्के न समझे जायेंगे, जब तक गवर्नर-जनरल उस पर अपना हस्ताक्षर न कर देगा। ऐसे बिलों को गवर्नर-जनरल ६ महीने तक अपने पास रोक सकता है। किसी भी बिल को, जो धारा-सभाओं में पेश हैं और जिस पर वादविवाद हो रहा है, वह अपने अधिकार से रोक सकता है।

भारतीय रियासतों में गवर्नर-जनरल वाइसराय की हैसियत से हस्तक्षेप करता है। हिन्दोस्तान की २३ प्रतिशत जनता देशी रियासतों में निवास करती है। प्रत्येक रियासत के साथ बृटिश सरकार ने सम्राट् के नाम पर एक सुलहनामा किया है। राजाओं के अधिकारों की रक्षा की ज़िम्मेवारी उसी के ऊपर है। वाइसराय को उसके प्रतिनिधि की हैसियत से यह अधिकार है कि वह रियासतों में जब चाहे दख़ल दे। यदि कोई राजा सम्राट् की शर्तों के विरुद्ध काम करता है तो वाइसराय उसे दण्ड दे सकता है। किसी रियासत की प्रजा राजा के विरुद्ध आवाज़ उठाये तो वह राजा को निकाल बाहर कर सकता है। कहा जाता है कि देशी रियासतों के साथ सम्राट् की जो शर्तें वाइसराय काम में लायेगा उसके समानान्तर इतिहास में कोई दूसरा अधिकार नहीं है।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि गवर्नर-जनरल के अधिकार अनन्त और असीमित हैं। उनके सामने प्रान्तीय-स्वराज्य एक धोखे की टट्टी है। यह प्रान्तीय कॉंग्रेस मन्त्रि मण्डलों के इस्तीफ़े के समय ज़ाहिर हो गया था। गवर्नर-जनरल को यहाँ तक अधिकार दिया गया है कि वह शासन की मशीन के फेल होने पर एक घोषणा द्वारा संघ सरकार की सारी शक्ति अपने हाथों में ले ले। ३ वर्ष तक बिना किसी कौंसिल तथा धारा सभा के वह अकेले शासन कर सकता है। उस बीच में जिन जिन क़ानूनों की ज़रूरत पड़ेगी उन्हें वह स्वयं बनायेगा। जे० एच० मार्बन लिखता है "इस

बीच में गवर्नर-जनरल का अधिकार हिन्दोस्तान के ऊपर किसी तानाशाह से कम न होगा।"*

अध्याय ८

केन्द्रीय कार्यकारिणी

(Central Executive)

कार्यकारिणी की आवश्यकता

पिछले पाठ में गवर्नर-जनरल और वाइसराय की ज़िम्मेवारियों का वर्णन किया गया है। यह सम्भव नहीं है कि वह इतनी बड़ी ज़िम्मेवारी को अकेले निबाहे। इसके लिये आवश्यक है कि उसे कुछ ऐसे सहायक दिये जायँ जो सरकारी कामों को आपस में बाँट कर करें। वह केवल उनकी देख-रेख रक्खे। उसे आरम्भ से ही एक छोटी सी कौंसिल सहायता के लिये दी गई है। इसी को केन्द्रीय कार्यकारिणी कहते हैं। वास्तव में यही सभा गवर्नर-जनरल की सलाह से भारतीय शासन को चलाती है। परन्तु इसमें तथा बृटेन की कैबिनेट में अन्तर है। यद्यपि कार्य की दृष्टि से दोनों का स्थान एक है, परन्तु इनके अधिकारों की कोई तुलना नहीं हो सकती। कैबिनेट के सदस्य सरकारी नौकर नहीं होते। वे जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से होते हैं। वे वकील, डाक्टर, व्यापारी, मज़दूर, किसान तथा इसी प्रकार के अनेक पेशे वाले होते हैं। न केवल पार्लियामेंट, बल्कि समूचे राष्ट्र के वे नेता होते हैं। इसके विपरीत गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में अधिकतर संख्या सरकारी नौकरों की होती है। कुछ सरकारी नौकर जब पेंशन के क़रीब होते हैं तो उन्हें इस सभा में स्थान दे दिया जाता है। बड़ा से बड़ा सरकारी अफ़सर इस पद के लिये लालायित रहता है। इन्हें अभिलाषा रहती है कि सरकार के किसी ख़ास महकमों को हाथ में लेकर अपने यश का प्रदर्शन करें। भारतीय जनता के लिये उनके कार्य उतने लाभदायक नहीं होते जितने सरकारी मशीन को चलाने के लिये। बृटिश कैबिनेट की शक्ति इतनी अधिक है कि इसके सदस्य आज बृटिश-साम्राज्य को चला रहे हैं। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी उसके हाथ की एक कठपुतली है। भारतीय

---

*During this period the whole of India be subject to the dictatorial power of the Governor-General.

राजनीति में गवर्नर-जनरल का स्थान वह नहीं है जो बृटिश राजनीति में प्रधानमन्त्री का है। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों को वह स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त नहीं है जो कैबिनेट के सदस्यों को है। इसीलिये केन्द्रीय कार्यकारिणी और बृटिश कैबिनेट का मुक़ाबिला नहीं किया जा सकता।

आज और कल

वैसे तो केन्द्रीय कार्यकारिणी के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डाला जायगा, परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वर्तमान परिस्थिति में भारतीय शासन बड़ी ही डावाँडोल परिस्थिति में है। किसी भी क्षेत्र में हम आँख मूँद कर प्रवेश नहीं कर सकते। शासन की मशीन के कुछ पुर्ज़े १९१९ ई० के और कुछ १९३५ के ढले हुये हैं। मौजूदा केन्द्रीय कार्यकारिणी का ढाँचा अभी १९१९ ई० के शासन-विधान के अनुसार काम कर रहा है। संघ-शासन के कार्यान्वित होने पर इसकी शकल काफ़ी बदल जायेगी। हमारा शासन-विधान इतना अनिश्चित है कि हम नित्य इसके परिवर्तन का स्वप्न देखते हैं। इसका दारोमदार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर है। कार्यकारिणी के वर्णन में पहले इसकी वर्तमान कार्यपद्धति, तथा अधिकारों का वर्णन किया जायगा। इसके बाद इसकी उस शकल का वर्णन किया जायगा जो १९३५ के संघ शासन-विधान के अनुसार होगी। इसके बाद नई कार्यकारिणी का बयान किया जायगा।

वर्तमान केन्द्रीय कार्य कारिणी

१९१६ ई० में लार्ड हार्डिञ्ज के चले जाने के बाद लार्ड चेम्सफोर्ड हिन्दोस्तान के वाइसराय नियुक्त किये गये। जर्मनी की लड़ाई ज़ोरों पर चल रही थी। हिन्दोस्तान ने बृटिश सरकार की काफ़ी मदद की थी। इसी के फलस्वरूप मान्टेग्यू, जो उन दिनों भारत-मंत्री थे, १९१७ ई० में हिन्दोस्तान आये। यहाँ के वाइसराय चेम्सफ़ोर्ड के साथ उन्होंने सारे हिन्दोस्तान का भ्रमण किया और इस बात की जाँच की कि हिन्दोस्तानियों को कहाँ तक शासन में अधिकार दिया जा सकता है। उनकी रिपोर्ट के आधार पर १९१९ ई० में भारतीय शासन विधान में कुछ परिवर्तन किये गये। यह तै किया गया कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में सदस्यों की संख्या निर्धारित न की जाय। हाईकोर्ट के उन वकीलों के लिये जो कम से कम १० वर्ष तक वकालत कर चुके हों, कौंसिल का दरवाज़ा खोल दिया गया। पहले प्रान्तीय गवर्नरों को यह अधिकार था कि जब कभी कौंसिल की बैठक उनके

सूबों में होती तो वे असाधारण सदस्य की हैसियत से उसकी बैठक में हिस्सा लेते थे। १६१६ के क़ानून के अनुसार उनका यह अधिकार छीन लिया गया। सम्राट् को यह अधिकार दिया गया कि वह जितने सदस्यों को उचित समझे नियुक्त करे। इनमें ३ सदस्य ऐसे होने चाहिये जो कम से कम १० वर्ष तक हिन्दोस्तान में कोई सरकारी नौकरी किये हों। १ सदस्य या तो इंगलैंड या आयरलैंड में १० वर्ष तक बैरिस्टरी, या स्काटलैंड अथवा किसी हिन्दोस्तानी हाईकोर्ट में १० वर्ष तक वकालत किया हो। यदि कमान्डर-इन-चीफ़ कौंसिल का सदस्य हो तो उसका दरजा अन्य सदस्यों से ऊँचा समझा जाय।

सदस्यों में साधारण और असाधारण का भेद हटा दिया गया। वाइसराय को यह अधिकार दिया गया कि वह धारा-सभा के ग़ैर सरकारी सदस्यों में से कुछ कौंसिल-सेक्रेटरीज़ अपनी कार्यकारिणी सभा के लिये चुन ले। इन सेक्रेटरीज़ की तनख़्वाह धारा-सभा निश्चित करती। जब तक वाइसराय चाहे इन्हें सदस्य रख सकता था। मालूम नहीं क्यों अभी तक कोई कौंसिल-सेक्रेटरी नियुक्त नहीं किया गया। कार्यकारिणी सभा में हिन्दोस्तानी सदस्यों की संख्या बढ़ाने का विधान बनाया गया। १६२१ ई० से हिन्दोस्तानी सदस्यों की संख्या एक से बढ़ाकर ३ कर दी गई। कौंसिल के सभी सदस्य भारतीय हो सकते हैं। इसमें कोई क़ानूनी रुकावट नहीं है।

गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में आमतौर से ८ सदस्य होते हैं। विभाजन प्रणाली द्वारा ये सरकारी कामों को आपस में बाँटकर चलाते हैं। वर्तमान युद्ध के आरम्भ होने पर शासन की कार्रवाइयाँ कुछ विशेष नियम के अनुसार चलाई जा रही हैं, इसलिये सदस्यों की संख्या १५ तक बढ़ा दी गई है। युद्ध को संचालित करने के लिये नये सदस्यों की आवश्यकता ज्यों ज्यों बढ़ती गई उसी प्रकार नये विभाग* खोलकर सरकार एक एक को इनका

---

(1) Political (2) War Department (3) Defence (4) Law (5) Home (6) Labour (7) War Transport (8) Finance (9) Post and Air (10) Civil Defence (11) Education, Health and Lands (12) Commerce (13) Indians Overseas (14) Supply (15) India's Information and Broadcasting Department.

प्रधान नियुक्त करती गई। युद्धकालीन कार्यकारिणी में ५ अंग्रेज़ और १० भारतीय सदस्य रहे हैं। साधारणतया सदस्यों की संख्या इतनी नहीं होती और इसकी जो काय पद्धति होती है उसका वर्णन आगे चलकर किया गया है।

कार्य-कारिणी सभा की कार्य-पद्धति

१८६१ ई० के पहिले कार्य-कारिणी सभा सम्मिलित रूप से कार्य करती थी। कार्य विभाजन की प्रणाली अभी तक निर्धारित नहीं की गई थी। गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के सभी मेम्बर एक साथ बैठ कर हर बात का फ़ैसला बहुमत से करते थे। इस से कार्य में बहुत देर होती थी। विभाजन प्रणाली (Departmental System) न होने से काम में उलझन रहती थी। १८३३ ई० में ला मेम्बर तथा १८६१ ई० में फ़िनान्स मेम्बर नियुक्त करके पिछली प्रणाली को दोषपूर्ण सिद्ध किया गया। लार्ड कैनिंग के ज़माने में वर्तमान कार्य पद्धति का श्रीगणेश हुआ। उसने यह निश्चित किया कि कार्य-कारिणी के सदस्य अपना अपना काम बाँट कर करें। केवल आवश्यक कार्यों पर वे एकत्र होकर विचार करें। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। प्रत्येक सदस्य के ज़िम्मे एक या दो विभाग दे दिये गये हैं। सरकार का पूरा काम चन्द विभागों में बाँट दिया गया है। केवल आवश्यक विषयों पर उसे पूरी कौंसिल की सलाह लेनी पड़ती है। यदि एक ही बात दो विभागों में आ जाती है तो इसका विचार कौंसिल की पूरी बैठक में किया जाता है।

कार्य-कारिणी की नियुक्ति ५ वर्ष के लिये की जाती है। प्रत्येक सदस्य को ८०,००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता है। कमान्डर-इनचीफ़, को जो इसी सभा का एक सदस्य होता है, १००,००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता है। यह ख़र्च भारतीय ख़ज़ाने से दिया जाता है। भारत-मन्त्री और उसकी कौंसिल को अधिकार है कि वह गवर्नर-जनरल, उसकी कार्य-कारिणी के सदस्यों तथा कमान्डर-इन-चीफ़ को आवश्यकता पड़ने पर छुट्टी दे सके। ऊपर कहा गया है कि यह छुट्टी अधिक से अधिक ४ महीने तक केवल एक बार दी जा सकती है। यदि भारत-मंत्री चाहे तो छुट्टी की अवधि बढ़ा सकता है, परन्तु पार्लियामेंट के सामने उसे इसका कारण बतलाना पड़ता है। गवर्नर-जनरल कार्य कारिणी का सभापति होता है। इसका उपसभापति वही नियुक्त करता है। सभा की कार्रवाई और उसका स्थान वही निश्चित करता है।

कौंसिल की बैठक सप्ताह में एक बार होती है। सभापति को निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार है। गवर्नर-जनरल अपनी ज़िम्मेवारी से उसके फ़ैसले को रद्द कर सकता है। ऐसी हालत में कौंसिल के कोई भी दो सदस्य उससे इस बात की माँग पेश कर सकते हैं कि वह मतभेद वाले मामले को भारत-मंत्री के सामने भेज दे। गवर्नर-जनरल ऐसा करने के लिये बाध्य है। कौंसिल को जो अधिकार दिये गये हैं उनमें वह दख़ल नहीं दे सकता। उसकी तथा उपसभापति की अनुपस्थिति में कौंसिल का कोई भी मेम्बर सभापति का आसन ग्रहण कर सकता है। इस पद पर उसे सभापति के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। कमान्डर-इन-चीफ़ सभापति का आसन नहीं ग्रहण करता।

ऊपर कहा गया है कि कार्य-कारिणी के काम ८ विभागों में बाँटे गये हैं। वास्तव में ये विभाग समूचे केन्द्रीय सरकार के कामों के विभाग हैं। कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक या दो विभागों का प्रधान है। ये विभाग निम्नलिखित हैं :—

१—वाह्य तथा राजनीतिक विभाग, और भारतीय रियासतें। इन विभागों को गवर्नर-जनरल स्वयं अपने हाथों में रखता है।

२—सेना तथा रक्षा विभाग। कमान्डर-इन-चीफ़ इसका प्रधान होता है।

३—सरकारी नौकरियों, पुलीस, जेल, क़ानून, न्याय, तथा भीतरी राजनीति—इन विभागों की ज़िम्मेवारी होम-मेम्बर के हाथ में होती है।

४—अर्थ तथा बजेट विभाग। फ़िनान्स मेम्बर इसका प्रधान होता है।

५—रेलवे, सड़कें, पोस्ट, टेलिग्राफ़, ब्राडकास्ट, हवाई जहाज़, बन्दरगाह इत्यादि की ज़िम्मेवारी एक सदस्य के ज़िम्में होती है। इसे यातायात सदस्य कहते हैं।

६—धारा विभाग। ला मेम्बर इसका प्रधान होता है।

७—शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि—ये विभाग एक सदस्य के ज़िम्मे किये गये हैं, इसका कोई ख़ास नाम नहीं होता।

८—व्यापार, उद्योग-धन्धे, उद्योग सम्बन्धी सम्पत्ति, बीमा, मज़दूर, इमारत विभाग, सिंचाई, खनिज पदार्थ तथा लिखने पढ़ने की चीज़ें—ये विभाग एक सदस्य के ज़िम्मे किये गये हैं। इसे व्यापार तथा मज़दूर विभाग का सदस्य कहते हैं।

प्रत्येक विभाग का एक प्रधान मंत्री होता है, जिसका दर्जा कार्य-कारिणी के सदस्य से, जो उस विभाग का प्रधान है, छोटा होता है। इस मंत्री का स्थान इंगलैंड में भारत-मंत्री की कौंसिल के सहायक मंत्री के समान कहा जाता है। परन्तु इसमें कुछ अन्तर है। हिन्दोस्तान में कार्य-कारिणी की बैठक में मंत्री को हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया है। हर सप्ताह प्रत्येक मन्त्री गवर्नर-जनरल से मिलकर अपने विभाग की पूरी कार्रवाई का दास्तान उसके सामने पेश करता है। उसे यह अधिकार है कि वह गवर्नर-जनरल का ध्यान किसी बात की ओर, जो उसके विभाग से सम्बन्ध रखती है, विशेष रूप से दिला सके। इसके विपरीत भारत-मंत्री के सहायक-मंत्री को इंडिया कौंसिल की बैठक में हिस्सा लेने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय कार्य-कारिणी सभा के प्रत्येक विभाग का मंत्री ३ वर्ष के लिये नियुक्त किया जाता है। कहने के लिये वह कार्य-कारिणी सभा के सदस्य की मातहती में कार्य करता है, परन्तु वह वाइसराय को उन बातों में भी प्रभावित कर सकता है जिनका सदस्य को पता तक नहीं है। यह चीज़ इसलिये बनाई गई है कि कौंसिल के सदस्य अपनी आज़ादी की सीमा को पार न कर जायँ। मंत्रियों की सलाह से गवर्नर-जनरल प्रत्येक विभाग के कामों की जानकारी रखता है। राष्ट्रीय सरकार की दृष्टि से यह प्रबन्ध दोषपूर्ण है। इसके मानी यह है कि कौंसिल के सदस्यों का विश्वास नहीं किया जाता।

विभाग प्रणाली
Depart-
mental
System

ऊपर कहा गया है कि लार्ड कैनिंग के ज़माने से कार्य-कारिणी सभा का काम कई विभागों में बाँट दिया गया है। प्रत्येक सदस्य एक या दो विभागों का प्रधान होता है। अच्छा होगा कि प्रत्येक की ज़िम्मेवारी का संक्षिप्त विवरण कर दिया जाय। इससे यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि प्रत्येक विभाग में किस प्रकार का कार्य किया जाता है।

वाह्य और राजनीतिक विभाग

१—गवर्नर-जनरल स्वयं इन विभागों का प्रधान है। यह विभाग सब से महत्वपूर्ण माना गया है। भारत सरकार का विदेशों से क्या सम्बन्ध है तथा भारतीय रियासतों में कैसा प्रबन्ध हो रहा है। इनकी देख रेख इसी विभाग के अन्दर की जाती है। गवर्नर-जनरल ७ मंत्रियों के साथ इस विभाग को सँभालता है।

सेना विभाग

२ - इस विभाग का कार्य फ़ौज़ का प्रबन्ध करना है। फ़ौज़ सम्बन्धी क्या नीति हो इसकी ज़िम्मेवारी इस विभाग के प्रधान पर रहती है स्थल सेना, जल सेना तथा हवाई जहाज़ सब इस विभाग के अन्दर शामिल हैं। कमान्डर-इन-चीफ़ इसका प्रधान है। यह अपना कार्य ५ मंत्रियों की सहायता से करता है।

होम विभाग

३—इस विभाग के अन्दर देश की भीतरी राजनीति का कार्य किया जाता है। आजन्म कारावास के कैदियों की देख रेख यही विभाग करता है।

क़ानून विभाग

४—इस विभाग का प्रधान ला मेम्बर कहलाता है। किसी क़ानूनी मामले पर विचार करने के लिये धारा-सभा जब कोई कमीटी बनाती है तो यह उसमें हिस्सा लेने का अधिकारी है। धारा-सभाओं में पेश होने वाले सरकारी बिलों का मसौदा यही बनाता है। प्रान्तीय धारा-सभायें जो क़ानून पास करती हैं उन पर केन्द्रीय सरकार की राय देने का अधिकार इसी को है।

रेलवे और व्यापार विभाग

५—यह विभाग हिन्दोस्तान की रेलों पर अधिकार रखता है। रेल तथा जहाज़ द्वारा इस देश में तथा विदेशों से जो व्यापार होता है उसकी देख रेख यही करता है। बीमा करने वाली कम्पनियाँ इसी के आधीन होती हैं।

उद्योग धन्धे तथा मज़दूर विभाग

६—यह विभाग मज़दूरों के संगठन, फैक्ट्रियों के क़ानून, अन्तर्राष्ट्रीय-मज़दूर-संगठन, बिजली, पोस्ट और टेलीग्राफ़, सिंचाई, सरकारी इमारतों—इन बातों पर अधिकार रखता है।

शिक्षा स्वास्थ्य और भूमि विभाग

७—यह विभाग शिक्षा, भूमि कर, खेती, जंगल तथा भूमि सम्बन्धी नई नई खोजें, अकाल, खान पान की चीज़ें, विदेश यात्रा, देश की नाप पड़ताल, अस्पताल, स्वास्थ्य, स्वायत्तशासन, लाइब्रेरी अजायब-घर तथा सरकार के खोदाई विभाग पर अधिकार रखता है।

अर्थ विभाग

८—इस विभाग का प्रधान फ़िनान्स मेम्बर कहलाता है। यह केन्द्रीय सरकार की आय-व्यय का ब्यौरा रखता है। प्रान्तीय सरकार के आय-व्यय इसी की मातहती में होते हैं। सरकारी कर्मचारियों को तनख़ाहें, पेन्शन तथा उनकी छुट्टियाँ इसी के अधिकार में रक्खे गए हैं। सिक्के ढालना, बैंक, टक्साल

घर तथा भारतीय ऋण पर इसी का अधिकार है। इसकी एक शाखा फ़ौज़ सम्बन्धी ख़र्च का हिसाब रखती है। दूसरी शाखा, चुंगी, नमक कर, अफ़ीम कर, तथा नशे के सम्बन्ध के अन्य कर और रसीदी टिकट-- इनकी देख रेख करती है। फ़िनान्स मेम्बर का कर्त्तव्य है कि वह ख़र्चे को आमदनी से बढ़ने न दे। जब कभी गवर्नर-जनरल के सामने आमदनी और ख़र्च सम्बन्धी कोई बात आती है तो फ़िनान्स मेम्बर से सलाह लेता है। प्रति वर्ष वह बजट को पेश करते समय अपना एक वक्तव्य देता है, जिसे सुनने के लिये लोग लालायित रहते हैं।

केन्द्रीय कार्य-कारिणी के अधिकार

वास्तव में कार्यकारिणी सभा स्वयं कोई अधिकार नहीं रखती। गवर्नर-जनरल से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह सभा उसी की सहायता के लिये बनाई गई है। जो कुछ थोड़े बहुत अधिकार इसे प्राप्त हैं, वे तभी तक हैं जब तक गवर्नर-जनरल उन्हें चुपचाप मान लेता है। गवर्नर-जनरज को यह अधिकार है कि वह कौंसिल के बहुमत को रद्द कर सके। चन्द विषय ऐसे हैं जिनमें उसे इसकी राय माननी पड़ती है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इनमें भी वह मनमानी कर सकता है। जब कोई लड़ाई अथवा सुलह करनी होती है तो वह कौंसिल से राय लेता है। प्रान्तीय सरकारों को यह आज्ञा है कि वे अपने कार्यों की सूचना कौंसल को देते रहें। उसकी राय से गवर्नर-जनरल हिन्दोस्तान के लिये क़र्ज़ ले सकता है, नई ज़मीन ख़रीद सकता है, तथा कोई सम्पत्ति बेंच या धरोहर रख सकता है। इसकी सलाह से वह कोई नया सूबा क़ायम कर सकता है। किसी सूबे के एक हिस्से को वह पिछड़ा हुआ विभाग घोषित कर सकता है। इसकी सलाह से वह प्रान्तीय गवर्नरों की कार्यकारिणी सभा बना सकता है। इसी की राय से वह किसी सूबे की सीमा बदलता है।

गवर्नर-जनरल चाहे तो अपनी कौंसिल की सलाह से गवर्नरों अथवा कमिश्नरों के सूबों में धारा-सभा का निर्माण कर सकता है। हाईकोर्ट के अधिकारों का क्षेत्र उसे कम करने का अधिकार है। यदि किसी हाईकोर्ट में नये जज की आवश्यकता महसूस हो तो कौंसिल की सलाह से वह अधिक से अधिक २ वर्ष के लिये उसे नियुक्त कर सकता है। किसी जज को वह प्रधान जज के स्थान पर कुछ अवधि के लिये रख सकता है। एशिया महाद्वीप में स्थित देशों के साथ वह कौंसिल की सलाह से कोई सुलह अथवा सम्बन्ध क़ायम कर सकता है। तात्पर्य यह है कि लगभग सभी आवश्यक

विषयों में गवर्नर-जनरल कौंसिल की सलाह लेता है। परन्तु विशेष परिस्थिति में वह इससे बाध्य नहीं है।

१९३५ के शासन-विधान में संघ कार्य-कारिणी

१९३५ के संघ शासन विधान में केन्द्रीय सरकार में दोहरा शासन (Dyarchy) स्थापित किया गया है। गवर्नर-जनरल के दो प्रकार के अधिकार दिये गये हैं। कुछ तो वे हैं जिन्हें वह थोड़े से मंत्रियों की सलाह से करेगा। इनके अतिरिक्त उसे बहुत से विशेषाधिकार दिये गये हैं जिनके लिये वह कुछ सहायक रख सकता है। इन दोनों प्रकार के सहायकों की सभायें अलग अलग होंगी और इनका निर्माण भी दो प्रकार से किया जायगा। इनके अधिकारों में काफ़ी अन्तर होगा। तात्पर्य यह है कि संघ शासन-विधान में केन्द्रीय कार्यकारिणी की वही शकल होगी जो १९१९ के शासन-विधान में प्रान्तीय कार्यकारिणी की थी। इनका अलग अलग वर्णन करना अच्छा होगा। संघ शासन में केन्द्रीय सरकार के विषय दो भागों में बाँटे गये हैं। एक भाग में वे विषय हैं जिन पर एक मात्र अधिकार गवर्नर-जनरल का होगा। दूसरे भाग में वे विषय हैं जो मन्त्रियों के हाथ में रक्खे गये हैं। रक्षा, वाह्य विषय, धार्मिक विषय, तथा पिछड़े हुए भागों का शासन-प्रबन्ध, गवर्नर-जनरल के हाथ में दिया गया है। इन्हें वह अपनी इच्छानुसार चलायेगा। बाक़ी विषय मंत्रियों की एक सभा के हाथ में रहेंगे। परन्तु इसमें भी उसे दखल देने का अधिकार होगा।

मंत्रियों की सभा Council of Ministers

जो ४ विभाग गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकार के अन्तर्गत रक्खे गये हैं उन्हें छोड़कर बाक़ी विषयों में सलाह लेने के लिये जो सभा होगी उसका नाम मंत्रियों की सभा (Council of Ministers) होगा। ये मंत्री गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। इन्हें तब तक कार्य करने का अधिकार होगा जब तक उसकी इच्छा होगी। सभी मंत्री संघ धारा-सभा (Federal Legislature) के सदस्य होंगे। यदि गवर्नर-जनरल चाहे तो वह किसी बाहरी आदमी को मंत्री नियुक्त कर सकेगा परन्तु उसे ६ महीने के अन्दर धारा सभा का सदस्य बन जाना आवश्यक होगा। यदि वह न बन सका तो मंत्रियों की सभा से हटा दिया जायेगा। मंत्रियों की सभा में अधिक से अधिक १० मंत्री होंगे। इनका वेतन संघ धारा-सभा निश्चित करेगी; परन्तु वह घटाया बढ़ाया नहीं जायेगा। गवर्नर जनरल को अधिकार

होगा कि वह जब चाहे इन्हें निकाल दे। जब तक धारा-सभा इनका वेतन निश्चित न करेगी तब तक गवर्नर-जनरल इसे निश्चित करेगा।

मंत्रियों को भर्ती करने के लिये गवर्नर-जनरल संघ धारा-सभा की बहुमत पार्टी से सलाह लेगा। सभी प्रकार से मन्त्रिगण उसकी मुट्ठी में होंगे। कुछ विषयों में वह इनसे कोई सलाह न लेगा। इनका काम थोड़े से विषयों में गवर्नर-जनरल को सलाह देना होगा। रक्षा, वाह्य कार्य, धार्मिक विषय तथा पिछड़े हुए विभागों का प्रबन्ध—इन्हें छोड़ कर बाकी विषयों को गवर्नर जनरल भिन्न भिन्न विभागों में बाँट देगा। प्रत्येक मंत्री के ज़िम्मे एक या दो विभाग कर दिये जायेंगे। इसकी बैठक में वह स्वयं सभापति का आसन ग्रहण करेगा। इसकी कार्य पद्धति वही निश्चित करेगा।

सलाहकार (Counsellors)

रक्षा, वाह्य विभाग, धार्मिक विषय, तथा पिछड़े हुए विभागों का प्रबन्ध—ये विषय एकमात्र गवर्नर-जनरल के हाथ में रक्खे गये हैं। इनमें सलाह लेने के लिये उसे अधिकार है कि वह अधिक से अधिक ३ व्यक्तियों को नियुक्त कर ले। ये व्यक्ति सलाहकार (Counsellors) कहलायेंगे। उपरोक्त चारों विषयों के लिये गवर्नर-जनरल भारत मंत्री तथा पार्लियामेंट के प्रति ज़िम्मेवार होगा। इन सलाहकारों का वेतन तथा इनकी अवधि सम्राट् निश्चित करेगा। इन्हें संघ धारा-सभाओं में बैठने का अधिकार होगा, परन्तु ये वोट न दे सकेंगे। धारा सभाओं के वाद-विवाद में ये अच्छी तरह हिस्सा ले सकेंगे। सलाहकार धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी न होंगे। गवर्नर-जनरल इनकी सलाहों से बाध्य नहीं है।

संघ कार्य-कारिणी के गुण दोष

१९३५ के शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई है। इससे केन्द्रीय सरकार की शक्ति में स्वभावतः कमी होगी। जो कुछ अधिकार उसके पास शेष रहे, उन्हें गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों से दबा दिया गया है। कुछ विषयों में वह मनमानी करेगा और बाक़ी में अपने सलाहकारों तथा मन्त्रियों से सहायता लेगा जो उसकी स्वतंत्रता में बाधा नहीं डाल सकते। यद्यपि सलाहकारों तथा मंत्रियों के कार्य अलग अलग हैं, परन्तु यह दोहरा प्रबन्ध दोष से ख़ाली नहीं है। सलाहकार और मंत्री एक दूसरे को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते। वास्तव में केन्द्रीय कार्यकारिणी को कोई विशेष अधिकार नहीं है। एक प्रकार के सलाहकार धारा-सभा के प्रति और दूसरे प्रकार के भारत

मंत्री तथा सम्राट् के प्रति ज़िम्मेवार होंगे। विभाजित कार्यकारिणी सभी प्रकार दोषपूर्ण मानी गई है। जो कठिनाई १९३५ के पहिले भारतीय सूबों में उपस्थित हुई थी वही केन्द्रीय कार्यकारिणी में उपस्थित होगी। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस ख़तरे की चेतावनी दे दी है। कोई राजनीतिज्ञ संघ कार्यकारिणी को ज़िम्मेवार कार्यकारिणी नहीं कह सकता। देश के लिये यह हितकर सिद्ध नहीं हो सकती।

राष्ट्रीय सरकार

राष्ट्रीय सरकार का तात्पर्य कार्यकारिणी के भारतीयकरण से है। अर्थात् इसके सभी सदस्य भारतीय होने चाहिये। लेकिन यदि वे सरकारी पदों से नियुक्त किये जाते हैं तो इसे राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता। सच्ची राष्ट्रीय सरकार वह है जिसकी कार्यकारिणी के सदस्य ग़ैर सरकारी हों और जो धारा सभा के प्रति उत्तरदायी हो।

कैबिनेट मिशन ने केन्द्र में जिस अस्थायी कार्य कारिणी की स्थापना की है वह भी भारतीय नहीं है। उसमें ८ स्थानों में ६ स्थान अंग्रेज़ों को दिये गये हैं। लगभग सभी सदय आई० सी० यस० हैं। इसे तो नौकरशाही कार्य-कारिणी कहना अधिक उचित है। जिस राष्ट्रीय सरकार की माँग भारतवासी कर रहे हैं वह इससे भिन्न है। सम्भव है विधान सम्मेलन के प्रतिनिधियों के चुनाव के बाद जो केन्द्रीय कार्यकारिणी बनेगी वह राष्ट्रीय कहलाने की हकदार होगी।

अध्याय ९

केन्द्रीय धारा-सभा

(Central Legislature)

धारा सभा की आवश्यकता

किसी देश के शासन विधान में धारा-सभा का स्थान महत्वपूर्ण है। यहीं से शासन की मशीन आरम्भ होती है। कार्यकारिणी विभाग इसी के बनाये हुए क़ानूनों की देख रेख करता है। न्यायालयों में फ़ैसले के उसूल इसी के बनाये हुये हैं। धारा-सभा का मुख्य कार्य क़ानून बनाना है। क़ानून के बिना कोई शासन नहीं चल सकता। जब तक समाज अपनी शैशव अवस्था में था तब तक रसम रवाज़ काम दे देते थे। सभी

सम्प्रदाय अपने अपने रसम रवाज़ रखते थे। सामाजिक विकास के साथ राजनीतिक संगठन की आवश्यकता हुई और क़ानून आदि बनाये गये। आरम्भ में राजा अपने थोड़े से सलाहकारों के साथ कुछ नियम बना कर राज्य का कारोबार चला लेता था। राज्यों का विस्तार छोटा होता था। इनमें जो देश अधिक उन्नतिशील होता, और जहाँ के निवासी अधिक सभ्य और सुशिक्षित होते, वह सम्पूर्ण प्रजा की सम्मति द्वारा शासन का कार्य चलाता था। यूनान के प्रजातंत्र राज्य इसी प्रकार के थे। हमारे देश में हिन्दू काल में प्रजातंत्र अपनी चरम सीमा को पहुँच गये थे। चाणक्य ने अपने कौटिल्य-शास्त्र में इनका वर्णन किया है। राज्यों का विस्तार बढ़ने से इनकी व्यवस्था में परिवर्तन करना पड़ा। क़ानून बनाने के लिए अलग विभाग बना। आज प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधि धारा सभाओं में आकर सम्पूर्ण देश के लिये क़ानून बनाते हैं।

धारा सभा के अधिकार और कर्त्तव्य

क़ानून बनाने के अतिरिक्त धारा-सभायें और भी कार्य करती हैं। राज्य की आमदनी और ख़र्च पर इसका अधिकार होता है। विभिन्न मदों में इमदाद यही सभा देती है। मंत्रियों को नियुक्त करने, उन्हें निकालने तथा उनकी नीति निर्धारित करने का अधिकार इसी को है। यद्यपि यह सभा शासन के छोटे छोटे कार्यों को नहीं चलाती, परन्तु सरकारी उसूल यही निर्धारित करती है। यह सरकार को अपने अधिकार में रखती है। एक ज़िम्मेवार सरकार का तात्पर्य यह है कि कार्य-कारिणी धारा सभा की मातहती में कार्य करे। धारा-सभा के कार्यों को हम ३ श्रेणी बाँट सकते हैं :—

१—क़ानून बनाना।

२—शासन की नीति निर्धारित करना।

३—सरकारी आय व्यय पर अधिकार रखना।

जहाँ तक पहिले प्रकार के कर्त्तव्य का सम्बन्ध है, यह बात स्पष्ट है कि कानून बनाने की ज़िम्मेवारी धारा-सभा को दी गई है। राज्य में कोई नियम तब तक वैधानिक नहीं समझा जा सकता, जब तक धारा-सभा उसकी मंजूरी न दे दे। कचहरियाँ उन उसूलों का प्रयोग नहीं कर सकतीं जिनकी आज्ञा धारा सभा की ओर से उन्हें प्राप्त नहीं है। दूसरे प्रकार का कर्त्तव्य शासन की नीति निर्धारित करना है। इसी के द्वारा धारा-सभा सरकार को अपने अधिकार में रखती है। इस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये उसे ४ प्रकार के अधिकार दिये गये हैं :—

प्रस्ताव (Resolutions)

१—धारा-सभा को अधिकार है कि वह राज्य में घटित होने वाली सारी घटनाओं पर अपनी राय ज़ाहिर करे। उसके सदस्य किसी घटना पर अपना विचार प्रगट कर सकते हैं। इसका प्रत्येक सदस्य सरकार से शासन-सम्बन्धी प्रश्न पूछ सकता है। यद्यपि इससे सरकार बँध नहीं जाती, फिर भी वह इसके महत्व को मानती है। जनता के प्रतिनिधियों की राय को ठुकरा कर वह अपना काम सुचारु रूप से नहीं कर सकती। धारा-सभा जब सरकार को किसी बात की चेतावनी देनी चाहती है तो वह उसी विषय का कोई प्रस्ताव पास करती है। इससे सरकार का यह फ़र्ज़ होता है कि वह इस प्रकार के प्रस्तावों पर विचार करे। वास्तव में ये प्रस्ताव जनता के विचार होते हैं।

अविश्वास का प्रस्ताव

२—कार्यरूप में देश की कार्यकारिणी शासन को चलाती है। धारा-सभा केवल नीति निर्धारित करती है। ऐसी दशा में उसे अधिकार दिया गया है कि वह कार्यकारिणी को अपने वश में रक्खे। यदि वह धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध कार्य करे और उसकी टीका-टिप्पणी पर कुछ ध्यान न दे, तो धारा सभा को अधिकार है कि वह उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करे। अर्थात् वह जनता में इस बात की घोषणा कर दे कि मौजूदा शासन प्रबन्ध उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रहा है। इसका असर तात्कालिक होता है। या तो कार्यकारिणी भंग कर दी जाती है, अथवा धारा-सभा का नये सिरे से निर्माण होता है।

स्थगित प्रस्ताव (Adjournments)

३—धारा-सभा की कारवाइयों में कुछ विशेष घटनाये पेश की जाती हैं। अर्थात् जिस समय धारा-सभा की बैठक हो रही हो उस समय भूचाल आ जाय, कोई ट्रेन गिर जाय अथवा किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु हो जाय, इत्यादि इत्यादि, तो धारा-सभा का कोई सदस्य उठ कर सरकार से प्रार्थना कर सकता है कि सब काम बन्द कर विशेष घटना पर ही विचार किया जाय। हो सकता है सरकार इसकी मंजूरी न दे। ऐसी दशा में यह कहा जायेगा कि स्थगित-प्रस्ताव नामंजूरी कर दिया गया। यदि वह इसे मंजूर कर लेती है तो वर्तमान सभी कारवाइयों को कुछ घंटों के लिये स्थगित कर दिया जाता है और उतनी देर तक उसी विशेष घटना पर विचार किया जाता है। ऐसा इसलिये किया जाता है कि

बड़ी बड़ी घटनाओं पर सरकार का ध्यान तुरन्त आकर्षित कर दिया जाय। इससे उस घटना का महत्त्व बढ़ जाता है और सरकार की ज़िम्मेवारी उसके प्रति लाज़मी हो जाती है।

प्रश्नोत्तर Inter-pellation

४—धारा-सभा की बैठक में सदस्यों को इस बात की आज़ादी है कि वे किसी विषय पर सरकार से प्रश्न पूछ सकें। इससे वे इस बात का अनुमान करते हैं कि सरकार कहाँ तक शासन सम्बन्धी जानकारी रखती है। इसके अतिरिक्त प्रश्नों से सरकार का ध्यान शासन की कमज़ोरियों की ओर आकर्षित कराया जाता है। जिस विषय पर कोई प्रश्न पूछ दिया जाता है उससे सम्बन्ध रखने वाला विभाग अपने कार्यों में अधिक सावधान हो जाता है। यदि धारा-सभा के किसी सदस्य ने किसी सरकारी अफ़सर की नाजायज़ हरकतों के विषय में सरकार से कोई प्रश्न पूछ दिया तो उस अफ़सर को या तो अपने को पाक-साफ़ साबित करना होगा, अन्यथा नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। इन प्रश्नों का इतना महत्व है कि सरकारी कर्मचारी इससे डरते हैं। इसीलिये धारा-सभा की बैठक में पहला घंटा केवल प्रश्न पूछने के लिये निर्धारित किया गया है।

शासन की नीति निर्धारित करने के लिये धारा-सभा ऊपर लिखे किसी भी अधिकार का प्रयोग कर सकती है। उसका महान कर्त्तव्य सरकारी आय-व्यय को सँभालना है। वास्तव में यह उसके हाथों में एक ऐसी कुञ्जी दी गई है जिससे सरकार के सभी विभाग उसकी मुट्ठी में रहते हैं। यह एक साधारण कहावत है कि जिसके हाथ में धन है उसी का नियम मानना होगा। धारा-सभा को यह अधिकार देकर उसे ऐसी अवस्था में रख दिया गया है कि राज्य का कोई कर्मचारी उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करे। नागरिकों पर तब तक कोई टैक्स नहीं लगाया जा सकता जब तक धारा-सभा इसकी अनुमति न दे। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई सरकारी कर्मचारी प्रजा से एक कौड़ी वसूल नहीं कर सकता। किसी देश को ऋण लेने और देने का अधिकार धारा-सभा द्वारा दिया जाता है। साल भर की आमदनी और ख़र्च का व्यौरा वही मंजूर करती है। जिस देश में उसे यह अधिकार नहीं है, वह प्रजातंत्रवादी कहलाने का दावा नहीं कर सकता। जनता का धन उसके प्रतिनिधियों को ख़र्च करने का अधिकार होना चाहिये। इसी के लिये इंगलैंड के इतिहास में कई वर्ष तक राजा और पार्लियामेंट में लड़ाई चलती रही जिसमें राजा को अपने प्राण से हाथ धोना पड़ा और पार्लियामेंट की विजय हुई।

भारतीय धारा-सभा का स्वरूप

हमें देखना चाहिये कि भारतीय धारा-सभा कहाँ तक जनता की प्रतिनिधि है। हिन्दोस्तान एक स्वतंत्र राष्ट्र नहीं है। इस देश की धारा-सभा बृटिश पार्लियामेंट की मातहती में काम करती है। इसके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल को इतने अधिकार दिये गये हैं कि वह इसे उपेक्षा की दृष्टि से देख सकता है। उसे स्वयं बहुत से सदस्यों को नामज़द करने का अधिकार है। सदस्यों का निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया जाता है। इससे भारत की राष्ट्रीयता विभाजित हो जाती है। निर्वाचन की कोई एक पद्धति ऐसी नहीं है जिससे साम्प्रदायिक भाव पैदा न हो। चुनाव सम्बन्धी प्रश्नों पर एक सम्प्रदाय दूसरे को अपना शत्रु समझती है। १६३७ ई० के बाद जब प्रान्तीय शासन की बागडोर हिन्दोस्तानियों के हाथ में आई तो हिन्दू और मुसलमानों की समस्या में और उलझनें पैदा हुईं। कोई भी राजनीतिज्ञ साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति को अच्छा नहीं समझता। धार्मिक और ज़ाती सवालात राजनीति को गन्दा कर देते हैं। भारतीय धारा-सभा के निर्वाचक तथा सदस्य दोनों के लिये सम्पत्ति की रुकावट लगाई गई है। नागरिकता का क्षेत्र इतना संकुचित है कि धारा-सभाओं में प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि जाने से वंचित रह जाते हैं। अधिकतर संख्या ज़मींदारों, ताल्लुकेदारों तथा धनी मानी लोगों की होती है। भारतीय धारा-सभा कार्यकारिणी को अपने अधिकार में उस प्रकार नहीं रखती जैसे योरप तथा अमेरिका के प्रजातंत्र राज्यों में रखती है। कार्यकारिणी विभाग का प्रधान, अर्थात् गवर्नर-जनरल अनेक अधिकारों से विभूषित किया गया है।

कौंसिल आफ़ स्टेट (Council of State)

बड़ी धारा सभा अर्थात्—कौंसिल आफ़ स्टेट में कुल ६० सदस्य होते हैं। इनमें ३३ जनता द्वारा चुने जाते हैं और बाक़ी को गवर्नर-जनरल नामज़द करता है। नामज़द मेम्बरों में सरकारी सदस्यों की संख्या २० से अधिक नहीं रहती। सिक्ख, मुसलमान तथा अँग्रेज़—इनके लिये विशेष स्थान सुरक्षित रक्खे गये हैं। ग़ैरसरकारी सदस्य कौंसिल की पूरी अवधि तक काम करते हैं। सरकारी सदस्यों के लिये भी यही नियम है, परन्तु गवर्नर-जनरल चाहे तो उन्हें थोड़े समय के लिये इसका सदस्य बना सकता है। नामज़द मेम्बरों की जगहें जब ख़ाली होती है तो वे गवर्नर-जनरल द्वारा भरी जाती हैं। लगभग सभी प्रजातंत्रवादी देशों में बड़ी धारा-सभा कभी बर्ख़ास्त नहीं की जाती। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रान्स, इंगलैंड आदि देशों में इसकी अवधि की कोई

सीमा नहीं है। परन्तु हमारे देश में कौंसिल आफ़-स्टेट की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। इतने में भी गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह जब चाहे इसे बर्ख़ास्त कर दे। किसी विशेष परिस्थिति में वह इसकी अवधि को बढ़ा सकता है।

कौंसिल-आफ़-स्टेट का सभापति इसी के सदस्यों में से गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता है। जब इसकी बैठक आरम्भ होती है तो गवर्नर-जनरल इसके सदस्यों में से ४ आदमियों को नामज़द कर देता है। सभापति की अनुपस्थिति में इन चारों में से कोई भी उसका स्थान ग्रहण करता है। आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका में बड़ी धारा-सभा का सभापति सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है; परन्तु हमारे देश में बड़ी सभा को यह अधिकार नहीं दिया गया है। सरकारी ऐक्ट में कौंसिल आफ़ स्टेट के सभापति का वेतन निश्चित नहीं है। परन्तु कामन सभा के एक ज़िम्मेवार व्यक्ति के वक्तव्य से यह मालूम पड़ता है कि उसका वेतन ५०,००० रुपया सालाना है। कौंसिल-आफ़-स्टेट का मंत्री तथा उसके सहायक गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

लेजिस्लेटिव असेम्बली

केन्द्रीय धारा-सभा की छोटी सभा का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली है। इसमें कुल १४५ सदस्य होते हैं। इनमें १०४ जनता द्वारा चुने जाते हैं और शेष गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द किये जाते हैं। नामज़द मेम्बरों में २६ सरकारी सदस्यों का होना आवश्यक है। असेम्बली की अवधि ३ वर्ष है। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह इसकी अवधि घटा बढ़ा सके। अधिकतर प्रजातंत्र राज्यों में छोटी धारा-सभा की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। यदि हम अन्य देशों की छोटी धारा-सभा से असेम्बली का मुक़ाबिला करें तो देखेंगे कि शायद ही कोई देश ऐसा मिले जहाँ इसके सदस्य नामज़द किये जाते हों। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में छोटी सभा के सभी सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं। हिन्दोस्तान ही एक ऐसा देश है, जहाँ इस सभा के एक तिहाई से अधिक सदस्य नामज़द किये जाते हैं। इससे नागरिक की राजनीतिक स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती है। चुने हुए सदस्य विभिन्न सूबों से आते हैं। उनकी संख्या निम्नलिखित प्रकार से विभाजित की गई है:—मद्रास, १६; बम्बई, १६; संयुक्तप्रान्त, १६; बंगाल, १७; पंजाब, १२; बिहार व उड़ीसा, १२; मध्यप्रान्त, ५; आसाम, ४; ब्रह्मा, ४; दिल्ली, १; अजमेर मारवाड़ा, १; संयुक्तप्रान्त से १६ सदस्यों में ८ हिन्दू, ६ मुसलमान, १ अँग्रेज़ और

१ ज़मींदार हैं। इससे स्पष्ट है कि बड़ी सभा की तरह असेम्बली में भी साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति है।

नामज़द सदस्य २ प्रकार के होते हैं, सरकारी अफ़सर और ग़ैरसरकारी व्यक्ति। ग़ैर सरकारी सदस्य असेम्बली की पूरी अवधि तक इसका सदस्य रहता है। परन्तु सरकारी सदस्य को गवर्नर-जनरल जब चाहे हटा सकता है। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा के सदस्य लेजिस्लेटिव असेम्बली या कौंसिल आफ़-स्टेट के सदस्य होते हैं। वे जिस धारा-सभा के सदस्य हैं उसी में वोट दे सकते हैं। परन्तु उन्हें यह अधिकार है कि छोटी और बड़ी दोनों सभाओं में जब चाहें बैठ और बोल सकते हैं। यद्यपि गवर्नर-जनरल असेम्बली का सदस्य नहीं होता, फिर भी वह इसकी कारवाइयों में हिस्सा ले सकता है। असेम्बली का सभापति इसके सदस्यों द्वारा उन्हीं में से चुना जाता है। परन्तु गवर्नर-जनरल से उसकी मञ्जूरी लेनी पड़ती है। इसी तरह एक उपसभापति भी गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से चुना जाता है। सभापति को आसन ग्रहण करने पर निष्पक्ष भाव से काम करना पड़ता है। जब तक वह इस पद पर रहता है तब तक किसी राजनीतिक दल से उसका सम्बन्ध नहीं होता। उसका स्थान उसी प्रकार का है जैसे इंगलैंड में कामन सभा के सभापति का है। मत बराबर होने पर उसे निर्णायक मत देने का अधिकार है। इससे ज़ाहिर है कि असेम्बली में सभापति के स्थान की नक़ल इंगलैंड की कामन सभा से की गई है। सभापति को ४००० रुपया मासिक वेतन दिया जाता है। इंङ्गलैण्ड में कामन सभा के सभापति को ६२५० रुपया मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उसे एक सुन्दर बंगला और मुफ़्त रोशनी प्रदान की जाती है। उसके वेतन पर किसी प्रकार का टैक्स नहीं लिया जाता। भारतीय असेम्बली के सभापति को वेतन के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया जाता।

लेजिस्लेटिव असेम्बली का मंत्री तथा उसके सहायक गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। वे तब तक कार्य कर सकते हैं जब तक गवर्नर-जनरल की इच्छा होती है।

केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों की योग्यता

छोटी और बड़ी दोनों धारा-सभाओं के सदस्यों की योग्यता अलग अलग ठहराई गई है। परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं जो दोनों के लिये एक समान लागू हैं। प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्यों पर भी ये लागू होती हैं। सदस्यों के लिये बृटिश भारत का नागरिक होना आवश्यक है। स्त्रियाँ इसकी सदस्य नहीं हो सकतीं। कोई व्यक्ति

दोनों धारा-सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता। किसी कचहरी से निकाला हुआ वकील इसका सदस्य नहीं बन सकता। पागल तथा दिवालिये भी इसके सदस्य नहीं बन सकते। २५ वर्ष से नीचे की आयु का कोई व्यक्ति इसका सदस्य नहीं बन सकता। रियासतों के राजा तथा प्रजा इसके सदस्य नहीं बन सकते। जिस व्यक्ति को कालेपानी अथवा १ वर्ष से अधिक जेल की सज़ा हुई है, वह अपनी सज़ा की पूर्त्ति से ५ वर्ष तक इसका सदस्य नहीं हो सकता। सरकारी कर्मचारी इसके सदस्य नहीं बन सकते। यदि नामज़द ग़ैर सरकारी सदस्यों में से अपनी अवधि के बीच में कोई सरकारी पद प्राप्त कर लेता है तो वह धारा-सभा से हटा दिया जाता है। परन्तु मन्त्रियों पर यह नियम लागू नहीं होता। उपरोक्त बाधाओं में से कुछ को हटाने का अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल और प्रान्तीय गवर्नरों को दिया गया है।

उपरोक्त योग्यता के अतिरिक्त कौंसिल-आफ़-स्टेट तथा लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के लिये कुछ अलग अलग शर्तें हैं। ये शर्तें निर्वाचन पद्धति से अनुसार लगाई गई हैं। साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति होने के कारण निर्वाचन क्षेत्रों से सभी व्यक्ति चुनाव के लिये खड़े नहीं हो सकते। धारा-सभाओं का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो अपने निर्वाचन क्षेत्र में वोट देने का अधिकारी है।

इनके निर्वाचकों की योग्यता

केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों को चुनने का अधिकार सभी व्यक्तियों को नहीं है। इनके चुनाव में वह व्यक्ति वोट नहीं दे सकता जो बृटिश भारत का नागरिक नहीं है। कोई स्त्री वोट नहीं दे सकती। पागल अथवा दिवालिये वोट देने के अधिकारी नहीं है। २१ वर्ष से नीचे की आयु के व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार नहीं है। कोई व्यक्ति दो निर्वाचन क्षेत्रों में वोट नहीं दे सकता। इनके अतिरिक्त कौंसिल-आफ़-स्टेट तथा लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के चुनाव में मत देने वालों के लिये अलग अलग शर्तें हैं। प्रत्येक सूबे की शर्तें भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। जो व्यक्ति संयुक्तप्रान्त में कौंसिल-आफ़-स्टेट के सदस्यों के लिये मत देने का अधिकारी है उसके लिये निम्नलिखित योग्यतायें रखना आवश्यक है :—

१—सदस्य के निर्वाचन क्षेत्र में वह निवास करता हो।

२—कम से कम ५००० रुपया सरकारी मालगुज़ारी देता हो।

३—अथवा उसे कम से कम ५००० रुपये तक की मालगुज़ारी की जमीन माफ़ी में दी गई हो।

४—कम से कम १०,००० रुपये सालाना की उसे आमदनी हो।

५—वह भारतीय धारा-सभा का सदस्य रहा हो।

६—किसी यूनिवर्सिटी की कोर्ट या सीनेट का सदस्य हो। अथवा किसी यूनिवर्सिटी का फ़ेलो या अवैतनिक फ़ेलो रहा हो।

७—उसे महामहोपाध्याय या शमशुलउल्मा की उपाधि दी गई हो।

८—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या म्युनिसिपल बोर्ड का चेयरमैन या वाइस चेयरमैन रह चुका हो।

९—संयुक्त प्रान्त में चैम्बर-आफ़ कामर्स का सभापति हो या रहा हो।

१०—कोआपरेटिव सेन्ट्रल सोसाइटी का सभापति या उप-सभापति हो।

११—इनके अतिरिक्त मुसलमानी निर्वाचन क्षेत्र में केवल मुसलमान वोट दे सकते हैं।

लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के चुनाव में वोट देने के लिये मतदाताओं की योग्यता विभिन्न सूबों में भिन्न भिन्न प्रकार की है। संयुक्तप्रान्त में दो प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये हैं। आम और ख़ास। आम निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत शहरी और ग्रामीण दो विभाग किये गये हैं। शहरी निर्वाचन क्षेत्र में उसी व्यक्ति को मत देने का अधिकार है जो शहर के २ मील के घेरे में निवास करता हो। अथवा १८० रुपया सालाना मकान का किराया या उसका टैक्स देता हो। अथवा कम से कम १००० रुपया म्युनिसिपैलिटी को आयकर देता हो। ग्रामीण-निर्वाचन-क्षेत्र में मत देने का अधिकार उसी को है जो १८० रुपया सालाना किसी शहर में, जो उस निर्वाचन क्षेत्र के अन्दर हो, टैक्स देता हो। अथवा १५० रुपये का मालगुज़ार हो। ख़ास निर्वाचन क्षेत्र में वही व्यक्ति मत देने का अधिकारी है जो कम से कम ५००० रुपया सालाना सरकारी मालगुज़ारी देता हो अथवा इतनी ही लगान की भूमि माफ़ी में जोतता हो।

केन्द्रीय धारा-सभा की कार्य-पद्धति और क़ानून का बनना

धारा-सभा के सदस्यों का चुनाव हो जाने के पश्चात् गवर्नर-जनरल इस बात की घोषणा करता है कि कब और कहाँ इसकी पहिली बैठक होगी। प्रत्येक धारा-सभा का मंत्री हर एक सदस्य के पास इसकी सूचना भेज देता है। सभापति की आज्ञा से इसकी बैठक समाप्त की जाती है। आमतौर से छोटी और बड़ी दोनों धारा-सभाओं की बैठक ११ बजे दिन से ४ बजे शाम तक होती है। कार्यवाही आरम्भ करने के लिये छोटी सभा (Legislative-Assembly) में कम से कम २५

सदस्य और बड़ी सभा (Council of State) में १५ सदस्य अवश्य उपस्थित होने चाहिये। यदि इतने सदस्य उपस्थित नहीं हैं तो बैठक दूसरे दिन के लिये स्थगित कर दी जाती है। दोनों धारा-सभाओं की पहली बैठक के आरम्भ में प्रत्येक सदस्य को एक प्रकार की शपथ लेनी पड़ती है। धारा-सभा का कार्य अँग्रेज़ी भाषा में होता है; परन्तु सभापति को अधिकार है कि वह किसी सदस्य को हिन्दी या उर्दू में बोलने की आज्ञा दे सके। सभापति की आज्ञा सबको माननी पड़ती है। बाहरी लोग उसकी आज्ञा से सदस्यों से अलग बैठकर इसकी कार्यवाही सुन सकते हैं।

प्रत्येक बैठक (Session) आमतौर से ३ या ४ महीने चलती है। बैठक के आरम्भ में कार्यवाही का पूरा व्यौरा बना लिया जाता है। किस कार्यवाही के लिये कितने दिन ख़र्च किये जायेंगे यह भी तय कर लिया जाता है। प्रत्येक धारा-सभा का मंत्री रोज़ की कार्यवाही का व्यौरा तैयार करता है और इसकी नक़ल हरेक सदस्य के पास भेज देता है। सारी कार्य-वाही दो भागों में बाँट दी जाती है—सरकारी और ग़ैर सरकारी (Official and Nonofficial)। रोज़ की बैठक का पहिला घंटा प्रश्न पूछने के लिये निश्चित रहता है। हर सदस्य सरकार से प्रश्न पूछ सकता है। सरकार का तात्पर्य गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा के सदस्यों से है। प्रश्न पूछने के लिये प्रत्येक सदस्य को १० दिन पहले इसकी सूचना सभा के सभापति को देनी पड़ती है। इससे कार्यकारिणी सभा के सदस्य ठीक समय पर उत्तर देने के लिये तैयार रहते हैं। इंगलैंड की कामन सभा में सदस्यों को प्रश्न पूछने की सूचना केवल एक दिन पहले देनी पड़ती है। सभापति को अधिकार है कि वह किसी प्रश्न को नामंजूर कर दे। कुछ विषय ऐसे हैं, जिन पर कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता। भारतीय सरकार का विदेशों से सम्बन्ध, भारतीय रियासतें, हाईकोर्ट में किसी मुक़दमें की सुनाई आदि विषय इस कोटि में गिने जाते हैं। किसी सरकारी पदाधिकारी के चरित्र के विषय में भी कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता।

यह सम्भव नहीं है कि धारा-सभा अपनी सभी कार्यवाही पूरी बैठक के सामने कर सके। न तो इसके लिये समय है और न सभी सदस्य इन पर राय देने की योग्यता रखते हैं। इसलिये विभिन्न कार्य के लिये धारा-सभा की प्रत्येक सभा में अनेक कमीटियाँ होती हैं। सेलेक्ट कमीटी, सम्मिलित कमीटी, बिल के लिये दर्ख़ास्त सम्बन्धी कमीटी, सरकारी हिसाब-किताब सम्बन्धी कमीटी, इत्यादि कमीटियाँ हैं। प्रत्येक कमीटी में सदस्यों की संख्या कमवेश होती है। जब कभी धारा-सभा किसी विषय पर विचार करना चाहती है तो वह चन्द

सदस्यों की एक कमीटी उसके लिये बना देती है। जो सदस्य जिस विषय का जानकर होता है वह उससे सम्बन्ध रखने वाली कमीटी में रक्खा जाता है। छोटी या बड़ी धारा-सभा इस विषय का प्रस्ताव पास करती है कि अमुक बिल सम्मिलित कमीटी (Joint Committee) को सुपुर्द कर दिया जाय। यदि यह प्रस्ताव दूसरी सभा को मंजूर है तो दोनों धारा-सभायें बराबर सदस्यों को चुन कर एक सम्मिलित कमीटी बना देती हैं। कमीटी स्वयं अपना सभापति चुनती है। कार्य करने का स्थान तथा समय, सब कुछ बड़ी धारा-सभा (Council of State) का सभापति निश्चित करता है।

क़ानून किस प्रकार बनते हैं इस पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये। इसके बनने का तरीक़ा बहुत ही पेचीदा है। यह कई सीढ़ियों से होकर गुज़रता है। ये सीढ़ियाँ दोनों सभाओं में एक सी हैं। जब कोई क़ानून धारा-सभा में पेश किया जाता है तो इसे बिल कहते हैं। जब दोनों धारा सभायें इसे पास कर देती हैं तो यह ऐक्ट कहलाने लगता है। जब गवर्नर-जनरल इस पर अपना हस्ताक्षर कर देता है तो यह क़ानून कहलाता है। अब प्रश्न यह है कि बिल कैसे पेश होते हैं और किस प्रकार वे क़ानून बन जाया करते हैं। बिलों को दो कोटि में बाँट सकते हैं—सरकारी और ग़ैर सरकारी। जब सरकार स्वयं कोई क़ानून पास कराना चाहती है तो अपने सदस्यों द्वारा उस आशय का कोई बिल पेश करवाती है। इसे सरकारी बिल कहते हैं। जो बिल धारा सभा के अन्य सदस्य पेश करते हैं वे ग़ैर सरकारी बिल कहे जाते हैं।

बिल दोनों धारा-सभाओं में आरम्भ किया जा सकता है। धारा-सभा का कोई सदस्य इसे पेश कर सकता है। जो सदस्य बिल पेश करना चाहता है उसे इसकी सूचना एक महीना पहिले अपनी धारा-सभा के सभापति को देनी पड़ती है। साथ ही उसे बिल का उद्देश्य भी पेश करना पड़ता है। जब सभापति इसकी आज्ञा दे देता है तो सदस्य एक निश्चित तिथि पर धारा-सभा की बैठक में इसे पेश करता है। इसके बाद वह सरकारी गजट में प्रकाशित कर दिया जाता है। यदि गवर्नर-जनरल की राय में बिल भारतीय नियम और शान्ति को भंग करता है, तो वह अपने अधिकार से इसे उसी जगह रोक सकता है। यदि ऐसा न हुआ तो बिल की कार्यवाही आगे को चलती है। बिल पेश करते समय सदस्य धारा-सभा से अनुरोध करता है कि निकट भविष्य में इस पर विचार करने के लिये कोई दिन निश्चित कर दिया जाय। यदि धारा-सभा के पास समय हो तो वह उसी दिन से उस पर विचार करना आरम्भ कर सकती है। जैसा निश्चित हो,

पहिली बार बिल पर मोटे तौर से विचार किया जाता है। इस अवस्था में उसमें कोई संशोधन नहीं किया जाता। उसकी अथवा अन्य सदस्यों की राय से उसे सेलेक्ट कमीटी को सुपुर्द कर दिया जाता है।

सेलेक्ट कमीटी इस पर अच्छी तरह विचार कर इसकी रिपोर्ट धारा-सभा को देती है। ३ महीने के अन्दर वह अपनी रिपोर्ट नहीं दे सकती। धारा-सभा चाहे तो तीन महीने के अन्दर इसकी रिपोर्ट ले सकती है। टैक्स सम्बन्धी बिलों पर यह ३ महीने वाला नियम लागू नहीं होता। रिपोर्ट मिल जाने पर बिल पेश करने वाला सदस्य इसे धारा-सभा की बैठक में पेश करता है। परन्तु उस पर किसी तरह के बहस मुबाहिसे नहीं किये जा सकते। सिलेक्ट कमीटी के संशोधन और उसकी रिपोर्ट सरकारी गजट में प्रकाशित कर दी जाती है। इसकी छपी हुई एक एक प्रति धारा-सभा के प्रत्येक सदस्य के पास भेज दी जाती है। इसके बाद बिल पेश करने वाला सदस्य धारा-सभा से अनुरोध करता है कि वह इस पर विचार करे। संशोधन पेश करने के लिये सदस्यों को दो दिन पहिले से सभापति को सूचित करना पड़ता है। सभी संशोधनों पर क्रम पूर्वक विचार किया जाता है। बिल की एक एक धारा पर अलग अलग विचार होता है। कोई संशोधन न हुआ तो बिल पेश करने वाला इसे पास करने का प्रस्ताव कर सकता है। बिल पास हो जाने पर सभापति उस पर अपनी दस्तख़त करता है। जब यह क्रिया एक सभा में समाप्त हो जाती है तो बिल दूसरी सभा में भेज दिया जाता है। वहाँ भी इसी क्रम से होकर उसे गुज़रना पड़ता है।

दूसरी सभा में बिना किसी संशोधन के बिल पास हो जाने पर गवर्नर-जनरल के हस्ताक्षर के लिये भेज दिया जाता है। परन्तु दूसरी धारा-सभा में अक्सर कुछ संशोधन किये जाते हैं। यदि ये पहिली धारा-सभा को मंजूर है तब भी बिल पास समझा जाता है और वह गवर्नर-जनरल के हस्ताक्षर के लिये भेज दिया जाता है। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह उसे नामंजूर कर दे। उसके मंजूर कर देने पर वह बिल क़ानून कहलाता है।

बजट को पेश करने और उसे पास कराने का तरीक़ा निम्नलिखित है। हमारे देश में सरकारी आमदनी और खर्च का साल पहिली अप्रैल से ३१ मार्च तक माना जाता है। हर साल जाड़े के महीने में केन्द्रीय सरकार अपनी आमदनी और ख़र्च का ब्यौरा तैयार करती है। धारा-सभा के सामने यह चिट्ठा पेश किया जाता है। इसी को बजट कहते हैं। इस पर विचार करने के लिये धारा-सभा कोई दिन तै करती

है। जो बात बहुमत से तै होती है वह दोनों सभाओं को माननी पड़ती है। बड़ी सभा का सभापति इसका सभापति होता है।

सम्मिलित निर्वाचित कमीटी Joint Select Committee

३—जब कोई बिल धारा-सभा में पेश होता है तो कुछ सदस्य इस बात का प्रस्ताव पेश कर सकते हैं कि दूसरी धारा-सभा के सदस्य अपने कुछ प्रतिनिधि सिलेक्ट कमीटी में भेज दें। इससे दूसरी सभा को बिल की प्रगति मालूम होती रहेगी। उसके प्रतिनिधियों को इस पर राय देने का मौक़ा मिलता रहेगा। इससे दोनों सभाओं में मतभेद उत्पन्न होने की सम्भावना कम होगी। बिल पर विचार करने के लिये पहिली सभा में जो ज्वायेंट कमीटी बनाई जाती है उसमें दोनों सभाओं के बराबर सदस्य होते हैं। इसका सभापति इसी कमीटी द्वारा चुना जाता है, और उसे केवल एक वोट देने का अधिकार है। कमीटी का फ़ैसला दोनों सभाओं को मान्य होता है।

इसके अलावा एक और तरीक़ा मतभेद को दूर करने के लिये बनाया गया है। दोनों सभाओं में मतभेद होने पर गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करता है। वह बिल को तसदीक़ (Certify) कर सकता है। इससे वह बिल अपने आप पास समझा जाता है। १९२४ ई० में लार्ड रीडिंग ने नमक-कर पर अपने इसी अधिकार का प्रयोग किया था।

केन्द्रीय धारा सभा के अधिकार

धारा-सभा के सदस्यों को कौंसिल चैम्बर के भीतर बोलने की पूरी स्वतंत्रता दी गई है। कोई कचहरी इसके लिये उस पर मुक़दमा नहीं चला सकती। परन्तु उन्हें सभा की कार्य-पद्धति का ध्यान रखना पड़ता है। हरेक सदस्य को बैठक की पूरी अवधि तक लगभग १६) रोजाना भत्ता तथा अपने स्थान से दिल्ली तक आने जाने का रेल का किराया दिया जाता है। बैठक के बीच में कोई सदस्य किसी अपराध के लिये गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता।

हिन्दोस्तान की राजसत्ता पार्लियामेंट के हाथ में होने से केन्द्रीय धारा-सभा की सारी कार्रवाई अंतिम नहीं समझी जाती। इसके द्वारा पास किये गये क़ानून गवर्नर-जनरल अथवा पार्लिमामेंट द्वारा रद्द किए जा सकते हैं। फिर भी किसी एक दायरे के अन्दर केन्द्रीय धारा-सभा को कुछ अधिकार प्राप्त हैं। हिन्दोस्तान की सीमा के अन्दर जितने व्यक्ति अथवा संस्थायें हैं, उनके लिये वह क़ानून बनाने की अधिकारिणी है। आवश्यकता-

नुसार नये क़ानूनों को बनाने तथा पुराने क़ानूनों को हटाने का उसे अधिकार प्राप्त है। लेकिन इसके लिये उसे पार्लियामेंट की अनुमति लेनी होती है। पार्लियामेंट के विरूद्ध उसे कोई कार्य करने का अधिकार नहीं है। भारतमंत्री की आज्ञा के बिना केन्द्रीय धारा-सभा किसी न्यायालय को यह अधिकार नहीं दे सकती कि वह किसी योरप-निवासी को प्राणदंड दे सके। गवर्नर-जनरल की इच्छा के विरुद्ध आर्थिक विषयों से सम्बन्ध रखता हुआ कोई बिल पेश नहीं किया जा सकता। धारा-सभा धार्मिक विषयों पर तब तक विचार नहीं कर सकती, जब तक गवर्नर-जनरल की आज्ञा प्राप्त न हो जाय। फौज सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार उसे उसी हालत में है जब गवर्नर-जनरल इसकी आज्ञा दे दे। देशी रियासतों के मामलों में वह गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना हाथ नहीं डाल सकती। गवर्नर-जनरल के आर्डिनेन्स को समाप्त करने का अधिकार उसे प्राप्त नहीं हैं।

यदि कोई बिल केन्द्रीय धारा सभा में पेश है तो गवर्नर-जनरल अपने अधिकार से उसे रोक सकता है। परन्तु उसे यह सिद्ध करना होगा कि उपरोक्त बिल शान्ति में बाधक होगा। कोई क़ानून धारा-सभा द्वारा तब तक पास नहीं समझा जाता जब तक गवर्नर जनरल उस पर अपनी अनुमति न दे दे। गवर्नर-जनरल की अनुमति प्राप्त होने पर भी पार्लियामेंट उसे रद्द कर सकती है। इस अधिकार से भारतीय धारा-सभा का स्थान एक कठपुतली की तरह है। उसे पार्लियामेंट और गवर्नर-जनरल की इच्छा पर नाचना पड़ता है। इंगलैंड के इतिहास में ऐसे अवसर बहुत कम मिलेंगे जब कि सम्राट् ने पार्लियामेंट की कार्यवाहियों को रद्द कर दिया हो। इसके विपरीत हिन्दोस्तान का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह बने हुये क़ानूनों को रद्द तथा नये क़ानून पास कर सके। वह जब चाहे एलान कर सकता है कि अमुक क़ानून हिन्दोस्तान की बेहतरी के लिये ज़रूरी हैं। धारा-सभा इससे सहमत न हो, लेकिन वह क़ानून पास समझा जायेगा। १९२२ ई० में लार्ड रीडिंग ने अपने विशेष अधिकारों द्वारा ऐसा क़ानून पास किया था। धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध बिल (Princes Protection Bill) पास कर दिया गया। १९२३ ई० में उन्होंने दूसरा बिल भी अपने अधिकार से पास कराया। धारा-सभा विरोध करती रही लेकिन नमक कर १ रुपया ४ आने से बढ़ा कर २ रुपये ८ आना फ़ी मन कर दिया गया।

प्रजातंत्रवादी देशों में सरकार की आमदनी और ख़र्च का अधिकार

धारा-सभा को दिया गया है। यह अधिकार छोटी सभा के हाथों में इसलिये रक्खा गया है कि वही प्रजा की सच्ची प्रतिनिधि है। परन्तु हिन्दोस्तान में उसे इस अधिकार से वंचित रक्खा गया है। यहाँ तो किसी सदस्य को गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना बजट में कोई रद्दोबदल का प्रस्ताव पेश करने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय सरकार में ख़र्च के कुछ ऐसे मद्द बनाये गये हैं, जिन पर धारा-सभा अपना मत प्रकट नहीं कर सकती। भारतीय सरकार के क़र्ज़े की सूद, बड़े बड़े सरकारी अफ़सरों का वेतन, वे ख़र्चे जो राजनीतिक प्रबन्ध, सेना तथा मज़हबी मद्द में ख़र्च किये जाते हैं—इन पर केन्द्रीय धारा-सभा की राय की कोई ज़रूरत नहीं हैं। इन्हीं मदों में लगभग एक चौथाई रक़म ख़र्च की जाती है, परन्तु धारा-सभा इसमें हाथ नहीं डाल सकती। यदि वह अपने अधिकार से किसी मद्द का ख़र्च घटा बढ़ा देती है तो उसे रद्द करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को किया गया है। वह किसी भी मद्द में जितना चाहे ख़र्च कर सकता है। बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्खिनी अफ्रीका में गवर्नर-जनरल को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं हैं। इसलिये कहा गया है, कि १९१९ के शासन-विधान में आर्थिक तथा शासन सम्बन्धी अधिकार की दृष्टि से केन्द्रीय धारा-सभा अत्यन्त कमज़ोर है। कहने के लिये शासन के सभी क्षेत्रों में उसे अधिकार प्राप्त हैं परन्तु वे दिखलाने के लिये हैं।

१९३५ के संघ शासन-विधान में केन्द्रीय धारा-सभा की शकल

नये शासन-विधान में केन्द्रीय धारा-सभा का नाम संघ धारा-सभा होगा। पहिले की तरह अब भी इसमें छोटी और बड़ी दो सभायें होंगी। बड़ी सभा का नाम कौंसिल-आफ़-स्टेट और छोटी का फ़ेडरल असेम्बली होगा। बड़ी सभा (Council of State) में अधिक से अधिक २६० सदस्य होंगे। इनमें १५६ बृटिश प्रान्तों से चुनकर और बाक़ी १०४ सदस्य देशी-रियासतों से राजाओं द्वारा नामजद होकर आयेंगे।

कौंसिल-आफ़ स्टेट

सदस्यों की ठीक ठीक संख्या इसलिए नहीं बताई जा सकती कि यह मालूम नहीं है कि कितनी देशी रियासतें संघ शासन में शामिल होंगी। जो १५६ सदस्य बृटिश प्रान्तों से चुन कर आयेंगे उनमें केवल १४० जगहें प्रान्तों को दी गई है। बाकी १६ सदस्यों के लिये प्रान्तीयता की कैद नहीं है। इन १६ सदस्यों में ७ अंग्रेज, १ अंग्रेजी इसाई, २ भारतीय ईसाई तथा ६ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द किये जायेंगे। नामजद सदस्यों

में अछूत और स्त्रियाँ होंगी। १४० सीटें निम्न-लिखित प्रकार से बाँटी गई हैं :—

मद्रास	...२०	पश्चिमोत्तरप्रदेश	...५
बम्बई	...१६	उड़ीसा	...५
बंगाल	...२०	सिन्ध	...५
यू० पी०	...२०	बृटिश बिलोचिस्तान	...१
पंजाब	...१६	दिल्ली	...१
बिहार	...१६	अजमेरमारवाड़ा	...१
सी० पी० और बरार	...८	कुर्ग	...१
आसाम	...५	जोड़	१४०

जो १०४ सीटें देशी रियासतों को दी गई हैं उनका ठीक ठीक ब्यौरा तब तक मालुम नहीं हो सकता जब तक संघ धारा सभा बन कर तैयार न हो जाय। कुछ बड़ी बड़ी रियासतों को जो निश्चित सीटें दी गई हैं उनका ब्यौरा इस प्रकार है :—हैदराबाद ५, मैसूर ३, काश्मीर ३, ग्वालियर ३, बड़ौदा ३, और ट्रावनकोर २।

कौंसिल आफ़-स्टेट में जो १४० सदस्य सूबों से चुन कर आयेंगे, उनका चुनाव प्रत्यक्ष (Direct) रूप से होगा। नागरिक उन्हें स्वयं चुन कर भेजेंगे। इस बड़ी सभा को कोई निश्चित अवधि नहीं है। यदि गवर्नर-जनरल इसे बर्खास्त न करे तो यह सभा स्थाई रूप से काम करेगी। हर तीसरे साल एक तिहाई सदस्य बदलते रहेंगे। इस प्रकार प्रत्येक ९ वर्ष पर सभा के सभी सदस्य बदल जाया करेंगे। इस सभा को एक सभापति तथा एक उपसभापति चुनने का अधिकार होगा। १४ दिन की इत्तला देकर इसके सदस्य इन्हें बहुमत से हटा सकते हैं। संघ धारा-सभा उपरोक्त दोनों पदाधिकारियों का वेतन निश्चित करेगी। सदस्यों का वेतन अथवा भत्ता वही तै करेगी।

फ़ेडरल असेम्बली
Federal Assembly

फ़ेडरल असेम्बली संघ धारा-सभा की छोटी सभा होगी। इसमें अधिक से अधिक ३७५ सदस्य होंगे। इसमें २५० सूबों से चुन कर और शेष १२५ देशी रियासतों से राजाओं द्वारा नामज़द होकर आयेंगे। यद्यपि देशी रियासतों की जनसंख्या हिन्दोस्तान की जनसंख्या की एक चौथाई है, लेकिन उन्हें फ़ेडरल असेम्बली में एक तिहाई सीटें दी गई हैं। जो २५० सदस्य बृटिश प्रान्तों से चुन कर आयेंगे उनमें ४ का स्थान प्रान्तीयता के आधार पर नहीं बनाया गया है। इन ४ सदस्यों में ३

व्यापार के प्रतिनिधि होंगे, और १ मज़दूरों का प्रतिनिधि होगा। असेम्बली के सदस्य जनता द्वारा नहीं चुने जायेंगे। इनका चुनाव अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप से होगा। प्रान्तीय-धारा सभाओं के सदस्य इन्हें चुन कर भेजेंगे। इस सभा की बनावट में यह सबसे बड़ा दोष माना गया है। जो २४६ सीटें विभिन्न प्रान्तों में विभाजित की गई हैं उनका ब्यौरा निम्नलिखित है :—

मद्रास	...३७	पश्चिमोत्तर प्रदेश	...५
बम्बई	...३०	उड़ीसा	...५
बंगाल	...३७	सिन्ध	...५
यू० पी०	...३७	बृटिश बिलोचिस्तान	...१
पंजाब	...३०	दिल्ली	...२
बिहार	...३०	अजमेर मारवाड़ा	...१
सी० पी० और बरार	...१५	कुर्ग	...१
आसाम	...१०	जोड़	२४६

जो १२५ सीटें देशी रियासतों को दी गई है उनकी ठीक ठीक संख्या तभी मालूम होगी जब संघ शासन-विधान कार्यान्वित होगा। कुछ बड़ी बड़ी रियासतों को निम्नलिखित प्रकार से सीटें दी गई है :—

हैदराबाद १६, मैसूर ७, ट्रावनकोर ५, ग्वालियर ४, काश्मीर ४ और बड़ौदा ३। जो रियासतें बहुत छोटी हैं उन्हें दो दो या तीन तीन को शामिल करके एक सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया है।

१९१९ के शासन-विधान में केन्द्रीय धारा-सभा की छोटी सभा की अवधि ३ वर्ष रक्खी गई थी। नये शासन-विधान में छोटी धारा-सभा (Federal Assembly) की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह जब चाहे इसे बर्ख़ास्त कर दे। परन्तु ५ वर्ष से अधिक, जो कि इसकी निश्चित अवधि ठहराई गई है, वह इसका समय नहीं बढ़ा सकता। इसका सभापति स्पीकर और उसका सहायक डिप्टी-स्पीकर होगा। यदि किसी कारणवश ५ वर्ष से पहिले यह बर्ख़ास्त कर दी गई तो स्पीकर अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक दूसरी फेडरल असेम्बली की पहली बैठक न हो।

कोई व्यक्ति कौंसिल-आफ़-स्टेट का तब तक सदस्य न होगा जब तक उसकी उम्र कम से कम ३० वर्ष की न हो। फेडरल

दोनों सभाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि

असेम्बली के सदस्य के लिये कम से कम २५ वर्ष का होना आवश्यक है। कौंसिल आफ़-स्टेट के सदस्य का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से और फेडरल-असेम्बली के सदस्यों का अ-प्रत्यक्ष रूप से होगा। कौंसिल-आफ़-

स्टेट के चुनाव में मताधिकार का क्षेत्र इतना संकुचित रक्खा गया है कि सारे हिन्दोस्तान में इसके लिये केवल १,००,००० मताधिकारी होंगे। मत-दाताओं के लिये बहुत बड़ी जायदाद का रखना आवश्यक ठहराया गया है। कोई व्यक्ति दोनों धारा-सभा का सदस्य नहीं रह सकता। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा स्विटज़रलैंड की तरह बड़ी धारा-सभा में प्रान्तों के समानाधिकार का ध्यान नहीं रक्खा गया है। कौंसिल-आफ़ स्टेट में देशी रियासतों को अनुपात से अधिक हिस्सा दिया गया है। फेडरल असेम्बली की अवधि ५ वर्ष रखने से धारा-सभा के सदस्यों की ज़िम्मेवारी बहुत कुछ कम हो जाती है। इससे राजनीतिक वातावरण में शिथिलता उत्पन्न हो सकती है। नये शासन-विधान में कौंसिल-आफ़-स्टेट के ६ सदस्य को छोड़ कर, नामज़दगी का तरीका हटा दिया गया है। राजनीतिक अधिकार की दृष्टि से यह तरीक़ा अत्यन्त सराहनीय है, परन्तु देशी रियासतों के आये हुए सदस्य जनता के प्रतिनिधि न होकर राजाओं द्वारा मनोनीत होंगे, अर्थात् अब तक केवल दस बीस सदस्य नामज़द होते थे परन्तु नये शासन विधान में १०० से अधिक सदस्य नामज़द किये जायेंगे।

संघ धारा-सभा की सबसे बड़ी कमज़ोरी साम्प्रदायिक आधार पर सदस्यों का निर्वाचन है। इससे विभिन्न सम्प्रदाय अपने अपने अधिकारों के लिये आपस में टक्कर खायेंगे। इससे यह देश एक सुसंगठित राष्ट्र नहीं बन सकता। राजनीतिक दलबन्दियों के स्थान पर साम्प्रदायिक गुट बनाये जायेंगे। जिससे सच्चे प्रजातन्त्र की स्थापना में बाधा पड़ेगी। स्त्रियों को अलग मताधिकार देकर भारतीय समाज को और कमज़ोर कर दिया गया है। आश्चर्य तो यह है कि स्त्रियों के विरोध करने पर भी शासन-विधान में यह बात घुसेड़ दी गई है। फेडरल असेम्बली के लिये अ-प्रत्यक्ष निर्वाचन की पद्धति बना कर भारतीय जनता का राजनीतिक प्रभाव कम कर दिया गया है। १६३४ ई० में स्वयं ज्वाइंट पार्लियामेंटरी कमीटी ने इसकी कमज़ोरियों को तसदीक़ किया था। कौंसिल-आफ़-स्टेट के चुनाव के लिये निर्वाचन क्षेत्र इतने बड़े रक्खे गये हैं कि कुछ का क्षेत्रफल वेल्स से भी बड़ा होगा। ऐसी दशा में किसी सदस्य के लिये यह सम्भव नहीं होगा कि वह अपने निर्वाचन क्षेत्र का पूरा पूरा अध्ययन करे। किसी भारतीय राजनीतिज्ञ ने यह सलाह दी है कि ये बुराइयाँ फेडरल असेम्बली में चुने हुए सदस्यों की संख्या बढ़ा देने से बहुत कुछ कम हो सकती हैं। उनका कहना है कि इसके सदस्यों की संख्या कम से कम ६०० कर दी जाय। बृटेन की जनसंख्या हिन्दोस्तान की $\frac{1}{7}$ है, फिर भी कामन सभा में ६१५ सदस्य हैं।

मताधिकार भी और बढ़ना चाहिये। परन्तु केवल संघ धारा-सभा के चन्द सुधारों से तब तक काम नहीं चल सकता जब तक समूचे संघ शासन-विधान में परिवर्तन न किया जाय।

कार्य-पद्धति और अधिकार

संघ धारा-सभा की कार्यपद्धति उसी प्रकार की होगी जो वर्तमान धारा-सभा की है। जब तक दोनों सभाओं में कम से कम $\frac{1}{६}$ सदस्य उपस्थित न हों, तब तक कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। संघ धारा-सभा को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह बृटिश भारत तथा संघ में आने वाली देशी रियासतों के लिये क़ानून बना सके। परन्तु बृटिश पार्लियामेंट की मातहती में वह कार्य करेगी। इसके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह इसके पास किये गये क़ानूनों को रद्द कर सके। गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों तथा व्यक्तिगत ज़िम्मेवारियों के सामने इसके अधिकार नाम मात्र को रह जायेंगे। सरकारी आय की ८० प्रतिशत ज़िम्मेवारी धारा-सभा के हाथों से बाहर रक्खी गई है। आवश्यकता पड़ने पर संघ धारा-सभा प्रान्तों के लिये क़ानून बना सकती है। क़ानून बनाने के सभी विषय ३ भागों में बाँटे गये हैं। कुछ विषय केन्द्रीय धारा-सभा को, कुछ प्रान्तीय धारा-सभा को और कुछ दोनों को सम्मिलित रूप से दिये गये हैं। सारांश यह है कि भारतीय संघ धारा-सभा को वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं, जो दुनियाँ के और संघ शासन के अन्दर उसे दिये गये हैं।

स्थानों का ख़ाका

कौंसिल ऑफ़ स्टेट

बृटिश भारत के प्रतिनिधि

१	२	३	४	५	६	७
सूबा या सम्प्रदाय	कुल स्थान	साधारण स्थान	हरिजनों के स्थान	सिक्खों के स्थान	मुसलमानों के स्थान	स्त्रियों के स्थान
मदरास	२०	१४	१	—	४	१
बम्बई	१६	१०	१	—	४	१
बंगाल	२०	८	१	—	१०	१
संयुक्त प्रान्त	२०	११	१	—	७	१
पंजाब	१६	३	—	४	८	१
बिहार	१६	१०	१	—	४	१
मध्य प्रान्त और बरार	८	६	१	—	१	—
आसाम	५	३	—	—	२	—
पश्चिमोत्तर प्रदेश	५	१	—	—	४	—
उड़ीसा	५	४	—	—	१	—
सिन्ध	५	२	—	—	३	—
बृटिश बिलोचिस्तान	१	—	—	—	१	—
दिल्ली	१	१	—	—	—	—
अजमेर मेरवाड़ा	१	१	—	—	—	—
कुर्ग	१	१	—	=	—	—
अँग्रेज़ी ईसाई	१	—	—	—	—	—
योरोपियन	७	—	—	—	+	—
देशी ईसाई	२	—	—	|	×	—
कुल जोड़	१५०	७५	६	४	४९	६

स्थानों का ख़ाका

फ़ेडरल असेम्बली

बृटिश भारत के प्रतिनिधि

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
प्रान्त	कुल स्थान	साधारण स्थानों का जोड़	हरिजनों के सुरक्षित साधारण स्थान	सिक्खों के स्थान	मुसलमानों के स्थान	अंग्रेज़ी ईसाइयों के स्थान	यूरोपियन के स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	व्यापार और व्यवसाय के स्थान	ज़मींदारों के स्थान	मज़दूरों के स्थान	स्त्रियों के स्थान
मदरास	३७	१९	४	—	८	१	१	२	२	१	१	२
बम्बई	३०	१३	२	—	६	१	१	१	३	१	२	२
बंगाल	३७	१०	३	—	१७	१	१	१	३	१	२	१
संयुक्त प्रान्त	३७	१९	३	—	१२	१	१	१	—	१	१	१
पंजाब	३०	६	१	६	१४	—	१	१	—	१	—	१
बिहार	३०	१६	२	—	९	—	१	१	—	१	१	१
मध्य प्रान्त व बरार	१५	९	२	—	३	—	—	—	—	१	१	१
आसाम	१०	४	१	—	३	—	१	१	—	—	१	—
पश्चिमोत्तर प्रदेश	५	१	—	—	४	—	—	—	—	—	—	—
उड़ीसा	५	४	१	—	१	—	—	—	—	—	—	—
सिन्ध	५	१	—	—	३	—	१	—	—	—	—	—
बृटिश बिलोचिस्तान	१	—	—	—	१	—	—	—	—	—	—	—
दिल्ली	२	१	—	—	१	—	—	—	—	—	—	—
अजमेर मेरवाड़ा	१	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
कुर्ग	१	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
प्रान्तीयता से भिन्न स्थान	४	—	—	—	—	—	—	—	३	—	१	—
कुल जोड़	२५०	१०५	१९	६	८२	४	८	८	११	७	१०	९

केन्द्रीय धारा सभा और केन्द्रीय कार्य-कारिणी सभा का सम्बन्ध

यह बात निर्विवाद है कि अभी तक हिन्दोस्तान में एक ज़िम्मेवार शासन (Responsible Government) की स्थापना नहीं हुई है। इस देश का राजनीतिक इतिहास इस बात का प्रमाण है कि यहाँ की सरकार जनता की आवाज़ की परवाह कम करती है। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में, "कार्य-कारिणी सभा उस पत्थर की चट्टान की तरह है जिस पर कोई भी अपना सर तोड़ सकता है।" १९१९ के शासन-विधान में कार्यकारिणी सभा और धारा सभा के सम्बन्ध में कोई ख़ास अन्तर नहीं पड़ा। कार्यकारिणी पहले की तरह ग़ैर ज़िम्मेवार बनी रही। १९३५ के संघ शासन-विधान में भी इसकी ग़ैर ज़िम्मेवारी वैसी ही बनी हुई है।

गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल अपने कामों के लिये पूरी तरह आज़ाद हैं। धारा-सभा उनमें अविश्वास का प्रस्ताव पास करे, तो भी वे अपने पद से हटाये नहीं जा सकते। उसे यह अधिकार नहीं है कि वह उनके वेतन तथा भत्ते के विषय में कोई परिवर्तन करे। कार्यकारिणी सभा की सलाहों को मानने के लिये वह बाध्य है। अपनी ग़लतियों के लिये इस देश की कार्यकारिणी बृटिश पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी है। पार्लियामेंट की इच्छा से असीम काल तक वह अपने स्थान पर बनी रहेगी। धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध गवर्नर-जनरल क़ानून बना सकता है, आर्डिनेन्स जारी कर सकता है, बने हुए क़ानूनों को रद्द कर सकता है तथा उसे बर्ख़ास्त भी कर सकता है। इससे ज़ाहिर है कि, इस देश की केन्द्रीय सरकार धारा-सभा के अधिकार में नहीं है या दूसरे शब्दों में इस देश की सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं है। इसे प्रजातन्त्र कहना ग़लत है। जब तक जनता के प्रतिनिधि शासन में पूरा अधिकार नहीं रखते तब तक एक ज़िम्मेवार शासन की स्थापना नहीं हो सकती।

संसार में प्रजातंत्र की भावना बढ़ रही है। धारा-सभा में चुने हुए सदस्यों की संख्या अधिक कर दी गई है। इसके आर्थिक अधिकार भी पहले से बढ़ा दिये गये हैं। कार्य-रूप में यह सम्भव नहीं है कि गवर्नर-जनरल और वाइसराय बार बार उसके बनाये हुए क़ानूनों को रद्द करते रहें। सरकार जनता की आवाज़ को अधिक काल तक नहीं ठुकरा सकती। यह बात ठीक है कि हमारे देश की धारा-सभा को यह अधिकार नहीं है कि वह कार्यकारिणी को भंग कर सके, परन्तु उसका प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में कम नहीं है। साधारण परिस्थिति में वह सब कुछ कर सकती है, परन्तु असाधारण

परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसके अधिकारों की अवहेलना की जाती है। क़ानूनी दृष्टि से भारत सरकार धारा-सभा से पूर्णतया स्वतंत्र है, परन्तु कार्य रूप में वह जनता के विचारों से बँधी हुई है। सर मलकम हेली ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा था कि, "यद्यपि भारत सरकार जनता के प्रति ज़िम्मेवार नहीं हैं फिर भी वह उसकी आवाज पर विचार करती है।" धारा-सभा में जो प्रश्न पूछे जाते हैं, अथवा प्रस्ताव पेश होते हैं, उनका प्रभाव कार्यकारिणी विभाग पर कम नहीं पड़ता।

धारा सभा का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से कार्यकारिणी सभा के ऊपर अधिक पड़ता है। १९१९ के मान्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट में इस बात का जिक्र किया गया है कि अप्रत्यक्ष प्रभाव महत्वपूर्ण है। कार्यकारिणी सभा धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार न होते हुए भी मनुष्यत्व से दूर नहीं जा सकती। जनता के प्रतिनिधियों के विचारों को ठुकराने में उसे वहीं तक सफलता मिलेगी जहाँ तक जनता इसे बर्दाश्त कर सकती है। २० वीं सदी प्रजातंत्र-वाद का युग है। स्वतंत्रता और समानता के शब्द चारों ओर गूँज रहे हैं। ऐसी दशा में जनता की आवाज़ को ठुकराना ख़तरे से खाली नहीं है। भारतीय जनता की आवाज अभी सुसंगठित नहीं है, यही कारण है कि अब भी यहाँ गैर ज़िम्मेवार शासन चलाया जा रहा है। जब तक कार्य-कारिणी अपने कामों के लिये धारा सभा के प्रति पूरी तरह ज़िम्मेवार न होगी, तब तक सच्चे प्रजातन्त्रवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। संसार के सभी प्रजात-त्रवादी देशों में यह धारा-सभा की मातहती में काम करती है। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि शासन में अनेक परिवर्तन करने पर भी हम अभी उस श्रेणी तक नहीं पहुँच सके हैं।

अध्याय १०

केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध

दोनों सरकारों का दरजा

आरम्भ से ही बृटिश सरकार की यह नीति रही है कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति अधिक से अधिक बढ़ाई जाय। बृटेन को राजनीतिक शक्ति केन्द्रित करने में सबसे बड़ी सुविधा यह थी कि जनता के अधिकार नाममात्र को शेष रह जावेंगे। प्रान्तीय सरकारों को छोटे मोटे अधिकार देकर केन्द्रीय सरकार उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाती रहती है। बृटिश सरकार की

दूसरी नीति हिन्दोस्तान को अधिक से अधिक टुकड़ों में बाँटने की रही है। १६०५ ई० में जब बंगाल को २ टुकड़ों में बाँटने की व्यवस्था की गई तो यह बात और भी स्पष्ट हो गई थी। लोगों ने इसका पूरी तरह विरोध किया और बंगाल विभाजित न हो सका। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों का सम्बन्ध एक सा नहीं रहता। इनके सम्बन्ध को अच्छी तरह समझने के लिये हम इसे ३ भागों में बाँट सकते हैं। इनका वर्णन आगे चल कर किया जायेगा। एक बात हमें स्मरण रखनी चाहिये कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को कम से कम शक्ति प्रदान करती है। जिस वैज्ञानिक ढंग पर और स्वतन्त्र देशों में शक्ति विभाजन किया गया है, उस ढंग पर हमारे देश में इसे नहीं बाँटा गया है। भारतीय जनता और बृटिश सरकार में इस विषय पर बहुत बड़ा मतभेद है। जनता बृटिश प्रान्तों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता प्रदान करना चाहती है, परन्तु बृटिश सरकार केन्द्रीय सरकार की शक्ति को किसी भी तरह कम करने पर तैयार नहीं है।

ऐतिहासिक सम्बन्ध

ऊपर कहा गया है कि केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार का सम्बन्ध एक सा नहीं रहता। वह समय समय पर बदलता रहता है। यह सम्बन्ध ३ कालों में बाँटा जा सकता है :—

१—शक्ति संचय काल (१७७२—१८७०)

२—शक्ति वितरण काल (१८७०—१९३७)

३—प्रान्तीय स्वराज (१९३७ से आरम्भ)

शक्ति संचय काल १७७२ से १८७० तक

१—बृटिश सरकार की योजना राजनीतिक शक्तियों को एक सूत्र में बाँधकर एकात्मक राज्य स्थापित करने की रही है। प्रजा के विरोध के कारण यह नीति बहुत कुछ बदल गई है, परन्तु इसका सर्वथा परित्याग नहीं किया गया है। इस देश का राजनीतिक विभाजन किसी वैज्ञानिक ढङ्ग पर नहीं किया गया है। शासन की सुविधा का ध्यान रख कर इसे चन्द टुकड़ों में बाँट दिया गया है। सूबों की संख्या घटाने बढ़ाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दिया गया था। प्रान्तीय सरकारों को सब काम गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल से पूछ कर करना पड़ता था। केन्द्रीय सरकार सारे हिन्दोस्तान के लिये क़ानून बनाती थी। इसके लिये वह बृटिश पार्लियामेंट के प्रति ज़िम्मेवार थी। १७७४ के पहले बंगाल, मद्रास और बम्बई तीनों अहातों को अपना अपना शासन कार्य चलाने का अधिकार दिया

गया था। वारेन हेस्टिंग्स के जमाने में १७७३ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के पास होने पर केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़ी। कम्पनी ने धीरे धीरे राजनीतिक शक्ति गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को सौंप दिया। कुछ दिनों तक प्रान्तों के गवर्नर मनमानी करते रहे, लेकिन उनकी ताक़त घटती गई। १७६८ ई० में जब लार्ड वेलेज़ली हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हुआ, तो केन्द्रीय सरकार का रुतबा और भी बढ़ा। उसने स्पष्ट कर दिया कि हिन्दोस्तान की रक्षा, टैक्स, लड़ाई और सन्धि, शासन, फ़ौज—इन मामलों में एक मात्र अधिकार गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को है।

वेलेज़ली की नीति बृटिश साम्राज्य को बढ़ाने की थी। उसके समय में संयुक्तप्रान्त, कर्नाटक, कनारा, बुन्देलखंड, दिल्ली, उड़ीसा आदि सूबे बृटिश राज्य में शामिल किये गये। नये सूबे सीधे केन्द्रीय सरकार की मातहती में आते थे। वह अपनी मर्ज़ी से शासन की सुविधा के लिये लेफ़्टिनेंट गवर्नरों तथा चीफ़ कमिश्नरों को नियुक्त करती थी। १८५४ ई० में बंगाल के शासन के लिये एक अलग गवर्नर की नियुक्ति की गई। शासन की बड़ी बड़ी बातें मसलन, रक्षा, वाह्य सम्बन्ध, देशी रियासतों से सम्बन्ध इत्यादि विषय केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खे गये। इनके अतिरिक्त टकसाल, विनिमय, पोस्ट आफ़िस, रेल, तार, डाक भी उसे सुपुर्द किये गये। बाक़ी विषय प्रान्तीय सरकारों को इस शर्त पर दिये गये कि गवर्नर-जनरल जब चाहे उनमें हाथ डाल सकता है। क़ानून, न्याय, पुलीस, जेल, घरेलू राजनीति, स्वास्थ्य, सफ़ाई, नौकरी इत्यादि विषय प्रान्तीय सरकारों को दिये गये। शासन को सुव्यवस्थित रूप से चलाने का बहाना लेकर केन्द्रीय सरकार जब चाहती प्रान्तीय विषयों में हाथ डाल सकती थी। कहा जाता था कि छोटे छोटे कामों में लगे रहने के कारण प्रान्तीय सरकारों का ध्यान उन बातों की ओर नहीं जा सकता था जिन्हें केन्द्रीय सरकार आसानी से सोच सकती थी। वह प्रान्तीय सरकारों का निरीक्षण भली भाँति कर सकती थी। इन्हीं कारणों से प्रान्तीय मामलों में उसका हस्तक्षेप बुरा नहीं माना जाता था। आज भी इन्हीं कारणों को लेकर वह प्रान्तीय मामलों में हाथ डालती है। परन्तु इन हस्तक्षेपों को जनता अच्छा नहीं समझती।

क़ानूनी मामलों में भी शक्ति संचय की नीति बर्ती गयी। १८०७ ई० के नियम के अनुसार बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों को क़ानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। बृटिश सरकार ने शक्ति संचय की नीति में इसे बाधक समझ कर उनसे १८३३ ई० में इस अधिकार को वापिस ले लिया। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को अधिकार दिया गया कि वे सारे सूबों

के लिये क़ानून बनावें। प्रान्तीय सरकारें अपने लिये कोई क़ानून नहीं बना सकती थीं। यद्यपि १८६१ ई० में क़ानून बनाने का अधिकार प्रान्तों को पुनः प्रदान कर दिया गया, फिर भी केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम न की गई। स्थानीय मामलों में प्रान्तीय सरकारों को थोड़ी स्वतंत्रता मिली। किन्तु यह सब शक्ति वितरण की दृष्टि से नहीं किया गया। केन्द्रीय सरकार के भार को हलका करने के लिये उसे ऐसा करना पड़ा। प्रान्तीय धारा-सभाओं को इस प्रकार के कोई अधिकार नहीं दिये गये जिनसे वे केन्द्रीय सरकार की मर्ज़ी के बग़ैर कोई बड़ा काम कर सकें। १९१६ के पहले ये धारा-सभायें गवर्नर की कार्यकारिणी सभा की एक बृहत् रूप मात्र थीं।

केन्द्रीय सरकार के लिये यह सम्भव नहीं था कि वह हिन्दोस्तान के शासन प्रबन्ध को एक स्थान से चला सके। उसे प्रान्तीय सरकारों की आवश्यकतायें पूरी तरह मालूम नहीं होती थीं। स्थानीय विषयों में जितनी जानकारी प्रान्तीय सरकारों को थी उतनी उसे नहीं हो सकती थी। इसीलिये उसने क़ानून बनाने के छोटे मोटे अधिकार प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया। प्रान्तीय धारा-सभाओं को* यह अधिकार न था कि वे पार्लियामेंट तथा केन्द्रीय धारा-सभा के बनाये हुए क़ानूनों में कोई उलट फेर कर सकें। जब कभी प्रान्तीय धारा-सभायें धार्मिक तथा देशी रियासतों सम्बन्धी क़ानून बनाना चाहतीं तो उन्हें गवर्नर-जनरल से इसकी आज्ञा लेनी पड़ती थी। कार्यरूप में ये आज्ञायें हर समय प्राप्त हो जाती थीं, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने इन बातों को अपने ही हाथ में रख रक्खा था।

केन्द्रीय सरकार ने पहले से ही इतने क़ानून बना रक्खे थे कि प्रान्तीय सरकारों को इसका अवसर बहुत कम मिलता था। छोटी से छोटी बातों के लिये केन्द्रीय सरकार ने पहिले से ही क़ानून बना रक्खा था। अधिकार रखते हुए भी प्रान्तीय धारा-सभायें कुछ नहीं कर सकती थीं। जेल, विवाहशादी, ठीके, सुलहनामें, व्यवसाय, नापतौल, बीमा, दिवाला, खदानें, मिलें, बिजली, मज़दूर, आवागमन, स्वास्थ्य, ज़हर, कोढ़, पागलपन, सफ़ाई, धर्म, दान देने वाली संस्थायें, खेल कूद, सिनेमा थियेटर, मोटर, प्राचीन स्मारक—इन सबके लिये वह क़ानून बना चुकी थी। प्रान्तीय सरकारों को इन्हें चुपचाप मानना पड़ता था। इनके अतिरिक्त सारे हिन्दोस्तान से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर उसका एक मात्र अधिकार था। जिन छोटी छोटी बातों का ऊपर ज़िक्र

*बहुत ही साधारण अर्थ में इन्हें धारा-सभा कहा जा सकता है।

किया गया है उनमें प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनों सरकारें हाथ डालने की मुस्तहक थीं।

प्रान्तीय सरकारों के ऊपर केवल केन्द्रीय सरकार का हुक्म चलता तो भी ग़नीमत थी। लेकिन यहाँ तो भारत-मन्त्री की भी आज्ञा माननी पड़ती थी। क़ानून बनाने के पहिले दोनों से आज्ञा लेनी पड़ती थी। कार्यकारिणी विभाग का अधिकार इतना अधिक था कि छोटा से छोटा बिल प्रान्तीय धारा-सभाओं में पेश नहीं हो सकता था। यदि किसी प्रान्तीय धारा सभा में कोई बिल पेश रहता और केन्द्रीय सरकार उसे पसन्द न करती तो वह प्रान्तीय सरकार को इस बात के लिये मजबूत करती थी कि वह धारा-सभा की अमुक-कार्रवाई को रोक दे। कर सम्बन्धी बिल धारा सभाओं में केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के बिना पेश नहीं हो सकते थे। प्रान्तीय धारा-सभा द्वारा पास किये गये क़ानूनों की आख़िरी मंजूरी गवर्नर-जनरल से लेनी पड़ती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि प्रान्तीय सरकार स्थानीय बातों का ज्ञान रखते हुए भी जनता की भलाई के लिये कुछ नहीं कर सकती थी।

शासन और क़ानून के मामले में प्रान्तीय सरकारों को स्वतंत्रता न थी। सरकारी आय-व्यय पर एकमात्र अधिकार केन्द्रीय सरकार का था। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के समय से ही रुपये-पैसे के मामले में वह सब कुछ समझी जाती थी। हिन्दोस्तान से जितने टैक्स वसूल किये जाते वे सब केन्द्रीय सरकार के ख़ज़ाने में आकर जमा होते थे। इसके बाद उसकी आज्ञा से ख़र्च किये जाते थे। कुछ समय तक प्रान्तीय सरकारों को टैक्स वसूल करने का अधिकार न था। लेकिन बाद में उन्हें यह अधिकार दिया गया कि चन्द छोटे-मोटे टैक्स वे वसूल करके केन्द्रीय सरकार में भेज दें। इसके लिये एक कौड़ी भी वे ख़र्च नहीं कर सकती थीं। तात्पर्य यह है कि प्रान्तीय सरकारें नौकर के मानिन्द सब कुछ वसूल करके केन्द्रीय सरकार को दे देती थीं। वह जितना चाहती प्रान्तीय सरकारों से वसूल कराकर माँग लेती। प्रान्तीय सरकारों को न इसमें कोई घाटा था और न मुनाफ़ा। शासन सम्बन्धी ख़र्चे के लिये केन्द्रीय सरकार अपनी ओर से प्रान्तीय सरकारों को इमदाद देती थी। इस इमदाद में इस बात का ख़्याल नहीं रक्खा जाता था कि किस प्रान्त से कितने रुपये की आमदनी हुई है। केन्द्रीय सरकार जितनी ज़रूरत समझती उतनी प्रान्तीय सरकारों को अलग अलग दे देती थी। सभी विषयों की तरह आर्थिक विषय में भी शक्ति संचय अपनी चरम सीमा को पहुँच चुका था।

इतने बड़े देश में शक्ति का इतना अधिक संचय जनता के लिये हानि-कारक सिद्ध हुआ। प्रजा से मनमाना धन वसूल तो किया जाता लेकिन इसके बदले में उसे बहुत कम लाभ होता था। कारण यह है कि प्रान्तीय सरकार के कर्मचारी केवल केन्द्रीय सरकार के हुकुम की तामील करते थे। आर्थिक शक्ति संचय की हानियाँ कुछ ही दिनों में प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगीं। प्रजा की शारीरिक, मानसिक और विचार सम्बन्धी शक्तियाँ कमज़ोर होती गईं। केन्द्रीय सरकार की आज्ञा मानने के कारण प्रान्तीय सरकारें जनता की भलाई की ओर से आँख चुराने लगीं। उसका बोलबाला इतना अधिक था कि प्रान्तीय सरकारी कर्मचारी उसे चुपचाप मान लेते थे। बृटिश सरकार की यह शक्ति-संचय वाली नीति अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी। १८७० ई० तक इस नीति के दुष्परिणाम ज़ाहिर होने लगे थे। शासन के सूत्र को एक के हाथ में देकर बृटिश सरकार हिन्दोस्तान की तरफ़ से निर्द्वन्द्व ज़रूर हो गई थी, लेकिन शक्ति-संचय की इतनी सख्त नीति बहुत दिनों तक काम में नहीं लाई जा सकती थी। १८५७ ई० का ग़दर बहुत कुछ इसी का परिणाम था।

शक्ति-वितरण काल १८७० से १९३७ तक

२—१८६९ ई० में लार्ड मेयो वाइसराय के पद पर नियुक्त किये गये। शक्ति संचय के दुष्परिणाम उन्हें खटकने लगे। उन्होंने देखा कि न तो इससे कोई आर्थिक लाभ है और न शासन में ही कोई ख़ास सुविधा होती है। इसके विपरीत प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार से असन्तुष्ट रहती हैं। उन्हें इतना भी अधिकार नहीं है कि केन्द्रीय सरकार की आज्ञा के बिना थोड़ा भी धन खर्च कर सकें। लार्ड मेयो के प्रयत्न से प्रान्तीय सरकारों को कुछ आर्थिक अधिकार सौंप दिये गये। शिक्षा, पुलिस, जेल, स्वास्थ्य, सफ़ाई, कुछ नौकरियाँ, छापाख़ाना, रजिस्ट्री, सड़कें, आवागमन, इमारतें, इत्यादि, इत्यादि, विषयों का प्रबन्ध कुछ शर्तों के साथ उन्हें दे दिया गया। इनकी आय को वे अपने सूबों में ख़र्च कर सकती थीं। इनके अतिरिक्त कुल सूबों को मिला कर ४६८८७११० रुपये की इमदाद केन्द्रीय सरकार से निश्चित की गई। इस रुपये को वे अपनी इच्छानुसार उपरोक्त मदों में ख़र्च कर सकते थे। इसके अलावा वे अपने ख़र्च के लिये नये नये टैक्स भी लगा सकते थे। शेष मदों की आमदनी केन्द्रीय सरकार को भेजनी पड़ती थी।

लार्ड मेयो की योजना का यह तात्पर्य नहीं था कि बृटिश प्रान्तों को आर्थिक मामलों में स्वतन्त्र कर दिया जाय। शासन की सुविधा के लिये कुछ

थोड़े से अधिकार इसलिये दे दिये गये कि केन्द्रीय सरकार की परेशानियाँ थोड़ी हलकी हो जायँ। जिन विभागों का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को दिया गया वे केन्द्रीय सरकार की मातहती से एकदम अलग न थे। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार था कि वह प्रान्तीय विषयों में हाथ डाल सके। यद्यपि थोड़ी सी शक्ति वितरण से प्रान्तीय सरकारों की आज़ादी पूरी नहीं हुई, परन्तु किसी हद तक उनके अधिकारों में वृद्धि अवश्य हो गई। केन्द्रीय सरकार से उनका नाता बराबरी के दर्जे की ओर बढ़ने लगा। प्रान्तीय सरकारें स्थानीय विषयों में दिलचस्पी लेने लगीं। उन्हें यह धीरे-धीरे विश्वास होने लगा कि यदि वे शासन में योग्यता दिखलायेंगी तो उन्हें और भी अधिकार मिलते जावेंगे।

लार्ड लिटन के समय में (१८७७ ई०) प्रान्तीय सरकारों को कुछ और अधिकार प्रदान किये गये। १८७० ई० में जो विषय उन्हें प्रबन्ध करने के लिये दिये गये थे, उनमें वृद्धि कर दी गई। आबकारी, टिकट, क़ानून और न्याय तथा कुछ और नये विषय उनकी मातहती में दे दिये गये। ये अधिकार सभी प्रान्तों में एक से नहीं थे। नये विभागों के प्रबन्ध के लिये केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय सरकारों की इमदाद में कोई वृद्धि नहीं की। उसने उन्हें यह अधिकार दे दिया कि इन मदों से जो आय हो उसे वह ख़र्च करे। कमी पड़ने पर केन्द्रीय सरकार कुछ रुपये उन्हें मंजूर कर देती। लेकिन एक निश्चित आय से ऊपर यदि प्रान्तीय सरकारों की आमदनी होती तो उसका आधा हिस्सा केन्द्रीय सरकार के पास भेज देना पड़ता था। वास्तव में प्रान्तीय सरकारों को यह कोई अधिकार न था। बजाय इसके कि केन्द्रीय सरकार सीधे अपने कर्मचारियों से इन महकमों का प्रबन्ध कराती, उसने इन्हें प्रान्तीय सरकारों की देख-रेख में छोड़ दिया। केन्द्रीय सरकार के अधिकार बहुत कुछ उसी के हाथों में थे। उपरोक्त नये विभागों की आमदनी के लिये प्रत्येक सूबे के साथ हर ५ वर्ष के लिये एक ठीका होता था। यदि ठीके की रकम से अधिक आय होती तो वह केन्द्रीय सरकार की आय समझी जाती थी। आसाम और बर्मा के ऊपर ये नियम लागू न थे। ये दोनों सूबे पिछड़े हुए समझे जाते थे। आसाम में भूमि कर से जो आय होती उसका कुछ हिस्सा उसके ख़र्च के लिये दे दिया जाता था। इसी तरह बर्मा में भूमिकर के हिस्से के अतिरिक्त जंगल-आय, चावल का निर्यात कर तथा नमक-कर की आमदनी का एक हिस्सा उसे दे दिया जाता था। केन्द्रीय सरकार ने यह निश्चय किया कि प्रान्तीय सरकारों को इमदाद न देकर उन्हें यह अधिकार दे दिया जाय कि चन्द विभागों की आमदनी वे ख़र्च कर सकें। लार्ड लिटन तथा जान स्ट्रेची के ये विचार क्रमशः लागू किये गये।

लार्ड रिपन जो सबसे नेक वाइसराय गिने जाते हैं, प्रान्तीय सरकारों की स्वतन्त्रता के पूर्ण पक्षपाती थे। अब तक प्रान्तीय सरकारों से केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध विभिन्न वसूलों पर कायम था। लार्ड रिपन की यह इच्छा हुई कि इस प्रकार का भेद-भाव हटा देना चाहिये। लार्ड मेयो के समय से जो इमदाद देने की रकम चली आ रही थी वह बन्द कर दी गई। प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दिया गया कि वे कुछ विभागों की आमदनी केन्द्रीय सरकार को न भेज कर ख़ुद ख़र्च करें। यदि इस पर भी कुछ कमी पड़े तो वह प्रान्तीय सरकारों की आमदनी का कुछ और हिस्सा उनके ख़र्च के लिये छोड़ देती। लार्ड रिपन के समय में (१८८२ ई०) एक नई योजना बनाई गई। सरकारी महकमे ३ श्रेणियों में बाँट दिये गये। रक्षा, वाह्य सम्बन्ध, चुङ्गी, टकसाल इत्यादि केन्द्रीय सरकार के हाथों में दे दिये गये। इनका पूरा प्रबन्ध, आमदनी और ख़र्च सब कुछ केन्द्रीय सरकार के ज़िम्मे किया गया। भूमि-कर, रजिष्ट्री तथा जंगल—इनकी आमदनी केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों में बाँट दी जाती थी। इन विभागों का प्रबन्ध दोनों सरकारों को करना पड़ता था। कुछ छोटे-मोटे विभाग एकमात्र प्रान्तीय सरकारों के ज़िम्मे छोड़ दिये गये। प्रान्तीय सरकारें उन ज़िम्मेवारियों से बरी कर दी गईं जो उनकी सीमा से बाहर थीं। स्थानीय विषयों में रुचि बढ़ाने का मौक़ा उन्हें अच्छी तरह दे दिया गया। फिर भी उनकी अवस्था स्थाई नहीं थी।

१९०४ ई० में लार्ड कर्ज़न ने इसकी ओर ध्यान दिया। उनके दिल में यह बात आई कि जब तक प्रान्तीय सरकारों को काफ़ी रकम ख़र्च करने का मौका न मिले तब तक वे बड़े पैमाने पर कोई काम नहीं कर सकतीं। विषयों की विभाजन प्रणाली में उलट-फेर किया गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों की आमदनी और ख़र्च के विषय फिर से निश्चित किये गये। उन्हें आश्वासन दिया गया कि इस प्रबन्ध में किसी विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त कोई उलट फेर नहीं किया जायेगा। आर्थिक मामलों में प्रान्तीय सरकार किसी हद तक स्वतंत्र कर दी गईं, लेकिन और मामलों में केन्द्रीय सरकार की शक्ति बनी रही। १९१० ई० में जब लार्ड हार्डिंग हिन्दोस्तान के वाइसराय हुए तो बृटिश प्रान्तों को कुछ और अधिकार प्रदान किये गये। १९०४ ई० के प्रबन्ध को १९१२ में स्थाई करार दिया गया। प्रान्तीय सरकारें अपनी आमदनी और ख़र्च का जो व्योरा तैयार करतीं उनमें केन्द्रीय सरकार को दख़ल देने का अधिकार न था। दोनों सरकारों में संघर्ष के अवसर कम कर दिये गये। १९१९ ई० के पहिले केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों का सम्बन्ध निम्नलिखित प्रकार से था:—

जिन विषयों का सम्बन्ध सारे हिन्दोस्तान से था वे केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खे गये। रक्षा, वाह्य सम्बन्ध, चुङ्गी, तार, डाक, टकसाल, अकाल, रेलवे तथा आबपाशी—ये विषय उसके ज़िम्मे रक्खे गये। इनकी आमदनी और ख़र्च की ज़िम्मेदारी उसी पर थी। वह जैसी चाहती इन विभागों पर शासन करती। शिक्षा, पुलीस, जेल, छापाखाना, सड़कें, इमारत, स्वास्थ्य और सफ़ाई—ये विषय प्रान्तीय सरकारों को दिये गये। इनकी आमदनी और ख़र्च उसके ज़िम्मे की गई। जब कभी कोई नीति चलानी होती अथवा प्रान्तीय सरकारों की ग़लतियों को सुधारना होता तो वह उनमें दख़ल दे सकती थी। इन दोनों प्रकार के विषयों से परे कुछ ऐसे भी विषय थे जिनमें दोनों सरकारों को सम्मिलित अधिकार दिये गये। भूमि-कर, टिकट, आबकारी, आय-कर, जंगल, रजिस्ट्री, सिंचाई—ये विषय दोनों की मातहती में सम्मिलित रूप से रक्खे गये। इन मदों की आमदनी दोनों सरकारों में अनुपात से बाँट दी जाती थी। इनके ख़र्चे दोनों सरकारों को देने पड़ते थे। स्थानीय प्रबन्ध में प्रान्तीय सरकारें हिस्सा लेती थीं। शेष बातें केन्द्रीय सरकार के हाथों में थीं। इससे स्पष्ट है कि १८७० से १९१९ तक अर्थात् लगभग ५० वर्षों में प्रान्तीय सरकारों को बहुत थोड़ी शक्ति प्रदान की गई। नये-नये टैक्स लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार के हाथों में था। प्रान्तीय सरकारें अपनी आमदनी को नहीं बढ़ा सकती थीं। उन्हें टैक्स सम्बन्धी बिल पर विचार करने का अधिकार न था। इसके लिये गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेनी पड़ती थी। सलाह देने की गरज़ से केन्द्रीय सरकार जब चाहती दख़ल दे सकती थी। प्रान्तीय सरकारों को अपनी आमदनी और ख़र्च की सूची पहिले केन्द्रीय सरकार को भेजनी पड़ती थी, इसके बाद प्रान्तीय धारा-सभाओं में इस पर विचार किया जाता था।

प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की मर्ज़ी से काम करती थीं। अपनी उन्नति के लिये वे उधार या कर्ज़ नहीं ले सकती थीं। यदि प्रान्तीय सरकारों को इस प्रकार का अधिकार दे दिया जाता तो इससे हानि के बदले लाभ की सम्भावना अधिक थी। केन्द्रीय सरकार को भय था कि ऐसा करने से प्रान्तीय सरकारों की शक्ति बढ़ जावेगी। प्रान्तीय नौकरियाँ केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खी गई थीं। सूबों के बड़े बड़े कर्मचारी केन्द्रीय सरकार की सलाह से काम करते थे। जनता प्रान्तीय सरकारों से सन्तुष्ट न थी। आर्थिक कमी के कारण उनको सन्तुष्ट रखना असम्भव था। आमदनी और ख़र्च के मामलों में उनके हाथ इतने बाँध दिये गये थे कि वे इच्छा रखते हुए भी कोई योजना

अमल में नहीं ला सकती थीं। शासन, आय-व्यय तथा क़ानून—इन तीनों मामलों में प्रान्तीय सरकारों को बहुत थोड़े अधिकार दिये गये थे।

जर्मनी की बड़ी लड़ाई में हिन्दोस्तानियों ने बृटिश सरकार की इतनी सहायता की कि उसके बदले में उन्हें कुछ राजनीतिक अधिकार मिलना लाज़मी था। भारत-मंत्री की घोषणा के अनुसार यह बात निश्चित ठहराई गई कि "जहाँ तक हो सके स्थानिक संस्थाओं में जनता का पूर्ण अधिकार हो। उनका नियंत्रण उन्हीं के द्वारा और वाह्य नियंत्रण से उनको अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त हो। प्रान्त ही वह क्षेत्र है जहाँ से उत्तरदायी शासन की ओर क्रमशः पद रखना आरंभ किया जा सकता है। कुछ उत्तरदायित्व के काम जनता को तुरन्त दे दिये जाने चाहिये और हमारा उद्देश्य यह है कि राज्यकार्य में शीघ्र ही जनता को पूर्ण उत्तरदायित्व दे दिया जाय। इसका अर्थ यह है कि भारत-सरकार प्रान्तों को अपने धर्म निर्माण, शासन, तथा अर्थ सम्बन्धी अधिकारों का उतना अंश दे दे जिससे इसको अपनी ज़िम्मेवारियों के पालन में किसी प्रकार की बाधा न पड़े।" पार्लियामेंट के वर्तमान रूख से यह बात निर्विवाद है कि इस प्रकार की घोषणाओं में कोई तथ्य न था। राष्ट्रीय भावनाओं के उद्गार इतने बढ़ रहे थे कि बृटिश सरकार को कोई ऐसा बहाना नहीं था जो हिन्दोस्तानियों को बहुत दिनों तक चकमे में डालता। काँग्रेस इस बात पर तुली हुई थी कि स्थानीय क्षेत्रों में जनता को राजनीतिक अधिकार अधिक से अधिक मिलने चाहिये। स्वयं बृटेन में कितने ही अँग्रेज़ हिन्दोस्तान की राजनीतिक स्वतंत्रता के पक्ष में थे। इसी के फलस्वरूप १६१६ ई० में भारतीय शासन में परिवर्तन किया गया। इससे केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में भी अन्तर पड़ा।

केन्द्रीय सरकार का दबाव प्रान्तीय सरकारों पर कम कर दिया गया। इनके बजट एक दूसरे से अलग कर दिये गये। जिस आधार पर दोनों सरकारों में विषय-विभाजन किया गया था वह बदल दिया गया। संयुक्त ज़िम्मेवारी के विषय तोड़ दिये गये। रक्षा, वाह्य सम्बन्ध, देशी रियासतों से सम्बन्ध, रेलवे, जहाज़, तार, डाक, चुंगी, आबकारी, नमक-कर, आय-कर, टकसाल, ऋण, अफ़ीम, लेखन अधिकार, आवागमन, अन्वेषण, अनुसन्धान, धर्म, सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति, आबादी की गणना इत्यादि विषय केन्द्रीय सरकार के ज़िम्मे रक्खे गये। शिक्षा, स्वायत्त शासन, स्वास्थ्य और सफ़ाई, दवा, सिंचाई, भूमिकर, अकाल, खेती, जंगल, व्यवसाय, पुलीस और न्याय, तोल बाँट आदि विषय प्रान्तीय सरकारों को दिये गये। प्रान्तों में दोहरे शासन (Dyarchy) का विधान जारी किया गया। अर्थात् कुछ

विषय गवर्नर और उसके सलाहकारों के हाथ में रक्खे गये और बाक़ी भारतीय मंत्रियों को दे दिये गये। जो विषय भारतीय मंत्रियों को दिये गये उनमें केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। यद्यपि केन्द्रीय सरकार देश की शान्ति-रक्षा तथा सुव्यवस्थित शासन प्रबन्ध के लिये ज़िम्मेवार थी, फिर भी शासन की सुविधा का ध्यान रखते हुए वह भारतीय मंत्रियों के कामों में दख़ल देना पसन्द न करती। जो विषय गवर्नरों के हाथ में रक्खे गये थे उनमें वह हाथ डाल सकती थी।

१६१६ के शासन-सुधार में भारतवासियों को कुछ राजनीतिक अधिकार दिये गये। जनता को प्रान्तीय शासन में हिस्सा लेने का अवसर प्राप्त हुआ। यह स्वाभाविक था कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय विषयों की ज़िम्मेवारी से बहुत कुछ हाथ खींच लेती। प्रान्तीय धारा-सभाओं में चुने हुए सदस्यों का बहुमत हुआ। ये धारा-सभायें जो क़ानून बनाती उन्हें केन्द्रीय सरकार ठुकरा नहीं सकती थी। जनता में अधिकार और कर्त्तव्य की भावना बढ़ रही थी। कांग्रेस के प्रयत्न से लोग स्वतंत्रता के मूल्य को समझने लगे थे। ऐसी दशा में केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकार के कामों को ठुकरा नहीं सकती थी। उसे जनता की मनोवृत्ति का ध्यान रखते हुए प्रान्तीय सरकारों की कार्रवाहियों का आदर करना पड़ता था। लोकमत के विरुद्ध वह प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करती रही, लेकिन इसके विरुद्ध देश में जो आन्दोलन हुआ उसका महत्त्व राजनीतिक दृष्टि से कम नहीं रहा। यह कहना बुरा न होगा कि १६१६ के बाद भारतीय जनता को जो राजनीतिक अधिकार मिला वह उसके गाढ़े पसीने की कमाई थी।

प्रान्तीय सरकारों को कर वसूल करने के कितने ही अधिकार दे दिये गये। कुछ विषयों पर टैक्स लगाने के लिये उन्हें गवर्नर-जनरल से आज्ञा लेने की ज़रूरत न थी। कचहरियों में टिकट की फ़ीस बढ़ा दी गई। कुछ नये टैक्स जारी किये गये। इससे प्रान्तीय सरकारों को शासन में उन्नति करने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन केन्द्रीय सरकार के दबाव अब भी कम न थे। ख़र्च के मामले में वह बहुत बड़ा हाथ रखती थी। केन्द्रीय मदों से जो आमदनी होती वह उसके ख़र्च के लिये काफ़ी न थी। इसे पूरा करने के लिये वह प्रान्तीय सरकारों से धन माँगती थी। प्रान्तीय सरकारों को अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा उसे देना पड़ता था। आमतौर से लगभग १० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार प्रान्तों से लेती थी। यदि यह लम्बी रक़म प्रान्तीय सरकारें जनता की भलाई के लिये अपने अपने क्षेत्र में ख़र्च करतीं तो शासन की व्यवस्था अधिक सुव्यवस्थित होती। परन्तु केन्द्रीय सरकार

इस रुपये को लिये बिना नहीं रह सकती। प्रत्येक प्रान्त की हैसियत के अनुसार यह धन वसूल किया जाता था। लार्ड मेस्टन के सभापतित्व में एक कमीटी ने इस बात का फ़ैसला किया कि किस प्रान्त से कितना धन लिया जाय। संयुक्तप्रान्त को २४० लाख रुपया देने के लिये निश्चित किया गया। सभी प्रान्तों ने लार्ड मेस्टन की इस योजना का विरोध किया। अन्त में १६२६ ई० में यह योजना बदल दी गई।

१६१६ के शासन विधान में जिस हद तक प्रान्तों को राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान की गई वहाँ तक केन्द्रीय सरकार का अधिकार उनके ऊपर कम हो गया। आर्थिक और शासन-प्रबन्ध में उन्हें कुछ निश्चित अधिकार मिल गये। यद्यपि प्रान्तों को पूर्ण स्वतंत्रता हासिल न हुई लेकिन उनका झुकाव उस ओर कर दिया गया। केन्द्रीय सरकार किसी न किसी रूप में प्रान्तीय सरकार की कार्यवाइयों पर कड़ी नज़र रखने लगी। दोनों सरकारों के इस सम्बन्ध से भारतीय जनता सन्तुष्ट न थी।

प्रान्तीय स्वराज १६३७ से अब तक

३—कांग्रेस की राजनीतिक माँगों को पूरा किये बिना बृटिश सरकार शान्ति से काम नहीं कर सकती थी। सत्याग्रह आन्दोलन के कारण देश के कोने कोने में एक ऐसी लहर फैली कि उसकी माँगें ठुकराई नहीं जा सकती थीं। इन्हें पूरा करने के लिये १६३५ ई० में संघ शासन-विधान का निर्माण किया गया। इस शासन-विधान के अन्दर कहाँ तक कांग्रेस की पूर्ण आज़ादी की माँग पूरी की गई यह एक दूसरा प्रश्न है। प्रान्तीय स्वतन्त्रता (Provincial-Autonomy) का जन्म हुआ। यह प्रान्तीय स्वतंत्रता क्या चीज़ है और कहाँ तक अपने नाम को सार्थक करती है, इन दोनों बातों का विचार अगले अध्याय में किया जायेगा। २७ महीने इसे अमल में लाने के बाद इसकी सारी भीतरी कमजोरियाँ ज़ाहिर होने लगीं। इसका विस्तृत वर्णन एक स्वतंत्र अध्याय में किया गया है। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में परिवर्तन किये गये। यद्यपि प्रान्तीय सरकारों को आज़ादी दे दी गई लेकिन शासन-विधान की बारीकियों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि केन्द्रीय सरकार के अधिकार कम नहीं हैं। दोनों सरकारों में मालिक और गुलाम का जो सम्बन्ध था वह अब भी है। यदि ऐसा न होता और स्वतन्त्रता का तथ्य रहता तो कांग्रेस सरकारों को इस्तीफ़ा देने की नौबत न आती। गवर्नर-जनरल तथा केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा के अधिकारों को देखते हुए प्रान्तीय स्वराज की बातें व्यर्थ

है) यदि राष्ट्रीय सरकार की योजना सफल हुई तो केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध भी बदल जायेंगे। दोनों अपने अपने क्षेत्र में लोकमत के अनुसार कार्य करेंगी। इसकी सफलता का बहुत कुछ दारोमदार विधान सम्मेलन पर निर्भर है।

तीसरा खंड

प्रान्तीय सरकार

(PROVINCIAL GOVERNMENT)

अध्याय ११

गवर्नर

हिन्दोस्तान राजनीतिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया गया है।

हिन्दोस्तान के राजनीतिक विभाग

एक भाग में देशी रियासतें हैं, जिनकी संख्या ६०० के लगभग है। दूसरे भाग में अँग्रेज़ी सूबे हैं जिन्हें बृटिश भारत कहते हैं। सूबों की संख्या कुल १७ है, जिनमें ११ गवर्नरों के सूबे और ६ चीफ़ कमिश्नर के सूबे हैं। बंगाल, मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बरार, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, आसाम, सिन्ध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश गवर्नर के सूबे कहलाते हैं। इनमें प्रधान शासक गवर्नर होता है। दिल्ली, अजमेर मेरवाड़ा, कुर्ग, बृटिश बिलोचिस्तान, अंडमन और निकोबार तथा पंथ पिपलौदा चीफ़ कमिश्नर के सूबे कहलाते हैं। इन दोनों प्रकार के सूबों में राजनीतिक भेद हैं। नये शासन-विधान में गवर्नर के सूबों को प्रान्तीय स्वराज दिया गया है, परन्तु चीफ़ कमिश्नर के सूबे स्वतन्त्र नहीं हैं। चीफ़ कमिश्नर द्वारा गवर्नर-जनरल उन पर शासन करता है। चूँकि गवर्नर-जनरल चीफ़ कमिश्नरों की नियुक्ति करता है, इसलिये वे सभी प्रकार से उसकी मातहती में रहते हैं।

गवर्नर के सूबों में छोटी और बड़ी दो धारा सभाएँ हैं। शेष सूबों में एक ही धारासभा है। प्रान्तों का विभाजन वैज्ञानिक नहीं है। उनकी सीमा निर्धारित करते समय भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी परिस्थिति का ध्यान नहीं रक्खा गया है। बृटिश सरकार को हिन्दोस्तान जीतने में लगभग

एक शताब्दी व्यतीत करने पड़े। जो जो स्थान उसकी मातहती में आते गये वे प्रान्तों में परिवर्तित होते गये। लड़ाई के ज़माने में बृटिश सरकार को इतना अवसर न था कि वह शान्ति पूर्वक बैठ कर इनका वैज्ञानिक विभाजन करती। कई वर्षों में टुकड़े टुकड़े करके बनाया हुआ मकान उतना अच्छा नहीं होता जितना एक निश्चित अवधि के अन्दर, एक ख़ास नक्शे के आधार पर, बनाया हुआ होता है। यदि बृटिश सरकार हिन्दोस्तान को एक बार फ़तह कर लिये होती तो प्रान्तों का विभाजन आज किसी और तरह पर किया गया होता। परन्तु वह ऐसा न कर सकी। जो ज़िले किसी एक सूबे में शरीक होने चाहिये वे आज दूसरे सूबे में इसलिये शामिल किये गये हैं कि वे बाद में फ़तह किये गये। शासन की सुविधा का ध्यान रखते हुए सरकार को ऐसा करना पड़ा। परन्तु विजय समाप्त होने के पश्चात बृटिश सरकार उनका विभाजन नये सिरे से कर सकती थी। सिद्धान्त के विरुद्ध केवल शासन की सुविधा का ध्यान रखते हुए किसी देश का विभाजन करना उसकी राष्ट्रीयता को नष्ट करना है।

कुछ सूबे भाषा और समाज की दृष्टि से इतने उलझे हुए हैं कि वहाँ लोकमत का अभाव है। सिन्ध प्रान्त जो १८३९ ई० में फ़तह किया गया बम्बई में इसलिये शामिल कर लिया गया कि वह उसके क़रीब पड़ता था। विजय की धुन में बृटिश सरकार को उन्नति-अवनति का ध्यान न था। सरकार की नीति बहुत दिनों तक "बाँटो और राज्य करो" (Divide and Rule) की रही है। राष्ट्रीयता को कमज़ोर बनाने के लिये ये अधूरे विभाजन बहुत कुछ ज़िम्मेवार हैं। कितने ही सूबों में एकता का अभाव है। यह प्रश्न कई बार उठाया गया है कि प्रान्तों का विभाजन नये सिरे से किया जाय। आन्ध्र को एक स्वतन्त्र प्रान्त बनाने की माँग बहुत ही प्राचीन है। कॉंग्रेस ने भाषा-प्रयुक्त विभाजन को सबसे उत्तम ठहराया है, परन्तु बृटिश सरकार इसे स्वीकार नहीं करती। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि १७ की जगह हिन्दोस्तान के ४० टुकड़े कर दिये जाँय। सूबों की संख्या बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। राजनीतिक भावना के प्रचार के साथ प्रान्तीय विभाजन का प्रश्न बढ़ रहा है। जो व्यक्ति भाषा, जाति, संस्कृति, तथा रहन सहन में किसी दूसरे प्रान्त के निवासियों से मिलते जुलते हैं वे उसी प्रान्त से राजनीतिक सम्बन्ध रखना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि उनकी आर्थिक तथा मानसिक अवनति का कारण राजनीतिक विभाजन है।

केवल भाषा और जातीयता के आधार पर सूबों का विभाजन ठीक नहीं है। सूबों की वृद्धि से राष्ट्रीय एकता में बाधा होगी और सरकारी ख़र्च

बढ़ेगा। राजनीतिक विभाजन वहीं तक बढ़ना चाहिये जहाँ तक शासन की उपयोगिता हो। यदि प्रान्त की सीमा छोटी है और वह स्वावलम्बी नहीं है तो इससे देश को हानि होगी। इसके विपरीत यदि एक ही प्रान्त के अन्दर ऐसे विभाग मौजूद हैं, जो स्वावलम्बी होने के अतिरिक्त अपनी अलग संस्कृति रखते हैं तो उसे २ या ३ टुकड़ों में बाँट देना चाहिये। १९१७ ई० में कलकत्ता काँग्रेस के अवसर पर लोकमान्य तिलक ने कहा था कि "भाषा के वसूल पर देश का राजनीतिक विभाजन प्रान्तीय स्वराज से कहीं आवश्यक है।" वहीं काँग्रेस ने यह भी फ़ैसला किया कि सिन्ध एक अलग सूबा बना दिया जाय। काँग्रेस की नीति के अनुसार हिन्दोस्तान के २१ राजनीतिक विभाग होने चाहिये। अर्थात् हिन्दोस्तान में कुल २१ सूबों की आवश्यकता है। अस्वावलम्बी जगहों को स्वतन्त्र सूबा करार देने से उसका सारा ख़र्च केन्द्रीय सरकार को बर्दाश्त करना पड़ता है। १९३५ के संघ शासन विधान के अनुसार सिन्ध और उड़ीसा दोनों ऐसे स्वतंत्र सूबे बनाये गये हैं जो स्वावलम्बी नहीं हैं। केन्द्रीय सरकार सिन्ध को प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ रुपया और उड़ीसा को ५० लाख रुपया देती है।

कुछ लोगों की धारणा है कि देश का वर्तमान राजनीतिक विभाजन उपयोगी है। किसी भी वसूल को लेकर हम देश के टुकड़े करें तो अनगिनत हिस्से करने पड़ेंगे। ऐसा करने से वे उन लाभों से वंचित हो जावेंगे जो उन्हें आज मिल रहे हैं। अधिक प्रान्तों से प्रान्तीय भावना बढ़ेगी। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद हैं। बंगाली और बिहारी प्रश्न अभी तक हल न हो सका। काँग्रेस के अथक परिश्रम करने पर भी इन दोनों प्रान्तों में प्रान्तीयता का भाव इतना अधिक है कि एक प्रान्त के निवासी दूसरे को विदेशी समझते हैं। राष्ट्रहित की दृष्टि से प्रान्तीयता का भाव हानिकर है। प्रान्तों के विभाजन में इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनमें राजनीतिक एकता के साथ सहयोग की और बातें बनी रहें। दो प्रान्तों के बीच दीवाल खड़ी करना निरी मूर्खता है। मुस्लिम लीग ने इस देश की राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओं को सुलझाने के लिये पाकिस्तान योजना का निर्माण किया है। अर्थात् वह हिन्दोस्तान को हिन्दू और मुसलमान दो टुकड़ों में बाँट देना चाहती है। कार्य रूप में यह बात जितनी असम्भव है, राष्ट्र हित की दृष्टि से उतनी ही घातक है। हिन्दू और मुसलमान नेताओं में कट्टर मतभेद भले ही हो जाय किन्तु दोनों सम्प्रदायों की आम जनता को एक दूसरे से अलग करना उतना ही मुश्किल है जितना चीनी और बालू को।

१६३५ के शासन-विधान के पहिले हिन्दोस्तान में कुल १५ सूबे थे। परन्तु नये शासन-विधान के अनुसार कुल १७ सूबे बनाये गये हैं। सिन्ध को बम्बई से अलग करके एक नया सूबा मान लिया गया है। इसी तरह मद्रास, मध्यप्रान्त तथा बिहार उड़ीसा के कुछ हिस्सों को लेकर एक नया उड़ीसा प्रान्त बनाया गया है। १६३५ के ऐक्ट के अनुसार सम्राट् नये सूबे बना सकता है। उसे यह भी अधिकार है कि सूबे की सीमा घटा बढ़ा सके। इस परिवर्तन से संघ धारा सभा के प्रतिनिधियों में उलटफेर होगी। परन्तु उनकी संख्या नहीं बढ़ाई जा सकती। चीफ़ कमिश्नरों के सूबों की सीमा भी इसी तरह बदली जा सकती है। वर्तमान सूबों में बंगाल प्रान्त की जनसंख्या सबसे अधिक है। इसमें ५ करोड़ से कुछ अधिक मनुष्य निवास करते हैं। आबादी में दूसरा नम्बर संयुक्तप्रान्त का है। लगभग ५ करोड़ व्यक्ति इस प्रान्त में रहते हैं। गवर्नर के सूबों में सबसे कम जनसंख्या पश्चिमोत्तर प्रदेश की है। २४२५००३ मनुष्य इस प्रान्त में निवास करते हैं। क्षेत्रफल में मद्रास प्रान्त सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल १२६६६३ वर्ग मील है। क्षेत्रफल में दूसरा दर्जा संयुक्तप्रान्त का है। गवर्नरों के सूबों में सब से कम क्षेत्रफल पश्चिमोत्तर प्रदेश का है। केवल १३५१८ वर्ग मील के घिराव में यह घिरा हुआ है। चीफ़ कमिश्नरों के सूबों में दिल्ली का क्षेत्रफल सबसे कम है। परन्तु इसकी आबादी सबसे अधिक है। इसका क्षेत्रफल केवल ५७३ वर्ग मील और जनसंख्या सवा ३ लाख के क़रीब है। बृटिश बिलोचिस्तान का क्षेत्रफल सबसे अधिक है। इसका क्षेत्रफल ५४ हज़ार वर्ग मील और जनसंख्या साढ़े चार लाख की है। पंजाब की जनसंख्या संयुक्तप्रान्त की आधी है। पंजाब का क्षेत्रफल ग्रेट बृटेन के बराबर है। मध्यप्रान्त और बरार भी इतना ही लम्बा चौड़ा है। बिहार की भी जनसंख्या ग्रेट बृटेन के बराबर है।

नये शासन-विधान में प्रान्तीय विभाजन

गवर्नर का पद गवर्नर-जनरल से प्राचीन है। यह पद ३०० वर्षों से चला आ रहा है। आरम्भ में गवर्नरों के कार्य थोड़े थे। वे कम्पनी के व्यापार की देख-रेख के लिये सूबों में नियुक्त किये जाते थे। लेकिन इनकी ज़िम्मेवारियाँ बढ़ती गईं। आज इसकी ज़िम्मेवारी अपने प्रान्तों में उतनी ही है जितनी गवर्नर-जनरल तथा वाइसराय की सारे हिन्दोस्तान में। गवर्नर की नियुक्ति सम्राट् द्वारा ५ वर्ष के लिये की जाती है। सम्राट् भारत मंत्री से इसकी सलाह लेता है। उपनिवेशों के गवर्नरों की नियुक्ति वहाँ की कैबिनेट की सलाह से

गवर्नर

की जाती है। सिविल सर्विस के सदस्य आमतौर से इस पद के लिये चुने जाते हैं। हिन्दोस्तानियों को यह पद बहुत कम दिया जाता है। बंगाल, मद्रास और बम्बई अहातों के गवर्नरों का दर्जा और सूबों के गवर्नरों से ऊँचा समझा जाता है। ये बृटेन की राजनीति में काफ़ी हिस्सा लिये हुए रहते हैं। इनके वेतन अन्य प्रान्तीय गवर्नरों से अधिक होते हैं। जब कभी गवर्नर-जनरल अवकाश ग्रहण करता है तो इन्हीं अहातों के गवर्नरों में से किसी को उसके स्थान पर कार्य करने का अवसर दिया जाता है।

हिन्दोस्तानियों में केवल लार्ड सिनहा को यह पद दिया गया था। वे थोड़े समय के लिये बिहार प्रान्त के गवर्नर नियुक्त किये गये थे। किसी गवर्नर के छुट्टी लेने पर अस्थाई रूप से कार्य करने का अवसर कई भारतीयों को प्राप्त हुआ है। अहातों के गवर्नरों को छोड़ कर शेष ८ प्रान्तों के गवर्नरों को सम्राट् गवर्नर-जनरल की सलाह से नियुक्त करता है। उनकी नियुक्ति में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि वे शासन सम्बन्धी कार्यों में अनुभव-शील हों। कुछ व्यक्ति कलेक्टर के पद से उन्नति करके गवर्नर हो जाते हैं। नियुक्ति के समय इन्हें कुछ ख़ास सलाहें दी जाती हैं जिनमें उन्हें ख़ास हिदायत की जाती है कि वे शान्ति तथा प्रजा की भलाई के साथ बृटेन के हित का ध्यान रक्खें। उन्हें नेकनीयती तथा आज्ञा-पालन की शपथ लेनी पड़ती है। यह शपथ गवर्नर-जनरल और गवर्नर दोनों के लिये एकसी होती है।

ऊपर कहा गया है कि अहातों तथा अन्य सूबों के गवर्नरों के वेतन में अन्तर होता है। संयुक्तप्रान्त, मद्रास, बम्बई और बंगाल प्रान्त के गवर्नरों में १२०००० रु० हरेक को सालाना वेतन दिया जाता है। पंजाब तथा बिहार के गवर्नरों को १००००० रुपया तथा मध्यप्रान्त और उड़ीसा के गवर्नर को ७२००० रुपया सालाना वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त बाकी सूबों के गवर्नरों का सालाना वेतन ६६००० रुपया है। वेतन के अतिरिक्त प्रत्येक गवर्नर को भत्ते दिये जाते हैं। भारतमंत्री इस भत्ते को निश्चित करता है। ये भत्ते कई शकल में दिये जाते हैं। रहने के लिये बंगला, यात्रा के लिये अव्वल दर्जे की गाड़ी अथवा हवाई जहाज़, मोटरकार तथा अपने बंगले को सजाने के लिये उसे जिन जिन सामानों की ज़रूरत होती है वे सब उन्हें दिये जाते हैं। लेकिन इसकी एक सीमा है। मसलन पंजाब प्रान्त के गवर्नर को १०००० रुपये से अधिक भत्ता नहीं दिया जा सकता। नियुक्ति के समय यदि वह इंगलैंड में है तो वहाँ से हिन्दोस्तान आने का उसे पूरा ख़र्च दिया जाता है। जब एक सूबे से दूसरे सूबे को उसकी बदली होती है उस समय उतना ही आने जाने का ख़र्च दिया जाता है। यह सारा ख़र्च प्रान्तीय ख़ज़ाने

से दिया जाता है। वेतन और भत्तों के अलावा कुछ और भी सुविधायें उन्हें दी जाती हैं। भत्ते सहित संयुक्तप्रान्त के गवर्नर को कुल ३२८५०० रुपया प्रतिवर्ष दिया जाता है।

गवर्नर के अधिकार गवर्नर के अधिकार ३ कोटि में बाँटे गये हैं.—

१—स्वतंत्र अधिकार

२—निजी अधिकार

३ - मंत्रियों से सम्मिलित अधिकार

अपने सूबे में शान्ति तथा रक्षा की पूरी ज़िम्मेवारी गवर्नर को दी गई है। प्रान्तीय शासन का कोई विषय ऐसा नहीं है जिसमें उसे हाथ डालने का अधिकार न हो। जिन विषयों में वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से कार्य करने का अधिकारी है उनमें मंत्रियों से सलाह लेने की उसे आवश्यकता नहीं है। ये स्वतंत्र अधिकार प्रान्तीय स्वराज के भाव को बिगाड़ देते हैं। मंत्रिगण इसमें कुछ नहीं बोल सकते। इन स्वतंत्र अधिकारों के अतिरिक्त उसे कुछ विशेष अधिकार भी दिये गये हैं। कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें वह मंत्रियों से सलाह लेते हुए भी उनसे बाध्य नहीं है। उनके विरोध करने पर भी वह मनमानी कर सकता है। उसके विशेष अधिकारों की संख्या १६ के लगभग है। प्रान्त में शान्ति की रक्षा के बहाने वह जब चाहे मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकता है। अल्पसंख्यक वर्ग की रक्षा के लिये उसे विशेष अधिकार दिये गये हैं।

प्रान्तीय सरकारी कर्मचारियों की रक्षा का भार उसे दिया गया है। प्रान्त में स्थित देशी रियासतों के शासक और शासित दोनों के अधिकारों की रक्षा करना उसका कर्त्तव्य है। इन विशेष अधिकारों के अतिरिक्त मध्य-प्रान्त और बरार के गवर्नर को एक और अधिकार दिया गया है। वह यह है कि प्रान्त का पूरा कर बरार की भलाई के लिये ठीक ठीक ख़र्च हो रहा है अथवा नहीं। इसी तरह शकर में कनाल स्कीम तथा लाइबैरेज के प्रबन्ध का अधिकार सिन्ध प्रान्त के गवर्नर को दिया गया है। प्रान्त के जो विभाग पिछड़े हुए करार दिये गये हैं उनकी देख-रेख उसे सुपुर्द की गई है। इन विषयों में वह अपने मन्त्रियों से सलाह ले सकता है परन्तु उसे मानने के लिये वह बाध्य नहीं है। इन विशेष अधिकारों में जो बुराइयाँ मौजूद हैं उनका वर्णन गवर्नर-जनरल के विशेष अधिकारों में किया गया है। जिस समय १९३७ ई० में प्रान्तों में मंत्रिपद ग्रहण का प्रश्न उठा था उस समय

काँग्रेस का भय ठीक था कि गवर्नर मंत्रियों की सलाह को ठुकरा सकता है। संयुक्त प्रान्त तथा बिहार में राजनीतिक क़ैदियों के प्रश्न पर गवर्नरों और मंत्रियों में मतभेद उत्पन्न हुआ। गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार गवर्नरों ने कुछ क़ैदियों को छोड़ने से इनकार कर दिया। दोनों प्रान्तों के मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिया। अन्त में सुलह की बात तै हो गई और मंत्रियों ने अपना इस्तीफ़ा वापिस ले लिया।

गवर्नर अपने सूबे का प्रधान शासक है। प्रान्तीय स्वराज उसके हाथ की कठपुतली है। लोगों का यह अनुमान था कि गवर्नर जनता के बहुमत को ठुकराने का साहस न करेंगे। लेकिन यह आशा बेकार सिद्ध हुई। मंत्रियों को चुनने, उन्हें बुलाने तथा बर्ख़ास्त करने का अधिकार गवर्नर को दिया गया है। यद्यपि इसके लिये वह बहुमत पार्टी के प्रधान से सलाह लेता है, परन्तु फिर भी मंत्रियों के चुनाव में उसकी राय सबसे ऊपर समझी जाती है। मंत्रियों की सभा में सभापति का आसन वह ग्रहण कर सकता है। मंत्रियों के ज़िम्मे विभिन्न विभागों को वही करता है। मंत्री तथा उसके सहायक मंत्री के लिये यह आवश्यक है कि वे अपने विभाग की पूरी सूचना समय समय पर गवर्नर को देते रहें। इसका तात्पर्य यह है कि शासन के प्रत्येक विभाग उसके प्रभाव से ख़ाली नहीं रह सकता। सभी प्रजातंत्रवादी देशों में कैबिनेट की बैठक का प्रधान प्रधान मंत्री होता है। यदि हमारे देश में इस प्रथा को लाना है तो गवर्नरों को मंत्रिमंडल के वादविवाद में हिस्सा नहीं लेना चाहिये। १९३५ के शासन-विधान में यह बात गवर्नरों की इच्छा पर छोड़ दी गई है कि वे मंत्रिमंडलों में बैठें अथवा न बैठें। यदि वे उपस्थित नहीं हैं तो प्रत्येक सूबे का प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल का सभापति होगा। प्रान्तीय स्वराज के अन्दर क़ानून और व्यवस्था विभाग एक मंत्री को सुपुर्द किये गये हैं। पार्लियामेंट भारतीयों को यह अधिकार देने के पक्ष में न थी। वह यह कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि पुलीस विभाग की इतनी बड़ी ज़िम्मेवारी भारतीय मंत्रियों को दे दी जाय। इस कठिनाई को दूर करने के लिये गवर्नर को यह विशेष अधिकार दिया गया है कि वह पुलीस विभाग के नियमों में उलट फेर कर सकता है। विशेष अवसरों पर अपने अधिकार से इस विभाग में दख़ल दे सकता है। इस विभाग की कार्रवाइयों की जानकारी के लिये वह जैसा चाहे नियम बना सकता है।

संघ शासन-विधान में बड़ी बड़ी नौकरियाँ हिन्दोस्तानियों के हाथों से बाहर रक्खी गई हैं। यहाँ तक कि स्वयं प्रान्त के बड़े बड़े कर्मचारी मंत्रियों के अधिकार से अलग रक्खे गये हैं। वे भारतमंत्री की मातहती में कार्य करते

हैं। यद्यपि इन कर्मचारियों का वेतन प्रान्तीय ख़ज़ाने से दिया जाता है फिर भी इनकी जिम्मेवारी मंत्रियों से अलग रक्खी गई है। गवर्नर को विशेष अधिकार है कि वह इन कर्मचारियों की भर्ती, इनके तबादिले तथा इनके वेतन वृद्धि का फैसला करे। ज़िले के न्यायाधीश उसी के व्यक्तिगत अधिकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। प्रान्त में पब्लिक सर्विस कमीशन के प्रधान को वही नियुक्त करता है। कमीशन के सदस्यों की संख्या, समय तथा उसकी शर्तें वही निश्चित करता है। इन उदाहरणों से यह भली भाँति स्पष्ट है कि गवर्नर के अधिकार स्वच्छन्द और सर्वप्रधान हैं।

क़ानूनी अधिकार

अपने प्रान्त की धारा-सभा को बुलाने का अधिकार गवर्नर को दिया गया है। वह जब चाहे उसे स्थगित तथा भंग कर सकता है। प्रान्तीय स्वतंत्रता के विधान में वह प्रधान-मंत्री से सलाह ले सकता है। उसे दोनों धारा-सभाओं में भाषण देने का अधिकार है। किसी बिल के सम्बन्ध में अथवा अपनी स्वतंत्र इच्छा से वह कोई सूचना धारा-सभा को दे सकता है। जिन प्रान्तों में दो धारा-सभाओं का विधान बनाया गया है उनमें यदि दोनों सभाओं में कोई मतभेद हो जाय तो गवर्नर को अधिकार है कि वह उनकी सम्मिलित बैठक बुला सके। प्रान्तीय धारा-सभाओं में जितने भी बिल पास होते हैं उनकी स्वीकृति गवर्नर से लेनी पड़ती है। वह उसे मंजूर या नामंजूर कर सकता है। यदि वह चाहे तो किसी बिल को पुनः विचार करने के लिये धारा-सभा को वापिस कर सकता है। स्पीकर अथवा सभापति की सलाह से धारा-सभा की कार्रवाइयों का नियम बनाने का अधिकार उसी को है। जब दोनों धारा सभाओं की सम्मिलित बैठक होती है तो उसकी कार्रवाई का नियम वही निर्धारित करता है।

गवर्नर को विशेष अवसरों पर क़ानून बनाने के अधिकार दिये गये हैं। जिन विषयों की जिम्मेवारी उसे दी गई है उनके लिये वह अपनी इच्छानुसार क़ानून बना सकता है। इस प्रकार के क़ानून के दो तरीक़े हैं। या तो वह बिना किसी की सलाह के स्वयं क़ानून बनायेगा; अथवा कानून का आशय लिख कर धारा-सभा में भेज देगा। एक महीने के अन्दर धारा-सभा उसके पास इस प्रकार के बिल पर अपनी राय पेश करेगी। इसके पश्चात् वह इसे क़ानून का रूप दे सकता है। उसके बनाये हुए क़ानून उसी प्रकार लागू समझे जायेंगे जैसे धारा-सभा के। अन्तर इतना ही है कि उसे अपने बनाये हुए क़ानूनों की सूचना गवर्नर-जनरल द्वारा भारत-मंत्री को देनी होगी। भारत-मंत्री इन्हें पार्लियामेंट की दोनों सभाओं में पेश करेगा। यदि धारा-

सभा उसके बनाये हुए क़ानूनों में कुछ परिवर्तन करना चाहे तो नहीं कर सकती। गवर्नर की आज्ञा के बिना वह इन पर विचार भी नहीं कर सकती। १९३५ ई० तक गवर्नर को आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार न था। केवल गवर्नर-जनरल इसे जारी कर सकता था। परन्तु नये शासन-विधान के अनुसार उन्हें आर्डिनेन्स जारी करने का अधिकार दे दिया गया है। ये आर्डिनेन्स २ प्रकार के होते हैं। एक तो वह अपने मंत्रियों की सलाह से जारी करता है और दूसरे अपने अधिकार से। जिस समय धारा सभा की बैठक नहीं हो रही है और गवर्नर कोई आर्डिनेंस जारी कर देता है तो उसे धारा-सभा की बैठक आरम्भ होते ही उस आर्डिनेंस को उसके सामने रखना होगा। धारा-सभा की बैठक के ६ सप्ताह बाद आर्डिनेंस की शक्ति समाप्त समझी जायेगी। गवर्नर को एक प्रकार का और भी आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार है। जिसे धारा-सभा के सामने रखने की आवश्यकता नहीं है। ६ महीने के लिए वह इन्हें जारी कर सकता है और फिर अगले ६ महीने के लिये बढ़ा सकता है।

धारा-सभा द्वारा पास किये गये क़ानूनों को गवर्नर रद्द कर सकता है। यह अधिकार उसे १९१९ ई० से दिया गया है। नये शासन विधान में यह और भी सरल बना दिया गया है। बिना किसी रोक-टोक के वह ऐसे क़ानूनों को रद्द कर सकता है। आर्थिक क्षेत्र में उसे बहुत से अधिकार दिये गये हैं। प्रति वर्ष आय-व्यय का चिट्ठा प्रान्तीय धारा-सभा के सामने पेश किया जाता है। धारा सभा को खर्चों के घटाने बढ़ाने का अधिकार तभी तक है जब तक गवर्नर शान्त रहता है। यदि वह चाहे तो धारा सभा द्वारा इनकार की गई रक़म को भी स्वीकार कर सकता है। किसी मद के लिये तब तक इमदाद नहीं माँगी जा सकती जब तक गवर्नर की स्वीकृति प्राप्त न कर ली जाय। बजेट में कुछ ऐसे मद रक्खे गये हैं जिन पर धारा-सभा को वोट देने का अधिकार नहीं है। वह अपने प्रान्त में गवर्नर की आज्ञा के बिना कोई नया टैक्स नहीं लगा सकती। पहले के टैक्सों को बढ़ाने का भी उसे अधिकार नहीं है। कोई प्रान्त गवर्नर की आज्ञा के बिना क़र्ज़ नहीं ले सकता।

गवर्नरों को अपने प्रान्त में कुछ सरकारी कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। वह अपने प्रान्त में एक ऐडवोकेट जनरल नियुक्त करता है। इसकी योग्यता इतनी ज़रूर होनी चाहिये कि वह हाईकोर्ट का न्यायाधीश बनाया जा सके। यह अपने पद पर तब तक काम कर सकता है जब तक गवर्नर की इच्छा होती है। इसका वेतन भी वही निश्चित

करता है। गवर्नर जब चाहे इसे निकाल सकता है। ऐडवोकेट जनरल का काम क़ानूनी मामलों में प्रान्तीय सरकार को सलाह देना है। प्रान्तीय धारा-सभा में बैठने तथा बहस में भाग लेने का इसे पूरा अधिकार है। परन्तु वह धारा-सभा में किसी विषय पर वोट नहीं दे सकता। केन्द्र तथा प्रान्त दोनों में किसी ऐसे पदाधिकारी की आवश्यकता है जो शासन सम्बन्धी क़ानूनों में निपुण हो। इसके कामों को गवर्नर स्वयं निश्चित करता है। ब्रिटेन में जो स्थान अटार्नी जनरल का है वही प्रान्त में ऐडवोकेट जनरल का। मंत्रि मंडल से इसका कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं है। ऐडवोकेट जनरल को अधिकार है कि वह प्रान्त की दोनों धारा-सभाओं में भाषण दे सके।

अपने प्रान्त में शान्ति की व्यवस्था के लिये गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करता है। यदि वह आवश्यक समझे तो सरकारी पदाधिकारी को अधिकार दे सकता है कि वह प्रान्तीय धारा-सभाओं तथा इनकी किसी कमेटियों में भाग ले सके। लेकिन उसे वोट देने का अधिकार न होगा। यदि कोई व्यक्ति क्रान्ति द्वारा अथवा किसी दूसरे तरीक़े से प्रान्तीय सरकार के अस्तित्व को मिटाना चाहे तो उससे बचने की कार्रवाई करने का अधिकार गवर्नर को है। वह पुलिस विभाग के अफ़सरों को यह सूचित कर सकता है कि यह समाचार किसी से न कहे। केवल इन्सपेक्टर जनरल या पुलिस कमिश्नर या कोई दूसरा पदाधिकारी जिसे गवर्नर-जनरल आज्ञा दे, ऐसा कर सकता है। ऐसे अधिकार यह सूचित करते हैं कि सरकार जनता में कितना कम विश्वास रखती है। अपने दफ्तर के कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर को दिया गया है। उनका वेतन वही निश्चित करता है। प्रान्तीय धारा-सभा इस ख़र्चे पर वोट नहीं दे सकती।

इन अधिकारों से स्पष्ट है कि गवर्नर का स्थान नये शासन-विधान में बहुत ही महत्वपूर्ण है। शासन बनाने वालों का उसूल यह भली भाँति व्यक्त है कि वे कार्यकारिणी विभाग को पूर्ण स्वतन्त्र रखना चाहते थे। इसीलिये गवर्नर को इतने अधिक अधिकार दिये गये हैं। शासन की पूरी बागडोर इसके हाथ में रक्खी गई है। आर्थिक, क़ानूनी तथा शासन सम्बन्धी सभी विषयों में वह हाथ डाल सकता है। मंत्रियों के होते हुए भी वह अपने विशेष अधिकारों द्वारा पूर्ण स्वतन्त्र है। उसके इन अधिकारों के सामने प्रान्तीय स्वराज कोई अर्थ नहीं रखता। कांग्रेस ने जब मन्त्रिपद ग्रहण किया तो उसे यह आशा थी कि गवर्नर इन अधिकारों

का प्रयोग जल्दी नहीं करेंगे। योरप की लड़ाई छिड़ते ही केन्द्रीय सरकार के हुक्म गवर्नरों को अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिये बाध्य करने लगे। ऐसी दशा में कांग्रेस ने उचित समझ कर त्यागपत्र दे दिया। गवर्नर और गवर्नर-जनरल के स्थान अपने अपने क्षेत्र में एक से हैं। दोनों विशेषाधिकार से सुसज्जित हैं। केन्द्रीय सरकार में एक सुरक्षित विभाग बनाया गया है जिस पर एकमात्र अधिकार गवर्नर-जनरल का है। प्रान्तीय सरकार में पिछड़े हुए विभागों (Excluded Areas) को छोड़ कर ऐसा कोई भी विभाग नहीं है। प्रान्तों में गवर्नर को धन सम्बन्धी मामले में वे विशेष अधिकार नहीं दिये गये हैं, जो केन्द्र में गवर्नर-जनरल को हैं। इन थोड़े से अन्तर को छोड़ कर शेष कार्यों में दोनों का पद एक सा है। दोनों ही प्रजा के अधिकारों से ऊपर रक्खे गये हैं। आवश्यकता पड़ने पर दोनों अपने स्वतन्त्र विचार से शासन का कार्य चलाते हैं।

अध्याय १२

प्रान्तीय मंत्रि मंडल

मंत्रियों की आवश्यकता

यद्यपि गवर्नर अपने प्रान्त का सर्वप्रधान शासक है, फिर भी उसे सलाह देने के लिये मंत्रियों की एक सभा बनाई गई है। शासन को चलाने के लिये केवल एक व्यक्ति समर्थ नहीं हो सकता। केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन में केवल दर्जे का अन्तर है सिद्धान्त दोनों के एक हैं। जो आवश्यकता गवर्नर-जनरल को अपने सलाहकारों की है वही आवश्यकता गवर्नर को मंत्रियों की है। शासन में कोई सरकार जनता के विचारों को बहुत दिनों तक नहीं ठुकरा सकती। कुछ समय तक वह इसकी अवहेलना भले ही कर ले; लेकिन यह शासन सर्वप्रिय तभी बन सकता है जब जनता के प्रतिनिधियों की राय मान ली जाय। यद्यपि यह अवस्था बृटिश-प्रान्तीय जनता को अभी तक प्राप्त नहीं है परन्तु शासन के ऐतिहासिक विकास को देखते हुए इसकी उन्नति क्रमशः इसी मार्ग पर हुई है। नये शासन-विधान में प्रान्तीय स्वराज अभी अधूरा है, फिर भी इसकी असलियत में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिये। जब हम वर्तमान प्रान्तीय शासन की तुलना १९०९ अथवा १९१९ के शासन-विधानों से करते हैं तो हमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जनता

के अधिकार किस प्रकार क्रमशः बढ़ते गये हैं। इस वृद्धि का मापदंड धारा-सभाओं में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या है। दो प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि प्रान्तीय शासन में कहाँ तक हमें अधिकार दिये गये हैं। एक तो यह कि धारा-सभाओं में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या कितनी है। दूसरे यह कि इन प्रतिनिधियों को शासन में कहाँ तक हाथ डालने का अधिकार है।

प्रान्तीय शासन की उपयोगिता वहीं तक है जहाँ तक वह स्थानीय समस्याओं को दूर कर सके। इसके लिये यह आवश्यक है कि स्थानीय जनता की पूरी पूरी राय ली जाय। प्रान्तीय शासन को चलाने के लिये गवर्नरों को एक एक मंत्रि-मंडल दिये गये हैं। कुछ तो शासन-प्रबन्ध में उसे सहायता पहुँचाने के लिये और कुछ जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये ऐसा किया गया है। मंत्री धारा-सभाओं के सदस्य होते हैं। प्रजा का उनमें पूर्ण विश्वास होता है। वे अपने कार्यों के लिये सरकार तथा जनता दोनों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। जिस देश की प्रान्तीय कार्य-कारिणी सभा धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार नहीं होती वह प्रजा-तन्त्रवादी होने का दावा नहीं कर सकता। यदि मन्त्री न हों तो एकतन्त्रवाद की स्थापना हुये बिना नहीं रह सकती। गवर्नर के स्वतन्त्र कार्यों में कोई रुकावट नहीं पड़ सकती। मन्त्री शासन का पूरा भार अपने ऊपर लेकर जनता की भलाई की चिन्ता करते हैं। एक ओर वे गवर्नर की निरंकुशता को रोकते हैं और दूसरी ओर उत्तरदायी शासन को दृढ़ करते हैं। यदि प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य जनता के प्रतिनिधि हों किन्तु कार्य-कारिणी सभा से उनका कोई सम्बन्ध न हो तो जनता का निर्वाचन अधिकार निरर्थक सिद्ध होगा। इन्हीं कारणों से हरेक प्रान्त में एक ऐसे मंत्रि-मंडल की आवश्यकता पड़ती है जो सभी प्रकार से शासन-प्रबन्ध के लिये जिम्मेवार हो।

मंत्रियों की सभा
Council of Ministers

१९१९ के पहिले बृटिश भारत १५ प्रान्तों में विभक्त था। बंगाल, मद्रास और बम्बई अहातों के गवर्नरों को तीन तीन सदस्यों की एक कौंसिल उनकी सहायता के लिये दी गई थी। ये सदस्य सरकारी कर्मचारियों में से चुन लिये जाते थे। शासन के प्रत्येक काम में गवर्नर इनसे सलाह लेता था, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वह मनमानी भी कर सकता था। इन तीन प्रान्तों के अतिरिक्त ४ प्रान्तों के प्रधान लेटिनेंट गवर्नर कहलाते थे। ये अपने सूबे का प्रबन्ध बिना कौंसिल के भी कर सकते थे। तीन प्रान्त ऐसे थे जिनका प्रधान

कमिश्नर कहलाता था। ये पूर्णतया भारत सरकार के अधीन कार्य करते थे शेष प्रान्तों का प्रबन्ध भारत सरकार की देख-रेख में होता था। इनमें जनता के अधिकार शून्य के बराबर थे। १९१९ ई० के शासन-विधान के अनुसार गवर्नर के प्रान्तों की संख्या ९ कर दी गई। शेष प्रान्तों का दर्जा वही बना रहा। इस शासन-विधान में प्रान्तों में दोहरे शासन (Dyarchy) की नींव डाली गई। प्रान्तीय विषय दो श्रेणियों में विभाजित करके कुछ विषय भारतीय मंत्रियों को दे दिये और शेष गवर्नर और उसकी कौंसिल के हाथों में छोड़ दिये गये। गवर्नर की कौंसिल में ४ सदस्य होते थे। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। इसके आधे सदस्य भारतीय होते थे। इनमें एक ऐसे सदस्य का होना आवश्यक था जो कम से कम ११ वर्ष तक सरकारी नौकरी में रहा हो। कौंसिल की बैठक में गवर्नर सभापति का आसन ग्रहण करता था। आमतौर से उसे बहुमत का फैसला मानना पड़ता था। परन्तु वोट बराबर होने पर अथवा किसी विशेष परिस्थिति में वह इसके विरुद्ध भी कर सकता था।

कौंसिल के सदस्यों के अतिरिक्त गवर्नर के प्रान्तों में एक मन्त्रिमण्डल होता था। जो विषय जनता की ज़िम्मेदारी पर दिये गये थे। उनका प्रबन्ध इन्हीं मन्त्रियों के जिम्मे था। मन्त्री गवर्नर द्वारा चुने जाते थे। ये प्रान्तीय धारा-सभा के चुने हुए सदस्यों में से होते थे। यद्यपि ये मन्त्री कार्यकारिणी सभा (Executive Council) के सदस्य नहीं होते थे परन्तु शासन की सुविधा के लिये कुछ विषयों में कौंसिल के सदस्यों के साथ बैठकर विचार करते थे। मन्त्रियों तथा कौंसिल के सदस्यों की सम्मिलित बैठक में गवर्नर सभापति होता था। सम्मिलित बैठक का फ़ैसला कौंसिल तथा मन्त्रिमंडल दोनों को मानना पड़ता था। दोनों विषयों के प्रबन्ध के लिये एक सम्मिलित रक़म रक्खी गई थी परन्तु सुरक्षित विषयों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। गवर्नर को यह अधिकार था कि वह मंत्रियों की सलाह को माने या ठुकरा दे। मन्त्री उसकी इच्छानुसार कार्य करने के लिये बाध्य थे। वह जब चाहता उन्हें हटा सकता था। उनका वेतन धारा-सभा द्वारा निश्चित किया जाता था। कौंसिल के सदस्य धारा-सभा के सदस्य नहीं होते थे, लेकिन उन्हें यह अधिकार था कि वे उसकी बैठक में शरीक़ हो सकें। ये ५ वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते थे। उनका वेतना सभी प्रान्तों में एक सा नहीं होता था। बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा संयुक्तप्रान्त में प्रत्येक सदस्य को ६४००० रुपया सालाना; पंजाब, बर्मा, बिहार उड़ीसा, में ६०००० रुपये सालाना; तथा

अन्य प्रान्तों में ४२००० रुपये सालाना दिया जाता था। मन्त्रियों का वेतन निश्चित नहीं था।

प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की मातहती में काम करती थीं। कुछ विषयों में प्रत्यक्ष रूप से और कुछ में अ-प्रत्यक्ष रूप से वह हाथ डाल सकती थी। प्रान्तीय कार्यकारिणी के दो हिस्से करने से शासन प्रबन्ध की ज़िम्मेवारी दो जगह बँट गई थी। अर्थात् कौंसिल के सदस्य और मन्त्री किसी को भी पूरा उत्तरदायित्व प्राप्त न था। साथ ही एक की ज़िम्मेवारी धारा-सभा के प्रति और दूसरे की गवर्नर के प्रति थी। यह दोहरा प्रबन्ध सर्वथा दूषित था। १६ वर्ष तक किसी तरह यह शासन प्रबन्ध चलता रहा। जिन मन्त्रियों को कुछ विषयों की जिम्मेवारी दी गई थी उन्हें निकालने और भर्ती करने का अधिकार गवर्नर को था। ऐसी दशा में वे उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते थे। यही वजह है कि १६१६ के शासन-विधान से भारतीय समाज का कोई वर्ग सन्तुष्ट न था। शासन-विधान में यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि १० वर्ष बाद अर्थात् १६२६ ई० में शासन की सफलता और असफलता पर विचार किया जायेगा। किसी तरह ८ वर्ष व्यतीत हुए थे कि १६२७ ई० में इसकी जाँच पड़ताल आरम्भ हो गई। इसके पश्चात् १६३५ ई० में एक संघ-शासन की योजना बनाई गई। प्रान्तों की संख्या में उलट-फेर किया गया और उन्हें प्रान्तीय स्वराज अर्पण कर दिया गया। यह प्रान्तीय स्वराज कहाँ तक भारतीय जनता को राजनीतिक अधिकार प्रदान करता है, इसका वर्णन अगले अध्याय में किया गया है। प्रान्तों से दोहरा शासन तोड़ कर एक मत्रि-मंडल की स्थापना की गई है।

१६३५ के शासन-विधान में प्रान्तीय मंत्रि-मंडल

१६३५ का शासन-विधान हमारे देश के लिये एक नई देन है। जिस संघ-शासन की योजना पर हम वर्षों से विचार कर रहे थे वह हमें दी गई है। इसके गुण-दोषों पर हम पिछले अध्याय में विचार कर चुके हैं प्रान्तीय शासन में इसका क्या प्रभाव है इस पर विचार करना है। नये संघ शासन-विधान में प्रजातंत्रवाद की नक़ल की गई है। प्रान्तीय स्वराज इसका पहिला क़दम है। अब प्रश्न यह है कि क्या प्रान्तों में एक निर्वाचित धारा-सभा बनाई गई है तथा प्रान्तीय मंत्रिमंडल इस सभा के प्रति उत्तरदायी है? यदि ये दोनों बातें ठीक हैं तो हमें प्रान्तीय स्वराज की असलियत में कोई सन्देह नहीं है। प्रान्तीय मन्त्रिमंडल का अध्ययन करने पर ये दोनों प्रश्न हल हो जायेंगे।

नये शासन विधान में गवर्नर को सलाह देने के लिये मन्त्रियों की एक सभा बनाई गई है। दोहरा शासन दूर कर दिया गया है। कुछ विषयों में उसकी इच्छा सर्वप्रधान है, परन्तु बाक़ी के लिये वह मन्त्रियों से सलाह ले सकता है। परन्तु उस सलाह से वह बाध्य नहीं है। प्रान्त की रक्षा और शासन को चलाने की ज़िम्मेवारी के नाते वह सब कुछ करने का अधिकारी है। दोनों विषय एक दूसरे से सर्वथा अलग कर दिये गये हैं कि किन विषयों में मन्त्री सलाह दे सकते हैं और किन में नहीं। दूसरे प्रकार के विषयों में वह जो वसूल चाहेगा बर्तेगा। इसलिए मन्त्रियों की सलाह का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

नये शासन-विधान में मन्त्रियों को चुनने का अधिकार गवर्नर को दिया गया है। कार्य रूप में वह छोटी धारा-सभा (Legislative Assembly) की बहुमत पार्टी के नेता को बुलाता है। एक जिम्मेवार शासन की दृष्टि से यह प्रथा सराहनीय है। लगभग सभी प्रजातन्त्रवादी देश इस सिद्धान्त को काम में लाते हैं। धारा-सभा में अनेक राजनीतिक दल हैं। सबके अलग अलग वसूल और कार्य क्रम रहते हैं। इस उलझन को दूर करने का सरल मार्ग यही है कि प्रधान राजनीतिक दल के हाथों में सरकार का कार्य दिया जाय। यदि यह दल अन्य दलों के साथ सहयोग प्राप्त करके शासन को चलाये तो और भी अच्छा है। गवर्नर प्रधान दल के नेता को बुलाकर यह आज्ञा देता है कि वह कुछ सदस्यों का एक मन्त्रिमंडल बना ले। नेता आमतौर से अधिक से अधिक मन्त्री अपने दल से चुनता है। मन्त्रियों के लिये यह आवश्यक है कि वे छोटी या बड़ी धारा-सभा के सदस्य हों। यदि नेता चाहे तो अन्य दलों को सन्तुष्ट रखने के लिये उनमें से भी एक या दो मन्त्री चुन सकता है। मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं है। केन्द्रीय संघ कार्यकारिणी सभा में तो अधिक से अधिक १० मंत्री हो सकते हैं, परन्तु प्रान्तों में इनकी संख्या पर कोई रोक नहीं है। नेता द्वारा इस प्रकार जो सदस्य चुने जाते हैं उनसे जो सभा बनती है उसे मन्त्रिमंडल कहते हैं। ब्रिटिश प्रान्तों में आज इसी प्रकार के मंत्रिमंडल शासन का कार्य चला रहे हैं।

मन्त्रियों के चुनाव में नेता को अधिकार है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्रि-मंडल में शामिल करे जो धारा-सभा का सदस्य नहीं है। परन्तु ६ महीने के अन्दर उसे प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य बन जाना आवश्यक है। ये मंत्री ऐसे होने चाहिये जिनमें धारा-सभा का पूर्ण विश्वास

हो। गवर्नर को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि अल्पसंख्यक दल को मंत्रि-मंडल में उचित स्थान प्राप्त हो। यह हो सकता है कि मंत्रि-मंडल में उसे कोई स्थान न दिया जाय। ऐसी दशा में यह सम्भव नहीं है कि गवर्नर प्रधान दल की इच्छा के विरुद्ध अल्प-संख्यक वर्ग के किसी सदस्य को मन्त्रिमंडल में शामिल कर सके। ऐसा करने से वह अनेक कठिनाइयों में पड़ सकता है। जो दल शासन को चला रहा है उसके विरुद्ध कोई कार्य करके वह शान्तिपूर्वक शासन नहीं कर सकता। इतनी छोटी-सी बात के लिये वह अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा। यदि किसी दल का बहुमत इतना प्रभावशाली नहीं है कि वह उसे प्रसन्न रखने की चिन्ता करे तो एक सम्मिलित मंत्रि-मंडल बनाया जा सकता है। २ या ३ दलों के सदस्य मन्त्रिमण्डल में शरीक किये जा सकते हैं। यहाँ पर गवर्नर अपने अनुग्रह लेनों का उपयोग कर सकता है। कोई भी एक दल उसका विरोध नहीं कर सकता। अल्प संख्यक वर्गों की सहायता से वह साधारण बहुमत दल के विरोध से बच सकता है।

शासन विधान में मन्त्रियों की योग्यता का कोई विधान नहीं बनाया गया है। इतनी शर्त ज़रूर है कि उन्हें प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य होना चाहिये। ये मंत्री धारा-सभा के चुने हुए अथवा नामज़द सदस्यों में से हों यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है। प्रान्तीय धारा-सभा की छोटी अथवा बड़ी सभा से ये चुने जाते हैं। इनका व्यक्तित्व साधारण सदस्यों से ऊँचा समझा जाता है। जनता पर प्रभाव डालने के लिये यह आवश्यक है कि वे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और अपने दल के प्रमुख नेताओं में से हों। चरित्र और बुद्धि दोनों में उन्हें ऊँचा होना आवश्यक है। तभी वे अपनी ज़िम्मेवारी को निबाह सकते हैं। केवल पुस्तकीय ज्ञान रखने वाले व्यक्ति इस पद पर सफल नहीं हो सकते। पुस्तक से बढ़कर सामाजिक विषयों का ज्ञान आवश्यक है। इंगलैंड की कैबि-नेट में कितने ही मंत्रियों का वर्णन मिलता है जो कालेज तथा यूनिवर्सिटी का मुँह भी नहीं देखे हुए थे। परन्तु उन्हें अपने समय की राजनीतिक परिस्थिति का इतना अधिक ज्ञान था कि वे बड़ी योग्यतापूर्वक अपने काय को सँभालते रहे। मन्त्री को किसी विषय का विशेष ज्ञान भले ही न हो किन्तु उसकी बुद्धि सर्वव्यापी और विस्तृत होनी चाहिये। उसका दृष्टिकोण इतना व्यापक हो कि वह विषयों को तुरन्त समझ जाय। उसमें विचार करने क प्रचुर शक्ति होनी आवश्यक है।

प्रान्तों में मन्त्रियों की संख्या निश्चित नहीं है। उन्हें अपनी सुविधानुसार म ंत्री नियुक्त करने का अधिकार है। आमतौर से बड़े सूबों में इनकी संख्या

७ और १० के बीच में तथा छोटे सूबों में ३ और ६ के बीच में रक्खी गई है। जब तक प्रजा के प्रतिनिधियों का उनमें विश्वास है तब तक वे अपने पद पर कार्य करेंगे। इनका समय निश्चित नहीं है। वे तब तक अपने पद पर कार्य कर सकते हैं जब तक प्रान्तीय धारा-सभा उनके दल में विश्वास करती रहेगी। यदि छोटी सभा भंग न की गई तो मन्त्री ५ वर्ष तक अपने स्थान पर बने रहेंगे। १९१९ के शासन-विधान में इनके वेतन का नियम वर्तमान तरीक़े से भिन्न था। जब सालाना आय-व्यय का चिट्ठा प्रान्तों में पास किया जाता तो प्रत्येक मन्त्री का वेतन भी निश्चित कर दिया जाता था। प्रान्तीय धारा सभा को यह अधिकार था कि वह इसे घटा-बढ़ा सके। यहाँ तक कि वह उसे बिलकुल बन्द कर सकती थी। धारा-सभा और मंत्रिमंडल
उत्पन्न होने पर मंत्रियों के वेतन पर आघात किया जाता था। एक प्रकार से धारा सभा के सदस्य मंत्रियों को जब चाहें हटा सकते थे; क्योंकि कोई मन्त्री अपना वेतन बन्द होने पर कार्य नहीं कर सकता था। नये शासन-विधान में वेतन का ढग बदल दिया गया है। अब वह प्रान्तीय धारा-सभा के ऐक्ट के अनुसार निश्चित किया जाता है। जनता के प्रतिनिधियों को अधिकार है कि वे जब चाहें इस ऐक्ट में संशोधन करें। इससे जनता को प्रान्त के सबसे बड़े पदाधिकारियों का वेतन निश्चित करने का अधिकार प्राप्त है।

नये शासन-विधान के अनुसार मन्त्रियों का वेतन प्रति वर्ष निश्चित नहीं किया जाता। धारा-सभा उनके पूरे समय के लिये एक बार इसे निश्चित कर देती है। जब तक मन्त्री अपने पद पर कार्य करते हैं तब तक उन्हें यह वेतन एकसा मिलता रहता है। यद्यपि प्रति वर्ष धारा-सभा के सामने यह ख़र्च पेश किया जाता है लेकिन इस पर किसी प्रकार का वोट नहीं लिया जाता। धारा-सभा मन्त्रियों के वेतन को घटाने-बढ़ाने पर विचार नहीं कर सकती। उसे यह अधिकार नहीं है कि वह उसका वेतन कम करके उन्हें अपने पद से हटा दे। यदि वह मन्त्रिमण्डल में विश्वास नहीं करती तो अविश्वास का प्रस्ताव करके उसे जब चाहे हटा दे। इस प्रस्ताव के पास होने पर मन्त्रियों को स्वयं अपने पद से हट जाना पड़ता है। यह नियम सभी प्रजातन्त्रवादी देशों में एक सा पाया जाता है। यह इसीलिये बनाया गया है कि जनता अपनी इच्छानुसार अपना राजनीतिक प्रबन्ध करे। नये शासन-विधान में प्रान्तीय जनता यह इतराज़ नहीं कर सकती कि सरकार उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य कर रही है। साधारण परिस्थिति में उसे यह कहने का अवसर नहीं दिया गया है।

मंत्रिमण्डल की कार्य-पद्धति

प्रान्तीय शासन के कार्य कई विभागों में बाँट दिये जाते हैं। प्रत्येक मंत्री एक या दो विभाग का प्रधान होता है। गवर्नर को यह अधिकार है कि वह मन्त्रियों का कार्य विभाजन कर सके। मंत्रिमंडल की सभा का सभापति गवर्नर-जनरल होता है। उसे यह अधिकार है कि वह इसकी कार्य-प्रणाली को जैसा चाहे बनाये। आमतौर से वह मन्त्रियों की सलाह को मान लेता है, परन्तु उसे स्वतंत्रता है कि वह जब चाहे अपने व्यक्तिगत अधिकारों का प्रयोग करे। उसकी अनुपस्थिति में प्रधान मन्त्री (Prime Minister) सभापति का आसन ग्रहण करता है। साधारणतया कार्यपद्धति आदि यही निश्चित करता है। मन्त्री अपने विभाग का प्रबन्ध अपनी इच्छानुसार करते रहते हैं। कोई गम्भीर बात आ जाने पर पूरे मन्त्रिमण्डल से सलाह लेनी पड़ती है। जहाँ तक शासन की नीति का सम्बन्ध है, कोई भी मन्त्री पूरे मन्त्रिमण्डल की सलाह के बिना मनमानी नहीं कर सकता। सभी विभागों की नीति मन्त्रिमंडल की बैठक में अच्छी तरह विचार की जाती है। उसी के अनुसार विभागों का प्रबन्ध करना पड़ता है। इससे शासन की नीति एक समान बनी रहती है। किसी एक विभाग का मन्त्री इस बात के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि उसकी नीति हानिकर सिद्ध हुई। पूरा मन्त्रिमंडल इसके लिये उत्तरदायी होता है। प्रधान मन्त्री इस बात का ध्यान रखता है कि सभी विभागों में एक ऐसी नीति बर्ती जाय जिससे प्रान्तीय शासन की एकता दृढ़ बनी रहे। विभागों का उत्तरदायित्व देते समय मन्त्रियों की योग्यता का ध्यान रक्खा जाता है। जिस विभाग को चलाने की योग्यता जो सबसे अधिक रखता है उसे वही सुपुर्द किया जाता है। यदि प्रधान मन्त्री इस बात का ध्यान न रक्खे तो शासन का कार्य ठीक तरह नहीं चल सकता। तात्पर्य यह है कि प्रान्तीय मन्त्रिमंडल की कार्य पद्धति वही है जो केन्द्रीय कार्यकारिणी की है। इसकी तुलना बृटिश कैबिनेट से भी की जा सकती है। अन्तर इतना ही है कि बृटिश कैबिनेट को जो शक्ति प्राप्त है वह प्रान्तीय मन्त्रिमंडल को नहीं है।

मंत्रिमंडल की सबसे बड़ी विशेषता इसका सम्मिलित उत्तरदायित्व है। यदि प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग का शासन प्रबन्ध किसी ऐसे ढंग से करे जो और मन्त्रियों को पसन्द न हो तो यह निश्चित है कि मन्त्रिमंडल में एकता नहीं रह सकती। इसके साथ ही शासन-प्रबन्ध ढीला पड़ जायेगा। इसीलिये प्रजातन्त्रवादी देशों में सम्मिलित उत्तरदायित्व की प्रथा प्रचलित है। सभी मन्त्री एक दूसरे के कार्य के लिये उत्तरदायी समझे जाते हैं

बृटेन की कैबिनेट में २१ के लगभग मन्त्री हैं। इनमें से यदि एक कोई भूल करता है तो इसकी ज़िम्मेवारी पूरे मन्त्रिमंडल पर रक्खी जाती है। एक की ग़लती के कारण सारा मन्त्रिमण्डल बर्ख़ास्त कर दिया जाता है। ऐसा इसलिये किया गया है कि सारा मन्त्रिमंडल सरकार को एक इकाई मानकर शासन का कार्य करे। मन्त्रियों की एकता से शासन के सभी विभाग एक दूसरे से मिले हुए कार्य करते हैं। इससे जनता को अधिक लाभ पहुँचता है। किसी देश की सरकार कई नीति नहीं रख सकती। यही बात सूबों में भी पाई जाती है। यदि सभी मन्त्री मनमानी करने लगें और मन्त्रिमंडल की नीति एक न हो तो प्रान्तीय व्यवस्था शान्तिपूर्वक नहीं चल सकती। मन्त्रि-मंडल के सदस्य धारा-सभा की बहुमत पार्टी से इसोलिये नियुक्त किये जाते हैं कि उनकी नीति को दूसरे दल वाले विफल न कर सकें। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मन्त्री अपने कार्यों के लिये चारों ओर से बँधा रहता है। इतनी रुकावटें होने पर भी उसे काफ़ी स्वतन्त्रता प्राप्त है। कभी कभी मंत्रियों में भेदभाव उत्पन्न हो जाने पर वह आसानी से दूर कर दिया जाता है। यदि कोई मन्त्री मन्त्रि मंडल की नीति से सहमत नहीं है तो वह त्याग-पत्र देकर उससे अलग हो जाता है।

साधारणतया मन्त्री अपने स्थान से तभी पदच्युत किये जाते हैं जब धारा-सभा उनमें अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती है। परन्तु गवर्नर का अधिकार है कि वह जब चाहे मन्त्रि-मण्डल को तोड़ दे। साधारण परिस्थिति में वह ऐसा नहीं करता। जब प्रान्तीय शासन प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्त पर बनाया गया है तो यह आवश्यक है कि मन्त्रि-मण्डल अपने कार्यों के लिये धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार हो। जब धारा-सभा पूरे मन्त्रि-मण्डल अथवा किसी एक मन्त्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती है और वे अपने स्थान पर बने रहना चाहते हैं तो गवर्नर विवश होकर उस मंत्रि-मंडल अथवा मन्त्री को अलग कर देता है। मध्य प्रान्त और बरार में इसी प्रकार की एक घटना काँग्रेस मन्त्रि-मण्डल के समय घटी थी। डाक्टर खरे इस प्रान्त के प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने अपने सहकारी मन्त्रियों को यह सलाह दी कि वे मन्त्रि-मण्डल से त्यागपत्र दे दें। साथ ही वे स्वयं त्याग-पत्र दे देना चाहते थे। उनका विचार एक दूसरा मन्त्रि मंडल बनाने का था। दो मन्त्रियों ने त्याग-पत्र देने से इनकार कर दिया। उनका कहना था कि काँग्रेस के जिन महाप्रभुओं ने उन्हें यह स्थान दिया है उनकी आज्ञा के बिना वे त्याग-पत्र नहीं दे सकते। डाक्टर खरे ने त्याग-पत्र दे दिया। ऐसी परिस्थिति उपस्थित होने पर गवर्नर ने इन दोनों मन्त्रियों को बर्ख़ास्त कर दिया और डाक्टर

खरे को यह अधिकार दिया कि वे दूसरा मन्त्रि-मंडल बना लें। इस पर कांग्रेस का रुख़ कुछ अच्छा न रहा। डाक्टर खरे के विरुद्ध कांग्रेस ने अनुशासन भंग करने का दोष लगा कर उन्हें मन्त्रि मंडल से निकाल दिया। साथ ही उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि वे ३ वर्ष तक कांग्रेस के सदस्य नहीं बन सकते। वहाँ के गवर्नर को भी इस मामले में कांग्रेस ने दोषी ठहराया।

यदि शासन की दृष्टि से "खरे की घटना" (Khare Episode) का अवलोकन करें तो हम गवर्नर को दोषी नहीं ठहरा सकते। जब कि मन्त्रि-मंडल के सभी सदस्य त्याग-पत्र दे देते हैं तो एक या दो सदस्य प्रधान मन्त्री की इच्छा के विरुद्ध अपने स्थान पर कैसे बने रह सकते हैं। गवर्नर का यह कर्त्तव्य था कि वह उन्हें हटा दे। वह बहुमत पार्टी को, चाहे वह कांग्रेस हो या कोई और, अपने ध्यान में रखते हुए मन्त्रि-मंडल के कार्यों को देखता है। डाक्टर खरे के कांग्रेस पार्टी का लीडर होने में कोई भी सन्देह नहीं कर सकता। यदि गवर्नर ने उन्हें ऐसा मान कर दोबारा मन्त्रि-मंडल बनाने का अधिकार दिया तो कोई बुरा नहीं किया। इसमें उसने शासन की अवहेलना न की। जहाँ तक डाक्टर खरे के कामों का सम्बन्ध है उन्हें भी हम दोषी नहीं ठहरा सकते। शासन का कार्य और अच्छी तरह चलाने के लिये यदि वे कोई नया मन्त्रि-मंडल बनाना चाहते थे तो उनका ऐसा करना सर्वथा उचित था। अपनी पार्टी के एक नेता की हैसियत से मन्त्रि मंडल बनाने का उन्हें पूरा अधिकार था। परन्तु उन्हें यह कार्य कांग्रेस की आज्ञा से करना चाहिये था। कांग्रेस के सभी मन्त्रि-मंडल उसकी एक कमीटी (Congress Parliamentary Sub Committee) के अधिकार में रक्खे गये थे। उन्हें यह मुनासिब था कि उस कमीटी की राय से सब कुछ करें। डाक्टर खरे ने इस आज्ञा का पालन नहीं किया इसलिये उनके ऊपर लगाया गया दोष सर्वथा उचित था।

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना बंगाल में हुई। वहाँ के प्रधान-मंत्री मिस्टर फ़ज़लुलहक़ ने मिस्टर नवशेर अली को आज्ञा दी कि वे मंत्रि-मंडल से इस्तीफ़ा दे दें। प्रधान-मंत्री की आज्ञा मानने से उन्होंने इनकार कर दिया। गवर्नर ने भी इस मामले में हाथ डालना मुनासिब न समझा। इस पर प्रधान मन्त्री ने पूरे मन्त्रिमंडल का त्यागपत्र पेश कर दिया। धारा-सभा को बहुमत पार्टी का फ़जलुलहक़ में विश्वास था। उसने उन्हें दूसरा मन्त्रि-मंडल बनाने की आज्ञा दे दी। नये मन्त्रि-मंडल में मिस्टर नवशेर अली शामिल नहीं किये गये।

यह हो सकता है कि धारा-सभा मन्त्रि मंडल में विश्वास करे, लेकिन गवर्नर का उससे मतभेद हो। ऐसी दशा में वह मन्त्रि-मंडल को भंग कर सकता है। संयुक्तप्रान्त और बिहार में राजनीतिक क़ैदियों के छोड़ने के विषय में उसमें तथा मंत्रियों में कुछ मतभेद हुआ। मन्त्री यह चाहते थे कि सभी राजनीतिक क़ैदी एक साथ छोड़ दिये जायँ परन्तु वे ऐसा नहीं करना चाहते थे। कांग्रेस के मन्त्रियों ने इस पर त्यागपत्र दे दिया। अन्त में सुलह का एक रास्ता निकाला गया। गवर्नरों ने यह वादा किया कि धीरे धीरे राजनीतिक क़ैदी छोड़ दिये जायेंगे।

मन्त्रियों के अधिकार और कर्त्तव्य का बहुत कुछ आभास उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है। फिर भी इसका विस्तृत वर्णन 'प्रान्तीय स्वराज' नामक अध्याय में किया गया है। यदि कांग्रेसी मंत्रियों को सूबों में कुछ दिन और शासन करने का अवसर मिलता तो यह बात और स्पष्ट हो जाती कि उनके अधिकारों की सीमा क्या है। यह बात निर्विवाद है कि गवर्नर मंत्रियों के कामों में जल्दी दख़ल नहीं डाल सकते। मंत्री अपने क्षेत्र में काफ़ी अंश तक स्वतन्त्र रक्खे गये हैं। लेकिन इस कमी की पूर्ति उसके विशेषाधिकारों से कर दी गई है। बड़े हौसले के साथ कांग्रेस ने मन्त्रिपद स्वीकार किया था, परन्तु अन्त में उसे निराश होकर इससे त्यागपत्र देना पड़ा। उसे यह भी अनुभव हुआ कि उनके पद और अधिकार तभी तक सुरक्षित हैं जब तक तेली के बैल की तरह वे शासन के छोटे छोटे कामों में जुते हुए हैं। अपनी चाल को कम करते ही तथा कोई लम्बा क़दम बढ़ाते ही उन्हें रोकने की व्यवस्था बनी हुई है। यही सोच-विचार कर गत महायुद्ध के आरम्भ होने पर कांग्रेस ने शासन से अपने को अलग कर लिया था। युद्ध के बाद आज फिर कांग्रेस प्रान्तीय शासन चला रही है।

अध्याय १३

प्रान्तीय धारा-सभा

ऐतिहासिक विकास

ऊपर कहा गया है कि बृटिश सरकार की नीति आरम्भ से ही शासन को केन्द्रीभूत करने की रही है। प्रान्तीय गवर्नरों तथा धारा सभाओं को बहुत थोड़े से अधिकार दिये गये थे। हर मामले में उन्हें केन्द्रीय सरकार से आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी। प्रान्तीय धारा-सभाओं के पिछले इतिहास से यह ज़ाहिर होता है कि वे केवल बड़े बड़े लोगों की एक दल विशेष रही हैं। १८०७ ई० के पहिले प्रान्तीय सरकार को क़ानून बनाने का अधिकार न था। किसी भी प्रान्त में धारा सभा न थी। १८०७ ई० में मद्रास तथा बम्बई अहातों के गवर्नर और उसकी कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने शासन की सुविधा के लिये छोटे-मोटे क़ानून बना सकते हैं। १८३३ ई० में यह अधिकार उनसे छीन लिया गया। जब गवर्नरों को किसी क़ानून की ज़रूरत महसूस होती तो वे गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को इसकी सूचना देते थे। केन्द्रीय सरकार उसके लिये क़ानून बना कर भेज देती थी। इसके उपरान्त ३० वर्ष तक प्रान्तीय सरकारों को क़ानून बनाने का किसी तरह का अधिकार नहीं दिया गया। १८६१ ई० में इंडिया कौंसिल ऐक्ट के अनुसार मद्रास तथा बम्बई प्रान्तों को क़ानून बनाने का अधिकार फिर दे दिया गया। लेकिन यह शर्त लगाई गई कि इसकी आज्ञा वे गवर्नर-जनरल से ज़रूर ले लें। अब भी उपरोक्त प्रान्तों में धारा-सभाओं की स्थापना नहीं की गई थी। प्रान्तीय कार्यकारिणी सभायें (Provincial Executive Council) क़ानून बनाने का कार्य करती थीं। इन्हीं में कुछ सदस्यों की संख्या बढ़ा कर उनसे यह कार्य ले लिया जाता था।

१८९२ ई० में इंडिया कौंसिल्स ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय धारा सभाएँ कुछ और बढ़ा दी गईं। परन्तु सरकारी सदस्यों का बहुमत रक्खा गया। मार्ले मिंटो-सुधार के अनुसार १९०९ ई० में प्रान्तीय धारा-सभाओं में सदस्यों की संख्या और बढ़ाई गई। यह निश्चित किया गया कि बड़े प्रान्तों में

५० तथा छोटे प्रान्तों में ३० सदस्य और बढ़ा दिये जायँ। ग़ैर सरकारी सदस्यों का बहुमत रक्खा गया। अभी तक धारा-सभाओं के सदस्यों का चुनाव नहीं होता था। प्रान्तों के गवर्नर जिन्हें चाहते नामज़द कर देते। मार्ले-मिंटो-सुधार में अप्रत्यक्ष निर्वाचन स्वीकार कर लिया गया। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पहिले पहल जारी किया गया। प्रान्तों के गवर्नर इन धारा-सभाओं के सभापति होते थे। क़ानून बनाने में इनका विशेष प्रभाव पड़ता था। गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी की सलाह से ही कोई क़ानून बन सकता था। एक प्रकार से कार्यकारिणी ही क़ानून बनाने का कार्य करती थी। इस प्रकार का शासन विधान बहुत दिन तक नहीं चल सकता था। एक ही सभा क़ानून बनाने और उसे कार्यान्वित करने का काम बहुत समय तक नहीं कर सकती थी। देश में राष्ट्रीय भावना का प्रचार इतने ज़ोरों से हो रहा था कि जनता पर किये गये इस राजनीतिक कुठाराघात की योजना आगे को नहीं चल सकती थी।

१९१८ ई० में माण्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट में यह बात स्वीकार की गई कि प्रान्तीय कौंसिल अपने दिमाग़ को खाली कर चुकी है। अब उनसे लाभ की आशा रत्ती भर नहीं है। १९१९ ई० में हिन्दोस्तान के लिये एक नया शासन विधान बनाया गया। प्रान्तीय धारा-सभाओं की बनावट तथा उनके कर्त्तव्यों में महान् परिवर्तन किये गये। सम्पूर्ण बृटिश भारत १७ प्रान्तों में बाँटा गया। मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त-प्रान्त, पंजाब, ब्रह्मा, बिहार और उड़ीसा, बरार तथा मध्य प्रान्त बड़े बड़े सूबे ठहराये गये। इन सूबों को गवर्नर का सूबा कहा गया। १९१९ के शासन-विधान के अनुसार बर्मा प्रान्त गवर्नरों के सूबों में शामिल नहीं किया गया था। लेकिन २ जनवरी सन् १९२३ ई० से वह एक गवर्नर का सूबा मान लिया गया। उपरोक्त ९ गवर्नरों के सूबों के अतिरिक्त बृटिश बिलोचिस्तान, दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, मानपुर का परगना, पन्त पिपलौदा, अदन तथा अंडमन और नीकोबार ८ चीफ़ कमिश्नरों के सूबे ठहराये गये। प्रत्येक गवर्नर के सूबे में एक धारा-सभा (Legislative Council) बनाई गई। प्रान्तीय कार्य-कारिणी सभा के सभी सदस्य कौंसिल के सदस्य होते थे। प्रान्त का गवर्नर वहाँ की धारा सभा का सदस्य नहीं बन सकता था। लेकिन उसे यह अधिकार था कि वह इसमें उपस्थित हो और व्याख्यान दे सके। धारा-सभा के सदस्य स्वयं अपना सभापति चुनते थे परन्तु उसे स्वीकार करने का अधिकार गवर्नर को था। ७० प्रतिशत सदस्य जनता द्वारा चुने हुए होते थे। सरकारी सदस्यों की संख्या २० प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी। संयुक्त प्रान्त में धारा-सभा के

सदस्यों की संख्या १११ ठहराई गई। इनमें १०० सदस्य जनता द्वारा चुने हुए होते थे और २३ गवर्नर द्वारा नामज़द किये जाते थे। प्रान्तीय धारा-सभा की अवधि ३ वर्ष रक्खी गई लेकिन गवर्नर को यह अधिकार था कि वह इसकी अवधि घटा-बढ़ा सके। मताधिकार बढ़ा दिया गया। साम्प्रदायिक निर्वाचन भी पहिले से अधिक कर दिया गया था। मांटेग्यू चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट में साम्प्रदायिक निर्वाचन दूषित ठहराया गया था। उनका कहना था कि राष्ट्रीयता में बाधा पड़ेगी और विभिन्न सम्प्रदाय एक दूसरे को अपना शत्रु समझने लगेंगे। किन्तु रिपोर्ट में पंजाब प्रान्त में सिक्खों के लिये अलग निर्वाचन दिया गया था।

१९१९ के शासन-विधान के अनुसार सभी प्रान्तों में निर्वाचन क्षेत्र हिन्दू और मुसलमान दो भागों में बाँट दिये गये। कुछ वर्गों के लिये धारा सभाओं में स्थान सुरक्षित कर दिये गये। अछूतों को यह अधिकार दिया गया कि वे मुसलमान निर्वाचन क्षेत्र के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्र में वोट दे सकते हैं। उनके अधिकारों की रक्षा के लिये गवर्नर उन्हें नामज़द भी कर सकता था। मज़दूरों को नामज़द करने का विधान बनाया गया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य वर्गों तथा संस्थाओं को पृथक् निर्वाचन के अधिकार दिये गये। प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार पहिले से अधिक कर दिये गये। अपने प्रान्त की रक्षा तथा उसमें शान्ति रखने के लिये उन्हें बहुत से अधिकार प्रदान किये गये। परन्तु चन्द विषयों की एक ऐसी सूची बनाई गई जिनमें गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना वे हाथ नहीं डाल सकते थे। इनके विषय में क़ानून बनाने का उन्हें कोई अधिकार न था। प्रान्तीय धारा-सभाएँ जो बिल पास करतीं उसकी स्वीकृति गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल दोनों से लेनी पड़ती थी। जो बिल धर्म, भूमि कर आदि से सम्बन्ध रखते थे उन्हें गवर्नर-जनरल को विचार करने के लिये रोका जा सकता था। गवर्नर को किसी क़ानून के रद्द करने का पूरा अधिकार था। यदि धारा-सभा क़ानून को बनाने से इनकार कर देती तो वह अपने अधिकार से उसे पास कर सकता था। इस प्रकार के क़ानूनों तथा धारा-सभा द्वारा पास किये क़ानूनों का प्रभाव एक सा होता था। सम्पूर्ण प्रान्तीय व्यय मतदायक और मतनिषेध (Votable and Non votable) दो भागों में बाँट दिया गया था। ७५ प्रतिशत व्यय पर प्रान्तीय धारा-सभा को मत देने का अधिकार न था। केवल २५ प्रतिशत व्यय उसके अधिकार में रक्खा गया था। इसमें भी गवर्नर जब चाहे हस्तक्षेप कर सकता था। प्रान्त की रक्षा और शान्ति आदि के लिये वह मनमाना धन व्यय कर सकता था। इससे यह स्पष्ट है कि गवर्नरों के प्रान्तों में

धारा सभाएँ तो ज़रूर थीं लेकिन उनके अधिकार नहीं के बराबर थे। उन्हें गवर्नर की इच्छानुसार चलना पड़ता था।

चीफ़ कमिश्नरों के आठों सूबों में केवल कुर्ग में धारा-सभा बनाई गई थी। इसमें कुल २० सदस्य रक्खे गये। १५ सदस्य जनता द्वारा चुने गये थे और बाक़ी ५ को चीफ़ कमिश्नरों ने नामज़द किया था। चीफ़ कमिश्नर गवर्नर-जनरल की मातहती में इन प्रान्तों का शासन करते थे। १९१९ ई० के शासन-विधान से इन्हें कोई लाभ नहीं हुआ।

१९३५ के शासन-विधान में प्रान्तीय धारा-सभायें

१९३५ के शासन विधान में प्रान्तीय धारा-सभाओं में कुछ परिवर्तन किया गया। कुछ प्रान्तों में छोटी बड़ी दो धारा-सभाएँ बनाई गई हैं। मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त-प्रान्त, बिहार तथा आसाम में दो धारा सभाएँ हैं। उपरोक्त प्रत्येक प्रान्त में—बड़ी धारा सभा का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल और छोटी का लेजिस्लेटिव-असेम्बली रक्खा गया है। पंजाब, मध्यप्रान्त और बरार, पश्चिमोत्तर प्रदेश, उड़ीसा तथा सिन्ध इनमें केवल एक एक धारा-सभा बनाई गई है। इसका नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली रक्खा गया है।

१९३५ के पहिले प्रान्तों में दो सभाएँ नहीं थीं। केवल केन्द्रीय सरकार में दो सभाओं का विधान था। संघशासन-विधान में ६ प्रान्तों को छोटी और बड़ी दो धारा-सभाएँ दी गई हैं। १९१९ ई० में मान्टेग्यू और चेम्सफोर्ड ने प्रान्तों में दो धारा-सभाओं की योजना पर विचार किया था। उनकी समझ में इसकी कोई आवश्यकता न थी। लेकिन संघ-शासन में इसकी उपयोगिता मान ली गई है। यह कहा गया है कि नये शासन-विधान में प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार बढ़ जाने से एक सभा काफ़ी न होगी। इसमें आम जनता के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि एक बड़ी धारा-सभा का निर्माण करके विशेष वर्गों के अधिकार सुरक्षित रक्खे जायँ। यह भी सम्भव है कि बड़ी-धारा सभा के न होने से छोटी सभा जल्दी में क़ानूनी महत्व को न समझे। जो कुछ भी हो, शासन-विधान के बनाने वालों ने यह स्वीकार किया है कि बड़ी धारा-सभा के जो जो गुण हैं उन सब की आवश्यकता कुछ बड़े बृटिश प्रान्तों को है। भारतीय जनता की आवाज़ प्रान्तों की दो धारा-सभाओं के पक्ष में नहीं है। लोगों का कहना है कि गवर्नर के विशेषाधिकारों के सामने इसका कोई महत्व नहीं है।

सम्भवतः बड़ी धारा-सभा प्रान्तीय स्वराज में रोड़े अटकाने के लिये बनाई गई है। लार्ड हैलिफेक्स ने इसे निरर्थक साबित किया है। बड़े बड़े ज़मींदारों तथा सेठ साहूकारों के हितों की रक्षा के लिये इसका निर्माण किया गया है।

कुछ भारतीय राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि बृटिश सरकार को यह भय था कि एक धारा-सभा रहने से काँग्रेस को बहुमत प्राप्त करने का अवसर आसानी से मिल जायेगा। यह भय बहुत कुछ ठीक था। आठ प्रान्तों की छोटी धारा-सभा में काँग्रेस ने जो बहुमत प्राप्त किया है उसे देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है। सर तेजबहादुर सप्रू ने बृटिश राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर दिलाया था कि प्रान्तों में दो धारा सभाओं की कोई ज़रूरत नहीं है। पार्लियामेंट के कितने ही सदस्यों ने दो धारा सभाओं की योजना का विरोध किया था। लार्ड स्ट्रेबोगी (Lord Strabogi) का कहना है कि हिन्दोस्तान की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए इसे एक ऐसी नीति की ज़रूरत है जो शंकित और दब्बू न हो। भारतीय राज-नीतिज्ञ भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि बृटिश प्रान्तों में बड़ी धारा-सभा से हानि के बदले कोई लाभ नहीं है। अभी तक दोनों धारा-सभाओं में कोई गहरा भेदभाव उत्पन्न नहीं हुआ। फिर भी दोनों की बनावट को देखते हुए यह बहुत सम्भव है कि दोनों सभाएँ एक दूसरे की विरोधी बन जायँ। छोटी धारा-सभायें आम जनता के प्रतिनिधियों से बनी हुई हैं। इसके विपरीत बड़ी धारा-सभायें धनी मानी लोगों की रक्षा के लिये बनाई गई हैं। पिछले चुनाव में ८ प्रान्तों में छोटी धारा-सभाओं में काँग्रेस का परन्तु बड़ी धारा-सभाओं में ग़ैर काँग्रेसी सदस्यों का बहुमत रहा। कचहरियों की फ़ीस में सुधार होने वाले ऐक्ट में संयुक्तप्रान्त की धारा सभाओं में भेदभाव उत्पन्न हुआ था। संयोगवश बात आगे को नहीं बढ़ सकी। प्रान्तों को बड़ी धारा-सभा की कोई ज़रूरत नहीं है। धनीमानी सदस्य सामाजिक सुधार के पक्षपाती नहीं हो सकते। ऐसा करने से उनके स्वार्थ में बट्टा पड़ेगा।

लेजिस्लेटिव कौंसिल

ऊपर कहा गया है कि केवल ६ प्रान्तों में दो धारा-सभाओं का विधान बनाया गया है। बड़ी धारा-सभा का नाम लेजिस्लेटिव कौंसिल है। इसके सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग अलग है :—

संयुक्तप्रान्तः—कम से कम ५८ और अधिक से अधिक ६०।
बम्बई :— ,, ,, ,, २६ ,, ,, ,, ,, ३०।

मद्रास	:—कम से कम ५४ और अधिक से अधिक ५६ ।
बंगाल	:— ,, ,, ,, ६३ ,, ,, ,, ,, ६५ ।
बिहार	:— ,, ,, ,, २६ ,, ,, ,, ,, ३० ।
आसाम	:— ,, ,, ,, २१ ,, ,, ,, ,, २२ ।

ये सदस्य प्रजा के प्रतिनिधि होते हैं । नये शासन विधान में मताधिकार का क्षेत्र बढ़ा दिया गया है । १६१६ के शासन-विधान में प्रान्तीय धारा-सभाओं के प्रतिनिधियों के लिये वोट देने का अधिकार ८७४४००० व्यक्तियों को था । ३६८००० स्त्रियाँ थीं । अर्थात् केवल ३ प्रतिशत स्त्रियाँ मताधिकारिणी थीं । सम्पत्ति और शिक्षा की रुकावट लगाकर मताधिकार बहुत थोड़े से लोगों को दिया गया था । साइमन कमीशन ने यह सिफ़ारिश की थी कि मताधिकारियों की संख्या कम से कम १० प्रतिशत रक्खी जाय । पहली गोलमेज़ सभा का फ़ैसला था कि २५ प्रतिशत लोगों को वोट देने का अधिकार मिलना चाहिए । दूसरी गोलमेज़ सभा ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये एक कमीटी नियुक्त किया जिसने वर्तमान मताधिकार को निश्चित किया है । १४ प्रतिशत जनता को—२६,०००,००० पुरुष और ६,०००,००० स्त्रियाँ—वोट देने का अधिकार दिया गया है ।

लेजिस्लेटिव कौंसिल में और भी सदस्य भर्ती किये जा सकते हैं । गवर्नर को यह अधिकार है कि वह किसी वर्ग विशेष की रक्षा के लिये, ख़ासकर स्त्रियों के लिये, कुछ सदस्यों को नामज़द कर सके । निम्नलिखित संख्या में वह इन्हें नामज़द कर सकता है । ऐसा इसलिये किया गया है कि प्रतिनिधित्व में विषमता उत्पन्न न हो और सब वर्गों के अधिकार बड़ी सभा में सुरक्षित रहें । बड़ी सभा में नामज़दगी इस प्रकार होती है :—

संयुक्तप्रान्त	:—कम से कम ६ और अधिक से अधिक ८ ।
बम्बई	:— ,, ,, ,, ३ ,, ,, ,, ,, ४ ।
मद्रास	:— ,, ,, ,, ८ ,, ,, ,, ,, १० ।
बंगाल	:— ,, ,, ,, ६ ,, ,, ,, ,, ८ ।
बिहार	:— ,, ,, ,, ३ ,, ,, ,, ,, ४ ।
आसाम	:— ,, ,, ,, ३ ,, ,, ,, ,, ४ ।

संघ धारा-सभा में बड़ी सभा की तरह प्रान्तीय बड़ी धारा-सभा (Legislative Council) कभी बर्ख़ास्त नहीं की जा सकती । एक तिहाई सदस्य हर तीसरे साल निकलते रहेंगे । जिन निर्वाचन-क्षेत्रों के सदस्य निकलेंगे उन्हीं में से नये सदस्य चुन लिये जायेंगे । इस प्रकार कौंसिल

स्थायी रूप से काम करती रहेगी। लार्ड सभा की तरह इसके सदस्य स्थायी नहीं हैं। इस व्यवस्था को दोषपूर्ण माना गया है। वर्तमान युग में इतनी तेज़ी के साथ लोगों के विचार बदल रहे हैं कि किसी संगठन वा समाज को स्थायी करार देना उचित नहीं है। जनता अपने प्रतिनिधियों में तब तक विश्वास करती है जब तक वे उसके विचार को कार्यान्वित करते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव जल्दी होने से जनता अपनी आवश्यकता को बदल सकती है। आज वह किसी प्रकार के विचार वालों में विश्वास करती है, कल किसी और में विश्वास करेगी। इस अवसर से लाभ उठाने का उसे पूरा मौक़ा मिलना चाहिये। निर्वाचन को भार समझ कर धारा-सभाओं के प्रतिनिधि सदैव के लिये चुन लिये जायँ तो राजनीतिक अधिकारों का महत्व कम हो जाता है। प्रजातंत्रवाद का तात्पर्य है कि जनता अपनी इच्छानुसार सरकारी नीति को बदलती रहे। जब धारा-सभा के प्रतिनिधियों को ६ वर्ष तक कोई निकाल नहीं सकता तो वे नवीन विचारों को ग्रहण न कर अपने पुराने विचारों से जनता के ऊपर शासन करने की कोशिश करेंगे। लेजिस्लेटिव कौंसिल में सदस्यों का कोरम १० रक्खा गया है। बंगाल और बिहार में इसके कुछ सदस्य असेम्बली के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते हैं।

प्रान्तीय लेजिसलेटिव

स्थानों का

प्रान्त	कुल स्थान		साधारण स्थान	मुसलमानी स्थान
१—मदरास	कम से कम	५४	३५	७
	अधिक से अधिक	५६		
२—बम्बई	कम से कम	२६	२०	५
	अधिक से अधिक	३०		
३—बंगाल	कम से कम	६३	१०	१७
	अधिक से अधिक	६५		
४—संयुक्तप्रांत	कम से कम	५८	३४	१७
	अधिक से अधिक	६०		
५—बिहार	कम से कम	२६	६	४
	अधिक से अधिक	३०		
६—आसाम	कम से कम	२१	६	६
	अधिक से अधिक	२२		

कौंसिलें

खाका

योरोपियन स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	असेम्बली द्वारा भरे जाने वाले स्थान	गवर्नर द्वारा नामज़दगी के स्थान	
१	३	...	कम से कम	८
			अधिक से अधिक	१०
१	...	...	कम से कम	३
			अधिक से अधिक	४
३	...	२७	कम से कम	६
			अधिक से अधिक	८
१	...	...	कम से कम	६
			अधिक से अधिक	८
१	...	१२	कम से कम	३
			अधिक से अधिक	४
२	...	...	कम से कम	३
			अधिक से अधिक	४

प्रान्तीय लेजिसलेटिव

स्थानों का

प्रान्त	कुल स्थान	कुल साधारण स्थान	हरिजनों के स्थान	पिछड़े हुये विभागों तथा जातियों के स्थान	सिक्खों के स्थान	मुसलमानों के स्थान
१—मदरास	२१५	१४६	३०	१	...	२८
२—बम्बई	१७५	११४	१५	१	...	२९
३—बंगाल	२५०	७८	३०	...	...	११७
४—संयुक्तप्रान्त	२२८	१४०	२०	...	...	६४
५—पंजाब	१७५	४२	८	...	३१	८४
६—बिहार	१५२	८६	१५	७	...	३९
७—मध्यप्रान्त व बरार	११२	८४	२०	१	...	१४
८—आसाम	१०८	४७	७	९	...	३४
९—पश्चिमोत्तर प्रान्त	५०	९	...	...	३	३६
१०—उड़ीसा	६०	४४	६	५	...	४
११—सिन्ध	६०	१८	...	...	...	३३

असेम्बलियाँ

खाका

अँग्रेजी ईसाइयों के स्थान	योरोपियन के स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	वाणिज्य तथा व्यवसाय सम्बन्धी स्थान	जमींदारों के स्थान	विश्वविद्यालयों के स्थान	मज़दूरों के स्थान	महिलाओं के स्थान				
							साधारण	सिक्ख	मुसलमान	अँग्रेजी ईसाई	भारतीय ईसाई
२	३	८	६	६	१	६	६	...	१	...	१
२	३	३	७	२	१	७	५	...	१	...	...
३	११	२	१९	५	२	८	२	...	२	१	...
१	२	२	३	६	१	३	४	...	२	...	...
१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	...	...
१	२	१	४	४	१	३	३	...	१	...	...
१	१	...	२	३	१	२	३	...	...	...	...
...	१	१	११	...	...	४	१	...	...	...	...
...	...	...	...	२	...	...	...	...	...	...	...
...	...	१	१	२	...	१	१	...	...	...	...
...	२	...	२	२	...	१	१	...	१	...	...

लेजिसलेटिव असेम्बली

११ प्रान्तों में लेजिसलेटिव असेम्बली बनाई गई हैं। इनके सदस्यों की संख्या निम्नलिखित है :—

बङ्गाल	...२५०
संयुक्तप्रान्त	...२२८
मदरास	...२१५
बम्बई	...१७५
पंजाब	...१७५
बिहार	...१५२
मध्य प्रान्त और बरार	...११२
आसाम	...१०८
उड़ीसा	...६०
सिन्ध	...६०
पश्चिमोत्तर प्रदेश	...५०

ये सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं। इनमें एक भी सदस्य नामज़द नहीं किया जाता। प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा ये चुने जाते हैं। निर्वाचन क्षेत्र साम्प्रदायिक आधार पर बनाये जाते हैं। एक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र में किसी दूसरी सम्प्रदाय वालों को वोट देने का अधिकार नहीं है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपना अलग अलग प्रतिनिधि चुनती है। स्त्रियों को अलग सम्प्रदाय मान लिया गया है। ४ अगस्त सन् १९३२ ई० को बृटिश सरकार ने साम्प्रदायिक निर्वाचन की जो घोषणा की थी उसमें पूना पैक्ट में कुछ परिवर्तन किया गया। उसी आधार पर मौजूदा निर्वाचन विधान बनाया गया है। पूना पैक्ट में अछूतों को भी धारा-सभाओं में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। उनके लिये धारा-सभाओं में कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं। यह काम इतनी कुशलता-पूर्वक किया गया है कि हिन्दू समाज में कोई कमज़ोरी नहीं आने पाई है। कई प्रान्तों में स्त्रियों को धारा-सभाओं में स्थान दिया गया है। बङ्गाल में ख़ास तौर से एक अँगरेज़ी ईसाई महिला के लिये, पंजाब में एक सिख स्त्री के लिये और मदरास में एक ईसाई स्त्री के लिए असेम्बली में स्थान सुरक्षित रक्खे गये हैं। असेम्बली का कोरम कुल सदस्यों की संख्या का $\frac{1}{6}$ रक्खा गया है।

लेजिसलेटिव असेम्बली की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। इस अवधि

के समाप्त होने पर यह सभा अपने आप बर्ख़ास्त हो जायगी। गवर्नर चाहे तो इसकी कार्रवाइयों को अनिश्चित काल तक स्थगित अथवा ५ वर्ष पहले इसे बर्ख़ास्त कर सकता है। लेकिन किसी भी दशा में वह इसकी आयु बढ़ा नहीं सकता। ५ वर्ष की अवधि सभी प्रकार से ठीक है। असेम्बली का सभापति स्पीकर कहलाता है। यह असेम्बली के सदस्यों द्वारा चुना जाता है। इसकी अनुपस्थिति में डिप्टी स्पीकर सभापति का काम करता है। स्पीकर का पद स्थायी है। यदि किसी कारणवश असेम्बली ५ वर्ष से पहले बर्ख़ास्त कर दी जाती है तो वह अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक दूसरी नई असेम्बली की बैठक में दूसरा स्पीकर चुन न लिया जाय। धारा-सभा इनका वेतन निश्चित करती है। प्रान्तीय मन्त्रियों को ५,००० रुपया महीना वेतन देने का आम रवाज़ है। लगभग यही वेतन स्पीकर को भी दिया जाता है। काँग्रेस मन्त्रियों ने केवल ५०० रुपया महीना वेतन लेना स्वीकार किया था और स्पीकर भी इतना ही वेतन लेते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें मुफ़्त मकान और एक एक मोटर दिये गये थे। इस बार यह वेतन कुछ बढ़ा दिया गया है।

प्रान्तीय धारा सभाओं में प्रतिनिधियों की योग्यतायें

प्रत्येक देश में धारा-सभाओं का सदस्य बनने के लिये कुछ शर्तें लगाई गई हैं। जो व्यक्ति इन शर्तों को पूरा कर सकते हैं वे ही इनके सदस्य बन सकते हैं। यदि कोई धोखा देकर किसी धारा-सभा का सदस्य बन जाता है तो उसे एक बहुत बड़ी रक़म जुर्माने के रूप में देनी पड़ती है। जो लोग शर्तों को पूरा करते हैं और धारा सभाओं के लिये उम्मीदवार खड़े होते हैं उन्हें कुछ रुपया बतौर ज़मानत के सरकारी ख़ज़ाने में जमा करना पड़ता है। यदि एक निश्चित फ़ीसदी से कम मतदाता उन्हें वोट देते हैं तो उनका रुपया सरकार जब्त कर लेती है। ऐसा इसलिये किया गया है कि वे ही व्यक्ति उम्मीदवार खड़े हों जिनका जनता में विश्वास और प्रभाव हो। उम्मीदवारों को यह ख़ास हिदायत कर दी जाती है कि वे एक निश्चित रक़म से अधिक प्रचार कार्य में ख़र्च नहीं कर सकते। चुनाव हो जाने के बाद सफल सदस्यों को अपने चुनाव का पूरा ख़र्च लिख कर सरकार को दे देना पड़ता है। यदि किसी सदस्य का ख़र्च अधिक है तो वह अपने पद से हटा दिया जाता है। सभी व्यक्ति धारा-सभाओं के सदस्य नहीं बन सकते। उनके लिये निम्न-लिखित शर्तें लगाई गई है :—

१—प्रत्येक सदस्य या तो ब्रिटिश प्रजा हो अथवा देशी नरेश हो। रिया-

सतों की प्रजा भी धारा-सभाओं में शामिल की जा सकती है, परन्तु इसकी व्यवस्था सरकार को विशेष रूप से करनी पड़ती है।

२—३० वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति लेजिसलेटिव कौंसिल का सदस्य नहीं हो सकता। इसी तरह २५ वर्ष से कम आयु का लेजिस्लेटिव असेम्बली का सदस्य नहीं बन सकता।

३—सदस्य को अपने निर्वाचन क्षेत्र में मताधिकारी होना आवश्यक है।

४—कोई व्यक्ति प्रान्तीय और संघ दोनों धारा-सभाओं का सदस्य नहीं रह सकता। प्रान्तीय धारा-सभाओं में भी दोनों का सदस्य रहना अवैध है।

५—यदि धारा-सभा का कोई सदस्य बिना किसी सूचना के ६० दिन तक लगातार इसकी बैठक से ग़ैरहाज़िर रहे तो वह अपने स्थान से हटा दिया जाता है।

६—धारा-सभा का सदस्य कोई सरकारी नौकरी नहीं कर सकता।

७—यदि कोई ग़ैर व्यक्ति धारा-सभा की बैठक में हिस्सा लेता है तो पता चलने पर उसे ५०० रुपया रोज़ के हिसाब से जुर्माना किया जाता है। यह रक़म प्रान्तीय सरकार की आमदनी समझी जाती है।

८—वैतनिक सरकारी कर्मचारी सरकारी आज्ञा के बिना धारा-सभाओं के लिये उम्मीदवार नहीं खड़े हो सकते।

९—पागल और दिवालिये धारा-सभाओं के सदस्य नहीं बन सकते।

१०—जो फ़ौज़दारी के जुर्म में सज़ा काट चुका है अथवा जिसे आजन्म काले पानी की सज़ा दी गई है, वह धारा-सभा का सदस्य नहीं बन सकता।

११—प्रान्तीय स्वराज की स्थापना के पहले जिन्हें दो वर्ष की जेल की सज़ा दी गई है अथवा जो काले पानी की सज़ा भोग चुके हैं वे अपनी रिहाई के ५ वर्ष बाद तक प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य नहीं बन सकते।

१२—प्रत्येक सदस्य को चुनाव के पश्चात् अपने निर्वाचन का व्यय सम्बन्धी ब्यौरा सरकार को देना पड़ता है। जो ऐसा नहीं करता वह धारा-सभा का सदस्य नहीं रह सकता।

जैसे धारा-सभाओं के लिये सभी व्यक्ति उम्मीदवार नहीं हो सकते, वैसे ही सभी नागरिकों को वोट देने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं में सदस्यों के चुनाव में वोट देने की शर्तें भिन्न भिन्न हैं। प्रान्तीय धारा-सभाओं में भी छोटी और बड़ी सभा के लिये वोट देने वालों में भेद किया गया है। जो व्यक्ति कौंसिल के सदस्यों को वोट देने के अधिकारी हैं उनकी योग्यता सभी प्रान्तों में एक-सी नहीं है। संयुक्तप्रान्त में उनकी योग्यता निम्नलिखित है :—

लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्यों के लिये वोट देने का अधिकारी कौन है?

१—मतदाता को अपने निर्वाचन क्षेत्र में निवास करना आवश्यक है। या तो वह निश्चित रूप से वहाँ रहता हो अथवा कभी कभी निवास करता हो। वहाँ उसका निजी मकान होना ज़रूरी है।

निवास सम्बन्धी योग्यतायें

२—साधारण योग्यतायें :—

अ—जिसने पिछले वर्ष ४००० रुपये या इससे अधिक आय पर सरकार को टैक्स दिया हो।

ब—जिसे राय बहादुर, खाँ बहादुर, दीवान बहादुर, सरदार बहादुर या इसी तरह का कोई और ख़िताब मिला हो।

स—जो २५० रुपया मासिक सरकारी पेंशन पाता हो।

द—जो बृटिश भारत की किसी धारा-सभा के सदस्य हों अथवा रहे हों। जो बृटिश भारत की किसी इक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य अथवा मन्त्री हों। जो किसी विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर, चांसलर, फ़ेलो, प्रो० वाइस चांसलर कोर्ट या सीनेट के सदस्य हों अथवा रहे हों। जो संघ न्यायालय, हाईकोर्ट, चीफ़ कोर्ट अथवा जुडीशियल कमिश्नर की कोर्ट के न्यायाधीश हों या रहे हों। जो कलकत्ता, बम्बई और मदरास कारपोरेशन के मेयर और शरीफ़ हों या रहे हों। जो संयुक्तप्रान्त की किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ग़ैर सरकारी सभापति हों या रहे हों। जो किसी सेन्ट्रल कोआपरेटिव सोसाइटी के गैर सरकारी सभापति हों या रहे हों।

य—जो १००० रुपया या इससे अधिक सालाना मालगुज़ारी देते हों।

र—जो १००० रुपया सालाना तक की ज़मीन माफ़ी में जोतते हों।

ल—जो कम से कम १५०० रुपया सालाना तक के काश्तकार हों।

३—वोट देने के लिये स्त्रियों को कुछ विशेष सुविधायें दी गई हैं। जिन स्त्रियों के पतियों में निम्नलिखित योग्यतायें पाई जाती हैं वे वोट दे सकती हैं :—

स्त्रियों की विशेष योग्यतायें

अ—जो गत वर्ष १०००० रुपये या इससे अधिक आय पर इनकम टैक्स दिये हों।

ब—जो ५००० रुपया सालाना सरकारी मालगुज़ारी देते हों।

स—जो ५००० रुपये सालाना मालगुज़ारी की ज़मीन माफ़ी में रखते हों।

द—जिसे राय बहादुर, ख़ाँ बहादुर, सरदार बहादुर, दीवान बहादुर या इसी तरह की कोई पदवी मिली हो।

य—जो २५० रुपया या इससे अधिक सरकारी पेंशन पाता हो।

४—हरिजनों के लिये भी कुछ विशेष योग्यतायें निश्चित की गई हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

हरिजनों की विशेष योग्यतायें

अ—जिसने गत वर्ष २००० रुपये या इससे अधिक आमदनी पर इनकम टैक्स दिया हो।

ब—जो २००० रुपये सालाना मालगुज़ारी की ज़मीन माफ़ी में रखता हो।

स—जो ५०० रुपये या इससे अधिक का काश्तकार हो।

द—जिसे गवर्नर की ओर से कोई उपाधि मिली हो।

लेजिसलेटिव असेम्बली के सदस्यों के लिये वोट देने का अधिकारी कौन है ?

प्रान्तीय कौंसिल की तरह असेम्बली के निर्वाचकों की योग्यतायें विभिन्न प्रान्तों में अलग अलग ठहराई गई हैं। निर्वाचन के पहले एक सूची बनाई जाती है। जिनका नाम इस सूची में रहता है वे ही वोट दे सकते हैं। सूची में उन्हीं का नाम शरीक किया जाता है जो चन्द शर्तों को पूरा कर सकते हैं। वोटरों की सूची में शामिल होने के लिये ६ प्रकार की शर्तें बनाई गई हैं। इनमें से किसी एक शर्त को अवश्य पूरी करनी पड़ती है। यदि ऐसा न हो तो अयोग्य व्यक्ति निर्वाचक बन जायेंगे। वे अपने सच्चे प्रतिनिधियों को नहीं पहचान सकते। शर्तों की मात्रा उतनी ही रक्खी गई है जिससे निर्वाचक भले और बुरे को पहचान सकें। लगभग

सभी प्रान्तों में ये शर्तें किसी न किसी रूप में लगाई गई हैं। ये शर्तें निम्नलिखित हैं :—

१—निवास सम्बन्धी योग्यता।
२—टैक्स सम्बन्धी योग्यता।
३—सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता।
४—शिक्षा सम्बन्धी योग्यता।
५—सरकारी नौकर सम्बन्धी योग्यता।
६—स्त्रियों की विशेष योग्यतायें।

संयुक्तप्रान्त में इन योग्यताओं का माप क्या है इसका वर्णन नीचे किया गया है :—

अ—प्रत्येक निर्वाचक के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने निर्वाचन क्षेत्र में निवास करता हो। अर्थात् वहाँ उसका निजी घर हो जिसमें वह स्थायी रूप से रहता हो।

ब—अथवा जो म्युनिसिपैलिटी को कम से कम १५० रुपया सालाना आमदनी पर टैक्स देता हो।

स—अथवा जो सरकार को इन्कम टैक्स देता हो। यानी उनकी आमदनी २००० रुपया सालाना से ऊपर हो।

द—अथवा जो २४ रुपया सालाना किराये के मकान में रहता हो या ऐसा उसका निजी मकान हो।

य—अथवा जो कम से कम ५ रुपये का सरकारी मालगुज़ार या १० रुपये का काश्तकार हो।

र—अथवा जो कम से कम दर्जा ४ या इसी के बराबर कोई दूसरी परीक्षा पास हो।

ल—अथवा जो सम्राट् की स्थायी (Regular) सेना से अवकाश ग्रहीत हों, या पेंशन पाते हों, या बिना कमीशन के अफ़सर या सिपाही हों।

ऊपर कही गई ७ योग्यताओं में कम से कम एक की पूर्ति किये बिना कोई असेम्बली के लिये निर्वाचक नहीं बन सकता। स्त्रियों को कुछ ख़ास सुविधायें दी गई हैं। यदि ऊपर लिखी योग्यताओं को कोई स्त्री पूरा करती है तो वह निर्वाचक बन सकती है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी योग्यतायें उनकी सुविधा के लिये निश्चित की गई हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

अ—जो सम्राट् की स्थायी (Regular) सेना के अफ़सर या बिना कमीशन के अफ़सर या सैनिक की विधवायें अथवा मातायें हों।

ब—जो निर्धारित सीमा तक साक्षर हों।

स—जो ऐसे व्यक्तियों की पत्नियाँ हों जिनमें निम्नलिखित योग्यतायें हों :—

१—जो अपने निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम ३६ रुपया सलाना मकान-किराया देता हो या ऐसा एक निजी मकान रखता हो।

२—जो २०० रुपये सालाना आमदनी पर म्युनिसिपैलिटी को टैक्स या सरकारी इन्कम टैक्स देता हो।

३—जो कम से कम २५ रुपया सालाना सरकारी मालगुज़ारी देता हो।

४—जो कम से कम ५० रुपये का काश्तकार हो।

५—जो सम्राट् की स्थायी सेना से अवकाश प्राप्त किये हो या पेंशन पाता हो। या बिना कमीशन का अफ़सर या सिपाही हो।

प्रान्तीय धारा-सभाओं के सभापति

ऊपर कहा गया है कि लेजिस्लेटिव कौंसिल की कोई निश्चित अवधि नहीं है। यह सभा स्थायी रूपसे कार्य करती है। असेम्बली की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई है। यदि गवर्नर चाहे तो इससे पहले ही बर्खास्त कर सकता है। दोनों धारा सभाओं की सालाना बैठक आवश्यक है। प्रत्येक धारा-सभा की बैठक ६ महीने से अधिक के लिये स्थगित नहीं की जा सकती। गवर्नर जब चाहे दोनों धारा-सभाओं में व्याख्या दे सकता है। कौंसिल का सभापति प्रेसीडेन्ट कहलाता है। इसकी अनुपस्थिति में सहायक-प्रेसीडेन्ट सभापति का आसन ग्रहण करता है। असेम्बली का सभापति स्पीकर कहलाता है। इसकी अनुपस्थिति में सहायक-स्पीकर सभापति का आसन ग्रहण करता है। ये चारों पदाधिकारी क्रमशः अपनी-अपनी धारा-सभा के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। जब कभी प्रेसीडेन्ट का स्थान खाली होता है तो कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी को प्रेसीडेन्ट चुन लेते हैं। स्पीकर तथा सहायक स्पीकर अपने पद पर तब तक कार्य कर सकते हैं जब तक वे असेम्बली के सदस्य हैं। वे किसी भी समय अपने पदों से इस्तीफ़ा दे सकते हैं। इसकी सूचना गवर्नर को देनी पड़ती है। यदि असेम्बली के सदस्य स्पीकर से सन्तुष्ट नहीं हैं, तो वे बहुमत से इसे हटाकर इसकी जगह दूसरा स्पीकर चुन लेते हैं। असेम्बली बर्ख़ास्त होने पर भी स्पीकर अपने पद

पर बना रहता है। वह अपने पद पर तब तक आरूढ़ रहता है जब तक नई असेम्बली की पहली बैठक न हो जाय। स्पीकर और प्रेसीडेन्ट दोनों पदाधिकारियों को वेतन दिया जाता है। इनका वेतन मन्त्रियों के बराबर होता है। प्रान्तीय धारा-सभा इसे निश्चित करती है। स्पीकर के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने पद पर आते ही किसी पार्टी से सम्बन्ध न रक्खे। उसे निष्पक्ष भाव से कार्य करना पड़ता है।

प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार और कर्त्तव्य

संघ शासन-विधान में सभी विषय ३ कोटि में बाँट दिये गये हैं। कुछ विषयों में क़ानून बनाने का अधिकार केवल संघ धारा-सभा को है। प्रान्तीय धारा-सभायें उनमें हाथ नहीं डाल सकतीं। कुछ विषय प्रान्तीय सरकारों की मातहती में दिये गये हैं। उनसे सम्बन्ध रखने वाले क़ानून प्रान्तीय धारा-सभाओं में बनते हैं। तीसरी कोटि में वे विषय हैं जिन पर दोनों सरकारें अपना विचार प्रकट करती हैं। दोनों धारा-सभायें इनके लिये क़ानून बना सकती है। संघ सरकार जब चाहे प्रान्तीय धारा-सभाओं की कार्रवाइयों में दख़ल दे सकती है। जब कभी संघ और प्रान्तीय क़ानूनों में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाय तो संघ धारा-सभा के क़ानून को मानना होगा। प्रान्तों में क़ानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय धारा-सभाओं को है। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर संघ धारा-सभा भी इनके लिये क़ानून बना सकती है। साधारण परिस्थिति में वह प्रान्तीय धारा-सभाओं की कार्रवाइयों में हाथ नहीं डाल सकती परन्तु यदि गवर्नर-जनरल को किसी अशान्ति या कुव्यवस्था का भय हो तो वह संघ धारा-सभा को प्रान्तों के लिये क़ानून बनाने की आज्ञा दे सकता है।

प्रान्तीय धारा-सभायें अनेक बन्धनों से बँधी हुई हैं। उन्हें वह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है जो स्विटज़रलैंड के कैन्टन्स तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की रियासतों को प्राप्त है। गवर्नर के विशेष अधिकारों के सामने उनकी एक नहीं चलती। जो कुछ भी सीमित क्षेत्र उन्हें क़ानून बनाने के लिये दिये गये हैं उनमें भी गवर्नर को दख़ल देने का अधिकार है। कुछ मामलों में प्रान्तीय धारा-सभाओं को विचार करने की मुमानियत है। कोई भी प्रान्तीय धारा-सभा फेडरल कोर्ट अथवा हाईकोर्ट के जज के चरित्र पर वादविवाद नहीं कर सकती। यदि कोई बिल प्रान्तीय धारा-सभा में पेश है और उस पर विचार हो रहा है तो गवर्नर अपने अधिकार से उस वादविवाद को रोक सकता है। धारा-सभा के सदस्यों को विवश होकर सारी कार्रवाई उसी जगह रोक

देनी पड़ती है। गवर्नर के विशेष अधिकारों पर विचार करने का अधिकार प्रान्तीय धारा सभाओं को प्राप्त नहीं है। पार्लियामेंट द्वारा पास किये गये क़ानूनों पर तथा गवर्नर-जनरल के क़ानूनों पर कोई भी प्रान्तीय धारा-सभा गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना विचार नहीं कर सकती। गवर्नर-जनरल द्वारा जारी किये गये फ़रमानों (Ordinances) पर प्रान्तीय धारा-सभाओं को विचार करने का अधिकार नहीं है। इसी तरह गवर्नर के फ़रमान भी उनके हाथ से बाहर रक्खे गये हैं। पुलीस सम्बन्धी किसी क़ानून को बदलने का अधिकार भी उन्हें प्राप्त नहीं है। गवर्नर की अनुमति के बिना प्रान्तीय धारा-सभाओं में किसी नये कर लगाने की चर्चा नहीं उठ सकती। यदि कोई नवीन कर-सम्बन्धी बिल पेश करना है तो पहले गवर्नर की आज्ञा लेनी पड़ती है। प्रान्तीय सरकार को क़र्ज़ लेने का अधिकार तब तक नहीं है जब तक गवर्नर इसकी आज्ञा न दे दे। आमदनी और ख़र्च सम्बन्धी सभी बिल गवर्नर की अनुमति से प्रान्तीय धारा-सभाओं में पेश किये जाते हैं।

जब कोई बिल दोनों प्रान्तीय धारा-सभाओं द्वारा पास हो जाता है तो इसका अन्तिम निर्णय गवर्नर के हाथ में रहता है। वह चाहे तो बिल पर दस्तख़त करने से इनकार कर सकता है। ऐसी हालत में वह बिल नामंजूर समझा जाता है और धारा-सभाओं का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। किसी बिल को वह इस बात के लिये अपने पास रोक सकता है कि उस पर गवर्नर-जनरल की राय ज़रूरी है। पार्लियामेंट जब चाहे प्रान्तों के लिये क़ानून बना सकती है या किसी प्रान्तीय क़ानून को हटा सकती है। प्रान्तीय धारा-सभाओं को संघ धारा-सभा की तरह कोई ऐसा क़ानून बनाने का अधिकार नहीं है जिसका प्रभाव सम्राट्, पार्लियामेंट अथवा गृह सरकार के किसी उच्च पदाधिकारी पर पड़ता है। फ़ौज, सेना, जहाज़ी बेड़ा, वैदेशिक विभाग आदि से सम्बन्ध रखने वाले क़ानून प्रान्तीय धारा-सभाओं में नहीं बन सकते। प्रान्तीय धारा-सभा ऐसा क़ानून पास नहीं कर सकती जिससे अँग्रेज़ी तिजारत को धक्का लगे। इससे स्पष्ट है कि प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार बहुत ही संकुचित हैं। प्रान्तीय स्वराज नामक अध्याय में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है कि जनता को कहाँ तक अपने लिये क़ानून बनाने का अधिकार है।

प्रान्तीय धारा-सभायें अपनी कार्य-पद्धति स्वयं बनाती हैं। जब कभी गवर्नर के निजी अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर विचार करने की आवश्यकता होती है तो गवर्नर स्वयं स्पीकर की सलाह से इसकी कार्य-पद्धति

का निर्माण करता है। प्रान्तीय धारा सभायें किसी देशी रियासत के मसले पर तब तक विचार नहीं कर सकतीं जब तक गवर्नर की राय में इसकी आवश्यकता न हो। भारत-सरकार तथा गृह-सरकार के सम्बन्ध अथवा किसी देशी राजा के चरित्र के विषय में ये विचार नहीं कर सकतीं। प्रान्तों के जो विभाग पिछड़े हुये (Excluded or Partially Excluded areas) क़रार दिये गये हैं उन पर एकमात्र अधिकार गवर्नर का है। प्रान्तीय धारा-सभाओं द्वारा पास किये गये क़ानून इन क्षेत्रों में तभी लागू होते हैं जब वह इसकी आवश्यकता समझता है। प्रान्तीय धारा-सभाओं की कार्य-पद्धति को कोई कचहरी दोषपूर्ण नहीं ठहरा सकती। इसके सदस्यों को १६३७ ई० तक वेतन न देकर रोज़ाना के हिसाब से भत्ता दिया जाता था। धारा-सभा स्वयं इसे निश्चित करती थी। धारा-सभा के स्थान तक जाने का रेल का किराया भी सदस्यों को दिया जाता था। कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने भत्ते की रक़म घटा कर प्रत्येक सदस्य को २०० रुपया मासिक वेतन देना निश्चित किया है। नियम की पाबन्दी करते हुये प्रान्तीय धारा-सभाओं में प्रत्येक सदस्य को बोलने की पूरी इजाज़त दी गई है। इसके लिये उन पर कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त सदस्यों को और भी थोड़ी बहुत सुविधायें दी गई हैं।

प्रान्तीय धारा सभा की कार्रवाई

प्रान्तीय धारा-सभा की सभी कार्रवाई अँग्रेज़ी भाषा में की जाती है। परन्तु यदि कोई सदस्य चाहे तो अपनी मातृ-भाषा में अपना विचार प्रकट कर सकता है। आर्थिक बिल को छोड़कर कोई बिल छोटी या बड़ी धारा-सभा में पेश किया जा सकता है। जब तक कोई बिल दोनों धारा-सभाओं द्वारा पास नहीं हो जाता तब तक वह पास नहीं समझा जाता। यदि कोई बिल किसी धारा-सभा में पेश है और उस पर वादविवाद हो रहे हैं; परन्तु किसी कारणवश बीच में ही वह सभा बर्ख़ास्त कर दी जाती है तो वह बिल ख़तम नहीं समझा जाता। जब कभी इस धारा-सभा की बैठक होती है तो इस पर विचार किया जाता है। मान लीजिये कोई बिल लेजिसलेटिव कौंसिल में पड़ा हुआ है और अभी तक वह लेजिसलेटिव असेम्बली में पेश नहीं हुआ है, लेकिन इसी बीच में असेम्बली बर्ख़ास्त हो जाती है, तो वह बिल वहीं ख़तम नहीं हो सकता। जब कभी असेम्बली की बैठक होगी तो उस बिल पर विचार किया जायगा। यदि कोई बिल प्रान्तीय असेम्बली में पेश है या यहाँ से पास होकर प्रान्तीय कौंसिल में भेज दिया गया है परन्तु इसी बीच में असेम्बली बर्ख़ास्त कर दी जाती है तो वह बिल

उसी जगह ख़तम हो जाता है। फिर उस पर विचार नहीं किया जाता। यदि कोई बिल गवर्नर के विशेष अधिकारों से सम्बन्ध रखता है तो गवर्नर दोनों प्रान्तीय धारा-सभाओं की सम्मिलित बैठक बुला सकता है। बहुमत का निर्णय मान्य समझा जाता है। धारा-सभा द्वारा पास किये गये क़ानून को गवर्नर फिर उसे विचार करने के लिये धारा-सभा में भेज सकता है। धारा-सभा को उस पर विचार करना पड़ता है। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि वह गवर्नर को इस बात की आज्ञा दे कि अमुक बिल प्रान्तीय धारा सभा में पुनः विचार करने के लिये वापिस कर दिया जाय। यदि बिल धारा-सभा द्वारा फिर उसी रूप में पास कर दिया जाता है तो वह गवर्नर-जनरल के पास विचार करने के लिये भेज दिया जाता है। वह उसे सम्राट् की अनुमति के लिये भेज देता है। इन सीढ़ियों से गुज़रने में बिल को वर्षों बीत जाते हैं। प्रान्तीय धारा-सभाओं द्वारा पास होने पर यदि बिल गवर्नर-जनरल के हाथों से बच गया तब भी सम्राट् उसे नामंजूर कर सकता है। परन्तु गवर्नर या गवर्नर-जनरल की मंजूरी से १२ महीने के अन्दर सम्राट् को अपना निर्णय देना पड़ता है।

आर्थिक बिल केवल लेजिसलेटिव असेम्बली में पेश किये जाते हैं। प्रतिवर्ष प्रान्तीय धारा-सभा अथवा सभाओं के सामने अगले वर्ष के आय-व्यय का ब्यौरा (Budget) पेश किया जाता है। असेम्बली के सदस्यों को अधिकार है कि वे इसके हर एक मद पर विचार करें। परन्तु ब्यौरे में कुछ ऐसी भी मदें शामिल रहती हैं जिन पर उन्हें अपना मत देने का अधिकार नहीं है। वे इन्हें घटा बढ़ा नहीं सकते। वे मद निम्नलिखित हैं :—

१—गवर्नर का वेतन तथा इसके आफ़िस का ख़र्च।

२—क़र्ज़ की सूद, जिसे प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को देना लाज़मी है।

३—मन्त्रियों तथा ऐडवोकेट जनरल का वेतन और इनका भत्ता।

४—हाईकोर्ट के जजों का वेतन और इनका भत्ता।

५—पिछड़े हुये विभागों का ख़र्च।

६—किसी न्यायालय के निर्णय के अनुसार दी जाने वाली रक़म।

७—कोई और ख़र्च जो शासन-विधान और प्रान्तीय धारा-सभा द्वारा घोषित किया गया हो।

ऊपर की सात मदों पर प्रान्तीय धारा-सभायें (Legislative Assemblies) विचार कर सकती हैं; लेकिन इन पर अपना मत प्रकट नहीं कर सकतीं। वे इनके लिये वोट नहीं दे सकतीं। बाक़ी आमदनी असेम्बली की

इच्छानुसार ख़र्च की जाती है। यदि ये सभायें किसी ख़र्च को घटा बढ़ा दें तो उसे नामंजूर करने का अधिकार गवर्नर को है। धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध वह जो रक़म चाहे ख़र्च कर सकता है। यदि प्रान्तीय धारा-सभाओं में कोई मतभेद उत्पन्न हो जाय तो वह केन्द्रीय धारा-सभाओं की तरह दूर किया जाता है।

अध्याय १४

प्रान्तीय स्वराज

(Provincial Autonomy)

परिभाषा

प्रान्तीय स्वराज का ठीक अर्थ बहुतों की समझ में नहीं आता। यदि सभी सूबों को पूरी आज़ादी दे दी जाय तो पूर्ण स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ ही नहीं रह जाता। यहाँ पर प्रान्तीय स्वराज और पूर्ण स्वराज का तात्पर्य एक है। साधारण तौर पर प्रान्तीय स्वराज के दो अर्थ लगाये जाते हैं। दोनों में इतना कम फ़रक है कि कोई बात साफ़ ज़ाहिर नहीं होती। एक अर्थ तो यह है कि प्रान्तों में केन्द्रीय सरकार का कुछ हाथ न हो, तभी उन्हें स्वतन्त्र कहा जा सकता है। केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय विषयों में तब तक दखल न दे जब तक प्रान्तीय सरकार किसी ऐसी नीति का आश्रय न ले जो राष्ट्रीय दृष्टि से हानिकारक हो। जब इतनी स्वतन्त्रता प्रान्तों को मिल जाय तब हम कह सकते हैं कि हमारे देश में प्रान्तीय स्वराज की स्थापना की गई है। प्रान्तीय स्वराज का यह अर्थ बहुत कुछ ठीक है, परन्तु इसमें एक कमी है। यदि भारतीय प्रतिनिधियों को कोई अधिकार न दिया जाय और प्रान्तीय शासन ग़ैर जिम्मेवारी के वसूल पर काम करता रहे तो केन्द्रीय सरकार के हाथ खींचने पर भी जनता को कोई लाभ नहीं हो सकता। प्रान्तीय स्वराज का दूसरा अर्थ है 'एक ज़िम्मेवार शासन।' अर्थात् प्रान्तीय मन्त्रिमंडल प्रान्तीय धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार हो। धारा-सभाओं में जनता के प्रतिनिधि होते हैं यदि शासन की बागडोर उनके हाथ में रहे, तो एक ज़िम्मेवार शासन की स्थापना होगी। जनता को यह कहने का अधिकार नहीं रह जाता कि प्रान्तों में उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य हो रहा है। ज्वायंट पार्लियामेंटरी कमीटी की रिपोर्ट के अनुसार प्रान्तीय स्वराज का अर्थ यह है, "प्रान्तीय स्वराज का तात्पर्य शासन-विधान की उस शकल से है जिसके अन्दर गवर्नरों के

सूबों में कार्यकारिणी तथा धारा-सभा केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र होकर अपनी सीमा के अन्दर शासन का कार्य चलायेंगी।"* यह परिभाषा इतनी अस्पष्ट है कि कोई साफ़ बात दिमाग़ में नहीं बैठती। मालूम नहीं प्रांतीय सरकार की निहित सीमा क्या है? इसके अन्दर कहीं भी एक ज़िम्मेवार शासन की चर्चा नहीं की गई है।

प्रान्तीय स्वराज का ठीक अर्थ एक ज़िम्मेवार शासन से है। प्रांतीय जनता स्वयं अपना राजनीतिक प्रबन्ध करे और अपने प्रतिनिधियों द्वारा सरकारी अफ़सरों पर अधिकार रक्खे—इसका नाम प्रांतीय स्वराज है। कार्यकारिणी सभा के सदस्य धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार हों। अतएव प्रान्तीय स्वराज का दोहरा अर्थ ठीक नहीं है। एक का तात्पर्य केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार के सम्बन्ध से है और दूसरे का तात्पर्य एक स्वतन्त्र शासन (Self Government) है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रान्तों में एक ज़िम्मेवार शासन तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक केन्द्रीय सरकार का दबाव कम न हो जाय। यदि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय मामलों में हाथ डालती रहे तो स्वतन्त्र शासन का कोई अर्थ ही नहीं है। यह हो सकता है कि शासन की कोई कड़ी मशीन बनाकर केन्द्रीय सरकार अपने दख़ल को कम कर दे और इसी का नाम प्रान्तीय स्वराज रख दिया जाय। जनता के प्रति कोई ज़िम्मेवार शासन न बनाकर केवल केन्द्रीय सरकार के दख़ल को कम कर दिया जाय। शाब्दिक अर्थों में इसे कोई प्रान्तीय स्वराज कह ले, परन्तु स्वराज तो वही है जिसके अन्दर प्रजा स्वयं अपना शासन करे। यदि प्रान्तों में एक ज़िम्मेवार शासन स्थापित कर दिया जाय और केन्द्रीय सरकार दख़ल देती रहे तो एक ऐसा समय आ सकता है जब सरकारी मशीन फ़ेल कर जाय। या तो सरकार प्रान्तीय स्वराज को ख़तम कर दे या अपने दख़ल को कम करे। वर्तमान ८ प्रान्तों में शासन के फ़ेल होने का यही कारण है। ऊपर से दिखलाने के लिये प्रान्तीय स्वराज की स्थापना कर दी गई, परन्तु भीतर से केन्द्रीय

---

*Provincial autonomy means freedom from central control, the institution of a form of government "Whereby each of the Governor's Provinces will passes an Executive and a Legislature having exclusive authority within the province in a precisely defined sphere, and in that exclusively provincial sphere broadly free from control by the Central Government and Legislature."

सरकार की शक्ति वैसी ही थी। २७ महीने के काँग्रेस मंत्रिमंडलों से यह बात साफ़ हो गई थी।

प्रान्तीय स्वराज की माँग

जब काँग्रेस की स्थापना की गई थी तो लोगों का यह अनुमान था कि बृटिश सरकार धीरे धीरे हमारी राष्ट्रीय माँगों को पूरा कर देगी। पूर्ण स्वराज की कल्पना किसी को भी न थी। कुछ समय व्यतीत होने पर बृटेन की साम्राज्य-वादी नीति का पता चलने लगा। वे हिन्दोस्तानियों को कोई अधिकार देने पर राज़ी न थे। उनके आर्थिक लाभ की अभिलाषा इतनी अधिक थी कि किसी भी क्षेत्र में हिन्दोस्तानियों को आज़ाद करके वे अपने स्वार्थ पर धक्का नहीं पहुँचा सकते थे। इधर हिन्दोस्तान में राष्ट्रीय भावनाओं की वृद्धि हो रही थी। १९०४ ई० में काँग्रेस ने इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया कि शासन की मशीन में भारतीय कार्यकर्ताओं को अधिक से अधिक हिस्सा लेना चाहिये। १९०५ ई० में फिर यह प्रस्ताव दोहराया गया। इसका तात्पर्य यह था कि बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों तथा धारा-सभाओं में काम करने का मौक़ा हिन्दोस्तानियों को भी मिले। १९०६ ई० में काँग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसका उद्देश्य बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हिन्दोस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनाना है। बंग-भंग के प्रश्न ने आग में घी का काम किया। सारे हिन्दोस्तान में स्वतन्त्रता की लहर फैल गई। काँग्रेस अपनी नीति पर डटी रही। उसकी माँग उपयुक्त थी। देश की राजनीतिक पार्टियों ने यह स्वीकार किया कि मुल्क की बेहतरी के लिए आज़ादी से बढ़कर कोई दूसरी दवा नहीं है। इस समय काँग्रेस दल में दो बड़ी कमज़ोरियाँ उत्पन्न होगई थीं। सूरत की काँग्रेस के बाद वह दो दलों में विभाजित होगई। दूसरे मुसलमान अभी तक उससे अलग थे। १९१० ई० में इलाहाबाद काँग्रेस में सर विलियम वेडरबर्न ने इस बात का प्रयत्न किया कि काँग्रेस के आपसी भेदभाव मिटा दिये जायँ और मुसलमान भी इसके उद्देश्य में शामिल हों। १९३५ ई० तक इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद लीग और काँग्रेस दोनों ने अपना उद्देश्य एक बना लिया कि उन्हें बृटिश साम्राज्य के अन्दर हिन्दोस्तान में एक स्वतन्त्र सरकार स्थापित करना है। तब से बराबर दोनों की यह माँग जारी है कि हिन्दोस्तान को पूरी आज़ादी मिलनी चाहिये। किसी कारणवश दोनों दलों में कुछ मतभेद ज़रूर है, लेकिन जहाँ तक आज़ादी का प्रश्न है, दोनों एक हैं। अब यह माँग कुछ और स्पष्ट कर दी गई है। आज़ादी के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि हम बृटिश साम्राज्य की छत्रछाया में बने रहें।

पूरी आज़ादी मिल जाने के बाद हम इस बात का फ़ैसला करेंगे कि हमारा सम्बन्ध विदेशों से क्या हो। इसके लिये हम पहले से कोई वादा नहीं कर सकते। १६१६ ई० से बृटिश सरकार इस बात का आश्वासन दे रही है कि हिन्दोस्तान को क्रमशः आज़ाद किया जायगा। पहले नीचे से हमें अधिकार मिलेंगे, फिर बढ़ते बढ़ते सरकार की पूरी मशीन हमारे हाथों में सौंप दी जायेगी। यह दिन कब आयेगा इसका हमें कोई अनुमान नहीं है। इस अध्याय में यह विचार किया जायेगा कि कहाँ तक हमें राजनीतिक अधिकार प्रदान किये गये हैं।

प्रान्तीय स्वराज पर विभिन्न मत

१६३० ई० तक हिन्दोस्तान की आज़ादी का सवाल एक था। इस पर दो विचार पैदा नहीं हुये थे। लेकिन गोलमेज़ सभा के बाद प्रान्तीय स्वराज पर दो विभिन्न मत वाले दल उठ खड़े हुये। यह भेदभाव लन्दन में ही उत्पन्न हो गया था। एक दल का कहना था कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति कमज़ोर नहीं होनी चाहिये। प्रान्तों पर इसका प्रभाव वैसे ही दृढ़ रहना चाहिये जैसे आज है। इस दल के नेताओं ने दक्षिणी अफ्रीका तथा अमेरिका का उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति दृढ़ रखते हुये भी प्रान्तीय स्वराज की स्थापना हो सकती है। इस दल वालों को यह सन्देह था कि यदि प्रान्तों को स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई, और केन्द्रीय सरकार का हाथ उनके ऊपर से जाता रहा तो बहुत मुमकिन है कि हिन्दोस्तान की राष्ट्रीय एकता नष्ट हो जाय। इससे स्पष्ट होता है कि यह दल बृटिश सरकार की "शक्ति एकीकरण" (Centralised power) में विश्वास करता था। इसका कहना था कि बृटिश सरकार इस बात का ध्यान न रक्खेगी तो हिन्दोस्तानियों की लगभग एक सदी की कमाई मिट्टी में मिल जायेगी। हिन्दोस्तान में मौजूदा मतभेद का हवाला दे देकर यह साबित किया गया कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम करने से आपसी झगड़ों में वृद्धि होगी और तरह तरह के निफ़ाक़ पैदा होंगे। उपरोक्त विचार से यह साफ़ ज़ाहिर है कि इस दल को हिन्दोस्तानियों की राजनीतिक कुशलता में विश्वास नहीं है। इस डर से कि कहीं आपस में कुछ भेद उत्पन्न न हो जायँ, हमेशा गुलामी की जंज़ीर में बँधे रहना उन्हें अच्छा है।

दूसरे दल ने इस केन्द्रीय शक्ति के संचय पर प्रकाश डालते हुये यह साबित किया कि जब तक केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम न होगी तब तक प्रान्तीय स्वराज की स्थापना नहीं हो सकती। यह सम्भव नहीं है कि बृटिश

सरकार की सारी शक्ति अपने हाथों में रक्खे और साथ ही सूबों को आज़ादी भी दे दे। ऐतिहासिक उद्धरणों से यह बात साबित की गई कि शासन की बागडोर को एक सूत्र में बाँधने से जो देश को हानि पहुँची है वह जल्दी पूरी नहीं हो सकती। इससे जनता के अधिकार का अस्तित्व मिटा दिया गया है। वह भीगी बिल्ली की तरह कूपमंडूक हुये बैठी है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं है कि उसके नमक की असली क़ीमत क्या है। प्रान्तीय सरकारों को कठपुतली की तरह नचाने से जनता का आत्म-विश्वास जाता रहा और अब वह हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकती कि उसे अन्धे की तरह कोई लाठी पकड़ा कर ले चले। प्रजा के व्यक्तित्व पर इस नीति से बड़ा आघात पहुँचा है। जब तक मशीन के पुर्जे आज़ादी के साथ अपनी जगह पर काम नहीं करते, तब तक वह ठीक तौर पर काम नहीं कर सकती। केन्द्रीय सरकार ने सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति अपने हाथों में लेकर हमारे पिछले परिश्रम को व्यर्थ कर दिया। जो भारतीय जनता किसी समय अपना शासन स्वयं करती थी और बड़ा से बड़ा अफ़सर उसके कामों में दख़ल नहीं दे सकता था, वह आज कौंसिल में थोड़े से प्रतिनिधि भेजने के लिये तरस रही है। जो अपनी सारी कमाई अपनी इच्छानुसार ख़र्च कर सकती थी वही आज छोटे छोटे कामों के लिये केन्द्रीय सरकार की इमदाद पर मुँह ताकती है। यह दल चाहता था कि प्रान्तीय सरकार एक ज़िम्मेवार सरकार क़रार दी जाय। गवर्नर केवल नाम-मात्र के लिये कार्यकारिणी का प्रधान रहे। प्रान्तीय विषय हिन्दोस्तानी मंत्रियों को दे दिये जायँ। आमदनी और ख़र्च की पूरी ज़िम्मेवारी उन्हें दे दी जाय। प्रान्तों में प्रत्येक सरकारी कर्मचारी प्रान्तीय सरकार की मर्ज़ी से भर्ती किये जायँ। उन्हें हटाने का भी अधिकार इसी को हो तात्पर्य यह है कि इस दल की माँग एक सच्चा प्रान्तीय स्वराज स्थापित करने की थी।

प्रान्तीय स्वराज के हिमायती उपरोक्त दोनों दल अपनी अपनी माँग की पूरी कोशिश करते रहे। केन्द्रीय शासन की शक्ति को दृढ़ रखने के पक्षपातियों को यदि बृटिश सरकार का सहायक कहें तो कोई अनुचित न होगा। अब इन दोनों दल वालों की बातों पर बृटिश सरकार को विचार करना था। पार्लियामेंट यह नहीं चाहती कि केन्द्रीय सरकार की शक्ति कम हो। उसे संघ-शासन-विधान बनाने की उतनी चिन्ता न थी जितनी केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों के विभाजन की। इसी पर उसकी राजसत्ता का सारा दारोमदार था। वह अपने ही हाथों से अपना अहित कैसे कर सकती थी। साथ ही वह हिन्दोस्तानियों को सन्तुष्ट भी करना चाहती थी। इसी

उधेड़बुन में ३ वर्ष बीत गये। अन्त में तमाम विषयों की एक सूची बनी और वह केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों में बाँट दी गई। बहुत से आवश्यक अधिकार जो प्रान्तीय सरकारों को मिलने चाहिये थे, केन्द्रीय सरकार को दे दिये गये। फ़ौज और ख़ज़ाने पर हर देश का भाग्य निर्भर रहता है। वे केन्द्रीय विषयों की सूची में शामिल कर दिये गये। यदि पार्लियामेंट चाहती तो बृटिश राजनीतिज्ञों की इस भावना को बदल सकती थी, परन्तु उसने ऐसा करना मुनासिब न समझा। प्रत्येक अँग्रेज़ स्वभाव से ही हिन्दोस्तान में एक दृढ़ केन्द्रीय शासन को पसन्द करता है। पार्लियामेंट ने अपने जीवनकाल में कुछ देशों को स्वतन्त्रता प्रदान की है। इसी तरह वह हमारे देश को भी उसी दिशा में ले जा सकती थी।

कनाडा कई सूबों से मिलकर बना है। स्वयं कनाडा एक प्रान्त भी है। १८४० ई० में उसे अकेले स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी। धीरे धीरे अन्य प्रान्तों को भी स्वतन्त्रता दे दी गई। अर्थात् समूचे कनाडा में कई स्वतन्त्र सरकारें क़ायम हो गईं। सबको ज़िम्मेवार शासन दे दिया गया। परन्तु बहुत दिनों तक यह व्यवस्था क़ायम न रह सकी। अँग्रेज़ और फ़्रांसीसी दोनों जातियों के लोग इसमें निवास करते थे। घरेलू झगड़ों के कारण वे आपस में मिलकर न रह सके। सभी प्रान्तों में ये दोनों जातियाँ आपस में लड़ने लगीं। दोनों अपने को विभिन्न राष्ट्रवादी समझने लगीं। इस बुराई को दूर करने के लिये १८८७ ई० में समूचे कनाडा के लिये एक संघ शासन-विधान बनाया गया। इस उद्धरण से हमारे दो तात्पर्य हैं; एक तो यह कि दो या दो से अधिक राष्ट्रवादी किसी संघ-शासन की स्थापना कर सकते हैं। शासन-विधान की बुराइयों के कारण वे थोड़े समय तक आपस में भले ही लड़ते रहें, परन्तु अन्त में दोनों एक हो सकते हैं। दूसरा यह है कि संघ-शासन के लिये यह आवश्यक है कि इसकी इकाइयाँ पूरी तरह स्वतन्त्र कर दी जायँ। यदि हमारे देश में सच्चे संघ-शासन की स्थापना करनी है तो प्रान्तीय स्वराज निहायत ज़रूरी है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि विभिन्न सम्प्रदाय इसमें बाधक नहीं हो सकते।

आस्ट्रेलिया में भी अलग अलग सूबे आबाद होते गये। ज्यों ज्यों उनकी आबादी बढ़ती गई और उनके निवासियों की योग्यता का परिचय मिलता गया, त्यों त्यों उन्हें आज़ादी मिलती गई। १८२५ से १८६६ ई० तक यह सिलसिला जारी रहा। इसके पश्चात् स्वार्थ और सम्पर्क में मतभेद होने के कारण उनमें आपसी झगड़े आरम्भ हुए। सबने फ़ैसला किया कि एक संघ सरकार बनाई जाय जो सबको एक सूत्र में बाँधकर चलावे। १८६६ ई० में

सभी प्रान्तों के नुमाइन्दों ने इकट्ठे होकर एक संघ-शासन-विधान का निर्माण किया। बृटिश पार्लियामेंट ने खुशी खुशी उसे स्वीकार कर लिया। बृटिश साम्राज्य का एक अंग होते हुये भी यह देश आज पूरी तरह आज़ाद है। इन दोनों देशों पर नज़र डालते हुये यह स्पष्ट है कि संसार में कोई संघ-शासन-विधान ऐसा नहीं है जिसकी इकाइयाँ परतन्त्र हों और केन्द्रीय सरकार की कड़ी देख-रेख में रक्खी गई हों।

भारतीय राजनीतिज्ञों में चाहे जितना भी मतभेद हो, परन्तु हर एक इस बात से सहमत है कि हिन्दोस्तान को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। जब बृटिश सरकार ने इस बात का वादा किया कि वह प्रान्तीय क्षेत्रों में उसे तजुरबा करेगी तो फिर इसमें गोलमाल की बातें ठीक नहीं हैं। प्रान्तीय स्वराज की शकल का उतना महत्व नहीं है जितना शासकों की सच्चाई और नेक नीयती का।* कांग्रेस का चुनाव में हिस्सा लेने का मुख्य उद्देश्य यही था कि प्रान्तीय सरकार को अच्छी तरह चलाया जाय। वह शासन में कोई रुकावट पैदा करना नहीं चाहती थी। मन्त्रिपद ग्रहण करने के बाद भी जब जब अड़चनें आईं, उसने उन्हें बड़ी खूबी के साथ निबाहा। जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत नहीं था वहाँ की भी सरकारों ने कांग्रेस की नीति का अनुसरण किया। तात्पर्य यह है कि सभी बृटिश प्रान्तों में नया प्रान्तीय स्वराज बड़ी तत्परता से चालू किया गया। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी मिलकर इसे चलाने की सच्ची नीयत रखते थे। लेकिन हर समय उन्हें यह भय रहता था कि गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल से उनकी मुँठभेड़ न हो जाय।

प्रान्तीय स्वराज का क्रियात्मक रूप

१९३७ ई० में संघ शासन-विधान प्रान्तों में कार्यान्वित किया गया। चुनाव में कांग्रेस ने दिल खोल कर हिस्सा लिया। नतीजा यह हुआ कि ६ प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत रहा। संयुक्त प्रांत की छोटी धारा-सभा के लिये कांग्रेस के १३८ सदस्य चुने गये। कुल जगहें २२८ थीं। इसी प्रकार शेष पाँचों सूबों में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या बहुमत से कहीं ज़्यादा थी। संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रांत और बरार, बम्बई, मदरास, बिहार और उड़ीसा—इन सूबों में छोटी सभा में कांग्रेस का बहुमत रहा। पंजाब, बंगाल, सिंध, आसाम, और पश्चिमोत्तर प्रदेश, इनमें इसका

---

*For forms of Government let fools contest;
Whatever is best, administered is best.

बहुमत न हो सका। कुछ समय बाद आसाम और पश्चिमोत्तर प्रदेश में भी काँग्रेस का मन्त्रिमंडल स्थापित हो गया।

चुनाव फ़रवरी में समाप्त हो गया। अब प्रश्न यह उठा कि मन्त्रिमंडल बनाये जायँ। काँग्रेस ने चुनाव में विजय तो प्राप्त की परन्तु अभी तक उसने यह तै नहीं किया था कि मन्त्रिपद ग्रहण करे या नहीं। काँग्रेस में इस विषय में दो रायें थीं। कुछ लोग मन्त्रिपद ग्रहण करने के पक्ष में थे और दूसरे इसका विरोध करते थे। उनका कहना था कि जो संस्था बृटिश सरकार से लड़ने के लिये बनाई गई है, और जो शुरू में उसका विरोध करती आ रही है, वह सरकार की मातहती में काम नहीं कर सकती। साथ ही उसे शासन-विधान की कमज़ोरियाँ दिखलाई पड़ रही थीं। उसका कहना था कि प्रान्तीय स्वराज एक निरा ढोंग है और काँग्रेस उसे चला कर कोई लाभ नहीं उठा सकती। परन्तु पक्षपाती दल इन तमाम दलीलों के बावजूद मन्त्रिपद ग्रहण करने के पक्ष में था। उसकी यह दलील थी कि यदि सरकार को चलाने की नीयत न थी तो चुनाव में हिस्सा लेने की क्या ज़रूरत थी। शासन को चलाकर उसे यह तजुरबा करना था कि कहाँ तक इसके अन्दर आज़ादी की दम है। यदि दूसरी पार्टियाँ धारा-सभा में बहुमत प्राप्त कर लेतीं और अपनी इच्छानुसार शासन को चलातीं, तो मुमकिन है प्रजा की आँख बहुत दिनों तक बन्द रक्खी जाती। सरकार को चलाने में एक और भी लाभ था। प्रान्तीय जनता के दिलों में यह भाव उत्पन्न करना था कि यदि राष्ट्रीय सरकार हो जाय तो वह विदेशी सरकार से किन मामलों में भिन्न हो सकती है। २७ महीने तक, अर्थात् जब तक काँग्रेस ने प्रान्तीय सरकार को चलाया, जनता के दिमाग़ से विदेशी राज का पर्दा हट गया था। चारों ओर प्रेम और सहानुभूति के भाव दिखलाई पड़ने लगे थे। जिन कामों को बृटिश सरकार अपने १५० वर्ष के जीवन में नहीं कर पाई थी, उसे काँग्रेस ने २ वर्षों में कर दिखाया। परन्तु शासन की कमज़ोरियों को वह कैसे दूर कर सकती थी।

मन्त्रिपद ग्रहण करने में एक और कठिनाई थी। संघ-शासन को काँग्रेस पहले ही इनकार कर चुकी थी। कड़े से कड़े शब्दों में उसने इसे बेकार और दोषपूर्ण ठहराया था। इतनी बुराई करने के बाद यदि वह उसी शासन को कार्यान्वित करती तो इससे बढ़कर शर्म की बात कोई दूसरी न थी। राजनीति उलट फेर का घर है। इसलिये इसे कूटनीति का दूसरा भाई कहा गया है। काँग्रेस की अक़्ल उस जगह पर आकर रुक जाती थी कि गवर्नर के विशेष अधिकारों के सामने वह कर ही क्या सकती है। इधर काँग्रेस का एक

वर्ग इस बात के लिये लालायित था कि कुछ समय तक प्रान्तीय शासन को चलाना चाहिये। पद का लोभ सबसे बड़ा होता है। अन्त में काँग्रेस ने एक राजनीतिक बहाना ढूँढ़ निकाला। चन्द शर्तों के साथ उसने मन्त्रिपद ग्रहण करना स्वीकार किया, परन्तु साथ ही उसने यह भी एलान किया कि वह शासन को चलाने नहीं बल्कि उसे तोड़ने जा रही है।* पक्षपात छोड़कर आज हम दावे के साथ यह कह सकते हैं कि काँग्रेस शासन को चलाने के लिये गई थी, तोड़ने के लिये नहीं। जो कुछ भी हो, वह इस बात पर कमर बाँध चुकी थी कि प्रान्तीय सरकार को चलाना चाहिये। १५ मार्च सन् १६३७ ई० को दिल्ली में काँग्रेस की वर्किंग कमीटी की बैठक हुई। महात्मा गाँधी के विचारों के अनुसार यह तै किया गया कि काँग्रेस प्रान्तीय सरकार को इस शर्त पर चलावे कि गवर्नर उसके कार्यों में अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग तब तक न करें जब तक मन्त्री अपनी सीमा के अन्दर कार्य करते रहें। अर्थात् गवर्नर इस बात का आश्वासन दें कि वे मन्त्रियों के कामों में अनायास हस्तक्षेप न करेंगे। वे अपने व्यक्तिगत अधिकारों को तभी काम में लावें जब कोई असाधारण परिस्थिति उत्पन्न हो जाय। इस आश्वासन से प्रान्तीय स्वराज की सीमा नहीं बढ़ी, परन्तु रुकावट की बहुत बड़ी शंका जाती रही।

संघ-शासन का प्रधान, गवर्नर-जनरल, काँग्रेस को असंतुष्ट नहीं करना चाहता था। उसने अपने एक व्याख्यान में यह ज़ाहिर किया कि नये शासन-विधान की रचना भारतीय प्रजा की भलाई के लिये की गई है। किसी के दिल में इस बात की शंका उत्पन्न नहीं होनी चाहिये कि कोई कर्मचारी मंत्रियों के कामों में दख़ल देगा। कारण यह है कि बृटिश सरकार अपनी सहयोग वाली नीति से अलग नहीं रह सकती।

जिन प्रान्तों में काँग्रेस का बहुमत था वहाँ के गवर्नरों ने काँग्रेस के नेताओं को निमन्त्रित किया। शासन की नीति के अनुसार वे इन्हें बुलाने के लिये बाध्य थे। नेताओं ने आश्वासन की माँग पेश की। इस प्रकार को सुलहनामा संसार के किसी भी देश में अब तक नहीं हुआ था। गवर्नरों को ऐसा करने का कोई अधिकार न था। अतएव अपना कर्त्तव्य समझकर उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया कि इस प्रकार का आश्वासन देने में वे सर्वथा असमर्थ हैं। संयुक्तप्रान्त के गवर्नर की ओर से एक घोषणा प्रकाशित

---

*We do not go to run the constitution but to wreck it.

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गवर्नरों को आदेश पत्रों (Instrument of Instructions) के अनुसार ऐसा करने का अधिकार दिया गया था, परन्तु प्रान्तीय स्वराज और प्रजातंत्रवाद की दृष्टि से यह कार्य सर्वथा निन्दनीय था। यदि गुड़िया-मन्त्रिमंडलों की स्थापना के बाद प्रान्तीय असेम्बली की बैठक बुला ली जाती तो सरकार का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता। काँग्रेस बहुमत से उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करती और मन्त्रियों को हटना पड़ता। परन्तु शासन-विधान के अनुसार गवर्नरों ने इसे रोकने का प्रयत्न किया। ६ महीने तक प्रान्तीय धारा सभाओं की बैठक नहीं बुलाई गई। इससे काँग्रेस को अविश्वास का प्रस्ताव पास करने का अवसर न मिल सका। ६ माह व्यतीत होने पर धारा-सभा को बुलाना ज़रूरी था, अन्यथा शासन-विधान फ़ेल कर जाता।

२६ मार्च सन् १६३७ ई० को लंदन में रेडियो पर भाषण देते हुये लार्ड लोथियन ने काँग्रेस को यह सलाह दी कि वह बिना किसी आश्वासन के मन्त्रिपद ग्रहण कर ले। इधर ८ अप्रैल सन् १६३७ को भारत-मन्त्री लार्ड ज़ेटलैंड ने लार्ड सभा में एक वक्तव्य देते हुये गुड़िया मन्त्रिमंडल की ख़ूब तारीफ़ की। १० अप्रैल सन् १६३७ को महात्मा गाँधी ने सुलह का एक रास्ता बृटिश सरकार के सामने रक्खा। उनका कहना था कि इस बात के लिये ३ न्यायाधीश नियुक्त कर दिये जायँ कि गवर्नर इस प्रकार का आश्वासन दे सकते हैं अथवा नहीं। पार्लियामेंट में एक वक्तव्य देते हुये बटलर ने इस सलाह को ठुकरा दिया। ६ मई सन् १६३७ ई० को लार्ड ज़ेटलैंड ने इस बात की घोषणा की कि नये शासन-विधान की मनशा प्रान्तीय शासन का सूत्र भारतीय मन्त्रियों के हाथों में देना है। इससे काँग्रेस को कुछ तसल्ली हुई और उसने यह स्वीकार किया कि यदि मन्त्रियों और गवर्नर में हद दर्जे का मतभेद उत्पन्न हो जाय तो गवर्नर उन्हें निकाल दें। महात्मा गाँधी ने भी यही माँग पेश की। २१ जून सन् १६३७ को वाइसराय का जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ उससे सुलह का रास्ता काफ़ी साफ़ हो गया। जुलाई के पहिले सप्ताह में काँग्रेस वर्किङ्ग कमीटी ने यह तै किया कि काँग्रेस अब मन्त्रिपद स्वीकार कर ले। इसके फल स्वरूप ६ प्रान्तों में काँग्रेस मन्त्रिमंडल की स्थापना हुई।

गुड़िया मन्त्रिमंडल बर्ख़ास्त कर दी गई। काँग्रेस शासन का कार्य चलाने लगी। रुकावट की पहली सीढ़ी किसी तरह समाप्त हुई। यद्यपि काँग्रेस की माँग पूरी नहीं हुई थी, फिर भी गवर्नर मन्त्रियों की कार्रवाइयों में जल्दी दख़ल नहीं दे सकते थे। इससे प्रान्तीय स्वराज की सीमा कुछ

और विस्तृत मालूम पड़ने लगी। कहा जाता है कि गवर्नरों के आश्वासन से कांग्रेस ने प्रान्तीय स्वराज के अर्थ को एकदम बदल दिया।* काँग्रेस और गवर्नर दोनों को एक दूसरे के प्रति अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई। शासन की बागडोर काँग्रेस के हाथ में आते ही हिन्दोस्तान का राजनीतिक वातावरण बदल गया। जो काँग्रेस आरम्भ से ही बृटिश सरकार का विरोध करती आ रही थी वही अब शासन को कार्यान्वित करने लगी। उसके लिये यह ज़रूरी था कि वह सभी सूबों में एक प्रकार की नीति को चलाती (विभिन्न प्रान्तों के मंत्रिमंडल मनमानी न करके उसके उद्देश्य को सामने रक्खें—इसकी देख-रेख के लिये सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, इन तीन आदमियों की एक कमीटी (The Parliamentory Sub-Committee) बना दी गई। शासन को चलाने में कांग्रेस ने अपने सामने ३ उद्देश्य रक्खा :—

१—शासन का ख़र्च घटाना और नौकरशाही की बेजा हरकतें दूर करना।

२—दीन-दुखियों को आर्थिक सहायता देना; हरिजनों और गिरी हुई जातियों को उठाना।

३—जनता को अधिक से अधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान करना और उसके दिमाग़ में स्वदेशी सरकार का नकशा खींचना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नये नये कार्य-क्रम बनाये गये। इनमें अधिक से अधिक रक़म लगाने के लिये काँग्रेसी मन्त्रियों ने अपना वेतन केवल ५०० रुपया मासिक निश्चित किया। हमें याद रखना चाहिये कि इसके पहिले मन्त्रियों को लगभग ५००० रुपया वेतन दिया जाता था। यदि काँग्रेस के मन्त्री चाहते तो इतना ही वेतन ले सकते थे, परन्तु आम जनता की भलाई का ध्यान रखते हुये उन्होंने केवल ५०० रुपया मासिक लेना स्वीकार किया। हिन्दोस्तान के सभी सूबों की समस्या एक है। सबके सामने एक ही प्रकार के प्रश्न उपस्थित थे। अर्थात् किसानों की उन्नति, बेकारी को दूर करना, घरेलू कारोबार की वृद्धि, साक्षरता का प्रचार, ग्रामसुधार, मद्य-निषेध, दलितोद्धार, स्वायत्त शासन का सुधार आदि विषयों की ओर सबका ध्यान

---

*Mahatma Gandhi changed the whole meaning of Provincial Autonomy.

आकर्षित था। परन्तु काँग्रेस सरकार जल्दी से जल्दी इन्हें आरम्भ करना चाहती थी।

काँग्रेस सरकारों ने राजनीतिक क़ैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव पास किया। कितने ही क़ैदी जेलों से बाहर निकाले गये। जो शेष रहे उन्हें भी धीरे धीरे छोड़ने की व्यवस्था की गई। ग्राम-उद्योग-संघ की स्थापना की गई। इससे गाँवों की उन्नति पर विचार किया जाने लगा। घरेलू कारोबार की वृद्धि की गई। तरह तरह के काम-धन्धों की खोज हुई। कितने ही बेकार आदमियों को काम दिया गया। हरिजनों की भलाई के लिये अलग स्कूल और कारख़ाने खोले गये। उनके लड़कों को सरकारी वजीफे दिये गये। कालेजों और विश्वविद्यालयों में उनकी फ़ीस माफ़ कर दी गई। किसानों की उन्नति के लिये हर ज़िले में बीज गोदाम खोले गये। उनकी खेती के लिये सरकार की ओर से अधिक से अधिक इमदाद दी जाने लगी। उनके लिये तरह तरह के क़ानून पास किये गये। लगान में कमी कर दी गई; कर्ज़ अदा करने का तरीक़ा बदल दिया गया और पिछले क़र्ज़ें माफ़ कर दिये गये। ज़मींदारों को हिदायत की गई कि वे रिआया पर किसी प्रकार का बेजा दबाव न डालें। हरी, बेगार, हथियावन आदि सब बन्द कर दिये गये। सरकारी अफ़सरों को चेतावनी दी गई कि वे दावत और डालियाँ न लें। सरकारी महकमों में घूसखोरी को रोकने का प्रयत्न किया गया। पुलीस की बेजा हरकतों को हर तरह से कम किया गया। शिक्षा-प्रचार के लिये तरह तरह की योजना काम में लाई गई। सतानों को साक्षर करने का विधान बनाया गया। गाँवों में स्कूल, रात्रि पाठशालायें, तथा लाइब्रेरियाँ खोली गईं। बेसिक शिक्षा का प्रचार, पुरानी शिक्षा-प्रणाली में सुधार तथा नशीली चीज़ों को दूर करने का प्रयत्न किया गया। मज़दूरों की उचित मज़दूरी का विधान बनाया गया। साम्प्रदायिकता का भाव कम किया गया। तात्पर्य यह है कि काँग्रेस सरकार ने जनता की भलाई के लिये कोई कसर बाक़ी न रक्खी। जहाँ तक उसकी शक्ति थी और जितनी अधिक रक़म वे इन कार्यों में खर्च कर सकते थे वहाँ तक करने का प्रयत्न किया। इतनी माथापच्ची करने पर भी जनता में असन्तोष की मात्रा कम न हुई। इसका कारण काँग्रेस की कमी नहीं है, बल्कि कुछ ऐसे कारण पहले से ही उपस्थित कर दिये गये थे जो जनता के दिमाग़ से नहीं निकल सकते थे।

काँग्रेस जनता की भलाई के लिये जितना कर सकती थी उससे कहीं अधिक किया। शासन-विधान के अन्दर जितनी गुंजाइश थी और उसके पास जितना रुपया था, सब भली भाँति प्रयोग में लाये गये। थोड़े समय

तक लोगों का विचार बदल गया था। जिन सरकारी कर्मचारियों को लोग काटू समझते थे, वे ही उन्हें झुककर सलाम करने लगे। जिन व्यक्तियों को जेल की हवा खानी पड़ी थी और जिनके ऊपर डंडों की चोट पड़ी थी, उन्हीं की आवाज़ पर प्रान्तीय सरकार का काम होने लगा। जिन दफ़्तरों में लोगों को जाने की आज्ञा मुश्किल से मिलती थी वे आम जनता के लिये खोल दिये गये। प्रान्तीय धारा-सभा की कार्रवाइयों का ब्यौरा सुनने के लिये धारा-सभा के बाहर कितने ही सूबों में लाउड स्पीकर लगा दिये गये। इक्केवान और मजदूर भी थोड़ी देर विश्राम करके "अपनी सरकार" की कार्रवाइयाँ सुन सकते थे। लोगों के मुँह से विदेशी सरकार की आवाज बन्द हो गई थी और 'अपनी सरकार' तथा 'हमारी सरकार' इस प्रकार के शब्द सुनाई पड़ने लगे थे। काँग्रेस आन्दोलन सरकार को भले ही खटके; परन्तु उसके नेताओं तथा कर्मचारियों से सलाह मशविरा लेना पड़ता था। इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं कि सरकारी ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को गवर्नर तथा मन्त्री चलाते थे, लेकिन कार्यरूप में यह बात नहीं थी। ऊपर से काँग्रेस इन सरकारों को चलाती रही। वर्किङ्ग कमीटी का फ़ैसला काँग्रेस मन्त्रियों को मानना पड़ता था। सरकारी ऐक्ट में काँग्रेस का नाम भले ही न हो परन्तु २७ महीने तक उसी की तूती बोलती रही। लोगों को यह विश्वास हुआ कि काँग्रेस कोई हुल्लड़बाज़ी की संस्था नहीं है, बल्कि इसके अन्दर शासन चलाने का पूरा माद्दा मौजूद है। मन्त्रियों ने जिस योग्यता का परिचय दिया उसकी प्रशंसा पार्लियामेंट तक में की गई। १६ अप्रैल सन् १६३८ ई० को पेशावर में भाषण देते हुये हिन्दोस्तान के वाइसराय ने यह कहा कि, "प्रान्तीय स्वराज का पहला वर्ष निहायत अच्छाई के साथ व्यतीत हुआ है। प्रान्तीय धारा-सभाओं ने अपनी योग्यता का आश्चर्यजनक परिचय दिया है।"*

इन सारी नेकनीयती के बावजूद काँग्रेस सरकार की टीका-टिप्पणी होती रही। इसकी वजह यह थी कि उसका एक दल सरकार चलाने के पक्ष में नहीं था। जगह जगह पर सभाओं तथा मीटिंगों में उसके मुँह से ये शब्द निकलते रहे कि काँग्रेस अपने आदर्श से नीचे गिर गई। पार्लियामेंट की मातहती में काम करना उनके लिये एक बहुत बड़ा अपमान था।

* The first year of Provincial Autonomy has worked well and that the provincial legislatures have shown imagination and responsibility in a high degree.

लेकिन जो दल शासन को चला रहा था उसने भी कुछ ऐसी ग़लतियाँ की थीं जिनका परिणाम उसी के लिये घातक सिद्ध हुआ। जिस समय असेम्बली के सदस्यों के चुनाव हो रहे थे उस समय काँग्रेस सदस्य अपनी पूरी ताक़त से विजय प्राप्त करना चाहते थे। कितने ही अनुचित तरीक़े काम में लाये गये। ग़लत बातों का प्रचार किया गया। नागरिकों को व्यर्थ के आश्वासन दिये गये। कुछ काँग्रेस उम्मीदवारों ने तो यहाँ तक कह डाला की चुनाव से एक वर्ष के अन्दर जनता को पूर्ण स्वराज प्राप्त हो जायगा। साथ ही उनकी सारी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। किसानों की सभी तकलीफ़ों को दूर करने का मानों काँग्रेस ने ठीका सा ले लिया था। उसे यह ख्याल न था कि शासन की मशीन कहाँ तक उन्हें इन वादों को पूरा करने का मौक़ा देगी। बड़ी बड़ी आशायें लेकर लोगों ने काँग्रेस को वोट दिया और चुपचाप उनकी पूर्ति की बाट जोहते रहे।

जब चुनाव समाप्त हो गया और काँग्रेस को शासन का भार चलाना पड़ा तो उन्हें मालुम हुआ कि उनकी प्रतिज्ञायें झूठी थीं। उनके हाथों में इतनी रक़म न थी कि मालगुज़ारी और लगान को वह एक दम माफ कर देती। कोई भी सरकार ऐसा नहीं कर सकती। थोड़े समय के अन्दर बेकारी और अशिक्षा दूर नहीं की जा सकती थी। शान्ति को स्थापना के लिये सरकार को सभी तरह के उपायों का आश्रय लेना पड़ा। जगह जगह पर गोलियाँ चलाई गईं और लोगों को सज़ायें दी गईं। लोग भौचक्के से रह गये। उन्हें यह उम्मीद थी कि उनका क़र्ज़ एक दम माफ़ कर दिया जायगा; साथ ही वे कुछ भी करें लेकिन काँग्रेस सरकार चुपचाप देखती रहेगी। ये दोनों बातें असम्भव थीं। न तो जनता को ऐसी उम्मीद करनी चाहिये थी और न काँग्रेस को इस प्रकार की आशायें दिलानी चाहिये थी। तात्पर्य यह है कि लोग काँग्रेस सरकार को स्वर्ग का फ़रिश्ता समझ बैठे थे। उनका अनुमान था कि सरकार की बागडोर हाथ में लेते ही वह सभी प्रकार की तकलीफ़ों को छू मन्तर से हटा देगी। कितनी ग़लत धारणा थी! लेकिन इसकी ज़िम्मेवारी स्वयं काँग्रेस पर है। उसने विजय प्राप्त करने के लिये प्रान्तीय स्वराज को स्वर्ग की सीढ़ी करार दिया था। यही वजह है कि काँग्रेस के साधारण उम्मीदवारों के सामने बड़े बड़े ज़मींदारों और राजनीतिज्ञों को मुँह की खानी पड़ी।

काँग्रेस सरकार के समय में लड़ाई-झगड़ों की एक हवा बह चली थी। इसका कारण यह नहीं था कि सरकार की नीति भयंकर थी, बल्कि स्वतन्त्रता

की भावना का यह एक जीता जागता नमूना था। अब तक लोग आशाहीन होकर सरकारी कर्मचारियों की धौंस को बर्दाश्त करते रहे। बेचारे किसान और मज़दूर निराश होकर ज़मीदारों और मिल मालिकों के सामने चूँ तक नहीं कर सकते थे। उनकी आवाज़ सरकारी दफ़्तरों तक नहीं पहुँच सकती थी। लेकिन काँग्रेस सरकार के आते ही उनके दिलों में आशा का संचार हुआ। वर्षों से सोई हुई भावना पुनः जाग्रत हो उठी। इसलिये यह स्वाभाविक था कि वे अपने अधिकारों की माँग पेश करते। बेजा हरकतों से लाभ उठाते रहने के कारण उनके विरोधी दल इस अपमान को नहीं सहन कर सकते थे। उन्हें यह ख़याल न था कि दलित जातियाँ भी किसी समय अधिकार और समानता की माँग पेश करेंगी। ऐसी दशा में यदि काँग्रेस को एक बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। विदेशी सरकार की धाक कुछ समय के लिये दूर हो गई थी। इसलिये वह किसी के अत्याचार को अब सहन नहीं कर सकती थी। रही बात हिन्दू और मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़ों की। दोनों सम्प्रदायों में बैर विरोध की भावना बढ़ने लगी। जगह जगह पर साम्प्रदायिक दंगे उठ खड़े हुये। इसके लिये भी काँग्रेस सरकारें ज़िम्मेवार नहीं ठहराई जा सकतीं। इसके मूल में अधिकारों और आशाओं की वही भावना छिपी हुई थी जो अन्य वर्गों में थी। मुसलिम लीग गलत बातों से काँग्रेस को दोषी ठहराना चाहती थी, परन्तु उसे इस बात का मौक़ा नहीं मिला। काँग्रेस सरकारों की नीयत शुरू से आख़ीर तक सचाई और ईमानदारी की रही।

प्रान्तीय स्वराज में अनेक अड़चनें उपस्थित हुईं। मध्यप्रान्त में डाक्टर खरे (Khare Episode) की चन्द ग़लतियों से काँग्रेस मन्त्रियों को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। यह प्रश्न इतना बढ़ा कि सारे हिन्दुस्तान में सनसनी सी फैल गई। ख़ैर किसी तरह मामला बाल बाल बच गया और काँग्रेस सरकारों को इस्तीफ़ा देने की नौबत न आई। इसी प्रकार राजनीतिक क़ैदियों को छोड़ने के विषय में गवर्नरों और मन्त्रियों में मतभेद उपस्थित हुआ। मालूम पड़ा कि अब काँग्रेस सरकारी ज़िम्मेवारी से हाथ खींच लेगी, परन्तु यह प्रश्न भी किसी तरह टल गया। अन्त में योरप की लड़ाई आरम्भ होते ही काँग्रेस सरकारों के सामने कुछ ऐसे मसले पेश हुये कि उन्हें विवश होकर त्यागपत्र देना पड़ा। प्रान्तों के गवर्नर अपने निजी अधिकारों द्वारा शासन को चलाते रहे। कुछ थोड़े से सलाहकार उनकी सहायता के लिये नियुक्त कर दिये गये। लड़ाई के बाद आज फिर काँग्रेस प्रान्तीय शासन को चला रही है। उसकी पिछली सब योजनायें काम में लाई जा रही हैं

१९३५ के संघ शासन-विधान में प्रान्तीय स्वराज की व्यवस्था तो की गई है परन्तु इसका महत्व दूसरी ओर से कम कर दिया गया है। गवर्नरों को इतने विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं कि उनके सामने मन्त्रियों के अधिकार सूर्य के सामने दीपक की तरह हैं। गवर्नर जब चाहें उनके कामों में हस्तक्षेप कर सकेंगे। यहाँ पर उनके विशेषाधिकारों की चर्चा विस्तृत रूप से नहीं की जा सकती।

प्रान्तीय स्वराज और गवर्नरों के विशेषाधिकार

पिछले अध्याय में इसका वर्णन किया गया है। ये अधिकार इतने अधिक हैं कि आवश्यकता पड़ने पर वह अकेले ही शासन को अपनी इच्छानुसार चला सकता है। यदि मन्त्री निकाल दिये जायँ और धारा सभायें बर्खास्त कर दी जायँ तो उसकी शकल किसी तानाशाह से कम न होगी।* उन्हें जो आदेश पत्र (Instrument of Instrucrions) दिये गये हैं उनकी सहायता से वे प्रान्तीय शासन को चलाने के लिये एक-मात्र जिम्मेवार हैं। मन्त्रियों की कार्य-कुशलता पर उतना विश्वास नहीं किया गया है जितना उसकी अकेली इच्छा पर। मन्त्री अपने कामों के लिये धारा-सभा के प्रति जिम्मेवार ज़रूर होंगे, परन्तु गवर्नर की ज़िम्मेवारी केन्द्रीय सरकार तथा पार्लियामेंट के प्रति होगी। जिस प्रान्त का प्रधान शासक अपने कार्यों के लिये धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार नहीं है वह स्वराज प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकता। जब तक जनता की आवाज का शासन में मूल्य नहीं है तब तक एक जिम्मेवार सरकार की स्थापना नहीं हो सकती। मौजूदा प्रान्तीय स्वराज शर्तों और रुकावटों से घिरा हुआ है। शासन-विधान को देखते हुए प्रजा के अधिकार नहीं के बराबर है। जब कभी प्रान्तीय सरकारें किसी बड़ी योजना को कार्यान्वित करना चाहेंगी तो उनके हाथ पैर बाँध दिये जा सकते हैं। के० टी० शाह लिखते हैं "शासन की महत्वपूर्ण बातें भारतीय मन्त्रियों के हाथों से छीन ली गई हैं।"†

---

*While his new ministers lack knowledge of the working of the administrative machine, or even of general policy, he, the Governor, will have marvellous opportunities to be a defect as well as dejure head of the executive government of his province.

‡(a) Substantially the most important part of the executive work is removed from the sphere of the Governor's constitutional advisers.

प्रान्तीय सरकार की मातहती में काम करने वाले अफ़सर मन्त्रियों के अधिकार से बाहर रक्खे गये हैं। यदि मन्त्री किसी अफ़सर के विरुद्ध कोई कार्रवाई करें तो वह गवर्नर के पास इसकी फ़रियाद कर सकता है। ऐसी नाज़ुक परिस्थिति में मन्त्री अपने ही आधीन कर्मचारियों को इस बात के लिये प्रेरित नहीं कर सकते कि वे अमुक तरीके पर काम करें। प्रान्तीय विभाग की बड़ी-बड़ी नौकरियाँ केन्द्रीय सरकार की मुट्ठी में रक्खी गई हैं। ख़र्च के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों को पूरी आज़ादी हासिल नहीं है। यहाँ तक कि सामाजिक सुधारों तक में गवर्नर दखल दे सकता है। मन्त्रियों की सलाहें वह जब चाहे ठुकरा सकता है। किसी भी दृष्टि से प्रान्तीय स्वराज की योजना पूर्ण नहीं है।

चीफ़ कमिश्नरों के सूबे और प्रान्तीय स्वराज

ऊपर कहा गया है कि बृटिश भारत दो प्रकार के सूबों में विभाजित किया गया है। गवर्नर के सूबों की संख्या ११ है और बाक़ी ६ चीफ़ कमिश्नर के सूबे कहलाते हैं। बृटिश बिलोचिस्तान, दिल्ली, अजमेर मेरवाड़ा, कुर्ग, अंडमन, नीकोबार और पंथ पिपलौदा चीफ़ कमिश्नर के सूबे कहलाते हैं। और इनका प्रधान चीफ़ कमिश्नर कहलाता है। वह सीधे गवर्नर-जनरल के प्रति ज़िम्मेवार है। प्रत्येक प्रान्त में एक चीफ़ कमिश्नर रहता है जो अपनी इच्छानुसार शासन करता है। शासन सम्बन्धी सलाहें उसे गवर्नर-जनरल से लेनी पड़ती हैं। कुर्ग को छोड़कर अन्य चीफ़ कमिश्नरों के सूबों में कोई धारा-सभा नहीं बनाई गई है। सारी ज़िम्मेवारी चीफ़ कमिश्नर को दी गई है। इन सूबों में प्रान्तीय स्वराज की कोई चर्चा ही नहीं है। संघ-कार्यकारिणी तथा संघ धारा-सभा द्वारा जितनी आज्ञायें प्राप्त होंगी वे सब चीफ़ कमिश्नरों के सूबों में लागू की जायंगी। केवल बृटिश बिलोचिस्तान में गवर्नर-जनरल की निजी आज्ञा के बिना वे लागू न हो सकेंगी। दिल्ली और अजमेर मेरवाड़ा को केन्द्रीय धारा-सभा में प्रतिनिधित्व दिया गया। कुर्ग की लेजिस्लेटिव कौंसिल को अधिकार दिया गया है कि वह केन्द्रीय धारा-सभाओं में दो सदस्य चुन कर

(b) The Governor continues to be the main spring of action and the real motor force in driving the machinery of provincial government.

(c) The Government of the province will literally be the government by the Governor.

भेज सके। अंडमन और नीकोबार को एक भी प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं है।

चीफ़ कमिश्नरों के सूबों को किसी प्रकार की राजनीतिक स्वतन्त्रता नहीं दी गई है। हिन्दोस्तान पहले से ही दो भागों में विभाजित किया गया है। बृटिश भारत और देशी रियासतों में जो राजनीतिक भेदभाव किया गया है उसके दुष्परिणाम हमारी नजरों के सामने मौजूद हैं। रियासतों में ज़िम्मेवार शासन का नाम भी नहीं है। वहाँ की प्रजा राजनीतिक अधिकार को नहीं जानती। बृटिश सरकार उनके मामलों में दखल देने से इसलिये इनकार करती है कि उसके सुलहनामों में फरक पड़ेगा। बृटिश सूबों को तो उसने थोड़ी बहुत आज़ादी दी है, लेकिन रियासतों के मामलों में हाथ डालकर वह अपनी शर्तों को भंग करना नहीं चाहती। देशी रियासतों की बात तो छोड़ दीजिये, स्वयं बृटिश प्रान्तों को सरकार ने दो श्रेणियों में बाँट रक्खा है। गवर्नरों के सूबों में जनता को कुछ अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन चीफ़ कमिश्नरों के सूबे अभी तक केन्द्रीय सरकार की मर्ज़ी पर चलाये जाते हैं। उनमें रहने वाले निवासी राजनीतिक स्वतंत्रता के उतने ही प्यासे हैं जितने गवर्नरों के सूबों में। उनकी संख्या भले ही कम हो, परन्तु उनकी आज़ादी की भावना को कुचला नहीं जा सकता।

पिछड़े हुए भाग और प्रान्तीय स्वराज

इसी तरह हिन्दोस्तान के कुछ हिस्से 'पिछड़े हुए' (Backward areas) क़रार दिये गये हैं। ये हिस्से मदरास, बंगाल, पंजाब, आसाम, पश्चिमोत्तर प्रदेश, संयुक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त व बरार, तथा उड़ीसा प्रान्तों में पाये जाते हैं। इनका शासन प्रबन्ध गवर्नर अपने अधिकारों द्वारा करते हैं। इन विभागों में निवास करने वाली जनता को कोई राजनीतिक अधिकार नहीं है। यद्यपि ये भाग किसी न किसी प्रान्तीय सरकार की मातहती में रक्खे गये हैं, फिर भी प्रान्तीय मंत्रि-मंडल इनके कामों में हाथ नहीं डाल सकते। इनमें रहने वाले व्यक्तियों को आज़ादी का लेश मात्र भी नहीं दिया गया है। यदि इन विभागों के निवासी अनपढ़ और असभ्य हैं तो बृटिश सरकार अपने १५० वर्ष के जीवन में इन्हें सभ्य बना सकती थी। इनकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की ज़िम्मेवारी बृटिश सरकार के ऊपर है।

परिशिष्ट

यदि कोई विदेशी इस देश का भ्रमण करे और उसे यह मालूम न हो कि सभी सूबे बृटिश सरकार के अधिकार में हैं तो उसे यह सन्देह होगा कि बृटिश भारत में दो विदेशी सरकारें

का राज्य है। एक का अधिकार गवर्नर के सूबों पर है और दूसरी का चीफ़ कमिश्नर के सूबों पर। यह दलील बहुत ही नाज़ुक है कि अन्य प्रान्तों की सहानुभूति उनके साथ है। हमारी सहानुभूति, इटली, इंगलैंड, अबीसीनियाँ, स्पेन आदि सभी देशों से है। जब तक वे हमारी बराबरी में खड़े नहीं होते तब तक उन्हें हम अपना भाई नहीं समझ सकते। प्रान्तीय स्वराज को चलाकर इस बात की काफ़ी परीक्षा कर ली गई कि इससे हिन्दोस्तान अपने मन्ज़िले मक़सूद पर नहीं पहुँच सकता। प्रान्तीय सरकारों तथा लोकमत की परवाह न कर इस देश को विश्वव्यापी युद्ध में शामिल कर देना प्रान्तीय स्वराज्य के सर्वथा प्रतिकूल था। इन बातों को भुलाकर भावी शासन-विधान की आशा से कांग्रेस फिर शासन को चलाने लगी है। विधान सम्मेलन की सफलता पर सब की दृष्टि लगी हुई है।

चौथा खंड

स्वायत्त-शासन

(LOCAL SELF-GOVERNMENT)

अध्याय २५

प्रान्तीय विभाग

(Provincial Division)

प्रान्तों का विभाजन

प्रत्येक प्रान्त कमिश्नरियों में बाँटा गया है। शासन की सुविधा के लिये इसका विभाजन नितान्त आवश्यक है। भारतीय सूबे इतने बड़े हैं कि इनका शासन-प्रबन्ध इन्हें एक इकाई मान कर नहीं किया जा सकता। कुछ प्रान्त तो यूरोप के कितने ही देशों से कई गुने बड़े हैं। बंगाल का क्षेत्रफल फ्रान्स के बराबर है। प्रत्येक का क्षेत्रफल लगभग २००००० वर्ग मील है। मद्रास का क्षेत्रफल ग्रेट बृटेन तथा आयरलैंड से $\frac{१}{६}$ गुना बड़ा है। दोनों १४०००० वर्ग मील में फैले हुये हैं। पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध का क्षेत्रफल फ्रान्स से आधा है। पंजाब की जनसंख्या जर्मनी तथा बम्बई और सिन्ध प्रान्त की स्पेन के बराबर है। प्रत्येक प्रान्त लगभग ८ या ६ कमिश्नरियों में और कमिश्नरियाँ ज़िलों में विभाजित की गई हैं।

हिन्दोस्तान में कुल २६६ ज़िले हैं। इनका क्षेत्रफल तथा जनसंख्या अलग अलग है। कुछ ज़िले बहुत ही बड़े और कुछ बहुत छोटे हैं। बंगाल प्रान्त के मैमनसिंह ज़िले में स्विटज़रलैंड से अधिक आदमी रहते हैं। विजगापट्टम ज़िले का क्षेत्रफल और आबादी डेन्मार्क से अधिक है। संयुक्त प्रान्त के कुछ ज़िले न्यूज़ीलैंड से बड़े हैं। तिरहुत कमिश्नरी की जनसंख्या कनाडा से अधिक है। हिन्दोस्तान में सबसे बड़ा ज़िला विजगापट्टम है। इसका क्षेत्रफल १७१६८ वर्गमील है। दूसरा नम्बर थारपारकर (बम्बई) ज़िले का है। सम्पूर्ण ज़िलों का औसत क्षेत्रफल ४०७५ वर्गमील और औसत जन-संख्या १०००००० है। बहुत कम ज़िले ऐसे हैं जिनका क्षेत्रफल १५०० वर्गमील से कम है। शायद किसी ज़िले की आबादी ५०००००० से कम है। इन ज़िलों की जलवायु तथा पैदावार एक सी नहीं है। एक ज़िले में कुछ भाग उपजाऊ और कुछ ऊसर हैं। हर ज़िले में शहर और देहात की बोलचाल में फरक मिलेगा। आर्थिक दृष्टि से कुछ ज़िले सम्पन्न और कुछ ग़रीब हैं। कुछ ज़िले इतने घने बसे हैं कि हर व्यक्ति को २ एकड़ तक भूमि खेती के लिये नहीं मिलती।

कलेक्टर या ज़िलाधीस

ज़िले का प्रधान ज़िलाधीश कहलाता है। कुछ प्रान्तों में यह कलक्टर और कुछ में डिप्टी कमिश्नर कहलाता है। अपने ज़िले में वह बृटिश सरकार का प्रतिनिधि है। आम तौर से वह इन्डियन सिविल सरविस के सदस्य का एक सदस्य होता है। प्रान्तीय सिविल सरविस के सदस्य भी इस पद पर नियुक्त किये जाते हैं। वेतन की दृष्टि से कलेक्टर का स्थान अपने ज़िले में सबसे बड़ा नहीं है, परन्तु अधिकार की दृष्टि से इससे बढ़ कर कोई दूसरा पदाधिकारी नहीं होता। इसे दोहरे अधिकार प्राप्त हैं। कलक्टर की हैसियत से उसे अपने ज़िले में मालगुज़ारी वसूल करने का अधिकार दिया गया है, परन्तु वह भूमिकर को घटा-बढ़ा नहीं सकता। भूचाल, अकाल, महामारी आदि विपत्तियों के समय मालगुज़ारी घटाने की सिफ़ारिस वह प्रान्तीय सरकार से कर सकता है। मजिस्ट्रेट के नाते वह ज़िले की छोटी कचहरियों का निरीक्षक होता है। पुलीस के कामों की देख-रेख तथा उन्हें सलाह आदि देने का उसे पूरा अधिकार प्राप्त है। अपने ज़िले की सम्पूर्ण भूमि से वह परिचित होता है। मालगुज़ारी वसूल करते समय उसे छोटे-बड़े सभी लोगों से मिलने का अवसर मिलता है। ज़िले में शान्ति रखने की एकमात्र ज़िम्मेवारी इसी पर है। इसीलिये साल के कई महीने वह अपने ज़िले का दौड़ा करता है। इस दौड़ान में वह ज़िले की हर तहसील में

लोगों से मिलता है, उनकी हालतें पूछता है और वहाँ से सब प्रकार की जानकारी हासिल करता है।

ज़िले में शासन के लिये कई विभाग बनाये गये हैं। उनका सम्बन्ध प्रान्तीय सरकार से है। पुलीस, आबपाशी, सड़कें तथा इमारतें, खेती, व्यवसाय, अस्पताल, तथा फैक्टरी आदि विभिन्न पदाधिकारियों की मातहती में रक्खी गई है, लेकिन इसके प्रधान कलेक्टर की राय से अपना कार्य करते हैं। अपने अपने कार्यों की सूचना ये उसे देते रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो वह इतनी बड़ी ज़िम्मेवारी को नहीं निबाह सकता। प्रत्येक विभाग का प्रधान अपने कार्यों के लिये स्वतंत्र होते हुये भी अपने आपको कलेक्टर से नीचे समझता है। कलेक्टर की मातहती में काम करने वाले पदाधिकारी सीधे जनता के सम्पर्क में रहते हैं। इनकी देख-रेख के लिये उसे बहुत ही सचेत रहना पड़ता है। कुछ तो इनके कार्यों की देख-रेख के लिये और कुछ अपने ज़िले का अध्ययन करने के लिये वह एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमता रहता है। यद्यपि उसका निश्चित निवास-स्थान शहर में होता है, फिर भी वह ग्रामीण बातों से अनभिज्ञ नहीं रहता। साल के ६ महीने उसे इन्हीं देहातों में बिताने पड़ते हैं। ज़िले के रस्म-रवाज वहाँ की बोली, उसकी आर्थिक परिस्थिति तथा लोगों की सभ्यता—इन सब से वह भली भाँति परिचित होता है। पालांडे के कथनानुसार वह प्रान्तीय सरकार रूपी शरीर का विभिन्न अंग है।*

कलेक्टर का रुतबा अपने ज़िले में इतना बड़ा होता है कि साधारण लोग इसे सरकार के नाम से सूचित करते हैं। उनका यह ख़याल है कि वही इनका एक मात्र शासन करता है। किसी तरह की सहायता या छूट की आवश्यकता पड़ती है तो वे इसी का आश्रय लेते हैं। किसी ज़िले में सरकार छूट अथवा सहायता वहाँ के कलेक्टर की बिना सिफ़ारिस के नहीं दे सकती। किसानों की मालगुज़ारी में कठिन से कठिन परिस्थिति में तब तक कोई छूट नहीं दी जा सकती जब तक वह इसकी सिफ़ारिस न करे। विभागों की वृद्धि के कारण तथा आवागमन की सुविधा होने से उसके कर्त्तव्य आजकल और भी बढ़ गये हैं। काग़ज़ी कार्रवाइयाँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उसे बाहर जाने का मौक़ा बड़ी कठिनाई से मिलता है। इससे उसके अधिकारों पर कुछ

* He is the eyes, the ears, the mouth and the hand of the Provincial Government within his district and serves as its general representative.

आघात पहुँचा है। कहा जाता है कि कलेक्टर के अच्छे दिन अब चले गये।* लेकिन अब भी वह अपने जिले का सम्राट् है। अधिकारों से बढ़कर उसका प्रभाव अपने जिले पर कहीं अधिक पड़ता है। ज़िले का बड़ा से बड़ा ज़मींदार अथवा सेठ-साहूकार उसकी आज्ञा नहीं टाल सकता। यदि कलेक्टर का व्यक्तित्व बड़ा है और वह अपने चरित्र तथा आन्तरिक गुणों से पूर्ण है तो अपने ज़िले में किसी देवता से कम नहीं माना जाता। कुछ कलेक्टर के नाम जनता में इतने अधिक प्रसिद्ध हैं कि लोग उनकी अनुपस्थिति को अभी तक महसूस करते हैं। गाँव में अभी तक यह कहावत प्रचलित है कि 'क्या तुम कलेक्टर हो?' इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जनता के लिये कलेक्टर से बढ़कर कोई दूसरा पदाधिकारी नहीं जान पड़ता।

सरकारी विभाग में यही एक ऐसा पदाधिकारी है जिसे जनता और बड़े अफ़सर दोनों के सम्पर्क में आने का अवसर मिलता है। अपने जिले की असलियत से यह भली भाँति परिचित रहता है। जिले की उन्नति के लिये इसे सब कुछ करने का अधिकार है। यदि यह शासक अद्वितीय योग्यता का हुआ तो अपने जिले की अद्भुत उन्नति कर सकता है। आजमगढ़ जिले में एन० सी मेहता का नाम तब तक अमर रहेगा जब तक मेहता पुस्तकालय की एक एक ईंट बाकी रहेगी। इससे भी बढ़कर उनकी प्रखर बुद्धि से जो लाभ वहाँ के किसानों को पहुँचा वह सर्वदा स्मरणीय है। कुछ अंगरेज़ कलेक्टरों ने भी इसी प्रकार की अमर कीर्ति से अपने जिलों को लाभ पहुँचाया है। उसके क्षेत्र बहुमुखी हैं। अपने जिले में भूमि विभाजन, क़र्ज़ किसानों की छूट, झगड़े का निपटारा, अकाल पीड़ितों की सेवा, इत्यादि इत्यादि कार्य उसे करने पड़ते हैं। ग्रामीण जीवन में उसका व्यक्तित्व सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है।† पुलीस, जेल, म्युनिसिपलटीज़, सड़कें, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई, दवा, टैक्स, इत्यादि इत्यादि कार्यों की देख-रेख उसे करनी पड़ती है। इन कार्यों को देखते हुये उसे कई प्रकार की जानकारी रखनी होती।‡ केवल किताबी ज्ञान से काम नहीं चल सकता। एक ओर

---

* The golden days of the civil service, when the Collector of a district was the monarch of all he surveyed are definitely gone.

† The Collector is a strongly individualised worker in every department of rural economy.

‡ He should be a lawyer, an accountant, a financier,

उसे लोगों की जानमाल की रक्षा के लिये शान्ति की व्यवस्था करनी पड़ती है, और दूसरी ओर व्यापार, शासन, न्याय तथा धनधान्य की वृद्धि का उपाय सोचना पड़ता है।

१९१९ ई० तक कलेक्टर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सभापति होता था। परन्तु अब ऐसा नहीं होता। स्वायत्त शासन (Local Self-Government) की स्थापना के बाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अधिकार जनता को दे दिया गया। इससे कलेक्टर को बहुत-सी छोटी-छोटी बातों से अवकाश मिल गया। अब उसे इन कार्यों की ओर एक साधारण नजर रखनी पड़ती है। जब कभी प्रान्तीय सरकार डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्युनिसिपल बोर्ड के कार्यों से असंतुष्ट होती है तो इनका भार कलेक्टर को सुपुर्द कर दिया जाता है। इन बोर्डों की मीटिंगों में वह जब चाहे बैठ सकता है। इसके लिये उसे किसी की आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह उनके कार्यों से असंतुष्ट है और उसकी समझ में इनकी कारवाइयों से जिले की शान्ति तथा उन्नति में बाधा पड़ती है, तो वह इसकी सूचना प्रान्तीय सरकार को दे सकता है। यदि कलेक्टर का कार्य अपने जिले में अत्यन्त सराहनीय है और उसे शासन के अनेक अनुभव प्राप्त हैं, तो वह कमिश्नर अथवा गवर्नर का पद प्राप्त कर सकता है।

ज़िले का कलेक्टर अपने हद में किसी बादशाह से कम नहीं है। उसकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान का जिसने अध्ययन किया है वह इसे अच्छी तरह समझ सकता है। यदि उसकी योग्यता अद्वितीय हुई तो वह अपने ज़िले की हालत में काफ़ी सुधार कर सकता है। उसके सरकारी अधिकार भले ही सीमित हों; परन्तु ज़िले की जनता उसके साथ रहती है। बड़े बड़े धनीमानी लोग उसकी मुट्ठी में होते हैं। किसानों की हालत वह भली-भाँति अध्ययन कर उसमें काफ़ी उन्नति कर सकता है। छोटे छोटे ग्राम-व्यवसाय को वह उन्नति दिला सकता है। अपने रचनात्मक विचारों को कार्यान्वित करने के लिये वह सामग्री एकत्र कर सकता है। लेकिन साथ ही यदि वह आराम-तलब हुआ, और रात दिन अपने बंगले में पड़ा रहा, तो उसके विचारों से ज़िले को कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे अत्यन्त परिश्रमी और दृढ़ विचार वाला होना पड़ता है। काग़ज़ी कारवाइयाँ

---

a ready writer of state-papers. He ought also to possess no mean knowledge of agriculture, political economy and engineering.

उतनी महत्व-पूर्ण नहीं हैं जितनी बाहरी देख-रेख। उसे हर समय इस बात पर नज़र रखनी पड़ती है कि ज़िले में कोई खास दलबन्दी अथवा बैर-भाव तो नहीं पैदा हो रहे हैं। विशेष कर वर्तमान राष्ट्रीय-उत्थान के युग में उसे और भी सचेत रहना पड़ता है। एक ओर तो उसे जनता की सेवा का ध्यान होता है और दूसरी ओर अपने बड़े अफ़सरों के हुकुम तामील करनी पड़ती है। उसे हर प्रकार के लोगों से मिलने का अवसर पड़ता है। सबके मानसिक अध्ययन की छाप उसके मस्तिष्क पर गहरी पड़ती है।

राजनीतिक संगठन की मशीन उसके हाथ से बाहर है। ज़िले की सीमा में वह कमी-बेशी नहीं कर सकता। शासन-प्रबन्ध के ढाँचे को बदलने का उसे अधिकार नहीं है। फिर भी अपने प्रभाव से वह जिले में बहुत कुछ कर सकता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड के ऊपर उसके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ता है। इन दोनों के सहयोग से ज़िले की शिक्षा, सफ़ाई, सड़कें तथा शान्ति में विशेष रूप से वृद्धि की जा सकती है। ज़िले के सभी सरकारी कर्मचारियों पर अधिकार होने से वह जिस प्रकार की व्यवस्था चाहे कर सकता है। इंजीनियर, डाक्टर, पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट खजानची इत्यादि सब उसकी सलाह से काम करते हैं। यदि वह किसी वस्तु में खास रुचि रखता है तो उसके प्रचार के लिये वह बहुत कुछ कर सकता है। अगर उसके दिमाग़ में कोई लाभदायक योजना आवे तो बड़ी आसानी से वह काम में लाई जा सकती है।

कलेक्टर के न्याय सम्बन्धी अधिकार

अपने जिले में प्रधान कार्यकारिणी के अतिरिक्त उसे न्याय विभाग का भी कुछ कार्य करना पड़ता है। वह पहिले दर्जे का मजिस्ट्रेट कहलाता है। जिले में जितने मजिस्ट्रेट हैं वे सब इसकी मातहती में कार्य करते हैं। मजिस्ट्रेट की हैसियत से उसे यह अधिकार है कि किसी अपराधी को दो वर्ष जेल और १००० रुपया जुर्माना कर सके। ऐसा इसलिये किया गया है कि अपनी सीमा के अन्दर वह पूर्ण शान्ति रख सके। यदि लोगों को इसका भय न हो, तो कोई इससे प्रभावित नहीं हो सकता। ज़िले की सारी पुलीस इसके अधिकार में है। वह जिसे चाहे गिरफ़्तार कर उस पर कोई अभियोग लगाकर मुक़दमें चला सकता है। पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट उसे इस बात की सूचना देता रहता है कि ज़िले में शान्ति की क्या व्यवस्था है, या अपराधियों की मात्रा कितनी है। थानों की मदद से गाँव गाँव की रिपोर्ट उसे हर समय मिलती रहती है।

यदि पुलीस किसी व्यक्ति को गुनाहगार ठहराये तो कलेक्टर तुरन्त उस पर मुक़दमा चलाकर बड़ी आसानी से उसे जेल में डाल सकता है। ऊपर कहा गया है कि कलेक्टर की हैसियत से उसका काम सारे ज़िले की मालगुज़ारी वसूल करना है। लेकिन इसके अलावे उसे प्रान्तीय सरकार को भूमि तथा खेती सम्बन्धी और भी सलाहें समय समय पर देनी पड़ती हैं। किसानों की समस्या बृटिश भारत की समस्याओं की ⅞ है। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि हिन्दोस्तान की बेहतरी में कलेक्टर का कितना हाथ है। किसानों और ज़मीदारों के बीच में जितने झगड़े पैदा होते हैं उनका निपटारा यही करता है।

पुलीस और जेल दोनों उसके हाथ में रक्खे गये हैं। उसके न्याय सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा अन्य न्यायाधीशों से अधिक हो सकती है। गाँवों के लोग पुलीस को सरकार का दाहिना हाथ समझते हैं। लाल पगड़ी उनके लिये काल के समान है। राष्ट्रीय भावना के कारण यह भय बहुत कुछ कम हो चला है, लेकिन फिर भी इस विभाग की सख़्तियों से हर आदमी डरता रहता है। जहाँ तक जेल की बात है, राजनीतिक क़ैदियों को छोड़कर बाक़ी सभी लोग इसे नरक समझते हैं। कोई व्यक्ति ऐसा न होगा जो ख़ुशी ख़ुशी जेल का जीवन पसन्द करे। अपराध करने पर भी लोग जेलों में जाने से डरते हैं। कलेक्टर इन दोनों कुंजियों को अपने हाथ में रखता है। किसी की हिम्मत नहीं है जो उसकी आज्ञाओं का उलंघन करे।

कलेक्टर को न्याय सम्बन्धी अधिकार पहले पहल लार्ड कार्नवालिस के समय में दिये गये। उसने पहले इसे बंगाल प्रान्त में आरम्भ किया और फिर बाद में इसकी नक़ल और सूबों में की गई। न्यायाधीश और कलेक्टर के पद एक में ज़ोड़ दिये गये। कलेक्टर का पद वारेन हेस्टिंग्ज़ के समय से आरम्भ किया गया है। जब कम्पनी ने बंगाल की दीवानी अपने हाथ में ली तो उसे इस पद की आवश्यकता महसूस हुई। बहुत दिनों तक मजिस्ट्रेट और कलेक्टर के स्थान एक दूसरे से भिन्न थे। कलेक्टर को आरम्भ में कोई मुक़दमा फ़ैसल करने का अधिकार न था। अपने जिले में उसका पद मजिस्ट्रेट से बड़ा होता था। उसकी तनख्वाह भी अधिक थी। मजिस्ट्रेट तरक़्क़ी करके कलेक्टर हो जाया करते थे। मजिस्ट्रेट को उतना अनुभव नहीं होता था जितना कलेक्टर को। इससे काम में असुविधा होती थी। इस कमी को दूर करने के लिये दोनों का पद एक में शामिल कर दिया गया। तब से बराबर ये दोनों पद एक के हाथों में चले आ रहे हैं। कहा जाता है

कार्य रूप में वह मुक़द्में फ़ैसल करने का काम कम करता है, उसका कार्य अन्य मजिस्ट्रेटों की कारवाइयों की देखभाल करना है। सारांश यह है कि कलेक्टर स्वयं किसी सरकार से कम नहीं है।*

ज़िले में सरकारी ख़ज़ाने पर उसका अधिकार होता है। भूमिकर सम्बन्धी रुपये-पैसे की अपील उसके पास की जाती है। यद्यपि उसे अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट का अधिकार दिया गया है, परन्तु उसकी इजलास में बहुत कम नये मुक़द्में पेश किये जाते हैं। कारण यह है कि उसके पास इतने अधिक काम हैं कि वह दफ़्तर में बैठकर उन्हें पूरा नहीं कर सकता। अकसर अपने ज़िले में उसे इधर उधर जाने की आवश्यकतायें पड़ती हैं। उसके इजलास में अपील के मुक़द्में अधिक आते हैं। तहसीलदारों तथा अन्य मजिस्ट्रेटों के फ़ैसलों की अपील इसके यहाँ की जाती है।

कलेक्टर की अन्य ज़िम्मेवारियाँ

कलेक्टर की ज़िम्मेवारियों की कोई सूची नहीं बनाई जा सकती। ज़िले की मालगुज़ारी और न्याय के अतिरिक्त उसे और भी काम करने पड़ते हैं। चीज़ों का भाव उसे समझना पड़ता है और इसी हिसाब से वह खेती की आमदनी का अनुमान करता है। प्रान्तीय सरकार को अच्छे और बुरे मौसमों की उसे सूचना देनी पड़ती है। खेती के लिये किसानों को वह क़र्ज़ देता है। अपने जिले की एक एक बात उसे प्रान्तीय सरकार को बतानी पड़ती है।† किसी किसी ज़िले में उसे छोटी छोटी रियासतों का भी प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि किसी ताल्लुकेदार की हैसियत नाबालिग़ के हाथ में है तो कलेक्टर को उसे सँभालना पड़ता है। बड़े बड़े विशेषज्ञ अपनी जानकारी को पुष्ट करने के लिये उससे सलाहें लेते हैं। जिले में अनेक सभायें तथा संगठन बनते रहते हैं। वह इनकी कारवाइयों में शरीक हो सकता है। फिर भी किसी न किसी प्रकार से इनके कामों की ओर उसे नज़र

---

* In short, the Collector-Magistrate is the eye and ear of the Provincial Government and to the people, who have to look up to him in everything, he is Government itself.

† He must keep the Government informed of the condition of his district, and of all notable occurrences therein, from meetings of the Indian National Congress to cattle fairs.

रखनी पड़ती है। उसे यह अधिकार है कि वह किसी भी सभा-सोसाइटी में हिस्से ले सके। कोई संगठन उसे निमंत्रित भले ही न करे, परन्तु वह अपने अधिकार से उसकी पूरी जानकरी हासिल कर सकता है। जब कोई विशेष व्यक्ति किसी ज़िले में पदार्पण करता है तो उसकी सूचना सबसे पहले कलेक्टर को दी जाती है। उसका स्वागत करने का अधिकार उसे पूरा पूरा दिया गया है। यदि वह ख़ाली नहीं है तो अपनी इच्छा से इस कार्य को किसी और को सुपुर्द कर सकता है। ज़िले में जो कुछ भी आपत्तियाँ आयें उन सबको उसे निवारण करना पड़ता है। रोम-निवासियों की एक कहावत के अनुसार सरकार की सारी ज़िम्मेवारी उसके ऊपर रक्खी गई है।* वह कामों को भले ही कुछ सहायकों में विभाजित कर दे, परन्तु अपनी ज़िम्मेवारी को वह नहीं बाँट सकता।

रजिस्ट्रार की हैसियत से कलेक्टर को शादी के लिये बुलाया जा सकता है। कोई स्त्री या पुरुष विवाह करने पर राज़ी हैं तो वे उसके बंगले पर जाकर अपनी इच्छा प्रकट कर सकते हैं। एक ओर उसे फ़ौजी पोशाक में चोर और डाकुओं का पीछा करना पड़ता है, लड़ाई और दंगों को शान्त करना पड़ता है, और दूसरी ओर किसानों की बेहतरी सोचनी पड़ती है, ज़िले के सभी समुदायों की भलाई का ध्यान रखना पड़ता है, अकाल और महामारी में उन्हें सहायता पहुँचानी पड़ती है तथा शान्त और गम्भीर भाव से बड़े से बड़े लोगों की ख़ुशी में शरीक होना पड़ता है। हर अदना आला से उसे तरह तरह की बातें दरियाफ्त करनी पड़ती है।

प्रात:काल वह लोगों से मिलने जुलने में अपना समय व्यतीय करता है। यदि अवसर मिला तो कुछ बाहरी जाँच पड़ताल भी करता है। रोज़ वह कचहरी जाता है, लेकिन न्याय विभाग के अन्य कर्मचारियों की तरह वह १० से ४ तक वहाँ नहीं बैठ सकता। अधिक से अधिक ३ या ४ घंटे वह कचहरी में मुक़दमों की कार्रवाई सुनता है। कचहरी के बाद वह डाक पर नज़र डालता है। जितनी चिट्ठियाँ आई रहती हैं उन सबके जवाब की व्यवस्था करता है। वह स्वयं उनका जवाब भले ही न लिखे, परन्तु उन्हें समझने की ज़िम्मेवारी उसे दी गई है। इनके अलावा उसे स्वयं कुछ

---

* Whatever the trouble may be, the district officer must see to it. In the old Roman Formula, he must take care that the state suffer no harm. He may divide the work, but he cannot divide the responsibility.

अपनी निजी चिट्ठियाँ भेजनी पड़ती हैं। जब इससे फ़ुरसत मिली तो निमंत्रण-पत्रों की ओर उसकी नज़र जाती है। कई जगहों से सभा-सुसाइटियों में शरीक होने के लिए निमंत्रण पत्र आये रहते हैं। यदि उसे आवश्यकता महसूस होती है तो सब काम बन्द करके एक दो जलसों में शरीक होता है। कलेक्टर के लिये यह असम्भव है कि वह सब में शरीक हो सके। सरकारी फ़रमानों के अतिरिक्त, जनता की इत्तला पर भी उसे नज़र रखनी पड़ती है। उसका टेलीफ़ोन सबेरे से ११ बजे रात तक फँसा रहता है। उसकी चिट्ठियों की टोकरियाँ भरी रहती हैं। कानूनों में रद्दोबदल की सूचनायें इतनी अधिक आती हैं कि उस पर उसे घंटों विचार करना पड़ता है। ज़िले में हर समय सरकार की ओर से कोई न कोई नई योजनायें कार्यान्वित होती रहती हैं। इन सब में उसे अपनी सलाह देनी पड़ती है। धारा-सभाओं में जितने प्रश्न पूछे जाते हैं अथवा प्रस्ताव पास किये जाते हैं उनमें बहुतों का जवाब उसे देना पड़ता है।

इन तमाम बातों से स्पष्ट है कि कलेक्टर को कागज़ी कार्रवाइयाँ अधिक करनी पड़ती हैं। ज़िले की दौड़ान में भी चिट्ठियों का पुलिन्दा उसका पीछा नहीं छोड़ता। इससे शासन में मदद भले ही मिले, लेकिन जनता की वास्तविक भलाई में बाधा पड़ती है। अपनी दौड़ान में ही उसे जनता से सम्पर्क प्राप्त करने का अवसर मिलता है। वहीं उसे अपने मातहत कर्मचारियों की देख-रेख करनी पड़ती है। अच्छा होता कि उसका अधिकतर समय जनता की भलाई और सरकारी कर्मचारियों की कार्य कुशलता में व्यतीत होता। परन्तु सरकारी कागज़ात वहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ते। उसका ध्यान गाँवों की ओर कम जाने पाता है। यदि उसकी दौड़ान में कागज़ी कार्रवाइयाँ किसी और को सुपुर्द कर दी जायँ तो वह ज़िले को अधिक लाभ पहुँचा सकता है। दौड़ान में ही उसे हर प्रकार की स्वतन्त्रता रहती है।* एक बार किसी कलेक्टर ने एक फ़ौजी पेन्शनर से पूछा, 'तुम्हारे पड़ोस में शान्ति तो है।' पेन्शनर ने जवाब दिया, "चारों ओर अशान्ति है। आप समझते हैं कि ज़िला आपकी बपौती है, लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि आजकल दरिद्र नारायण का राज्य

---

* In camp, he sees with his own eyes, hears with his own ears, and smells with his own nose, and there by gains much useful information.

है।" इस जवाब से कलेक्टर भौचक्का सा रह गया और पेन्शनर को साथ लेकर दौड़ा आरम्भ कर दिया।

कलेक्टर के दोहरे अधिकारों की मीमांसा

इस प्रकरण को समाप्त करने के पहले यह आवश्यक है कि कलेक्टर के दोहरे अधिकार पर एक दृष्टि डाली जाय। आज लगभग ८० वर्षों से इस विषय पर वादविवाद हो रहे हैं, परन्तु अभी तक इसका अन्तिम निर्णय नहीं हुआ। यह कहा जाता है कि कलेक्टर और मजिस्ट्रेट के पद एक व्यक्ति को नहीं मिलने चाहिये। इससे प्रजा की स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है, साथ ही उसके अधिकारों पर आघात होता है। जो व्यक्ति कार्यकारिणी विभाग का प्रधान हो वही अन्तिम फ़ैसला भी दे यह बात कुछ समझ में नहीं आती। भारतीय और अंगरेज़ दोनों इस बात से सहमत हैं कि ये दोनों पद एक दूसरे से अलग होने चाहिये। १८९९ ई० में बृटेन के कुछ प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने, जिनमें लार्ड हावहाउस, सर रीचर्ड गार्थ, सर चार्ल्स सारजेन्ट के नाम उल्लेखनीय हैं, भारतमन्त्री से यह प्रार्थना की थी कि कलेक्टर और मजिस्ट्रेट पद एक दूसरे से अलग कर दिये जायँ। इन दोनों प्रकार के कर्त्तव्यों को एक के हाथ में रहने से जो हानियाँ हो सकती हैं उनका वर्णन किया गया था। कुछ लोगों ने इसका विरोध भी किया था। तबसे बराबर इस पर वादविवाद होते रहते हैं और जितनी बातें पक्ष और विपक्ष में कही जा सकती हैं, लगभग सभी कही जा चुकी हैं। उन सबके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं है। जो लोग इसके पक्षपाती हैं वे कहते हैं कि इन दोनों पदों को एक के हाथ में रहने देना चाहिये। इससे न्याय में सुविधा होती है और ज़िले का शासन अधिक मज़बूती और कुशलता-पूर्वक किया जाता है। कलेक्टर की शक्ति इससे दूनी बढ़ जाती है। यदि ये दोनों प्रकार के कार्य अलग कर दिये जायँ तो बेकार का ख़र्च बढ़ेगा। लेकिन ये दलीलें ग़लत ठहराई गई हैं और बहुमत से यह बात निश्चित की गई है कि ये दोनों पद दो व्यक्तियों को मिलने चाहिये।

किसी राजनीतिज्ञ का कहना है कि थोड़े समय तक एक सीमित क्षेत्र में इन दोनों पदों को अलग करके यह अनुभव कर लिया जाय कि कहाँ तक इस प्रश्न में जान है। १९०८ ई० में सर हारवे एडमसन ने वाइसराय की कौंसिल में यह घोषित किया था कि सरकार इन पदों को अलग करने पर विचार करेगी। कुछ ग़ैरसरकारी सदस्यों ने एक प्रस्ताव भी पास किया था कि सरकार इन्हें अलग कर दे। परन्तु सरकार की नीति में कोई फ़रक न पड़ा।

२४ फ़रवरी सन् १६३६ ई० को संयुक्तप्रान्त के न्याय विभाग के मंत्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने प्रान्तीय असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि ये दोनों पद एक दूसरे से अलग होने चाहिये। असेम्बली के कुछ सदस्यों ने इसका काफी विरोध किया। एक सदस्य ने तो यहाँ तक कह डाला कि 'यह योजना एक खिचड़ी है।'* परन्तु काँग्रेस के सदस्यों ने इसका पूरा पूरा समर्थन किया। वे इस बात पर ज़ोर देते रहे कि 'न्याय और हुकूमत का प्रबन्ध अलग कर दिया जाय।' सदस्यों का यह भी कहना था कि "जिस तरीक़े पर अदालत में फ़ैसले किये जाते हैं उनमें हर हालत में ग़ैर इन्साफी होती है। पुलीस के चालानी मुक़दमों में मजिस्ट्रेट को आजादी के साथ फ़ैसला करना कठिन हो जाता है। एक कान्स्टेबुल की बात रखने के लिये मजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस तक इन्साफ का गला घोंटने के लिए तैयार हो जाते हैं। न्याय सम्बन्धी मामलों का फ़ैसला मुन्सफी की अदालतों द्वारा कराया जाय। क्योंकि वे कलेक्टर के असर से बाहर रहते हैं। जो अदालत वारँट जारी करती है, और जिसके ज़रिये से गिरफ़्तारियाँ होती हैं, उसे फ़ैसले का अधिकार नहीं मिलना चाहिये।"

सच्ची बात यह है कि एक्जीक्यूटिव और न्याय को एक में शामिल करने से एक बहुत बड़ी बेइंसाफ़ी की गई है। बृटिश सरकार की नीति अधिकार को एक सूत्र में बाँधने की रही है। कलेक्टर को यह अधिकार देकर यह बात आसान कर दी गई है कि जब जिसे ज़रूरत समझी जाय क़ानून के शिकंजे में फँसा लिया जाय। एक ओर तो कलेक्टर पुलिस से गिरफ़्तारी करवाता है और दूसरी ओर ख़ुद उसका फ़ैसला करता है। अर्थात् जो व्यक्ति मुक़दमा चलाता है वही स्वयं जज बन कर उसे फ़ैसला भी करता है। इससे पुलीस के अधिकारों की वृद्धि होती है और इंसाफ़ में फ़रक पड़ता है। कलेक्टर के सभी मुक़दमें ईश्वर के वाक्य समझे जाते हैं। काँग्रेस आरम्भ से ही इस बात की माँग पेश करती रही है कि ये दोनों पद एक दूसरे से अलग कर दिये जायँ। १६२२ ई० में स्टुअर्ट कमीटी इसी कार्य के लिये नियुक्त की गई थी कि वह इस पर गहराई के साथ विचार करे। कमीटी ने यह फ़ैसला किया

---

* It seems to me that the scheme, as put forward, is a kind of Khichari palatable in some parts but distasteful in others. It is neither fish nor fowl nor good red berry. It is a jumble of executive and judicial functions.

कि इन दोनों प्रकार के अधिकारों को अलग करना निहायत ज़रूरी है। कमीटी के कथनानुसार सरकार का ख़र्च इससे ३ या ३½ लाख रुपया सालाना बढ़ जाता है, परन्तु प्रान्तीय सरकार इतने ख़र्च को बर्दाश्त कर सकती है। जब यह बात सर्वसम्मति से मान ली गई है कि सरकार के तीनों विभाग— कार्यकारिणी, व्यवस्थापिका और न्याय—अलग अलग रहने चाहिये तो फिर उन्हें एक में मिलाने की क्या आवश्यकता है? संयुक्तप्रान्त की छोटी धारा-सभा में किसी सदस्य ने इसका उत्तर देते हुए कहा था कि "बृटिश गवर्नमेंट और कांग्रेस गवर्नमेंट के तर्ज़ में ज़मीन व आसमान का फ़रक है। अब तक जो क़ानून बने हैं वे सब के सब बृटिश गवर्नमेंट के बनाये हुये हैं और उनमें ख़ास तौर से इस बात का ख़याल रक्खा गया है कि वे कौन कौन से ज़रिये अथवा क़ानून हो सकते हैं, जिनसे हम अपनी रिआया को क़ानूनी शिकंजों में जकड़ कर उनको किसी क़िस्म की आज़ादी न दें।"

स्वयं बृटिश सरकार इस बात को स्वीकार कर चुकी है कि अब हिन्दोस्तानियों को सभी प्रकार की आज़ादी मिलनी चाहिये। वर्तमान प्रान्तीय स्वराज उसका पहला क़दम है। इसलिये उन तमाम क़ानूनों में संशोधन होने चाहिये जिनसे हमारी राजनीतिक स्वतंत्रता में बाधायें पड़ती हैं। देश और विदेश के प्रमुख राजनीतिज्ञों का यह मत है कि 'ज़िले का शासन-प्रबन्ध सम्पूर्ण भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध की बुनियाद है।'* इतना स्वीकार करते हुये भी यदि ज़िले के प्रधान शासक के अधिकारों में सुधार नहीं किया जाता तो यह हमारी सबसे बड़ी बदकिस्मती है। इधर कुछ वर्षों से काग़ज़ी कारवाइयों की वृद्धि के कारण ज़िले का शासन और भी लापरवाही से किया जाता है। कलेक्टर को दौड़ा लगाने की फ़ुरसत कम मिलती है। इससे वह जनता की असली दशा से अनभिज्ञ रहता है। अतएव उसके पद में दो प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है। एक तो उसे मजिस्ट्रेट का काम न दिया जाय। मुक़दमें फैसल करने के लिये दूसरे पदाधिकारी नियुक्त किये जायँ। दूसरे प्रकार का सुधार यह होना चाहिये कि उससे काग़ज़ी काम कम कराया जाय। उसे ज़िले का दौड़ा करने का अधिक से अधिक मौक़ा मिलना चाहिये, ताकि वह जनता के सुख-दुख की हालत से परिचित हो सके। इन

---

* The efficient administration of the district is the first condition for the proper Government of India.

सुधारों के अतिरिक्त ज़िले का प्रधान शासक केवल हिन्दोस्तानियों को बनाना चाहिये। विदेशी हमारे रस्म-रवाज़ों को उतना नहीं समझ सकते जितना एक हिन्दोस्तानी। कलेक्टर को अकसर अंग्रेज़ी भाषा से अनभिज्ञ किसानों और ज़मींदारों से मिलने का मौक़ा मिलता है। वह किसी तरह अपना काम भले ही चला ले, परन्तु रस्म-रवाज़, रहन-सहन, संस्कृति, धर्म, जाती भाषा संगठन आदि से अनभिज्ञ रह कर कोई पदाधिकारी जनता की सच्ची भलाई नहीं कर सकता।

जिले का विभाजन तथा अन्य कर्मचारी

प्रत्येक जिले में ३ से ८ तक तहसीलें होती हैं। इनकी ज़िम्मेवारी तहसीलदार को रहती है। उसे सहायक मजिस्ट्रेट भी कहते हैं। इनका काम मालगुजारी वसूल करके कलेक्टर के पास भेजना होता है। इसके अलावे ये मुक़दमें भी फैसल करते हैं। हर तरह से ये कलेक्टर की मातहती में काम करते हैं। कुछ मुकदमों को फैसल करने का अधिकार अवैतनिक मजिस्ट्रेट को है जो हर तहसील में चार होते हैं। तहसील को परगना भी कहते हैं। तहसीलदार परगना हाकिम भी कहलाता है। तहसील का विभाजन थानों में किया गया है। थाने का मालिक थानेदार कहलाता है। हर गाँव की ख़बर थानेदार को रखनी पड़ती है। गाँवों के प्रबन्ध के लिये हर गाँव में एक ग्राम पंचायत होती है। इसमें ५ या ७ सदस्य होते हैं। गाँव का मुखिया इसका प्रधान होता है। रात में गाँव की रखवाली करने के लिये चौकीदार रक्खे गये हैं। एक चौकीदार ५ या ६ गाँवों की रखवाली करता है। इसका पद पैत्रिक होता है। सरकारी विभाग में काम करने वाले कर्मचारियों में यही एक ऐसा कर्मचारी है जिसका पद पैत्रिक (Hereditary) है। गाँवों की खेती का ब्यौरा रखने तथा खेतों की पड़ताल आदि करने के लिये पटवारी होता है। इसका पद कभी कभी पैत्रिक होता है। एक पटवारी के मर जाने पर उसके लड़के को आमतौर से यह पद दे दिया जाता है। पटवारी को गाँव का ख़ज़ानची (Village accountant) भी कहते हैं। किसी समय में यह हर गाँव की आमदनी और ख़र्च का हिसाब रखता था, परन्तु अब ऐसा नहीं है। आरम्भ में इसे वेतन नहीं दिया जाता था। गाँव के प्रत्येक घर से इसे अन्न और कुछ पैसे दिये जाते थे। लेकिन अब इसे १२ या १३ रु० मासिक वेतन दिया जाता है। इस प्रकार गाँव से लेकर ज़िले का शासन-प्रबन्ध किया जाता है। इन विभिन्न पदाधिकारियों का सूक्ष्म वर्णन इसलिये किया गया है कि यथास्थान फिर इनका विस्तृत वर्णन किया जायगा।

अध्याय १६

स्थानीय स्वराज

(Local Self-Government)

स्थानीय स्वराज की आवश्यकता

स्थानीय स्वराज अथवा स्वायत्त-शासन का स्वरूप सभी देशों में एक सा नहीं मिलता। कहीं कहीं तो एक ही देश में स्थानीय संस्थाओं को सभी जगह एक से अधिकार नहीं दिये गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति वा संगठन की आज़ादी उसकी योग्यतानुसार दी जाती है। साथ ही यह भी निश्चित है कि जब तक स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की जाती तब तक कोई संस्था अपने आपको उन्नतिशील नहीं बना सकती। इन्हीं दोनों कारणों से स्थानीय स्वराज की व्यवस्था की गई है। यदि सभी कार्य सरकारी कर्मचारी करते रहें, और जनता को किसी प्रकार की जिम्मेवारी न दी जाय, तो शासन में अनेक बुराइयाँ पैदा हो जायेंगी। नौकरशाही से हमें काफ़ी हानियाँ उठानी पड़ती हैं। जनता जितनी ही कूप-मंडूक होती है उतनी ही नौकरशाही उसके लिये घातक सिद्ध होती है। कोई सरकार, चाहे वह जनता की ही क्यों न हो, अपने आपको इससे वंचित नहीं रख सकती। राज्य का विस्तार काफ़ी बड़ा होता है। ख़ास कर वर्तमान युग में राज्यों की सीमा इतनी बड़ी है कि नौकरशाही की धौंस से बचना मुश्किल है। कुछ तो इसकी बुराइयों से बचने के लिये और कुछ राज्य की उन्नति के लिये स्थानीय स्वराज की व्यवस्था की गई है। यदि ज़िले का शासन प्रबन्ध कलेक्टर और तहसील-दारों को सौंप दिया जाय तो सरकार की शक्ति कमज़ोर नहीं हो सकती लेकिन जनता को इस बात का अवसर नहीं मिल सकता कि वह अपनी घरेलू बातों को अपने आप देखे।

राज्य की सीमा बड़ी होने से सरकार एक स्थान से उसका प्रबन्ध अच्छी तरह नहीं कर सकती। हर समय सतर्क रहने के अतिरिक्त उसे व्यय भी अधिक करना पड़ेगा। इतने पर भी जनता तब तक सन्तुष्ट नहीं रह सकती जब तक उसे शासन सम्बन्धी कुछ अधिकार न दिये जायँ। अधिकारों के प्रयोग के लिये उसे एक ऐसा क्षेत्र मिलना चाहिये जिसमें वह उन्हें कार्यान्वित कर सके। उदाहरणतः डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपल बोर्ड का प्रबन्ध जनता को इसीलिये दिया गया है कि वह इन्हें अपने अधिकारों का

क्षेत्र बनायें। साथ ही सरकार को भी कुछ आसानी हो। जिन कामों के लिये सरकार को पैसे ख़र्च करने पड़ते, और सैकड़ों नौकर रखने पड़ते, उन्हीं कामों को इन बोर्डों के अन्दर लोग अपने शौक से करने के लिये तैयार रहते हैं। मुहल्लों तथा गाँवों की सफ़ाई रखना सरकार के लिये उतना जरूरी नहीं है जितना वहाँ के निवासियों के लिये। यदि लोग सफ़ाई के महत्व को समझ जायँ तो वे अपने आप गन्दगी से परहेज करने लगेंगे। सफ़ाई-इन्सपेक्टर की कोई खास जरूरत न होगी। यदि लोग गन्दगी के दास हों तो सैकड़ों इन्स्पेक्टर उन्हें साफ़ नहीं रख सकते। स्थानीय स्वराज इसी आत्म-निर्भरता की शिक्षा देता है। दैनिक जीवन की आवश्यकतायें सबको मालूम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि लोगों में इतनी जिम्मेवारी आ जाये कि वे बिना किसी डर भय से उन्हें पूरा करने लगें। इस प्रकार के भाव तभी पैदा होंगे जब जनता को धीरे धीरे सभी राजनीतिक जिम्मेवारियाँ सौंप दी जायँ। जहाँ तक स्थानीय विषयों का सम्बन्ध है, यह बात निर्विवाद है कि जनता इनका प्रबन्ध अच्छी तरह कर सकती है। अपनी शिक्षा, सफ़ाई, दवा, तथा इस तरह की छोटी छोटी चीज़ों के लिये उसे पूरी आजादी मिलनी चाहिये। सरकार स्थानीय संस्थाओं को इतनी रक़म दे कि वे अपने क्षेत्र को एक सुसंगठित राष्ट्र के मानिन्द बना सकें। यदि राज्य का कोना कोना इसी प्रकार के शासन के अन्तर्गत आ जाय तो सरकार की चिन्तायें बहुत कुछ दूर हो जायँ।

सरकार को सबसे बड़ी चिन्ता आन्तरिक व्यवस्था और वाह्य-आक्रमण की होती है। पहली चिन्ता को दूर करने के लिये उसे तरह तरह के क़ानून बनाने पड़ते हैं, कचहरियों की स्थापना करनी पड़ती है और अनेक कर्मचारी नियुक्त करने पड़ते हैं। वाह्य आक्रमण तो कभी कभी होते हैं, और इसके लिये उसका फ़ौजी विभाग काफ़ी होता है। किसी असाधारण परिस्थिति में जनता की मदद लेनी पड़ती है, परन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। राज्य की नींव आन्तरिक व्यवस्था पर क़ायम है। यह व्यवस्था तब तक नहीं की जा सकती जब तक जनता और सरकार दोनों का सहयोग प्राप्त न हो। कुछ कामों को सरकार अपने कर्मचारियों से कराये और इसके लिये वह प्रजा से टैक्स वसूल करे। लेकिन स्थानीय कामों को वह वहीं के निवासियों को सुपुर्द कर दे। इसके लिये जितने पैसे की जरूरत हो सरकार उतने की व्यवस्था करे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत कुछ काम बिना पैसे के ही हो सकता है। सरकार को इसके लिये बेगार कराने की आवश्यकता न होगी। लोग अपनी ख़ुशी से इन कामों को करेंगे। मान लीजिये गाँवों के मामूली

झगड़ों को फैसल करने के लिये पञ्चायतें बना दी जाती हैं। इसके अलावे पंचायत को गाँव की सफ़ाई तथा पूरे प्रबन्ध की जिम्मेवारी सौंप दी जाती है। उसे उचित साधन भी प्रदान कर दिये जाते हैं। ऐसा करने से कचहरियों की आवश्यकता कम होगी। ५० प्रतिशत मुक़दमें गाँवों में ही तै हो जाया करेंगे। वकील, मुख़्तार, मुहर्रिर तथा न्यायालयों के अन्य कर्मचारी को जो पैसे मिलते हैं वे जनता की ही जेब में रहेंगे। इससे बढ़ कर शासन की उपयोगिता हो ही क्या सकती है। इसी तरह की और भी जिम्मेवारियाँ स्थानीय संस्थाओं को सौंप कर सरकार आन्तरिक प्रबन्ध से बहुत कुछ निश्चिन्त रह सकती है।

स्थानीय स्वराज सुसंगठित राष्ट्र की पहचान है। जिस मात्रा में सरकार जनता का विश्वास करेगी उसी हद तक वह उसे शासन प्रबन्ध में आजादी प्रदान करेगी। जो सरकार जनता की भलाई से उदासीन है वह शासन की उपयोगिता पर ध्यान नहीं दे सकती। स्थानीय स्वराज की स्थापना से सरकार का ख़र्च घटाया जा सकता है। कम से कम खर्च करके वह अधिक से अधिक लोकप्रिय बन सकती है। बहुत से टैक्स जो प्रजा से वसूल किये जाते माफ़ कर देने होंगे। एक पन्थ दो काज होगा। प्रजा का धन बचेगा और उसकी जिम्मेवारी बढ़ेगी। तीसरे, देश की आन्तरिक व्यवस्था सुदृढ़ होगी। जनता को इस बात का अवसर मिलेगा कि वह अपने विचारों का प्रदर्शन करे। शासन का भार सँभालने से उसे अनेक प्रकार की ट्रेनिंग हासिल होगी। छोटी छोटी बातों से हटकर उसका ध्यान बड़ी बातों की ओर आकर्षित होगा। जनता के अन्दर आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन के भाव पैदा होंगे। तात्पर्य यह है कि जनता और सरकार के बीच में सहयोग की एक ऐसी दीवार खड़ी होगी जिससे अशान्ति और कुव्यवस्था का प्रश्न जाता रहेगा। स्थानीय स्वराज का क्षेत्र कम है; लेकिन इसका प्रभाव बहुत ही व्यापक है। बड़ी से बड़ी बातों को जनता अपने सहयोग से सुलझा सकती है। स्थानीय संस्थाओं का जाल देश के कोने कोने में फैला हुआ है। सच्चे प्रजातन्त्रवाद की उन्नति तभी हो सकती है। जब सरकार के आन्तरिक प्रबन्ध इन्हीं संस्थाओं द्वारा कराये जायँ। वह केवल इस बात की देख-रेख रक्खे कि ये आपस में मिल कर काम करती रहें। जब कभी इनमें मतभेद उत्पन्न हो जाय तो वह इसे दूर कर दे। इससे यह स्पष्ट है कि सरकार का कार्य जनता की ज़िम्मेवारी के रूप में परिणत हो जायगा। सरकार स्वयं गौण हो जायगी। चारों ओर स्थानीय संस्थायें दिखाई पड़ेंगी।

स्थानीय स्वराज सरकार की परीशानियाँ कम करने के अतिरिक्त जनता

के अन्दर स्वाभिमान और लोक लज्जा का भाव पैदा करता है। हर काम में लोगों की यह आम शिकायत रहती है कि यह और अच्छी तरह किया जा सकता है। जब वही काम उन्हें सुपुर्द कर दिया जाता है तो फिर उन्हें टीका-टिप्पणी का अवसर नहीं रह जाता। जनता को सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यों में रुचि दिलाने के लिये स्थानीय स्वराज निहायत ज़रूरी है। उदासीनता पतन की जड़ है। जहाँ की सरकार जनता की इस मनोवैज्ञानिक चित्तवृत्ति का ध्यान नहीं रखती, वह सदैव असफल रहती है। किसी क्षेत्र के निवासी केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं से उतना सम्पर्क नहीं रखते जितना अपनी स्थानीय संस्थाओं से। स्थानीय बातों का प्रभाव उनके जीवन पर तत्काल पड़ता है। हर बात उनकी नज़रों के सामने रहती है। कोई किसी को धोका नहीं दे सकता। प्रत्येक ज़िले के निवासी आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक सम्बन्ध के कारण आपस में मिले जुले रहते हैं। सबकी रहन सहन का पता चलता रहता है। सरकार उन बातों को सैकड़ों रुपये ख़र्च करके नहीं जान सकती, जिन्हें वहाँ के निवासी रोज देखते रहते हैं। अतएव न्याय की दृष्टि से भी स्थानीय स्वराज नितान्त आवश्यक है। किसी स्थानीय घटना का अध्ययन सरकार उतनी अच्छाई के साथ नहीं कर सकती, जैसे ग्राम पंचायतें अथवा ज़िला व म्युनिसिपिल बोर्ड कर सकते हैं। सरकारी महक़में में कभी कभी घूसख़ोरी का ज़िक्र आता है। छोटी छोटी बातों में सरकारी कर्मचारी घूस लेकर बातों को इधर से उधर कर देते हैं। लेकिन ग्राम संस्थाओं के अधिकारों की वृद्धि करने से इस तरह की बुराइयाँ पैदा नहीं हो सकतीं। यदि किसी म्युनिसिपलिटी के अन्दर कोई सदस्य घूस लेकर काम करता है तो वह शीघ्र निन्दा का पात्र समझा जाता है, और उसे सार्वजनिक कामों में स्थान नहीं दिया जाता। दुश्चरित्र और अन्यायी व्यक्ति स्थानीय कार्यों के लिये अयोग्य समझे जाते हैं। सरकार उन्हें इतनी बारीकी से नहीं पहचान सकती जितनी जनता उन्हें पहचानती है। इसीलिये कहा जाता है कि सरकारी कामों को शुद्ध रखने का एकमात्र इलाज स्थानीय स्वराज है।

स्थानीय स्वराज का तात्पर्य

स्थानीय स्वराज एक ऐसा विषय है जिस पर कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि इस शब्द का कुछ अर्थ नहीं है। जिस भाग को पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया जाय उसे स्थानीय और प्रान्तीय कहने की क्या आवश्यकता है और यदि उसका सम्बन्ध ऊपर की शक्ति से है तो फिर उसे स्वराज कैसे कहा जाय। इसीलिये कहा जाता

है कि किसी स्थानीय संस्था को पूर्ण स्वराज नहीं दिया जा सकता। लेकिन ऐसा हो सकता है कि ऊपरी शक्ति उन स्थानीय बातों में हाथ न डाले जिन्हें स्थानीय संस्थायें करने की योग्यता रखती हैं। जो संस्था व संगठन जिस कार्य को अधिक कुशलता-पूर्वक कर सकता है उसे उसका शासन-प्रबन्ध मिलना चाहिये। इससे कार्य सुगम हो जाता है और जनता को अपनी बुद्धि लगाने का अवसर मिलता है। किसी देश में स्थानीय संस्थाओं का क्षेत्रफल निश्चित नहीं किया जा सकता। भौगोलिक परिस्थिति इसका फैसला करती है। फ्रांस मे ३८००० के लगभग स्थानीय संस्थायें (Communes) हैं। जो स्थान म्युनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को प्राप्त हैं वही इन्हें भी मिला हुआ है। सब का क्षेत्रफल अलग अलग है। कुछ संस्थाओं (Communes) का क्षेत्रफल केवल १० एकड़ है और कुछ ४०० वर्ग मील के घेरे में फैली हुई हैं। हमारे देश में भी इसी तरह का फ़रक दिखाई पड़ेगा। सभी शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड हैं। कुछ की आबादी लाखों में है और कुछ हज़ार तक ही सीमित हैं।

स्थानीय स्वराज की परिभाषा करते हुये एक राजनीतिज्ञ लिखता है, "स्थानीय स्वराज का तात्पर्य उस सरकार से है जिसके अन्दर सारी जनता को प्रतिनिधित्व द्वारा शासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो।" यह परिभाषा बहुत ही व्यापक है। जब सभी स्थानीय विषयों में जनता को पूरी आज़ादी मिल जायगी तो पूर्ण स्वतन्त्रता इससे कोई अलग चीज़ नहीं रह जाती। स्थानीय स्वराज की दूसरी परिभाषा इस प्रकार की गई है, "कुछ विषयों में स्थानीय संस्थाओं को अपनी इच्छानुसार शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया जाता है। इस सीमित क्षेत्र के अन्दर जनता स्वयं अपना प्रबन्ध करती है। इसी का नाम स्थानीय स्वराज है।" वास्तव में स्थानीय स्वराज का तात्पर्य घरेलू स्वतन्त्रता से है। जैसे हर आदमी अपने घर में खाने, पीने, पहनने के लिये स्वतंत्र है, उसी तरह स्थानीय विषयों में भी उसे कुछ सुविधायें दे दी जाती हैं। जिस क्षेत्र में कुछ व्यक्ति निवास करते हैं वह उनका एक वृहत् कुटुम्ब बन जाता है। वहाँ की छोटी छोटी बातों से वे अच्छी तरह परिचित रहते हैं। इसीलिये प्रजा की हितैषी सरकार उन्हें यह अधिकार दे देती है कि वे चन्द विषयों का प्रबन्ध अपने आप कर लें। केन्द्रीय सरकार भी उन्हें कर सकती है, परन्तु वह एक विदेशी मशीन की तरह करेगी। बहुत सम्भव है उस क्षेत्र के लोग उससे सर्वथा असन्तुष्ट रहें।

इससे भी बढ़कर स्थानीय स्वराज एक बहुत बड़े मक़सद को पूरा करता

है। जनता की यह प्रबल इच्छा रहती है कि अधिक से अधिक राजनीतिक अधिकार उसे प्राप्त हों। वर्तमान प्रजातन्त्रवाद के अन्दर चाहे जितनी भी कमज़ोरियाँ मौजूद हों, परन्तु इसका अन्तिम उद्देश्य यही है। लेकिन कोई भी सरकार प्रजा को वहीं तक ज़िम्मेवारी दे सकती है जहाँ तक वह इसे निबाहने की क्षमता रखती है। स्थानीय स्वराज इसकी पहली सीढ़ी है। इसी से प्रजा की ज़िम्मेवारी तथा कार्य-कुशलता की परीक्षा होती है। जो व्यक्ति १० रुपये को अच्छी तरह ख़र्च कर सकता है उसे ५० रुपये ख़र्च करने का अवसर मिल सकता है, परन्तु जिसके अन्दर ४ पैसे सँभालने की ताक़त नहीं है वह किसी बड़ी रक़म की ज़िम्मेवारी कैसे ले सकता है। यदि वह चाहे तब भी उसे कोई नहीं दे सकता। इसी तरह जब स्थानीय विषयों का अधिकार जनता को दिया जाता है तो यह आशा की जाती है कि वह इन्हें अच्छी तरह चलायेगी। कुछ दिन व्यतीत होने पर इसके कार्य अपने आप ज़ाहिर होने लगते हैं। जनता को स्वयं इस बात का पता चल जाता है कि शासन के कार्य में कितनी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं और उन्हें दूर करने की कहाँ तक योग्यता उसके अन्दर मौजूद है।

स्थानीय स्वराज का तात्पर्य जनता को अधिक से अधिक संतुष्ट करना है। दूसरे लोग हमारी आवश्यकताओं को उतना नहीं समझ सकते जितना हम स्वयं समझते हैं। इसलिये यह अच्छा होगा कि हम अपने पड़ोसियों की सलाह से अपना प्रबन्ध स्वयं करें। घरेलू बातें छोटी होती हैं, लेकिन वे बड़ी बड़ी बातों से कम महत्व नहीं रखतीं। यदि किसी कुटुम्ब का संगठन बिगड़ जाय और सब लोग अलग अलग होकर मनमानी करने लगें तो सम्भव है अन्य कुटुम्बों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़े। गाँव के गाँव इस उदाहरण से बुरे बन सकते हैं। यह बात सरकार के वश से बाहर है कि जनता की इच्छा के विरुद्ध वह उसे बाँध कर रक्खे। इसीलिये स्थानीय संगठनों का महत्व किसी बड़े राजनीतिक संगठन से कम नहीं है। धारा-सभा के बर्ख़ास्त हो जाने से, तथा किसी फ़रमान के जारी कर देने से हमारे जीवन पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना घरेलू झगड़ों तथा स्थानीय घटनाओं से। हिन्दोस्तान के प्राचीन सामाजिक अथवा राजनीतिक संगठन की ओर आँख उठाकर देखें तो पता चलेगा कि सभी बातें स्थानीय समझी जाती थीं। जब कभी कोई फ़ैसला होता तो स्थानीय रसम-रवाज़ का ध्यान रक्खा जाता था। लेकिन आज ऐसा नहीं होता। इसकी व्यवस्था आज दूसरे ढंग पर की गई है। यही वजह है कि न्याय और सचाई की अनेक व्यवस्था करने पर भी जनता असन्तुष्ट रहती है। स्थानीय जनता को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिये कि

वह अपनी शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर सके, अपनी सुविधा के अनुसार सड़कें बना सके, तथा अपनी उन्नति के लिये तरह तरह के कार्य कर सके। इन कामों में लगे रहने के कारण शासन में अधिक से अधिक व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होगा। राजा और प्रजा का भेद भाव नाम मात्र को बाक़ी रहेगा। स्थानीय स्वराज ही पंचायती राज कहलाता है। इस प्रकार की सरकार अधिक दृढ़ और स्थायी समझी जाती है।

स्थानीय स्वराज में सुधार

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड के अन्दर बहुत सी बुराइयाँ मौजूद हैं। पिछले वर्षों में इनका इतिहास बड़ा ही हृदय विदारक रहा है। १९३७ ई० में जब कांग्रेस ने प्रान्तीय शासन को अपने हाथों में लिया तो उसका ध्यान इन बुराइयों की ओर आकर्षित हुआ। सुधार की अनेक योजनायें पेश की गईं। सबने इस बात पर ज़ोर दिया कि स्थानीय संस्थाओं का संगठन बदलना चाहिये। मध्यप्रान्त के स्वायत्त शासन-विभाग के मन्त्री श्रीयुत् डी० पी० मिश्र ने जो योजना पेश की वह विचार करने योग्य है। खेद है कि कांग्रेस अभी उसे कार्यान्वित न कर सकी थी कि उसे इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। संयुक्तप्रान्त, बम्बई तथा अन्य प्रान्तों में भी सुधार की नई नई योजनायें पेश की गई थीं। सब में इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि जब तक स्थानीय संस्थाओं का रूप न बदल दिया जायगा तब तक जनता अपने अधिकार से लाभ नहीं उठा सकती। श्रीयुत डी० पी० मिश्र लिखते हैं, "सारे हिन्दोस्तान में स्थानीय संस्थाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय है। कुछ इने गिने दो चार बोर्डों को छोड़कर बाक़ी सब की आर्थिक दशा बड़ी ही डावाँडोल है। स्थानीय संस्थायें ताने की निशान बन गई हैं। व्यक्तिगत लड़ाई-झगड़े इनमें आमतौर से पाये जाते हैं। सदस्यगण जनता के पैसे का दुरुपयोग करने के साथ ही साथ अपना अमूल्य समय व्यर्थ की बातों में खोते हैं। दलबन्दियों में पड़कर योग्य से योग्य कर्मचारी निकाल बाहर कर दिये जाते हैं। परिणाम यह है कि स्थानीय संस्थायें बड़ी ही ग़ैर जिम्मेवारी के साथ काम कर रही हैं।" कांग्रेस सरकार का विचार है कि स्थानीय बोर्डों में सम्मिलित निर्वाचन पद्धति जारी कर दी जाय, जिससे साम्प्रदायिक कटुता दूर हो।

संयुक्तप्रान्त में स्वायत्त शासन के सुधार के लिये जो कमीटी बनाई गई थी उसने वर्तमान संगठन पर शोक प्रकट किया। कमीटी की राय में 'स्थानीय संस्थाओं की दशा, विशेषकर गाँवों और छोटे कस्बों में, बहुत ही निराशाजनक है। जो मशीन इन्हें चला रही है उससे जनता की सार्वजनिक उन्नति

नहीं हो सकती। इसके विपरीत लोगों की रहन-सहन में उन्नति करने के लिये यह सभी प्रकार से असफल रही है।" स्थानीय संस्थाओं ने जितनी लापरवाही और ग़ैर ज़िम्मेवारी से काम किया है उसका बुरा प्रभाव आम जनता पर साफ़ दिखाई पड़ता है। लोग कर्मचारियों के व्यवहार से अत्यन्त असन्तुष्ट हैं। किसी भी ज़िले में चेयरमैन तथा बोर्ड के मेम्बरों की हालत दरियाफ़्त की जाय तो पता चलेगा कि सभी लोग उनसे असन्तुष्ट हैं। जो संस्थायें जनता की अधिक भलाई के लिये बनाई गई थीं, और जिनके प्रबन्ध की पूरी शक्ति उन्हीं के हाथों में सौंप दी गई थी, उन्हीं के कारण आपस में बैर विरोध की वृद्धि हो, यह बात कुछ उलटी सी जान पड़ती है। कमीटी ने यहाँ तक कहा था कि "जिला और म्युनिस्पल बोर्ड की कार्रवाइयों में रत्ती भर भी दम नहीं है। दोनों ही अकर्मण्य तथा झगड़े के घर हैं।"

बम्बई में जो कमीटी इस कार्य के लिये बनाई गई थी, उसकी आवाज़ कुछ नम्र रही। उसने यह जाहिर किया कि संसार के सभी देशों में स्वायत्त शासन की दशा शोचनीय है। हिन्दोस्तान भी उसी लहर में बह रहा है। ऐसा एक भी देश दिखाई नहीं पड़ता जिसकी स्थानीय संस्थायें पाक साफ़ हों, और जिनकी कार्रवाइयों से जनता सन्तुष्ट हो। कमीटी का यह विचार है कि स्थानीय संस्थाओं में पैसे की कमी के कारण अनेक बुराइयाँ अपना घर कर गई हैं। यदि आज इनकी आर्थिक दशा ठीक कर दी जाय तो इनका कार्य सुचारु रूप से चलने लगेगा।

इन तमाम योजनाओं और कमीटियों के विचारों से यह साफ़ ज़ाहिर है कि कुछ न कुछ सुधार करने की आवश्यकता नितान्त ज़रूरी है। इन सबका लुब्बे लबाब यह है कि :—

१—मौजूदा स्थानीय संस्थाओं की मशीन दोषपूर्ण है। इसका पुनर्संगठन होना चाहिये।

२—इन संस्थाओं के कर्मचारी अयोग्य और अनभिज्ञ हैं। इनकी उचित ट्रेनिंग होनी चाहिये।

३—इनकी आर्थिक सुधार होना चाहिये।

यदि ये तीनों बुराइयाँ दूर कर दी जायँ तो स्वायत्त शासन अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता है। अब प्रश्न यह है कि क्या स्थानीय संस्थायें इस कमी को दूर करने की शक्ति रखती है? क्या उन्हें यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने संगठन को जैसा चाहें बना लें? क्या अपने कर्मचारियों को नियुक्त

करने तथा निकालने के अधिकार उन्हें प्राप्त है? क्या वे अपनी आर्थिक परिस्थिति को ठीक करने के लिये मनमाना टैक्स लगा सकती हैं, अथवा क़र्ज़ ले सकती हैं? ये प्रश्न जब तक हल न होंगे तब तक यह कहना अत्यन्त कठिन है कि स्थानीय स्वराज की मौजूदा बुराइयों के लिये दोषी कौन है। इन्हें जानने के लिये यह आवश्यक है कि स्थानीय संस्थाओं की ताक़त और उनके अधिकार पर दृष्टि डाली जाय।

स्वायत्त शासन की सीमा

स्थानीय संस्थाओं के अधिकार सीमित हैं। वे अपनी परिस्थिति ठीक करने तथा अपने को अधिक कार्यकुशल बनाने के लिये आज़ाद नहीं हैं। उन्हें क़र्ज़ लेने का अधिकार नहीं है। जहाँ तक संगठन की बात है, वे रत्ती भर भी इसमें परिवर्तन नहीं कर सकतीं। जनता की यह आम शिकायत ररती है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा म्युनिसिपल बोर्ड उनके लिये स्कूल नहीं खोलते। हर गाँव को यह आशा रहती है कि वहाँ कोई न कोई स्कूल खोल दिया जाय। छोटे छोटे कस्बों के लिये बिजली और सीमेंट की सड़कें चाहिये। सड़कों के दोनों किनारों पर पेड़ होना जरूरी है। ये आशायें बुरी नहीं हैं, और जनता की माँग के लिये बहुत कुछ यथार्थ हैं। इससे पता चलता है कि वह अपने जीवन को उठाना चाहती है। अब वह दब्बू और अपने अधिकारों से अनभिज्ञ नहीं है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि स्थानीय संस्थायें कहाँ तक इन माँगों को पूरा कर सकती हैं। जब तक हम उनकी शक्ति का अन्दाज़ न करलें तब तक हम उन्हें दोषी नहीं ठहरा सकते। काँग्रेस सरकारों ने इसे स्वीकार किया था कि इन संस्थाओं के अधिकार इतने कम हैं कि ये जनता की माँग को पूरा नहीं कर सकतीं। वर्तमान समय में जनता में जो असन्तोष इनकी ओर से फैले हुये हैं उन्हें दूर करने की शक्ति इनमें नहीं है। यही सोचकर काँग्रेस ने यह विचार प्रकट किया था कि स्थानीय प्रबन्ध की सारी बातें इन संस्थाओं को दे दी जायँ। जब तक ऐसा न होगा तब तक इनकी जिम्मेवारी बँटी रहेगी। ग़ैर ज़िम्मेवार रह कर कोई संगठन अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता।

स्थानीय स्वराज का क्षेत्र अत्यन्त संकीर्ण है। शिक्षा, सफ़ाई और आवागमन इन तीनों बातों को छोड़कर उनके हाथ-पैर बँधे हुये हैं। पण्डित मिश्र का कहना है कि जिस प्रकार प्रान्तों के विषय २१ विभागों में बाँटे गये हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ज़िले का कार्य २१ विभागों में बाँट दिया जाय। जिले की एक कौंसिल इन विभागों का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकार की देख-रेख में करे। इससे कार्य में सुविधा होगी और संस्थायें अपनी ज़िम्मेवारी को अधिक

महसूस करेंगी। प्रान्तीय धारा-सभा स्थानीय संस्थाओं के लिये कोई क़ानून पास करने का कष्ट न करे। इन मामलों में वे अपना व्यर्थ का समय और रुपया बर्बाद न करें। स्थानीय कौंसिल (District Council) अपनी सुविधानुसार इन नियमों को बना लें। मंत्रिमंडल तथा धारा-सभा का जो स्थान प्रान्त में है वही जिले की कौंसिल, कार्यकारिणी कमेटी तथा इसके सभापति को हो। संयुक्तप्रान्त की कमीटी ने भी इस योजना की सराहना की थी। उसने इस बात की सिफ़ारिश की थी कि यदि स्थानीय संस्थाओं को सफल बनाना है तो उनका संगठन प्रान्तीय सरकार के ढंग पर होना चाहिये। ज़िले की कौंसिल छोटे पैमाने पर उन तमाम कामों को करने के लिये आज़ाद हो जो प्रान्तीय सरकार आज कर रही है।

१९१६ से लेकर १९३७ ई० तक स्थानीय संस्थाओं की असफलता पर दृष्टिपात करते हुये पंडित मिश्र लिखते हैं कि संस्थाओं की आजादी के बावजूद इन्हें चन्द बातों से इस कदर दूर रक्खा गया कि हर क़दम पर इन्हें मुँह की खानी पड़ी। ये संस्थायें किसी योग्य व्यक्ति की मातहती में न थीं। प्रान्तीय सरकार का दोहरा शासन उन्हें इस बात का अवसर नहीं देता था कि वे अपने अन्दर से योग्य व्यक्तियों को खोज निकालें। जिले में इस प्रकार के विभाजन की कोई ज़रूरत नहीं है। यह सिद्धान्त ग़लत है कि कुछ मामलों में सरकारी कर्मचारी अपना हाथ रक्खें और बाक़ी जनता के हाथों में रहें। इस दो अमली हुकूमत से प्रजा की जो हानि हुई है उसका जीता जागता उदाहरण प्रजा के असन्तोष रूप में हमारे सामने मौजूद है। सारे अधिकार जिले की कौंसिल को हों। वही योग्य से योग्य कर्मचारियों को खोज कर अपना कार्य कराये।

स्थानीय स्वराज अभी तक पूर्ण नहीं है। नागरिक शिक्षा के अभाव के कारण स्थानीय जनता में उन बातों की कमी है जो शासन को चलाने के लिये आवश्यक हैं। यही वजह है कि डिस्ट्रिक्ट तथा म्युनिसिपल बोर्ड की कार्रवाइयों से लोग असन्तुष्ट रहते हैं। इनकी भीतरी कमजोरियों की बहुत कुछ जिम्मेवारी सरकार के ऊपर है। उसका यह फ़र्ज है कि वह जनता को अधिक योग्य और कार्य-कुशल बनाये। स्थानीय संस्थाओं के सुधार के लिये चन्द बातें निहायत जरूरी हैं। पहली चीज तो यह है कि सरकार सबके लिये नागरिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध करे। छोटी कक्षा से ही नागरिकता की शिक्षा दी जाय। कोरे किताबी ज्ञान से भोले भाले बच्चे अच्छे नागरिक तथा योग्य शासक नहीं बन सकते। हर गाँव में अनेक प्रकार की पञ्चायतें स्थापित की जायँ। ग्राम के सभी तजुरबेकार और योग्य व्यक्तियों की एक

कौंसिल बनाई जाय। वही इन कमीटियों के कामों की देख-भाल करे और मुक़दमों का फैसला करे। सरकारी कर्मचारी स्थानीय संस्थाओं की आज्ञा के बिना किसी कार्य में दख़ल न दें। यदि संस्थायें किसी काम में लापरवाही करें तो सरकार उन्हें चेतावनी दे सकती है। सरकार पैसे से इनकी पूरी मदद करे। हर ज़िले का शासन वहीं के निवासियों को सुपुर्द कर दिया जाय। थोड़े से सरकारी कर्मचारी उनकी देख-रेख के लिये रख दिये जायँ। जिन विषयों में सरकार कुछ सुधार करना चाहे उन्हें वह सलाह के रूप में स्थानीय संस्थाओं को दे सकती है। योग्य और विशेष जानकारी रखने वाले व्यक्तियों को वह इस कार्य के लिये नियुक्त कर सकती है कि वे स्थानीय बातों की खोज करके शासन को अधिक सुविधा-जनक तथा सरल बनावें। स्थानीय संस्थायें सरकार के इस कार्य में काफ़ी मदद दे सकती हैं। इससे ग्राम-व्यवसायों तथा अनेक ऐसी बातों में उन्नति हो सकती है जिनकी ओर सरकार को ध्यान देने का अवसर नहीं मिलता। साथ ही इन संस्थाओं में सम्मिलित निर्वाचन पद्धति भी आवश्यक है।

प्राचीन भारत और स्थानीय स्वराज

स्थानीय स्वराज के लिये हिन्दोस्तान प्रसिद्ध है। बृटिश राज्य से पहिले हिन्दू और मुसलमान दोनों कालों में यहाँ पञ्चायती राज की व्यवस्था थी। इसका विस्तृत वर्णन उन्नीसवें अध्याय में किया गया है। ग्राम और शहर दोनों के लिये दो प्रकार की संस्थायें थीं। शहरों के प्रबन्ध के लिये कई कमीटियाँ होती थीं। सबके ऊपर एक प्रधान कमीटी होती थी। महेन्जोदारो और हरप्पा नामक शहरों की खुदाई से पता चलता है कि शहरों का प्रबन्ध कितनी उत्तमता-पूर्वक किया जाता था। उनमें सफ़ाई, रोशनी, सड़कों आदि की व्यवस्था आजकल से अच्छी थी। शहर एक ख़ास नक़शे के अनुसार बसाये जाते थे। घरों की बनावट में इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि हर प्रकार की सुविधायें इनमें मौजूद हों। दूकानों की व्यवस्था एक नियम के अनुसार की जाती थी। एक प्रकार की चीज एक ही जगह बिक सकती थी। चारों ओर ऊँची और मज़बूत दीवारें थीं। पाटलिपुत्र के वर्णन में इस प्रकार की दीवारों का ज़िक्र किया गया है। शहर में प्रवेश करने के लिये एक या दो फाटक होते थे। इन पर पहरे की व्यवस्था रहती थी। रात में पहरेदार इनकी रखवाली करते थे। आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के न होते हुये भी यह व्यवस्था आजकल से कहीं अच्छी थी। शहर विभिन्न प्रकार के बग़ीचों

और वाटिकाओं से भरे होते थे। कोई आदमी बिना प्रयोजन शहरों में नहीं रह सकता था। हर नये यात्री का नाम और पूरा पता लिख लिया जाता था। शहरी लोगों का जीवन नियमित था। रात और दिन दोनों समय घंटे बजाये जाते थे। विशेष ख़तरे के समय एक खास घंटे से लोगों को इसकी सूचना दी जाती थी। चीजों का भाव ठीक करने के लिये अलग अलग कमीटियाँ होती थीं। सड़ी गली चीज़ें बेचने की सख्त मुमानियत थी। दूकानदार अपनी चीज़ें उचित भाव से महँगा नहीं बेच सकता था। हर शहर में एक कोतवाल और कुछ सिपाही रहते थे। प्रबन्ध का सारा काम शहर के निवासियों को सुपुर्द किया गया था। आम तौर से शहर नदियों के किनारे हुआ करते थे। इससे व्यापार में सुविधा होती थी।

गाँवों के प्रबन्ध के लिये स्थानीय पञ्चायतें बनी हुई थीं। हर गाँव में एक बड़ी पञ्चायत होती थी। इसके नीचे कमीटियाँ होती थीं। इन्हीं को सब काम सुपुर्द किया गया था। प्रत्येक गाँव में एक क्लर्क, एक मुखिया, दो पहरेदार, तथा तरह तरह के पेशे वाले रहते थे। सबको अपने अपने काम की जिम्मेवारी दी गई थी। गाँवों का जीवन सामूहिक था। नाई, धोबी, दर्ज़ी, बढ़ई, सुनार आदि पेशे वाले सबकी भलाई के लिये काम करते थे। ग्राम पञ्चायतें इनकी देख-रेख करती थीं। प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी और सुखी था। बादशाह तक को गाँव के मामलों में हाथ डालने की इजाजत न थी। सरकारी कर्मचारी ग्राम-पञ्चायतों की इज्जत करते थे। सरकारी महकमें में इन पञ्चायतों की बात बड़े ग़ौर से सुनी जाती थी। पुलीस को यह अधिकार न था कि वह गाँव के किसी निवासी पर मुक़दमें अथवा जुर्माना कर सके। जब तक ग्राम पञ्चायत आज्ञा न देती, तब तक गाँव के मामलों में किसी को दखल देने का अधिकार न था। उनके प्रबन्ध के लिये पंचायतों का घेरा नीचे से ऊपर तक फैला हुआ था। हर गाँव के अतिरिक्त १०, २० ५०, १००, २००, ५००, तथा १००० गाँवों की अलग अलग पञ्चायतें थीं। जब कोई बड़ा मामला पेश होता तो सैकड़ों गाँवों की पञ्चायतों से राय ली जाती थी। राज्य परिवर्तन के समय भी इन पञ्चायतों का ढाँचा एक-सा बना रहता है।

बृटिश राज्य के पहले हमारे देश में शासन की नीति भिन्न थी। शासक प्रजा को सन्तुष्ट और सुखी रखना चाहते थे। प्रजा के अधिकारों की रक्षा के लिये तरह तरह की व्यवस्थायें बनाई गई थीं। यह कहना ग़लत है कि आवागमन की सुविधा की कमी के कारण शासन की बागडोर

एकत्र नहीं की जा सकती थी। अशोक, शेरशाह और अकबर के शासन प्रबन्ध को देखते हुये यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय आवागमन की सुविधायें कम थीं। हर गाँव की रिपोर्ट बादशाह के कान तक पहुँचाई जाती थी। यहाँ तक कि वे गाँव के मुखियों को पहचान सकते थे और किसी किसी का नाम तक याद रखते थे। शासन की देख-रेख के लिये सरकारी कर्मचारी घोड़े पर चढ़कर गाँवों का दौड़ा करते थे। उनका उद्देश्य आज कल की पुलीस की तरह गाँव वालों को डरवाना न था। वे चुपचाप मुखिया के दरवाजे पर जाते और गाँव की सारी बातें दरियाफ्त कर बादशाह को इसकी ख़बर देते थे। ग्राम निवासियों को यह पता भी नहीं चलता था कि पञ्चायतों से ऊपर उनका कोई दूसरा भी शासक है। बादशाहों को इस बात का अभिमान था कि उनकी प्रजा अपने आप अपना शासन-प्रबन्ध कर सकती है। परन्तु बृटिश राज्य की नीति कुछ और है। इसके अन्दर प्रजा के अधिकार कम होते गये और स्थानीय संस्थायें नष्ट हो गईं। सारा दारोमदार इनेगिने सरकारी कर्मचारियों पर छोड़ दिया गया है। यदि एक मामूली सिपाही ज़िले के अफ़सर से कुछ फ़रियाद करे तो उसका मूल्य सारे गाँव वालों की फ़रियाद से अधिक समझा जाता है।

मुग़ल साम्राज्य के अन्दर स्थानीय स्वराज की महिमा कम न थी।

वर्तमान स्थानीय संस्थाओं का विकास

यह कहना ग़लत है कि अँग्रेज़ी राज के पहले स्थानीय संस्थायें दोषपूर्ण थीं। साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह ज़ाहिर किया है कि "प्राचीन ग्रामीण संस्थाओं की रचना संकुचित दृष्टिकोण से की गई थी। इनका कर्तव्य बहुत ही साधारण था और इनके अन्दर जातीयता की प्रधानता थी। इनका काम प्रजा से टैक्स वसूल करना, और जानमाल की रक्षा करना था। इससे नागरिक शिक्षा में कुछ भी सहायता नहीं मिलती थी और न शासन का ही भार हलका होता था।"

इस प्रकार के कथन में कोई दम नहीं है। प्राचीन स्थानीय संस्थाओं की प्रशंसा विदेशियों तक ने की है। जो संगठन हज़ारों वर्षों से चला आ रहा था, और जिसे तोड़ने की हिम्मत शेरशाह और अकबर ऐसे योग्य शासकों ने नहीं की, उसे संकुचित और बेकार कहना एक घोर अन्याय है। मैं यह मानता हूँ कि बृटिश राज्य के अन्दर स्थानीय संस्थाओं का संगठन किसी और तरह का है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मौजूदा सभी चीज़ें पहले से

अच्छी हैं। राजनीतिक स्वतन्त्रता की आवाज़ आज काफ़ी बुलन्द है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि बृटिश राज्य के पहिले हिन्दोस्तान में गुलाम बसते थे और उन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे। इस तरह की धारणायें ग़लत हैं और जो लोग प्राचीन भारतीय इतिहास से परिचित नहीं है उन्हें सभी चीज़ें बृटिस राज्य की देन मालुम पड़ती हैं।

ऊपर कहा गया है कि बृटिश राज्य की नीति कुछ और रही है। हर मामले में विदेशीपन की बू हमारे देश में मौजूद है। यह स्वाभाविक है कि "यथा राजा तथा प्रजा"। अँग्रेज़ों का आगमन समुद्री मार्गों से हुआ। व्यापार की सुविधा के लिये उनका ध्यान शहरों की ओर आकर्षित हुआ। १६८७ ई० में कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को यह आज्ञा दी कि वह मदरास शहर में एक कारपोरेशन की स्थापना करे। इस कारपोरेशन के सभी सदस्य नामज़द किये गये थे।। इसमें हिन्दोस्तानी और अँग्रेज़ दोनों थे। इसके बाद १७२६ ई० में कलकत्ता, मदरास और बम्बई में मेयर्स कोर्ट की स्थापना की गई। इनका काम शासन प्रबन्ध करना न था, बल्कि न्याय करने के लिये इनकी रचना की गई थी। १७७२ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार स्थानीय अफ़सरों तथा संस्थाओं को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने आधीन हिस्सों से टैक्स वसूल कर सकते हैं। १७६२ ई० में गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ता बम्बई तथा मदरास में शान्ति जज (Justices of the Peace) की स्थापना करे। इनका काम शहर की सफ़ाई, सड़कों की रक्षा तथा इसी तरह की स्थानीय बातों की देख-रेख करना था।

१८५६ ई० में बम्बई की म्युनिसिपलिटी में कुछ तबदीलियाँ की गईं। १८६२ ई० में फिर इसमें कुछ परिवर्तन किये गये। पहिले के अनुसार शहर के प्रबन्ध का भार शान्ति जज और एक वैतनिक कमिश्नर को दिया गया था। परन्तु दूसरे ऐक्ट में दो निर्वाचित सभाओं को शासन का भार सौंप दिया गया। पहिली सभा में ६४ सदस्य थे। आधे जनता द्वारा निर्वाचित किये गये और बाक़ी शान्ति जज तथा सरकार ने नामज़द किया था। एक सभा का नाम कारपोरेशन और दूसरी का शहर कौंसिल (Town Couucil) था। इसमें कुल १२ सदस्य थे। इसमें ८ कारपोरेशन द्वारा चुने गये थे और बाकी को सरकार ने नामज़द किया था। म्युनिसिपल कमिश्नर के अधिकार पहले की तरह बने रहे। आर्थिक विषयों में शहर कौंसिल प्रधान ठहराई गई थी। १८५० तथा १८५६ ई० में गवर्नर-जनरल की कौंसिल ने दो ऐसे कानून पास किये जिनका सम्बन्ध अन्य शहरों की

म्युनिसिपलिटियों से था। लार्ड मेयो के समय में स्थानीय संस्थाओं पर अधिक ध्यान दिया गया। उसका विचार था कि इन्हें अपना प्रबन्ध करने की पूरी आजादी मिलनी चाहिये।

स्थानीय स्वराज की स्थापना लार्ड रिपन के समय से मानी जाती है। १८८२ ई० में उसके एक प्रस्ताव के फलस्वरूप म्युनिसिपलिटियों का ढाँचा और उनका कर्तव्य बदल दिया गया। उसने अपना उद्देश्य ज़ाहिर करते हुये यह कहा कि, "स्थानीय संस्थाओं का उद्देश्य जनता को राजनीतिक शिक्षा देना है। इससे योग्य व्यक्ति अपने आप आगे बढ़कर शासन में हाथ बँटायेंगे।" यहाँ तक तो म्युनिसिपलिटी की बात रही। रिपन का ध्यान ग्राम पञ्चायतों तथा जिला बोर्डों की तरफ़ भी गया। १८७० ई० तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की स्थापना नहीं हुई थी। शहरों में म्युनिसिपलिटियाँ काम करती थीं, परन्तु गाँवों के प्रबन्ध की कोई स्थानीय व्यवस्था न की। पञ्चायतें तो थीं, लेकिन बृटिश सरकार उन्हें पुनः जीवित करने के पक्ष में न थी। उसका हर काम शहर से ही आरम्भ होता है। कमीटियाँ, दफ्तर, कचहरियाँ, स्कूल, लाइब्रेरी आदि सब कुछ शहर में ही होने चाहिये। यही वजह है कि गाँव की पंचायतें बृटिश राज्य में टूटती गईं। १८७० ई० में लार्ड मेयो के समय में यह प्रस्ताव पास किया गया कि विभिन्न प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं को कुछ शासन प्रबन्ध के अधिकार दे दिये जायँ। आर्थिक क्षेत्र में उन्हें छोटे मोटे अधिकार दिये गये थे। परन्तु अभी तक इनका कोई ठीक रूप नहीं बना था। लार्ड रिपन के समय में सबका पुनर्संगठन किया गया। सारे हिन्दोस्थान में ज़िला बोर्डों की स्थापना की गई। समय समय पर नये नये क़ानून पास किये गये और इन बोर्डों की बनावट में सुधार होते गये।

ज़िला बोर्डों में ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई और इनके अधिकार और कर्तव्य भी धीरे धीरे बदलते गये। निर्वाचन की प्रथा चलाई गई। उन्हें आर्थिक मामलों की कुछ स्वतन्त्रता देकर स्वावलम्बी बनने का अवसर दिया गया। कुछ विभागों के टैक्स उन्हीं की मर्ज़ी पर छोड़ दिये गये। उन्हें ख़र्च करने का अधिकार इन्हीं बोर्डों को दिया गया। प्रान्तीय सरकारों ने अपने अपने प्रान्तों में इनकी स्थापना और वृद्धि की। भारत सरकार इसमें हाथ नहीं डालती थी। इसीलिये विभिन्न प्रान्तों की स्थानीय संस्थाओं का स्वरूप अलग अलग दिखाई पड़ता है। उनके अधिकार और कर्तव्यों में भी फरक दिखाई पड़ते हैं। १९१९ ई० तक इतने कानून पास करने पर भी इन संस्थाओं का संगठन सन्तोष-जनक न था। १९०९ ई० में

इनकी जाँच के लिये एक कमीशन (Decentralization Commission) नियुक्त किया गया। उसकी रिपोर्ट में यह बात ज़ाहिर की गई कि स्थानीय संस्थाओं की शक्ति कम है और इन्हें अधिक स्वतन्त्र रखने की आवश्यकता है। भारतीय शासन का विकास इतना धीरे धीरे हुआ है कि छोटे छोटे अधिकारों को प्राप्त करने में जनता को वर्षों इन्तजार करना पड़ा है। जिला बोर्डों की हालत १६१६ ई० तक पहले की तरह बनी रही।

१६१८ ई० में भारत सरकार की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई जिसका उद्देश्य यह था कि ज़िला बोर्डों से सरकारी अफ़सरों का हाथ हटा दिया जाय। अब तक ज़िले का कलेक्टर बोर्ड का सभापति होता था और हर मामले में जनता को दबना पड़ता था। टैक्स लगाने तथा सफ़ाई रखने में भी सरकारी कर्मचारियों की मर्ज़ी पर निर्भर रहना पड़ता था। कहने के लिये जिला बोर्ड की स्थापना की गई थी, लेकिन हर मामले में सरकारी कर्मचारियों की बातें माननी पड़ती थीं। उनकी मर्जी के खिलाफ चलने का साहस जनता को नहीं होता था। १६१८ ई० के सुधार में इस बात की सिफ़ारिस की गई कि बोर्डों को कुछ और अधिकार प्रदान किये जायँ। निर्वाचकों की संख्या बढ़ा दी जाय और सरकारी अफ़सरों की धौंस दूर कर दी जाय। अब तक बोर्डों के चेयरमैन सरकार द्वारा नामजद किये जाते थे, (जो आमतौर से कलेक्टर होता था) लेकिन अब यह सिफारिश की गई कि बोर्ड के सदस्य स्वयं इन्हें निर्वाचित करें। इसी के फलस्वरूप १६१६ ई० के शासन सुधार में स्वायत्त शासन का विभाग प्रान्तीय सरकार की मातहती में एक मन्त्री को सौंप दिया गया। कलेक्टर का हाथ बोर्ड के कामों से हटा दिया गया।

प्रान्तीय सरकारें स्वायत्त शासन में अधिक रुचि लेने लगीं। जब से यह विभाग भारतीय मन्त्रियों को सौंप दिया गया तब से इसकी उन्नति बराबर होती गई है। १६२२ ई० में संयुक्त प्रान्त में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बिल पास किया गया। इसके अनुसार बोर्डों को टैक्स लगाने की अधिक शक्ति प्रदान की गई। पंजाब प्रान्त में ग्राम पंचायत या इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट कायम किये गये। बिहार तथा उड़ीसा में भी इसी तरह के सुधार किये गये। मध्यप्रान्त, आसाम, बंगाल, बम्बई आदि प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं में अनेक सुधार हुये।

अध्याय १७

स्थानीय संस्थाएँ

स्थानीय संस्थायें दो प्रकार की हैं। कुछ तो शहरों के लिये और कुछ ग्रामों के लिये। चूँकि दोनों की समस्यायें और भौगोलिक परिस्थिति भिन्न भिन्न है इसलिये इनके संगठन, कार्य तथा दृष्टिकोण में भी भेद है। ग्रामों में कार्य करने वाली संस्थाओं का नाम सभी सूबों में एकसा नहीं है। बृटिश प्रान्तों में हर ज़िले में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्थापित किये गये हैं, परन्तु आसाम में इसका नाम तालुका बोर्ड है। संयुक्तप्रान्त में ग्रामों के लिये दो प्रकार की स्थानीय संस्थायें बनाई गई हैं :—

स्थानीय संस्थायें

१—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और

२—ग्राम पंचायतें

इसी प्रकार शहरों के प्रबन्ध के लिये ४ प्रकार की स्थानीय संस्थायें हैं :—

१—कारपोरेशन

२—म्युनिसिपैलिटी

३—इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट और

४—पोर्ट ट्रस्ट

जहाँ तक इन संस्थाओं की संख्या का प्रश्न है इनमें किसी प्रकार के उलट फेर की ज़रूरत नहीं है और न गाँवों तथा शहरों में दस बीस अन्य संस्थाओं की आवश्यकता है। यदि इन्हीं ६ संस्थाओं का संगठन और इनके कार्य ठीक हो जायँ तो स्थानीय जनता को इनसे काफ़ी भलाई हो सकती है। अभी तक इन संस्थाओं में अनेक कमज़ोरियाँ हैं। जब तक हम इन्हें दूर न करेंगे तब तक इनके महत्व को समझना कठिन है। हमारे ही भाई और पड़ोसी इनमें काम करते हैं। वे हमारी समस्याओं से भली भाँति परिचित हैं। उनकी और हमारी दोनों की समस्यायें एक हैं। फिर भी उनसे हमें लाभ नहीं पहुँचता। इसका कोई न कोई कारण ज़रूर है। व्यक्तियों को हम दोषी इसलिये नहीं ठहरा सकते कि बारी बारी से सबको इनमें काम करने

के अवसर मिलते हैं। यदि दो चार व्यक्ति बुरे हुये तो यह सम्भव हो सकता है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इन संस्थाओं में आते ही लोगों की दृष्टि बदल जाती है। सबसे बड़ी कमज़ोरी मशीन की होती है। जैसा संगठन होगा वैसी ही कार्य-पद्धति होगी। इन संस्थाओं के संगठन में कुछ ऐसे सुधार होने चाहिये जिससे इनमें आने वाले व्यक्तियों को सच्चाई और ईमानदारी से काम करने का अवसर मिले। आरम्भ में इनमें काम करने वाले कर्मचारी सरकार द्वारा नामज़द किये जाते थे। उनका काम प्रान्तीय सरकार के हुक्मों की तामील करना था। परन्तु अब यह बुराई दूर कर दी गई है। लगभग सभी सदस्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक संस्था का अलग-अलग वर्णन करने से इनके संगठन और कार्य-पद्धति की ठीक ठीक जानकारी हो सकती है। पहले ग्राम संस्थाओं पर विचार किया जायगा।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की स्थापना

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की स्थापना १८७० ई० के बाद हुई है। पहले गाँवों का शासन पञ्चायतों द्वारा होता था। शासन की बागडोर को एकत्र करने के लिये, हर ज़िले में गाँवों के प्रबन्ध के लिये एक संस्था बनाई गई। इसी का नाम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है। बोर्ड शब्द से तीन बोर्डों का आभास होता है। किसी भी संगठन का नाम बोर्ड रक्खा जा सकता है, परन्तु यहाँ पर ज़िले में जो बोर्ड स्थापित किये गये हैं वे तीन प्रकार के हैं:—

ज़िला बोर्ड या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड

१.—प्रत्येक ज़िले में गाँवों का प्रबन्ध करने वाली सबसे बड़ी संस्था जिला बोर्ड कहलाती है। जिला बोर्ड को मध्यप्रान्त में जिला-कौंसिल कहते हैं।

ताल्लुका बोर्ड

२—इसे सब-डिवीजनल बोर्ड भी कहते हैं। इसका दर्जा जिला बोर्ड से छोटा होता है। ताल्लुका बोर्ड सभी प्रान्तों में नहीं पाये जाते हैं। ५० या १०० गाँवों के संगठन से इनकी उत्पत्ति होती है।

लोकल बोर्ड

३—प्रत्येक गाँव अथवा दो चार गाँवों के देख-रेख के लिये लोकल बोर्ड बनाये जाते हैं। वास्तव में इन्हें ग्राम पञ्चायत कहा जाय तो कोई ग़लती न होगी।

संयुक्तप्रान्त में जिला बोर्ड और ग्राम पञ्चायतें पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा संगठन गाँवों के शासन-प्रबन्ध के लिये नहीं बनाया गया है। हिन्दोस्तान गाँवों का देश कहा जाता है। लगभग ७ लाख गाँव

बृटिश भारत में पाये जाते हैं। ६० प्रतिशत व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। केवल नौकरी पेशे वाले तथा व्यापारी शहरों में रहते हैं। यदि पता लगाया जाय तो उनका भी स्थान थोड़े दिन पहले किसी न किसी गाँव में मिलेगा। हमारे देशवासियों का मुख्य पेशा खेती है। ७३ प्रतिशत जनता खेती करके अपना गुज़र करती है। खेती की सुविधा गाँवों में ही है, क्योंकि खेत शहरों में, नहीं लाये जा सकते। शहरों में तो रहने तक को ज़मीन नहीं मिलती खेती करना तो दूर रहा। इसीलिये लोगों को गाँवों में रहना पड़ता है। कोई भी भारतीय सरकार गाँवों की अवहेलना नहीं कर सकती। उसकी आमदनी का मुख्य ज़रिया मालगुज़ारी है। किसानों की ही आय पर सरकार का ख़र्च निर्भर है। इन्हीं की देख-रेख तथा भलाई के लिये ज़िला बोर्डों की स्थापना की गई है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का संगठन

बृटिश भारत में कुल २०७ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड हैं। इनमें ४८ केवल संयुक्तप्रान्त में हैं। संयुक्तप्रान्त को छोड़ कर कुछ प्रान्तों में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के नीचे ताल्लुका बोर्ड स्थापित किये गये हैं। इनकी संख्या ५८४ है। मदरास प्रान्त में इन दोनों बोर्डों के अलावे यूनियन बोर्ड बनाये गये हैं, जिनकी संख्या ४५५ है। जिला बोर्ड स्थापित करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को है। बिना उसकी आज्ञा के कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपना काम बन्द नहीं कर सकता।

१६१६ ई० के शासन सुधार में स्वायत्त शासन (Local Self-Government) का महकमा प्रान्तीय सरकार के एक भारतीय मन्त्री को दे दिया गया। तब से इसके संगठन में और भी सुधार होते गये। वर्तमान समय में इसका संगठभ निम्नलिखित प्रकार से किया गया है। प्रान्तीय स्वराज के स्थापित होने से जिला बोर्ड में नामजदगी का तरीक़ा दूर कर दिया गया है। केवल ११ प्रतिशत सरकारी कर्मचारी इसमें शामिल किये जाते हैं। शहरों को छोड़कर प्रत्येक जिला कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। हर क्षेत्र से दो या तीन सदस्य चुन लिये जाते हैं। इस प्रकार ४० या ४५ के लगभग जो चुने हुए सदस्य आते हैं उन्हीं को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य कहते हैं। इन्हीं की कमीटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कहलाती है। सदस्य अपने में से किसी को बोर्ड का सभापति चुन लेते हैं जिसे चेयरमैन कहते हैं। यदि वे चाहें तो जिले के किसी अन्य प्रतिष्ठित तथा योग्य व्यक्ति को चेयरमैन चुन सकते हैं। चेयरमैन के अतिरिक्त एक सहायक चेयरमैन भी चुना जाता है। वे अविश्वास का प्रस्ताव पास करके इन्हें अपने पद से हटा सकते हैं। ज़िला बोर्ड का चुनाव ३ वर्ष के लिये होता है, परन्तु प्रान्तीय

सरकार इसकी अवधि को बढ़ा सकती है। वर्तमान समय में प्रान्तीय स्वराज की विफलता तथा युद्ध के कारण बोर्डों की अवधि बढ़ा दी गई है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्यों का चुनाव साम्प्रदायिकता के आधार पर किया जाता है। हिन्दू और मुसलमानों के लिये निर्वाचकों की संख्या भिन्न भिन्न होती है। संयुक्तप्रान्त, आसाम तथा बम्बई में मुसलमान सदस्यों के लिये कुछ स्थान निश्चित कर दिये गये हैं। इन्हें चुनने का अधिकार केवल मुसलमान निर्वाचकों को है। किसी हिन्दू के लिये इन्हें वोट देने का अधिकार नहीं है। अन्य प्रान्तों में उनके निर्वाचकों की संख्या अलग नहीं है। केवल सदस्यों के लिये कुछ स्थान निश्चित कर दिये गये हैं कि इतने हिन्दू और इतने मुसलमान होंगे। बम्बई प्रान्त में मुसलमान निर्वाचकों का यह अधिकार दिया गया है कि यदि वे चाहें तो सम्मिलित रूप से सदस्यों का निर्वाचन कर सकते हैं। स्त्रियों, अछूतों तथा मुसलमानों के लिये स्थान सुरक्षित रक्खे जाते हैं। साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्वाचन प्रथा सर्वथा दूषित है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड गाँवों के प्रबन्ध के लिये बनाये गये हैं। अभी तक गाँवों में साम्प्रदायिक भावनायें नहीं हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों आपस में मिलकर रहते हैं। उन्हें यह ख़याल नहीं होता कि ये क्योंकर आपस में लड़ सकते हैं। यह समस्या केवल शहरी है। गाँवों में तो हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दूसरे के त्यौहारों में शरीक होते हैं और सभी एक दूसरे के सुख दुख के साथी होते हैं। ऐसी दशा में साम्प्रदायिक निर्वाचन की कोई आवश्यकता नहीं है। सच्चा और ईमानदार मनुष्य चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान, सबके बहुमत से चुना जा सकता है। कितने ही हिन्दुओं के गाँवों के मुखिये मुसलमान हैं और मुसलमानों के गाँवों के हिन्दू हैं। किसी को इसमें इतराज नहीं होता।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपना सब काम कमीटियों द्वारा करता है। जब बोर्ड की पहली बैठक होती है तो विभिन्न कार्यों के लिये अलग अलग कमीटियाँ बना दी जाती हैं। हर कमीटी में ३ या ४ सदस्य रख दिये जाते हैं। बोर्ड के सभी सदस्य बैठकर कमीटियों का निर्माण करते हैं। हर कमीटी अपना एक सभापति रखती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई, सड़क, पानी इत्यादि इत्यादि कमीटियाँ होती हैं। इन सबमें शिक्षा कमीटी बड़ी समझी जाती है। इसका सभापति शिक्षा विभाग का चेयरमैन कहलाता है। जिले भर के अपर तथा मिडिल स्कूल इसी की देखरेख में कार्य करते हैं। प्रतिवर्ष कितने ही नये नये स्कूल और सैकड़ों अध्यापक इसकी मर्ज़ी से खोले तथा भर्ती किये जाते हैं। इसीलिये शिक्षा विभाग का चेयरमैन जिले के कामों में बहुत बड़ा हाथ रखता है। यदि यह योग्य और अनुभवी हो तो अपने जिले की काफ़ी उन्नति कर

सकता है। इसी तरह हर विभाग की देखरेख के लिये एक कमीटी होती है। चेयरमैन इन सबका प्रधान होता है। बोर्ड के सदस्यों की बैठक महीने में एक बार होती है। आवश्यकता पड़ने पर यह किसी भी समय बुलाई जा सकती है।

प्रत्येक बोर्ड का एक मन्त्री होता है। वास्तव में सब कामों की देख-रेख यही करता है। बोर्ड के कर्मचारी इसकी अध्यक्षता में कार्य करते हैं। इसका स्थान वैतनिक होता है। इसके अतिरिक्त एक इंजीनियर, एक डाक्टर और एक स्वास्थ्य निरीक्षक इत्यादि कर्मचारी बोर्ड द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। बोर्ड के दफ़्तर में अनेक क्लार्क और चपरासी भी भर्ती किये जाते हैं। चेयरमैन और सदस्यों को छोड़कर बाक़ी सभी वैतनिक होते हैं। जिले में दौड़ा करने के लिये इन्हें वेतन के अतिरिक्त भत्ते भी दिये जाते हैं। यद्यपि चेयरमैन को वेतन नहीं दिया जाता फिर भी दौड़े के समय इसे प्रति मील के हिसाब से भत्ता दिया जाता है। जो भी व्यक्ति इस पद पर आते हैं उनकी इच्छा धन की नहीं होती है। केवल पद के लोभ से अथवा काम करने की इच्छा से लोग चेयरमैन बनने की ख़्वाहिश रखते हैं। इसके चुनाव के समय बोर्ड में काफ़ी चहल पहल रहती है। कभी कभी तो इसके लिये झगड़े फ़साद तक हो जाया करते हैं। दलबन्दियों का होना तो एक साधारण सी बात है। वास्तव में इन पदों पर पहुँच कर योग्य व्यक्ति ज़िले की काफ़ी सेवा कर सकते हैं, परन्तु कुछ लोग इससे अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से वहाँ जाते हैं। उनका उद्देश्य अपने मित्रों अथवा सम्बन्धियों को नौकरी तथा ठेकेदारी दिलाना होता है। हर साल बोर्ड में लाखों रुपये के ठीके दिये जाते हैं। इनमें काफ़ी मुनाफ़े और बचत की गुंजाइश रहती है। यद्यपि बोर्ड का यह नियम है कि कोई सदस्य स्वयं ठीका नहीं ले सकता, फिर भी दूसरों के नाम पर लोग इससे अनुचित लाभ उठाते हैं। चेयरमैन को अपने पद की रक्षा के लिये सदस्यों को खुश रखना पड़ता है। इन्हीं कारणों से बोर्डों के काम बड़ी ग़ैर ज़िम्मेवारी से किये जाते हैं। कभी कभी तो प्रान्तीय सरकार को इन्हें सचेत करना पड़ता है। फिर भी यदि कोई सुधार न हुआ तो वह इसे जिले के कलेक्टर की मातहती में दे देती है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य बनने के लिये हर उम्मीदवार को कुछ शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। उसके लिये अपने निर्वाचन-क्षेत्र में निर्वाचक होना आवश्यक है। कुछ ऐसी भी शर्तें रक्खी गई हैं जिनसे कुछ व्यक्ति अयोग्य ठहराये गये हैं। बोर्ड के सदस्यों के लिए निम्नलिखित शर्तें ठहराई गई हैं:—

१—प्रत्येक निर्वाचक के लिये बृटिश प्रजा का होना आवश्यक है।

२—उसकी आयु कम से कम २१ वर्ष होनी चाहिये।

३—उसे अपने जिले का स्थायी निवासी होना चाहिये।

४—वह कम से कम २५ रुपये का मालगुजार हो। या

५—५० रुपये का काश्तकार हो। या

६—जो सरकार को इनकम टैक्स देता हो। या

७—जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को टैक्स देता हो। या

८—जो हिन्दी या उर्दू की मिडिल परीक्षा अथवा अँग्रेजी की इन्ट्रेन्स परीक्षा पास हो।

आमतौर से सदस्यों के लिये जो निषेध बनाये गये हैं वे निर्वाचकों पर भी लागू होते हैं। पागल और दिवालिये इसके चुनाव में वोट नहीं दे सकते। जो पिछले साल का जिले का टैक्स न दिया हो वह वोट नहीं दे सकता। जिन्हें ६ महीने से अधिक की सजा मिली हो अथवा देश निकाल दिया गया हो वे वोट नहीं दे सकते। जिन्हें नम्बर १० के जुर्म में अपराधी ठहराया गया है वे वोट नहीं दे सकते। प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार है कि वह इन प्रतिबन्धों को हटा कर किसी व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्रदान कर सके। निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त बोर्ड में कुछ विशेष वर्गों के लोग नामजद भी किये जाते हैं। कांग्रेस सरकार चुनाव के मामले में अनेक परिवर्तन करना चाहती थी। उसका यह विचार था कि जिले की जनता जैसे बोर्ड के सदस्यों को चुनती है वैसे ही वह चेयरमैन को भी चुने। इसी प्रकार के अन्य सुधारों पर विचार हो रहा था। इसीलिये बोर्डों का चुनाव कुछ समय के लिये रोक दिया गया था। परन्तु मन्त्रियों के इस्तीफ़ा दे देने के कारण वे सारे सुधार जहाँ के तहाँ पड़े रह गये।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आय और व्यय

कोई संस्था अपने कार्य में तभी सफल हो सकती है जब उसके पास काफ़ी पैसे हों। ख़ास कर वह संस्था जिसे सभी काम पैसे से करने हैं, ग़रीब रह कर जनता की सेवा नहीं कर सकती। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की ज़िम्मेवारी का क्षेत्र बहुत बड़ा है। ज़िले में रहने वाले सभी प्रकार के लोगों की उन्नति की उसे ध्यान रखना पड़ता है। सबके स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता है। ऐसी दशा में बोर्ड के पास एक लम्बी आय होनी चाहिये। वर्तमान समय में इसकी आय के निम्नलिखित ज़रिये हैं:—

१—सरकारी इमदाद—प्रान्तीय सरकार जितना रुपया भूमिकर के रूप में ज़िले से वसूल करती है उस पर फी रुपया एक आना के हिसाब से यह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को दे देती है। मालगुज़ारी के साथ ही यह रक़म वसूल कर

ली जाती है और बाद में सरकार इसे बोर्ड के पास भेज देती है। संयुक्तप्रान्त के ज़िला बोर्ड अपनी आमदनी का ४६·५८ भाग सरकारी सहायता से पाते हैं।

२—कभी कभी प्रान्तीय सरकार किसी विशेष योजना को कार्यान्वित करने के लिये ज़िला बोर्डों को कुछ रक़म दे दिया करती है। इस तरह की सहायता स्थायी नहीं होती।

३—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ज़िले के ज़मींदारों अथवा काश्तकारों पर कर लगा सकते हैं। कुछ निश्चित रक़म से ऊपर जिनकी आय होती है उनसे बोर्ड सालाना कुछ टैक्स वसूल करती है।

४—देहात के बाजारों तथा नुमायशों पर कुछ टैक्स लगाया जाता है।

५—देहातों में चलने वाली सवारियों पर टैक्स लगाये जाते हैं। मोटर गाड़ी, इक्का तथा अन्य सवारियों पर कुछ निश्चित दर से टैक्स लगा दिया जाता है।

६—नदी, तालाब, घाट आदि की आमदनी बोर्ड की आय समझी जाती है।

७—ज़िले भर के स्कूलों से जो फ़ीस आती है वह बोर्ड की आमदनी समझी जाती है।

८—सड़कों के किनारे जो पेड़ होते हैं उनसे जो आमदनी होती है वह बोर्ड की आय समझी जाती है।

९—इन आमदनियों के अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को जिले से कुछ और भी थोड़ी बहुत आमदनी हो जाया करती है। हर सूबे में तथा हर ज़िले में इस प्रकार के ज़रिये भिन्न भिन्न होते हैं।

इस प्रकार डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को अपने आधे खर्चे के लिये प्रान्तीय सरकार पर निर्भर करना पड़ता है और बाक़ी के लिये ज़िले की ग्रामीण जनता पर। प्रकृति भी इन बोर्डों की आमदनी में काफ़ी सहायक हो सकती है। यदि जिले में बहुत सी नदियाँ, तालाब अथवा जंगल हैं तो इनसे उसकी आमदनी बढ़ सकती है। बृटिश भारत में डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों की संख्या २२ करोड़ से कुछ अधिक है। परन्तु इन बोर्डों की कुल वार्षिक आमदनी केवल १७ करोड़ रुपये हैं। अर्थात् ज़िला बोर्ड को प्रत्येक व्यक्ति लगभग १३ आना पैसे प्रति वर्ष देता है। ख़र्चे को देखते हुये यह आमदनी बहुत थोड़ी है। वैसे तो लोगों ने बोर्ड की आमदनी बढ़ाने के लिये तरह तरह के ज़रिये सोचा है, लेकिन हर मामले में जनता की ज़ेब ख़ाली

करना ठीक नहीं है। कुछ लोग अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीणों पर टैक्स लगाकर बोर्ड की आमदनी बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन यह सिद्धान्त ग़लत है। गाँवों में रहने वाले किसान और मज़दूरों की हालत आज ऐसी नहीं है कि अप्रत्यक्ष टैक्स लगाकर उनसे कुछ और लिया जाय। अच्छा होगा कि प्रान्तीय सरकार ज़िला बोर्डों का एक आना फ़ी रुपया भूमिकर न देकर दो आना फ़ी रुपया देवे। इससे बोर्डों की आय लगभग ड्योढ़ी हो जायेगी। इसके अलावे जब ज़िला बोर्ड सभी प्रकार की सवारियों पर टैक्स लगाती है तो रेलवे पर भी एक लम्बी रक़म टैक्स के रूप में लगाई जा सकती है। जिस ज़िले में जितनी कम या बेश रेलें है। उसी हिसाब से बोर्ड रेलवे कम्पनियों से टैक्स वसूल करे। प्रान्तीय सरकार को रेलवे बोर्ड से इस रकम को दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। बोर्डों की आमदनी का तीसरा ज़रिया यह हो सकता है कि ज़िले में कुछ औद्योगिक कार्यों की वृद्धि की जाय। गाँवों में व्यवसाय की कमी है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तरह तरह के व्यवसाय खोलें और उनसे यथा उचित टैक्स वसूल करें। इन ज़रियों के अलावे बार बार किसानों और मज़दूरों की जेब टटोलना इस विकट ग़रीबी में एक बहुत बड़ा अन्याय है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को निम्नलिखित ख़र्चे बर्दाश्त करने पड़ते हैं :—

१—ज़िले में लोअर कक्षा से लेकर मिडिल स्कूल तक का ख़र्च।

२—कृषि की उन्नति के लिये पानी का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिये कुयें और तालाब बनवाने पड़ते हैं।

३—बोर्ड के कर्मचारियों को वेतन देना पड़ता है।

४—स्वास्थ्य तथा बीमारियों के लिये अस्पतालों और डाक्टरों का प्रबन्ध करना पड़ता है।

५—सफ़ाई की देखरेख के लिये अफ़सर नियुक्त करने पड़ते हैं, तथा नुमाइशों और मेलों का विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है।

६—ज़िले में सड़कें बनवानी पड़ती हैं और उनके किनारे पेड़ तथा फल-फूल लगवाने पड़ते हैं।

७—अकाल तथा महामारी के अवसरों पर विशेष रूप से ख़र्च का प्रबन्ध करना पड़ता है।

८—इनके अतिरिक्त व्यवसाय आदि की उन्नति के लिये कुछ रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं।

स्थानीय संस्थाओं के कर्तव्यों का वर्णन करते हुये प्रो० कन्हैया लालजी वर्मा लिखते हैं "स्थानीय स्वराज की संस्थायें तरह तरह के काम करती हैं। उन सबका अलग अलग हाल लिखने के लिये बहुत ज्यादा जगह की ज़रूरत है। अतएव सुविधा के लिये हम उनका वर्णन निम्नलिखित ४ समूहों में करेंगे :—

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्तव्य

(१) सार्वजनिक स्वास्थ्य के काम ;
(२) सार्वजनिक सुभीते के काम ;
(३) सार्वजनिक रक्षा के काम ; और
(४) सार्वजनिक शिक्षा के काम।

प्रोफ़ेसर वर्मा के इस कार्य विभाजन से मैं सर्वथा सहमत हूँ। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्तव्यों की कोई निश्चित सूची नहीं बनाई जा सकती। कारण यह है कि जो संस्था जनता की सेवा के लिये बनाई गई है उसके कर्तव्य गिने नहीं जा सकते। यह बात बोर्ड की शक्ति और कार्य-कुशलता पर निर्भर है कि वह कहाँ तक अपने ज़िले को उन्नति कर सकता है। यदि कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड चाहे तो अपने उद्योग से ज़िले की अनेक प्रकार से उन्नति कर सकता है। भौगोलिक परिस्थिति तथा आर्थिक प्रबन्ध के अनुसार इसके कर्तव्य भिन्न भिन्न हैं। अध्ययन की सुविधा के लिये इसके कर्तव्यों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। एक तो आवश्यक और दूसरे अनावश्यक। पहिली कोटि में वे कर्तव्य हैं जिन्हें करने के लिये प्रत्येक ज़िला बोर्ड बाध्य है। यदि इनके करने की क्षमता उसमें नहीं है तो उसकी स्थिति क़ायम नहीं रह सकती। प्रान्तीय सरकार को विवश होकर उसका प्रबन्ध अपने हाथों में लेना होगा। दूसरे प्रकार के कर्तव्य वे हैं जिनका करना और न करना बोर्ड की इच्छा पर है। यदि वह इन्हें करता है तो उससे ज़िले की अच्छी उन्नति हो सकती है। लगभग सभी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अनावश्यक कर्तव्यों में से अधिक से अधिक करने की कोशिश करते हैं। कारण यह है कि 'अनावश्यक कर्तव्य' का तात्पर्य यह नहीं है कि वे ग़ैर-ज़रूरी हैं और उन्हें करने की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि पहले आवश्यक कर्तव्यों की ओर ध्यान दिया जाय और फिर अनावश्यक कर्तव्यों की तरफ़। पहिले प्रकार के कर्तव्यों को ठुकरा कर कोई बोर्ड दूसरे प्रकार के कर्तव्यों को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकता।

आवश्यक कर्तव्यों को निम्नलिखित ६ भागों में बाँट सकते हैं :—

(१) आवागमन के साधनों को बनाना। अर्थात् ज़िले में सड़कों की व्यवस्था करना।

(२) अस्पताल, औषधालय, बाज़ार, धर्मशाला, तथा अन्य सामाजिक जगहों को बनाना और इन्हें चलाने की व्यवस्था करना।

(३) सार्वजनिक कुयें, तालाब तथा अन्य स्थानों की मरम्मत करना।

(४) अपर तथा मिडिल कक्षा तक शिक्षा दिलाना।

(५) स्वास्थ्य, सफ़ाई तथा बीमारियों के टीके दिलवाना।

(६) सड़कों के किनारे पेड़ लगवाना और इनकी देख-रेख करना।

इन आवश्यक कर्तव्यों के अतिरिक्त बोर्ड की कुछ और भी कार्य लोक प्रियता के निमित्त करने पड़ते हैं। उसके पास यदि पैसे हैं और उसके कर्मचारी इन्हें करने की क्षमता रखते हैं तो वह इन्हें किये बग़ैर नहीं रह सकता। बोर्ड के सभी सदस्य अवैतनिक होते हैं। चेयरमैन को छोड़कर उन्हें किसी प्रकार का भत्ता भी नहीं मिलता। इसलिये बोर्ड में आने का उनका यही मन्तव्य होता है कि जनता की अधिक से अधिक भलाई करें। यह स्वाभाविक है कि सार्वजनिक कार्य सबको आकर्षित करते हैं। थोड़ी भी गुंजाइश हुई तो सदस्य अनावश्यक कार्यों में से किसी को भी अपनाने में अपना गौरव समझते हैं। अनावश्यक कार्यों की सीमा अनन्त है। केवल समझने की सुविधा के लिये हम उन्हें ४ कोटि में रख सकते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त भी बहुत से कार्य जिले की भलाई के लिये किये जा सकते हैं। अनावश्यक कर्तव्यों की ४ कोटियाँ :—

१—अकाल तथा महामारी के समय जनता की सेवा करना। प्रत्येक बोर्ड अपनी शक्ति के अनुसार इस कार्य को कर सकता है। स्थानीय संस्था के नाते वह अपने पड़ोसी को भूखे, नंगे तथा बीमार नहीं देख सकता।

२—यदि किसी ज़िले में बिजली और सड़कों का अच्छा प्रबन्ध है तो वहाँ का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ट्रेमगाड़ी, टेलीफोन, छोटी मोटी रेलवे तथा रेडियो आदि का प्रबन्ध कर सकता है।

३—बोर्ड चाहे तो अपने ज़िले में अच्छे प्रकार के अन्न के बीज, जानवर, घोड़े तथा तरह तरह की उन्नति के कार्य कर सकता है। कृषि की उन्नति के लिये वह देहातों में खेती की नुमायश लगवा सकता है। किसानों की भलाई के लिये वह नमूने की खेती का प्रबन्ध कर सकता है।

४—जनता के सुख और उसकी उन्नति के लिये वह अन्य कार्यों को अपने हाथों में ले सकता है।

कर्तव्यों के इस विभाजन में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सभी कार्य आ जाते हैं।

अपने को लोकप्रिय बनाने के लिये यह जितने कर्तव्यों को चाहे कर सकता है। इसी अध्याय के अन्त में इस बात पर थोड़ा विचार किया गया है कि कहाँ तक मौजूदा बोर्ड इन्हें कर रहे हैं और क्या कारण है कि ये अभी तक लोकप्रिय नहीं हैं। इन कर्तव्यों को पूरा करने के लिये अच्छे कर्मचारियों तथा एक लम्बी आय की आवश्यकता है। मौजूदा बोर्डों में इन दोनों की कमी है। प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकार के कानों में जो बातें देर से पहुँच सकती हैं उन्हें तुरन्त करने का अवसर इन्हीं बोर्ड के कर्मचारियों को मिलता है। हर समय जनता के घनिष्ठ सम्पर्क में रहने के कारण कोई भी अपनी तकलीफ़ों को इसके सामने पेश कर सकता है। थोड़ी भी असावधानी हुई कि बोर्ड को इसकी इत्तला पहुँचा दी जाती है। इसलिये बोर्डों को जनता के सन्तोष के लिये बहुत ही सतर्क और तत्पर रहना पड़ता है। सरकार का जो विभाग जनता के जितने ही निकट होता है वह उतना ही बदनाम होता है, परन्तु साथ ही उसे यह भी अवसर रहता है कि वह जनता का सबसे अधिक प्रीति-भाजन बन सके। इसके लिये उसे साफ़ दिल और नेकनीयत रहना पड़ता है।

ग्राम पंचायतें

ग्राम की स्थानीय संस्थाओं में दूसरा दर्जा ग्राम पंचायतों का है। इनका महत्व ज़िला बोर्ड से कम नहीं है। भारतीय इतिहास में इन पंचायतों का वर्णन काफ़ी किया गया है। यदि इस देश की प्राचीन राजनीति को ग्रामीण कहा जाय तो कोई अनुचित न होगा। कारण यह है कि ग्राम पंचायतों पर ही हिन्दू और मुसलमान बादशाह अपने शासन के लिये निर्भर थे। जो स्थान आज ज़िला बोर्ड को प्राप्त है उससे कहीं बड़ा स्थान पंचायतों को किसी समय प्राप्त था। बृटिश राज्य में इनका महत्व कम हो जाने से हम अपनी पुरानी राजनीति को नहीं भूल सकते। वर्तमान धारा-सभाओं की चहल-पहल तथा दफ़्तरों की बढ़ती की चकाचौंध में प्राचीन ग्राम पंचायतें हमारी नज़रों से ओझल नहीं हो सकतीं। केवल चुनाव और मताधिकार को देखकर हम एकता और समानता के सच्चे अर्थ को नहीं भूल सकते। जिस समय इन ग्राम पंचायतों का बोलबाला था, और शासन की बागडोर सीधे जनता के हाथ में दी गई थी, उस समय मौजूदा राजनीतिक विकारों का कहीं पता भी न था। प्रजातन्त्रवाद के नाम पर आज साम्राज्यशाही की स्थापना की जाती है और अधिकार का बहाना लेकर जनता की बची खुची हस्ती पर भी आघात किया जाता है, परन्तु पंचायती राज्य में इस तरह के ढोंग की गुंजाइश न थी। प्रजा अपनी इच्छानुसार अपना शासन करती थी।

प्रत्येक गाँव एक छोटे से राष्ट्र के मानिन्द था। वहीं के निवासी अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक कठिनाइयों को सुलझाते थे। देश की सरकार इनसे अलग न थी। राजा हर तरह से इनकी सहायता करते थे। जिस प्रजातन्त्रवाद की खोज में पाश्चात्य प्रदेश निवासी आज सदियों से दीवाने हो रहे हैं उसकी स्थापना हमारे देश में आज हज़ारों वर्ष पहले हो चुकी है। हमारी कमज़ोरी से यदि वे संस्थायें आज नष्ट हो गई हैं तो हम फिर उन्हें स्थापित कर सकते हैं। ये ग्राम पंचायत क्या हैं और इनके क्या क्या कर्तव्य हैं, इसका पूरा वर्णन अगले अध्याय में किया गया है।

शहरी स्थानीय संस्थायें शहरों के प्रबन्ध के लिये चार स्थानीय संस्थायें बनाई गई हैं :—

कारपोरेशन, म्युनिसिपल बोर्ड, इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट और पोर्ट ट्रस्ट। कुछ शहरों में कारपोरेशन स्थापित किये गये हैं; कहीं पर म्युनिसिपल बोर्ड हैं; कुछ शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड और इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट दोनों हैं। लेकिन कोई ऐसा शहर नहीं है जहाँ इम्प्रूभमेंट हो किन्तु म्युनिसिपल बोर्ड न हो। म्युनिसिपल बोर्ड और कारपोरेशन के अलावे कुछ बड़े बड़े व्यापारी शहरों में पोर्ट ट्रस्ट बनाये गये हैं। पोर्ट ट्रस्ट आमतौर से उन्हीं शहरों में बनाये जाते हैं जो समुद्र के किनारे हैं और जहाँ विदेशों से माल आते जाते हैं। इन चारों प्रकार की संस्थाओं की स्थापना शहर की समस्याओं को हल करने के लिये की गई है। इसलिये इनके संगठन और कर्तव्यों की चर्चा करने के पहिले हम शहरी जीवन की ओर थोड़ा दृष्टिपात करें। तभी हमें यह बात समझ में आ सकती है कि कहाँ तक ये संस्थायें अपने कर्तव्य का पालन कर रही हैं।

हिन्दोस्तान की अधिकतर जनता गाँवों में रहती है। कुछ थोड़े से लोग नौकरी तथा व्यापार के लिये शहरों में निवास करते हैं। संसार के अन्य देशों में ऐसी बात नहीं है। केवल चीन एक ऐसा देश है जहाँ की ८० प्रतिशत जनता खेती का काम करती है। बाक़ी मुल्क व्यापारी हैं। उनका काम विदेशों के लिये चीज़ें बनाना है। यदि वे ऐसा न करें तो भूखों मर जायँ। उनके यहाँ खेती के लिये ज़मीन नहीं है। सर्दी और पहाड़ी प्रान्त होने के कारण वहाँ खेती नहीं हो सकती। इसीलिये वे मुल्क नवीन वैज्ञानिक साधनों का सहारा लेकर तरह तरह की चीज़ें बनाते हैं और उन्हीं को बेच कर अपना गुज़र करते हैं। यही वजह है कि उन्हें विवश होकर बिजली तथा अन्य साधनों के लिये शहरों में ही

शहरों की वृद्धि और उनकी समस्याएँ

रहना पड़ता है। फ्रांस में लगभग ५० प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं। इंगलैंड की ८० प्रतिशत जनता शहरों में निवास करती है। इसी तरह अन्य योरपीय देशों तथा अमेरिका में अधिक से अधिक आदमी शहरों में निवास करते हैं। परन्तु हिन्दोस्तान में ऐसी बात नहीं है। यहाँ केवल ११ प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं। बाक़ी ८९ प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। बम्बई प्रान्त में शहरी आबादी हिन्दोस्तान में सबसे अधिक है। २२·६ प्रतिशत जनता शहरों में रहती है। बिहार व उड़ीसा प्रान्त में शहरी जन-संख्या सबसे कम है। वहाँ केवल १·७ प्रतिशत लोग शहरों में रहते हैं। निम्नलिखित ख़ाके से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी कि बृटिश भारत में शहरी आबादी कितनी कम है :—

प्रान्त	प्रतिशत शहरों की जन संख्या	प्रतिशत गाँवों की जन-संख्या
बम्बई	...२२·६	...७७·४
मद्रास	...११·८	...८८·२
पंजाब	...११·८	...८८·२
संयुक्त प्रान्त	...१०·२	...८९·२
मध्य प्रदेश	... ८·५	...९१·५
बंगाल	... ६·५	...९३·५
आसाम	... ३·४	...९[illegible]·६
बिहार व उड़ीसा	... १·७	...९८·३

हिन्दोस्तान में केवल ७ ऐसे बड़े शहर हैं जिनकी आबादी ४ लाख से ऊपर है। ३९ शहरों की आबादी १ लाख से अधिक है। कलकत्ते की आबादी हिन्दोस्तान के सभी शहरों से बड़ी है। इसकी आबादी २१ लाख के लगभग है। यह संसार के ७ बड़े शहरों में माना जाता है। लंदन में लगभग ८५ लाख आदमी रहते हैं। न्यूयार्क शहर की आबादी ८२ लाख से कुछ ऊपर है। संसार के तीसरे बड़े शहर टोकियो की आबादी ६९ लाख ३० हज़ार है। बर्लिन की जनसंख्या ४३ लाख १२ हज़ार है। पेरिस की जनसंख्या २८ लाख ७७ हज़ार है। मास्को में २८ लाख आदमी रहते हैं। इन शहरों की जनसंख्या को देखते हुये यह साफ़ ज़ाहिर है कि हिन्दोस्तान के शहर इनके सामने मामूली गाँव से हैं। फिर भी शहरों की समस्या हर जगह एक है। कहीं बड़े पैमाने पर और कहीं छोटे पैमाने पर निवासियों की रक्षा और उनकी सफ़ाई आदि का प्रबन्ध सबको करना पड़ता है। जहाँ थोड़ी सी जगह में बहुत से लोग निवास करते हैं, और सभी व्यक्ति व्यापार से ही अपना

गुज़र करना चाहते हैं, उनकी सफ़ाई और स्वास्थ्य का ध्यान विशेष रूप से रखना होगा। पिछले बीस वर्षों से प्रत्येक देश की आबादी बढ़ती गई है। सबके सामने यह बहुत बड़ी समस्या है कि इतनी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये भोजन तथा रहने की उचित व्यवस्था क्या हो। कुछ समय पहिले जापान ने एक १० वर्ष की योजना बनाई थी। इसका उद्देश्य यह था कि १० वर्ष के अन्दर प्रत्येक कुटुम्ब में कम से कम ५ बच्चे ज़रूर हो जाने चाहिये। जहाँ संसार के मुल्क अपनी आबादी को घटाने की चिन्ता में हैं, वहाँ जापान की यह नीति कुछ समझ में नहीं आती। हमारे देश की भी जन संख्या काफ़ी बढ़ रही है। १९२१ ई० में हम ३३ करोड़ के लगभग थे; परन्तु १९३१ में ३६ करोड़ के लगभग तथा गत १९४१ की गणना में हम ४० करोड़ के लगभग पहुँच गये।

जब किसी देश की आबादी बढ़ती है तो गाँव और शहर दोनों पर एकसा प्रभाव पड़ता है। गाँव में खेतों की सीमा निश्चित है। जब आबादी बढ़ेगी तो यह स्वाभाविक है कि हर किसान को जोतने की ज़मीन कम मिलेगी। इससे ग़रीबी और बेकारी फैलेगी। आज भी किसानों के सामने यह समस्या मौजूद है। हर किसान के पास हिन्दोस्तान में अनुपात के हिसाब से एक एकड़ भी ज़मीन नहीं है। फिर भी हमें इससे घबड़ाने की ज़रूरत नहीं है। जब कि जापान की १ करोड़ ७० लाख एकड़ ज़मीन ५ करोड़ ६० लाख आदमियों को भोजन और वस्त्र दे रही है तो हमारे देश को क्या चिन्ता है। शहर की आबादी पर इसका गहरा असर पड़ा है। मौजूदा समय में शहरों की संख्या हमारे देश में बढ़ रही है। इसके कई कारण हैं। व्यापार और व्यवसाय की वृद्धि से अधिकतर लोग शहरों में रहते हैं। गाँवों में बेकारी और ग़रीबी के कारण लोग शहरों में चले आते हैं। वहीं नौकरी अथवा तिजारत करके अपना गुज़र करते हैं। शिक्षा तथा शासन-प्रबन्ध की सभी संस्थायें शहरों में स्थापित की गई हैं। उदाहरण के लिये इलाहाबाद ज़िले को ले लीजिये। समूचे ज़िले में ५ हाई स्कूल और एक या दो छोटे मोटे कारख़ाने होंगे। परन्तु अकेले इलाहाबाद शहर में २२ हाई स्कूल, ६ कालेज और एक यूनीवर्सिटी है। इनके अतिरिक्त कचहरियों और कारख़ानों की तो कोई बात ही नहीं है। सभी तरह की सुविधायें शहरों में बनाई गई हैं। बृटिश सरकार गाँवों से उदासीन रही है। उसकी नीति शहरी है। इसीलिये गाँवों की ओर कम ध्यान दिया गया है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि लोग शहरों का ही आश्रय लें। इस समय शहरों की आबादी बढ़ती जा रही है। रेल आदि के चलने से नये नये

व्यापारी शहर बढ़ते जा रहे हैं। इनके प्रबन्ध के लिये सरकार को चिन्ता करनी पड़ती है।

शहरों में अनेक समस्यायें हैं। लाखों की तादाद में जहाँ एक ही जगह लोग रहते हैं वहाँ तरह तरह की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। सबसे पहले तो उनके रहने के लिये उचित घर चाहिये। अगर वे गन्दे मकानों तथा गन्दी गलियों में रहते हैं तो नाना प्रकार की बीमारियाँ फैलेंगी। इसके बाद इक्के, गाड़ी, मोटर आदि के लिये अच्छी अच्छी सड़कें चाहिये। यदि सड़कें धूल से भरी हुई हों तो यात्रियों को अनेक असुविधायें होंगी। गाँवों में तो टेढ़े मेढ़े रास्तों से भी काम चल जाता है, क्योंकि न तो वहाँ मोटरें चलती हैं और न तिजारती सामानों का आयात और निर्यात होता है, लेकिन शहरों में तो २४ घंटे इक्के, ताँगे, मोटर, ठेले आदि इधर से उधर दौड़ते रहते हैं। रोशनी और हवा के लिये ख़ास तौर से प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि रोशनी न हो तो रात में डाँके पड़ सकते हैं। शहर की दूकानों में हज़ारों लाखों रुपये के सामान बन्द रहते हैं। इसकी रक्षा के लिये प्रकाश का पूरा प्रबन्ध करना पड़ता है। हवा न मिलने से तरह तरह के रोग फैलेंगे। लोगों का स्वास्थ्य ख़राब होगा। इसलिये चौड़ी सड़कों और पार्क आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। लोगों की रक्षा के लिये पुलीस आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। इतनी बड़ी आबादी के लिये कुयें से पानी देना मुश्किल है। यदि किसी कुयें का पानी ख़राब हुआ और पीने वालों में बीमारी फैली तो सारा शहर उसका शिकार बनेगा। इसलिये साफ़ और स्वास्थ्य-वर्धक जल की व्यवस्था निहायत ज़रूरी है। दूकानों के प्रबन्ध के लिये कुछ नियम उपनियम जब तक न बनाये जायँ तब तक सफ़ाई और स्वास्थ्य की व्यवस्था ठीक नहीं की जा सकती है। इस बात का ध्यान रखना होगा कि सड़ीगली चीज़ें न बिकने पायें और एक प्रकार की दूकानें एक ही कतार में हों।

कुछ दिनों से हिन्दोस्तान में साम्प्रदायिक झगड़े ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं। यह समस्या देहातों में उतनी नहीं है जितनी शहरों में। शहरों में कभी कभी त्यौहार अथवा उत्सव पर दंगे फ़साद हो जाने का डर रहता है। शहर की दूकानें हफ्तों बन्द हो जाती हैं, जगह जगह पर आग लगा दी जाती है, एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय वालों पर नाना प्रकार से प्रहार करते हैं, लोगों को अपने घरों से निकलने की मनाही कर दी जाती है, इत्यादि इत्यादि कठिनाइयाँ शहर निवासियों को बर्दाश्त करनी पड़ती हैं। शहरों में अपराध की संख्या अधिक होती है। धनी और ग़रीब में ज़मीन आसमान

का अन्तर होता है। एक ओर टूटी फूटी झोंपड़ियाँ होती हैं, लोग जानवर की तरह ठेले खींच कर और सड़कें कूट कर अपना गुज़र करते हैं, लेकिन दूसरी ओर आलीशान इमारतें होती हैं, और लोग आराम से ज़िन्दगी बसर करते हैं। धनी वर्ग की मनोवृत्ति अधिक रुपये कमाने की होती है। अपने स्वार्थ के लिये ग़लत बातों का प्रचार किया जाता है। इसलिये मज़दूरों और धनियों की समस्यायें भी शहरों में कम नहीं हैं। सरकारी कर्मचारियों को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि ग़रीबों और अनाथों का उचित प्रबन्ध हो और व्यापारी बेजा तरीक़े पर रुपये न कमायें। इन्हीं समस्याओं के अन्तर्गत शहरों की कुछ और भी छोटी मोटी समस्यायें हैं। इन्हें सुलझाये बिना नागरिक सुख और शान्ति से नहीं रह सकते।

इन्हीं समस्याओं को हल करने के लिये कलकत्ता, करांची, बम्बई और मदरास शहरों में कारपोरेशन की स्थापना की गई है। हिन्दोस्तान में कुल ४ कारपोरेशन और ७८१ म्युनिसिपल बोर्ड हैं। संयुक्त प्रान्त में म्युनिसिपलिटियों की संख्या ८५ है। हिन्दोस्तान की म्युनिसिपलिटियों के अन्दर कुल २ करोड़ १० लाख आदमी रहते हैं। छोटे छोटे क़स्बों में टाउन एरिया की स्थापना की गई है। छोटे पैमाने पर ये भी वही काम करती हैं जो म्युनिसिपल बोर्ड करते हैं। कुछ बड़े शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड के अलावे इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट भी स्थापित किये गये हैं। कलकत्ता, बम्बई, मदरास, रंगून, करांची, चटगाँव तथा अदन में इस प्रकार के पोर्ट ट्रस्ट हैं। ये संस्थायें अपनी अपनी सीमा के अन्दर शहरों का प्रबन्ध करती हैं। यद्यपि इनके प्रयत्न से शहर की सारी समस्यायें हल नहीं हो जातीं फिर भी यदि ये अपना काम बन्द कर दें तो शहर की जनता एक दिन भी नहीं रह सकती। ६ मार्च सन् १९४१ ई० को इलाहाबाद में बिजली घर में आग लग गई। पानी और रोशनी दोनों लगभग २४ घंटे के लिये बन्द हो गये थे। मालूम पड़ता था मानों लोग पागल से हो रहे हैं।

कारपोरेशन

कलकत्ता, बम्बई, मदरास और करांची में कारपोरेशन स्थापित किये गये हैं। इन शहरों में म्युनिसिपलिटियाँ नहीं हैं। कारपोरेशन एक प्रकार की म्युनिसिपल बोर्ड है। इसके काम वे ही हैं जो म्युनिसिपलिटी के। चूँकि बड़े शहरों के प्रबन्ध के लिये एक प्रभावशाली अथवा मज़बूत सगठन की ज़रूरत है, इसलिये वहाँ कारपोरेशन बनाये गये हैं। किसी एक कारपोरेशन के संगठन से यह बात साफ़ हो जायेगी कि इनका संगठन कैसे किया गया है। बक़ी कारपोरेशनों का सूक्ष्म वर्णन कर दिया जायगा। जहाँ तक इनके कर्तव्यों का सवाल है, यह बात म्युनिसिपल बोर्ड के कर्तव्य से स्पष्ट हो जायेगी। शहर

चाहे छोटे हों अथवा बड़े, सबकी समस्या एक सी है। कारपोरेशन और म्युनिसिपलिटी के कर्तव्य में कोई भेद नहीं है। इनके अधिकारों में थोड़ा बहुत फ़रक ज़रूर है।

कलकत्ता कारपोरेशन

कलकत्ते की आबादी २१ लाख के लगभग है। इसके प्रबन्ध के लिये यहीं के निवासियों की एक बोर्ड बनाई गई है। जिसका नाम कारपोरेशन है। कलकत्ता कारपोरेशन में कुल ६२ सदस्य हैं, जिनमें ७७ जनता द्वारा चुने गये हैं और १० को बंगाल की सरकार ने नामज़द किया है। इन ८७ सदस्यों को कौंसिलर कहते हैं। ये ८७ सदस्य एक साथ बैठकर ५ अन्य अनुभवी आदमियों को चुनते हैं। इस प्रकार ६२ सदस्य शहर का सारा प्रबन्ध करते हैं। सभी सदस्य ३ साल के लिये चुने अथवा नामज़द किये जाते हैं। कारपोरेशन के सदस्य अपना सभापति और उपसभापति स्वयं चुनते हैं। ये दोनों पदाधिकारी इसके सदस्यों में से चुने जाते हैं। इनका चुनाव प्रतिवर्ष होता है। सभापति तथा उपसभापति का नाम मेयर और डिप्टी मेयर है। इन पदाधिकारियों को वेतन नहीं दिया जाता। कारपोरेशन सारे कामों की देख-रेख रखने तथा चलाने के लिये एक वैतनिक पदाधिकारी नियुक्त करता है। जिसे एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर कहते हैं। इसके अतिरिक्त एक इंजीनियर, एक स्वास्थ्य अफ़सर, एक मन्त्री और एक सहायक एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर होते हैं। इन सबको कारपोरेशन स्वयं नियुक्त करता है, परन्तु प्रान्तीय सरकार से इनकी मंजूरी लेनी पड़ती है। प्रतिवर्ष वह अपने सदस्यों की १० कमेटियों द्वारा अपना कार्य करता है।

कारपोरेशन के सदस्यों का चुनाव उसी प्रकार होता है जैसे म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरों का। वोट देने का अधिकार अधिक से अधिक लोगों को दिया गया है। कहा जाता है कि 'बृटिश साम्राज्य के अन्दर दूसरे दर्जे के शहर कलकत्ते में स्वराज की स्थापना की गई है।" जो कुछ भी हो अभी तक शहर के सभी बालिग़ व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। मतदाताओं के लिये टैक्स, आय, तथा शिक्षा की शर्त लगाई गई है। मद्रास में केवल ५ प्रतिशत निवासियों को वोट देने का अधिकार है। बम्बई शहर में १० प्रतिशत नगर निवासी वोट दे सकते हैं।

कलकत्ता कारपोरेशन की आय २ करोड़ रुपये सालाना से कुछ अधिक है। यह आय विभिन्न मदों से होती है। इसके पहिले मेयर देश बन्धु चितरंजन दास थे। तब से बराबर यह संस्था राष्ट्रीय दल वालों के हाथ में रही है। अन्य कार्यों के अतिरिक्त शिक्षा में इसने अद्वितीय उन्नति दिखलाई

है। आज वहाँ २५० प्राइमरी स्कूल हैं, जिनमें ३०,००० विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है।

इस कारपोरेशन की स्थापना सन् १८८८ ई० में की गई थी। इसमें कुल ११७ सदस्य हैं। इनमें ११४ प्रजा द्वारा चुने जाते हैं और बाक़ी ३ सदस्यों को सरकार नामजद करती है। बम्बई पोर्ट ट्रस्ट का चेयरमैन, बम्बई का पुलीस कमिश्नर और प्रेसीडेन्सी डिवीज़न का एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर इसके नामज़द सदस्यों में होते हैं। सम्मिलित निर्वाचन पद्धति के अनुसार सदस्यों का चुनाव होता है। किसी सम्प्रदाय के लिये कोई स्थान सुरक्षित नहीं रक्खा गया है। जो आदमी ५ रुपये महीने मकान का किराया देता है वह मताधिकारी समझा जाता है। १९४२ ई० से सभी बालिग़ आदमियों को मताधिकार दे दिया। कारपोरेशन की अवधि ४ वर्ष रक्खी गई है। सदस्य स्वयं अपना सभापति (Mayor) चुनते हैं। इसका चुनाव प्रति वर्ष होता है। एक प्रचलित प्रथा के अनुसार इसका चुनाव प्रति वर्ष क्रमशः हिन्दू, मुसलमान, पारसी तथा अँग्रेज़ जाति के अनुसार किया जाता है। इसके सदस्य कौंसिलर कहलाते हैं।

बम्बई कारपोरेशन

कारपोरेशन का एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर म्युनिसिपल कमिश्नर कहलाता है। बम्बई की सरकार स्वयं इसे ३ वर्ष के लिये नियुक्त करती है। यह आमतौर से इन्डियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है। कारपोरेशन के कामों की देख रेख के लिये यह आवश्यक है कि एक निष्पक्ष और प्रभावशाली व्यक्ति इसके ऊपर हो। परन्तु यह भी ठीक नहीं है कि सरकार किसी एक व्यक्ति के हाथ में कारपोरेशन की पूरी ज़िम्मेवारी दे दे। इससे नगर निवासियों का अधिकार जाता रहेगा। इसीलिये म्युनिसिपल कमिश्नर को कारपोरेशन के मातहत रक्खा गया है। यद्यपि इस अफ़सर की नियुक्ति प्रान्तीय सरकार द्वारा की जाती है, परन्तु कारपोरेशन के ७६ सदस्य एक राय होकर उसे अपने पद से हटा सकते हैं। म्युनिसिपल कमिश्नर की सहायता के लिये दो सहायक कमिश्नर नियुक्त किये जाते हैं। कारपोरेशन स्वयं इन्हें नियुक्त करता है। परन्तु प्रान्तीय सरकार से इनकी मंजूरी लेनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त कारपोरेशन के अन्य कर्मचारी स्वयं कारपोरेशन द्वारा नियुक्ति किये जाते हैं। कमिश्नर को यह अधिकार है कि वह ५०० रुपये मासिक तक के कर्मचारियों को स्वयं नियुक्ति करे। कारपोरेशन का सालाना आय-व्यय वही तैयार करता है। बम्बई कारपोरेशन की सालाना आमदनी ३ करोड़ रुपये से कुछ अधिक है। म्युनिसिपल कमिश्नर और कारपोरेशन के बीच में

१६ सदस्यों की एक कमीटी बना दी जाती है। कारपोरेशन के सदस्य अपने ही में से इन्हें चुनते हैं। इस कमीटी के आधे सदस्य हर साल बर्ख़ास्त कर दिये जाते हैं और उनकी जगह नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। वास्तव में कारपोरेशन के कामों की जाँच पड़ताल तथा कमिश्नर के कामों की निगरानी यही कमीटी करती है। सोलह सोलह सदस्यों की दो और कमीटियाँ होती हैं। इनका नाम इम्प्रूवमेंट कमीटी और स्कूल कमीटी है। इन कमीटियों की नियुक्ति कारपोरेशन स्वयं करता है। इसके अतिरिक्त अन्य कमीटियाँ भी इसी के द्वारा बनाई जाती हैं।

मद्रास कारपोरेशन

मद्रास कारपोरेशन में कुल ६५ सदस्य हैं जिन्हें कौंसिलर कहते हैं। इनमें ४६ सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं, एक प्रान्तीय सरकार द्वारा नामज़द किया जाता है, और बाक़ी ५ सदस्यों को कारपोरेशन के उपर्युक्त सदस्य कोआप्ट करते हैं। अर्थात् शहर के अनुभवशील व्यक्तियों में से किन्हीं ५ को कारपोरेशन का सदस्य चुन लेते हैं। कोआप्ट किये गये सदस्यों में एक स्त्री भी रहती है। कारपोरेशन के सदस्य स्वयं अपना सभापति चुनते हैं। चीफ़ एक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर म्युनिसिपल कमिश्नर कहलाता है। बम्बई कारपोरेशन के कमिश्नर की तरह इसकी नियुक्ति प्रान्तीय सरकार करती है। यह इन्डियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है। अन्य पदाधिकारी कारपोरेशन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। इसकी सालाना आमदनी ६७ लाख रुपये हैं।

कारपोरेशन और म्युनिसिपल बोर्ड के कामों में कोई अन्तर नहीं है। केवल दर्जे का फ़रक है। शहरों के प्रबन्ध की समस्यायें दोनों के सामने हैं इसलिये म्युनिसिपल बोर्ड के कर्तव्यों के वर्णन में ही कारपोरेशन के भी कर्तव्य शामिल हैं। इन्हें अलग स्थान देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

म्युनिसिपल बोर्ड और उनका संगठन

बड़े शहरों में जो संस्थायें इसके प्रबन्ध के लिये स्थापित की गई हैं उन्हें म्युनिसिपल बोर्ड कहते हैं। छोटे शहरों में, जिन्हें कस्बा कहते हैं। म्युनिसिपल बोर्ड नहीं होते। हिन्दोस्तान में कुल ७८१ म्युनिसिपल बोर्ड हैं और इनके अन्दर २ करोड़ १० लाख आदमी रहते हैं। इनकी वार्षिक आमदनी ३८ करोड़ रुपये है। यदि सबके अन्दर सदस्यों का जोड़ लगाया जाय तो ७ फ़ीसदी सदस्य अपने पद के कारण (Ex-Officio), २५ फ़ीसदी नामज़द और बाक़ी ६८ फ़ीसदी जनता द्वारा चुने हुये होते है। ७१ म्युनिसिपैलिटियों की प्रत्येक की आबादी ५० हजार से ऊपर है। प्रान्तीय

सरकार शहरों में म्युनिसिपल बोर्ड की स्थापना कर सकती है। यदि किसी म्युनिसिपल बोर्ड का प्रबन्ध ख़राब है, और जनता उससे सन्तुष्ट नहीं है, तो सरकार उसे अपने हाथों में ले सकती है।

म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्यों के चुनाव के लिये शहर को कई निर्वाचन क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक क्षेत्र को वार्ड कहते हैं। हर वार्ड से २ या ३ सदस्य चुने जाते हैं। इन्हीं को बोर्ड का सदस्य कहा जाता है। कुछ व्यक्ति अपने पद के कारण इसका सदस्य होते हैं और कुछ को प्रान्तीय सरकार नामज़द करती है। सदस्यों का चुनाव ३ वर्ष के लिये होता है, परन्तु प्रान्तीय सरकार इसकी आयु बढ़ा सकती है। इस वर्ष म्युनिसिपल बोर्ड का चुनाव लगभग ७ वर्ष बाद हो रहा है। जब सदस्यों का चुनाव हो जाता है तो ये अपना सभापति और उपसभापति चुनते हैं। इन्हें चेयरमैन और वाइस चेयरमैन कहते हैं। चेयरमैन शहर का कोई प्रतिष्ठित और योग्य व्यक्ति होता है। उसके लिये बोर्ड का सदस्य होना जरूरी नहीं है। इनके अतिरिक्त म्युनिसिपल बोर्ड एग्जीक्यूटिव आफ़िसर, हेल्थ आफ़िसर, म्युनिसिपल इंजीनियर, वाटर वर्क्स सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा सेक्रेटरी आदि कर्मचारियों को नियुक्त करता है। इनकी योग्यतायें प्रान्तीय सरकार की ओर से पहले से निर्धारित हैं। अन्य कर्मचारियों को बोर्ड स्वयं नियुक्त करता है।

म्युनिसिपैलिटी अपने कार्य की सुविधा के लिये सारा प्रबन्ध कमीटियों द्वारा करती है। कमीटियों में आम तौर से ६ से १० तक सदस्य होते हैं। सब काम कई विभागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक विभाग की ज़िम्मेवारी किसी न किसी कमीटी को सौंप दी जाती है। कमीटियों की नियुक्ति बोर्ड स्वयं करता है। आमतौर से निम्नलिखित कमीटियाँ सभी म्युनिसिपल बोर्डों मे होती हैं :—

१—फ़िनान्स कमीटी
२—शिक्षा कमीटी
३—स्वास्थ्य कमीटी
४—सड़क, मकान आदि देख रेख करने वाली कमीटी
५—पानी कमीटी
६—चुँगी कमीटी
७—सवारी कमीटी
८—खाद्य पदार्थ देख-रेख कमीटी

जो म्युनिसिपल बोर्ड उन्नतिशील हैं, और नागरिकों की भलाई का

अधिक ध्यान रखते हैं, वे और भी तरह तरह की कमीटियाँ बनाते हैं। इन सब में शिक्षा कमीटी का दर्जा बड़ा समझा जाता है। परन्तु कार्य की दृष्टि से सबका महत्व एक सा है। कुछ लोगों का विचार है कि कमीटियों को अपने कामों में मदद लेने के लिये अन्य जानकार व्यक्तियों को भी शामिल करने का अधिकार मिलना चाहिये।

म्युनिसिपल बोर्ड के कर्तव्य

म्युनिसिपल बोर्ड की ज़िम्मेवारी शहर की आर्थिक, राजनीतिक और शारीरिक उन्नति करना है। वह शहर में अच्छी से अच्छी सड़कें बनवाये और उनकी देख-रेख का पूरा प्रबन्ध करे। शहर में गन्दी और सड़ीगली चीज़ों को आने से रोके। जो दूकानदार गन्दी चीज़ें बेचे उसे बोर्ड उचित दंड दे। इन कर्तव्यों का सभी म्युनिसिपल बोर्ड पालन करते हैं। इनके अतिरिक्त शहर में पानी और रोशनी का इन्तज़ाम करते हैं। शिक्षा के लिये अपर और मिडिल स्कूल खोलते हैं। सफ़ाई के लिये कूड़े फेंकने के लिये कर्मचारी नियुक्त करते हैं। बीमारी की देख-रेख के लिये अस्पताल और औषधालय खोले जाते हैं। स्वास्थ्य की जाँच के लिये अफ़सर मुक़र्रर किये जाते हैं। कुछ म्युनिसिपल बोर्ड अजायबघर और नमूने के फ़ार्म भी रखते हैं। हवा की शहरों में सबसे अधिक कठिनाई होती है। म्युनिसिपल बोर्ड इसके लिये पार्क और बगीचों का प्रबन्ध करते हैं। लोगों की शिक्षा के लिये पुस्तकालय और वाचनालय भी खोले जाते हैं। एक बार कानपुर की म्यु-निसिपलिटी ने २००० रुपया इसलिये मंजूर किया था कि शहर के सारे बन्दर पकड़ कर बाहर भेज दिये जायँ। आर्थिक उन्नति के लिये तरह तरह के रोज़गार खोले जाते हैं। शहरों में बेकारों और अनाथों की संख्या अधिक होती है। इनके रहने के लिये सार्वजनिक जगहें तथा काम के लिये कोई प्रबन्ध करना पड़ता है।

शहर में सबसे अधिक ध्यान सफ़ाई का करना पड़ता है। हज़ारों की तादाद में एक जगह रहने से बीमारी फैलने का डर अधिक रहता है। म्युनिसिपल बोर्ड शौचालय आदि बनवाने की पूरी व्यवस्था करते हैं। उचित स्थान से बाहर जो किसी जगह को गन्दा करते हैं उन्हें कड़ा दंड दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि शहर के लिये जिन जिन प्रबन्धों की आवश्यकता होती है वे उसे करते हैं। मुहल्लों तथा सड़कों का नाम रखना, घरों का नम्बर लगाना, जगह जगह पर धर्मशालायें और प्याऊ बनवाना, आग से रक्षा का प्रबन्ध करना, जन्म और मृत्यु का हिसाब रखना, कब्र तथा श्मशानघाट की व्यवस्था करना, इत्यादि कार्य बोर्ड को करने पड़ते हैं। इनमें कुछ

कर्तव्य ऐसे हैं जिन्हें करना उसे लाज़मी है, परन्तु बाक़ी को उसके सामर्थ पर छोड़ दिया गया है। कुछ म्युनिसिपल बोर्ड, जिन्हें अपने नगर निवासियों का अधिक ध्यान है, व्यापार भी करते हैं। इसे म्युनिसिपल तिजारत (Municipal Trading) कहते हैं। इससे दो लाभ होते हैं एक तो लोगों को अच्छी से अच्छी चीज़ें उचित दाम पर मिल सकती हैं। और दूसरे बोर्ड की आय भी बढ़ती है। एक बड़ी संस्था के नाते वह चीज़ों को अधिक सुविधा पर ख़रीद सकती है। जो कुछ आमदनी होती है वह शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कामों में व्यय की जाती है। परन्तु इससे थोड़ी हानि भी है। व्यक्तिगत व्यापार को इससे धक्का लगता है। जब बोर्ड स्वयं व्यापार करती है तो छोटे मोटे तिजारती उसके मुक़ाबिले में अपनी चीज़ें नहीं बेच सकते। जो कुछ भी हो इसके लिये बोर्ड को काफ़ी धन की आवश्यकता होती है।

म्युनिसिपल बोर्ड का आय और व्यय

शहर के प्रबन्ध के लिये बोर्ड को काफ़ी रक़म ख़र्च करनी पड़ती है। सड़कों के बनवाने तथा पार्कों की रक्षा के लिये उसे अपनी आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा लगाना पड़ता है। शिक्षा पर इसका ख़र्च सबसे अधिक होता है। इसके अतिरिक्त सफ़ाई, स्वास्थ्य और अस्पतालों पर काफ़ी ध्यान देना पड़ता है। हर काम में उसे पैसे ख़र्च करने पड़ते हैं। असाधारण परिस्थिति में उसके ख़र्चे और भी बढ़ जाते हैं। इन ख़र्चों को चलाने के लिये इसके पास आय के अनेक ज़रिये हैं। सबसे अधिक आय शहर की चुँगी और टैक्स से होती है। आमदनी के निम्नलिखित ५ ज़रिये हैं :—

१—चुंगी— शहर में आने वाली तमाम चीज़ों पर यह टैक्स लगाया जाता है।

२—टैक्स—प्रत्येक म्युनिसिपल बोर्ड की दो तिहाई आमदनी इसी ज़रिये से होती है। ये टैक्स पेशे, व्यापार, जानवर, सवारियाँ, पानी, रोशनी तथा सफ़ाई पर लगाये जाते हैं।

३ - म्युनिसिपल बोर्ड की निजी सम्पत्ति।

४—प्रान्तीय सरकार की इमदाद।

५—म्युनिसिपल व्यापार (Municipal Trading)

इनके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी हैसियत के अनुसार क़र्ज़ भी ले सकती है। टैक्स के नये नये ज़रिये भी वह निकाल सकती है। कुछ म्युनिसिपलिटियों ने यात्रियों पर भी टैक्स लगाने की व्यवस्था की है। कभी

कभी पुलों से भी कुछ आमदनी होती है। यदि शहर किसी नदी के किनारे है तो घाट के ठेकों से उसे कुछ सालाना आय होती रहती है। शहर के गन्दे पानी से कभी कभी अच्छी आमदनी होती है। यदि पास में कोई बड़ा खेती का फार्म हुआ तो उसके गन्दे पानी का मूल्य काफ़ी बढ़ जाता है। हिन्दोस्तान की सभी म्युनिसिपलिटियों का सालाना ख़र्च लगभग १८ करोड़ रुपये है। इसमें १३ प्रतिशत सर्वसाधारण के कामों में, और इतना ही पानी के प्रबन्ध में, १८ प्रतिशत स्वास्थ्य, और ११ प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च होता है। संयुक्तप्रान्त की म्युनिसिपलिटियाँ अपने ख़र्च का ५२ प्रतिशत स्वास्थ्य पर ख़र्च करती हैं। लेकिन इस प्रान्त में इसका शिक्षा ख़र्च बहुत ही कम है। केवल १३·५८ प्रतिशत आमदनी शिक्षा के ऊपर लगाई जाती है। कर्मचारियों के वेतन पर इस प्रान्त की म्युनिसिपलटियाँ ११·५१ प्रतिशत ख़र्च करती हैं। संयुक्तप्रान्त की म्युनिसिपलिटियों की कुल आमदनी १७५३६२३५ रुपये सालाना है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति से ३ रुपया ८ आना १ पाई वसूल किया जाता है। सरकार से जो सहायता म्युनिसिपल बोर्डों को मिलती है वह बहुत ही कम है। १९३५-३६ ई० में संयुक्तप्रान्त की म्युनिसिपलिटियों को कुल ६३३७२६ रुपये प्रान्तीय सरकार से मिले थे। अर्थात् ४ प्रतिशत से भी कम इन्हें दिया गया था। जर्मनी में केन्द्रीय सरकार म्युनिसिपलिटियों को इनकी आमदनी का लगभग ३० प्रतिशत इमदाद के रूप में देती है।

इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट

चन्द बड़े शहरों से म्युनिसिपलिटियों को प्रबन्ध का कार्य चलाने में काफ़ी नहीं समझा गया। इसीलिये सफ़ाई, हवा, रोशनी आदि के प्रबन्ध के लिये एक और स्थानीय संस्था बना दी गई है। इसका नाम इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट है। कलकत्ता, बम्बई, कानपूर, लखनऊ, दिल्ली, इलाहाबाद आदि शहरों में इनकी स्थापना की गई है। यह संस्था अभी तक शहरी जनता के हाथ में नहीं है। इसके सदस्य कुछ तो पद के कारण और कुछ सरकार द्वारा नामज़द किये जाते हैं। इलाहाबाद इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट में कुल ६ सदस्य हैं। इनमें ३ प्रान्तीय सरकार द्वारा नामज़द किये जाते हैं। नामज़द सदस्यों में ज़िले का कलेक्टर ज़रूर होता है। यह कोई लिखित नियम नहीं है, बल्कि एक प्रथा सी चली आती है। दो सदस्य म्युनिसिपल बोर्ड के प्रतिनिधि होते हैं। बोर्ड के सदस्य अपने में से किन्हीं दो सदस्यों को ट्रस्ट में भेज सकते हैं। बाक़ी एक सदस्य बोर्ड का चेयरमैन होता है। इससे स्पष्ट है कि ये सदस्य जनता के प्रतिनिधि नहीं होते। इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट के सदस्यों की नियुक्ति ३ वर्ष के लिये की जाती

है। तीन साल के बाद दूसरे नये ट्रस्टी भर्ती किये जाते हैं। ट्रस्ट की बैठक आमतौर से महीने में एक बार होती है। सभी सदस्य अपने में से किसी को चेयरमैन चुन लेते हैं। ट्रस्ट एक वैतनिक मन्त्री तथा अन्य कर्मचारियों को भी नियुक्त करता है। कलकत्ता इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट में कुल १२ सदस्य हैं

विज्ञान तथा कला-कौशल की वृद्धि के कारण आजकल लोगों की रहन-सहन में काफ़ी परिवर्तन हो रहे हैं। घिरे मकानों तथा गन्दी गलियों में रहना लोग पसन्द नहीं करते। उनके मकान साफ़ सुथरे, हवादार, तथा किसी अच्छे वायुमंडल में होने चाहिये। सड़कें भी चौड़ी और सुन्दर होनी चाहिये। हर चीज़ में मनुष्य सौन्दर्य और सफ़ाई पसन्द करता है। लेकिन हमारे देश के शहर पुरानी चाल के बने हैं। उनके रास्ते पतले हैं और घरों की बनावट बहुत ही सकड़ी है। जो नये मकान भी इधर बनाये गये उनमें स्वास्थ्य और रोशनी का ध्यान कम दिया गया है। हिन्दोस्तान के कुछ शहरों की आबादी लन्दन से भी घनी है। लन्दन में १२·२ प्रतिशत आदमी एक कमरे में ही अपना गुज़र करते हैं। लेकिन लखनऊ में ५०·४ प्रतिशत व्यक्ति एक कमरे में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। बम्बई के ७४ प्रतिशत परिवार एक कमरे के मकानों में रहते हैं। इतनी तंग जगह में रहने से लोगों का स्वास्थ्य ख़राब होता है और इसका प्रभाव उनकी सन्तान पर भी पड़ता है। इसी का परिणाम है कि हिन्दोस्तानियों की औसत आयु अन्य देश वासियों की अपेक्षा आधी होती है। हमारे देश के २० प्रतिशत बच्चे एक वर्ष की आयु में मृत्यु के ग्रास होते हैं। जितने भी आदमी इस देश में मरते हैं उनमें पाँचवाँ हिस्सा दुधमुँहे बच्चों का है।

इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट की स्थापना इसीलिये की गई है कि वह शहर को नये ढंग से बसाने का प्रयत्न करे। जो हिस्से नये बसाये जायँ वे किसी ख़ास नक़शे के अनुसार बनाये जायँ। घरों की बनावट, हवा तथा रोशनी पर काफ़ी ध्यान दिया जाय। शहर के जो हिस्से सिकुड़े हुये हैं और जहाँ सूर्य की धूप मुश्किल से पहुँचती है, उन्हें चौड़ा करने का प्रयत्न किया जाय। इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट प्रान्तीय सरकार के सामने अनेक योजनायें शहर को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिये पेश करे और मंजूरी मिलने पर वह उन्हें कार्यान्वित करे। शहर के भंगियों तथा ग़रीबों के रहने के लिये वह अच्छा से अच्छा प्रबन्ध करे। पैसे की कमी और शिक्षा के अभाव के कारण इनकी रहन-सहन बहुत ही गन्दी होती है। किसी उचित स्थान पर ट्रस्ट इनके लिये साफ़ खुला हुआ मकान बनाने की योजना बनावे। इलाहाबाद इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट कई हज़ार रुपये ख़र्च करके ग़रीबों के लिये कितने ही अच्छे मकान

तैयार कराये हैं। यदि ये ट्रस्ट अच्छी तरह काम करते रहें तो कुछ दिनों में हिन्दोस्तान के सभी बड़े बड़े शहर बहुत ही आकर्षक और खुले हुये दिखाई पड़ने लगेंगे। शहरों को नये ढंग से बसाने में कुछ लोगों को काफ़ी हानि उठानी पड़ती है। उनके मकान गिरा दिये जाते हैं और बहुत थोड़ी रक़म उन्हें एवज़ में दी जाती। परन्तु ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं कि एक ओर कुछ हानि भी न हो और दूसरी ओर हमारा घर साफ़ और खुला हुआ दिखाई पड़े। इन योजनायों को कार्यान्वित करने के लिये इम्प्रूभमेंट ट्रस्टों के पास पैसे की कमी है। या तो सरकार इन्हें अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा दे अथवा म्युनिसिपल बोर्ड की कुछ आमदनी इनके ज़िम्मे कर दे। अब तक इन्हें बिकी हुई ज़मीनों, सरकारी सहायता और क़र्ज़ पर निर्भर करना पड़ता है।

पोर्ट ट्रस्ट

उन बड़े बड़े शहरों में जो समुद्र के किनारे हैं कारपोरेशन, म्युसिपलिटी, तथा इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट के अतिरिक्त पोर्ट ट्रस्ट भी स्थापित किये गये हैं। कलकत्ता, बम्बई, मदरास, कराँची और चटगाँव में हिन्दोस्तान के प्रसिद्ध पोर्ट ट्रस्ट हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सभी पोर्ट ट्रस्ट में न मज़द सदस्यों की संख्या निर्वाचित सदस्यों से अधिक होती है। अधिकतर सदस्य योरोपियन होते हैं। इन्हें भत्ता भी दिया जाता है। इनके कामों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक होता है। मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के लगभग सभी सदस्य योरोपियन होते हैं। ट्रस्ट का मुख्य काम समुद्र के किनारे घाट बनवाना, मालगोदाम बनाना तथा व्यापार के सुविधे के लिये नाव और जहाज़ों का प्रबन्ध करना है। बन्दरगाहों में विदेशों से तरह तरह के माल अधिक आते हैं। पोर्ट ट्रस्ट इन्हें उतारने तथा इनकी निगरानी का पूरा प्रबन्ध करता है। इसीलिये ट्रस्ट को अपनी अलग पुलीस रखने का अधिकार दिया है। इसके सदस्य कमिश्नर वा ट्रस्टी कहलाते हैं। ट्रस्ट की आमदनी के मुख्य ज़रिये निम्नलिखित हैं :—

१—माल की लदाई और उतराई

२—गोदाम के किराये तथा

३—जहाज़ों के कर।

स्थानीय संस्थाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि

ऊपर स्थानीय सस्थाओं के संगठन और उनके कार्यों पर विचार किया गया है। अब यह देखना है कि कहाँ तक इन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई है। प्रोफेसर राम और शर्मा के कथनानुसार स्थानीय सरकार के मुख्य ४ उद्देश्य हैं :—

१—स्थानीय विषयों की जानकारी

२—शासन-प्रबन्ध की कुशलता

३—योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति

४—समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति ।

स्थानीय संस्थाओं को अपने उद्देश्य में काफ़ी सरलता प्राप्त हुई है। स्थानीय जनता के दिलों से विदेशी सरकार की भावना बहुत कुछ दूर हो चली है। कितनी ही स्थानीय संस्थाओं ने अपनी कार्यकुशलता का इतना अच्छा परिचय दिया है कि साइमन कमीशन ने मुक्त-कंठ से इनकी प्रशंसा की है। परन्तु साथ ही कुछ ऐसी भी संस्थायें हैं जिन्होंने अपने अधिकारों का बेजा फ़ायदा उठाया है। इंगलैंड तथा अमेरिका आदि प्रजातंत्रवादी देशों में भी स्थानीय संस्थाओं में तरह तरह की गन्दी बातें पाई जाती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गुलाम होने के नाते हम उन सबकी नक़ल करें। स्थानीय संस्थाओं ने अपने क्षेत्र में शिक्षा का जो प्रचार किया है उसे हम नहीं भुला सकते। यह सच है कि हमारे देश में शिक्षित आदमियों की संख्या केवल १० फ़ी सदी है परन्तु इस कूपमंडूकता की ज़िम्मेवारी प्रान्तीय सरकार पर है। स्थानीय संस्थाओं के पास इतने पैसे नहीं हैं कि वे हर गाँव में एक स्कूल खोल सकें। आमतौर से हमारे देश में संस्थायें बहुत ही बदनाम हैं। कुछ व्यक्तियों को यहाँ तक कहते सुना गया है कि, 'स्थानीय संस्थायें बेकार हैं।'' जनता के अत्यन्त सम्पर्क में रहने के कारण इनकी टीका-टिप्पणी अनिवार्य है। इससे घबड़ा कर इनके फायदों को हमें नहीं भुलाना चाहिये। यदि हमें इसमें कुछ कमी दिखलाई पड़े तो हम उसे बार बार सुधारने की कोशिश करें। जिस स्वराज के लिये आज हम कितने वर्षों से चिल्ला रहे हैं, उसके मूल को ही सम्हालने की क्षमता हम नहीं रखते तो इससे बढ़ कर हमारा अभाग्य और क्या होगा। स्थानीय स्वराज पूर्ण स्वराज की जड़ है।

स्थानीय संस्थाओं के पिछले कारनामों से स्पष्ट है कि उनकी असफलता के मुख्य दो कारण हैं—बाह्य और आन्तरिक। इन संस्थाओं पर कुछ ऐसे सरकारी दबाव पड़ते हैं जिनके कारण इनकी स्वतंत्रता में बाधा पड़ती है। प्रान्तीय सरकार, कमिश्नर और ज़िले के कलेक्टर इनके कामों में जब चाहें दख़ल दे सकते हैं। कलक्टर को यह अधिकार है कि वह इनके हुक्मों को इस बूते पर रोक दे कि इससे सार्वजनिक शान्ति में बाधा पड़ती है। इनका सारा हिसाब-किताब कमिश्नर की मुट्ठी में रहता है। वह इन्हें अपना ख़र्च घटाने का हुक्म दे सकता है। इन दोनों सरकारी पदाधिकारियों के अलावे

प्रान्तीय सरकार स्वयं स्थानीय संस्थाओं को अपने हाथ में रखती है। वह इन्हें जब चाहे तोड़ सकती है। स्थानीय शासन-प्रबन्ध में उसके क़ानूनों का प्रभाव गहरा पड़ता है। किसी स्थानीय संस्था का सभापति अथवा उपसभापति अपने आचरण तथा लापरवाही के कारण प्रान्तीय सरकार द्वारा हटाया जा सकता है। इन संस्थाओं के कुछ कर्मचारी प्रान्तीय सरकार की मंजूरी के बिना भरती नहीं किए जा सकते। इनके द्वारा बनाये गये क़ानूनों को प्रान्तीय सरकार से तसदीक़ कराना पड़ता है। यदि किसी नई योजना को कार्यान्वित करने के लिये स्थानीय संस्थायें कुछ कर्ज़ लेना चाहें तो इसकी मंजूरी प्रान्तीय सरकार से लेनी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि इनकी असफलता का बहुत कुछ कारण इस प्रकार के बाहरी दबाव हैं। जब तक ये कम नहीं किये जाते तब तक स्थानीय स्वराज सफलता को प्राप्त नहीं हो सकता।

स्थानीय संस्थाओं की असफलता के कुछ आन्तरिक कारण भी हैं। अर्थात् संस्थायें स्वयं इनके लिये ज़िम्मेवार हैं। इनके कुछ सदस्य अपने स्वार्थ-साधन के लिये तरह-तरह की आन्तरिक बुराइयाँ फैलाते हैं। इसके कितने ही उदाहरण मौजूद हैं। थोड़ा-बहुत पैसा सार्वजनिक कामों में लगता है, और बाक़ी सदस्यों तथा कर्मचारियों की जेब में जाता है। स्थानीय संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे योग्य से योग्य कर्मचारी नियुक्त करें, लेकिन कार्य रूप में दलबन्दियों के चक्कर में पड़कर कितने ही ऐरे गैरे केवल बातों की तनख्वाह लेते हैं। एक म्युनिसिपल बोर्ड के शिक्षा विभाग के चेयरमैन से मैंने अपने पद से इस्तीफा दे देने के लिये कहा। उन्होंने तुरन्त जवाब दिया कि, "हमें अपने पद की उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी उन एक अन्धे और एक लँगड़े की है जो बोर्ड के दफ़्तर में लगे हुये हैं।" सदस्यों को इस बात की चिन्ता नहीं होती कि योग्य से योग्य व्यक्ति अपने पदों पर नियुक्त किये जायँ। उन्हें अधिकतर चिन्ता अपने सम्बन्धियों और मित्रों की होती है। संस्थाओं के चुनाव में कितने ही अयोग्य व्यक्ति चुन लिये जाते हैं। नागरिक शिक्षा की कमी के कारण लोग राजनीतिक अधिकारों के महत्व को नहीं समझते। क्षणिक प्रयोजनों और झूठी प्रतिज्ञाओं के चक्कर में आकर वे स्वार्थी तथा अयोग्य व्यक्तियों को अपना मत देने पर तैयार हो जाते हैं। संस्थाओं के कार्यों में व्यक्तिगत मनोभावों का प्रभाव पड़ता है इससे सार्वजनिक हित में और भी बाधा पड़ती है। संस्थाओं के अन्दर घूसख़ोरी और बेईमानी की जो बीमारी फैली हुई है उसका कारण हमारी नागरिकता की कमी है।

यदि स्थानीय स्वराज को सफल बनाना है तो जनता को उचित नागरिक

शिक्षा दी जाय। इसके अभाव में वह गन्दी बातों के प्रभाव से अपने आप को नहीं बचा सकती। सार्वजनिक कामों का महत्व हमारे दिलों में तब तक नहीं बैठ सकता जब तक हमें समाज-शास्त्र का थोड़ा ज्ञान न कराया जाय। मध्यम श्रेणी तक नागरिक शास्त्र को अनिवार्य विषय बना कर शिक्षा विभाग ने इस ओर ध्यान दिया है। इससे स्थानीय संस्थाओं की भीतरी कमज़ोरियाँ बहुत कुछ दूर हो सकती हैं। जहाँ तक ऊपरी दबाव का प्रश्न है, प्रान्तीय सरकार इसे कम कर सकती है। लेकिन इसी से ये संस्थाएँ अपने मंज़िले मक़सूद पर नहीं पहुँच सकतीं। हिन्दोस्तान की वर्तमान परिस्थिति इस बात की उम्मीद करती है कि देश में तरह-तरह के कारोबार खोले जायँ। स्थानीय संस्थाएँ निहायत ख़ूबसूरती से इन्हें कर सकती हैं। लेकिन इनके आगे क़दम न बढ़ाने का कारण पैसे की कमी है। या तो प्रान्तीय सरकार इनकी इमदाद और बढ़ाये या इन्हें कोई ऐसा रास्ता दे जिससे इनकी आमदनी कम से कम ड्योढ़ी हो जाय। इसी अध्याय में यह सलाह दी गई है कि ज़िला बोर्ड की आमदनी सरकार किस प्रकार ड्योढ़ी कर सकती है। यदि ये कमज़ोरियाँ दूर कर दी जायँ, तो स्थानीय संस्थाएँ अपनी बुराइयों को दूर करने के साथ, देश की अधिक भलाई कर सकती है।

अध्याय १८

ग्राम पंचायत

ग्राम की परिभाषा

'ग्राम' शब्द के लिये कोष की आवश्यकता किसी को न होगी। यहाँ तक कि कचहरियों में भी इस शब्द के स्पष्टीकरण का प्रश्न नहीं उठ सकता। यह शब्द आमफ़हम है। जब कोई विदेशी हिन्दोस्तान की जानकारी हासिल करना चाहता है तो उसे पहिली हिदायत यह मिलती है कि वह गाँवों का अध्ययन करे। जो हिन्दोस्तान के गाँवों का जीवन नहीं जानता वह भारतीय सभ्यता को नहीं पहचान सकता। जब देशी और विदेशी दोनों ही गाँवों से भलीभाँति परिचित हैं तो इसकी परिभाषा की कोई ज़रूरत नहीं महसूस होती। परन्तु कुछ ऐसी ग़लत फ़हमियाँ फैली हैं, जिन्हें निवारण करने के लिये इसे दे देना अच्छा होगा। थोड़े दिन हुये एक पुस्तक* देख रहा

*Socrates in and Indian village.

था। उसमें लिखा था कि यदि कोई आदमी हिन्दोस्तान में किसी एकान्त स्थान में पड़ जाय और कोई रास्ता मालुम न पड़े तो वह नाक खोलकर चारों दिशाओं में साँस ले। जिधर से गन्दी हवा आती हो उधर को वह चल पड़े। कोई न कोई गाँव ज़रूर मिल जायगा। यह बात आमतौर से प्रचलित है कि जो मूर्ख हों और जिन्हें कोई भी ठग सके वे गांव के रहने वाले होते हैं। इधर दस बीस वर्षों से लोग गाँवों को छोड़ शहरों में आने लगे हैं। इसलिये नहीं कि गाँव बुरे हैं, बल्कि रोज़ी की तलाश में उन्हें विवश होकर गाँव छोड़ने पड़ते हैं। कुछ लोग इससे भी यह अनुमान करते हैं कि गाँवों का जीवन सभी प्रकार से बुरा है। वहाँ कोई रहना नहीं चाहता।

यदि हमारे देश के गाँव सचमुच बुरे होते, और लोगों को उनमें रहने की इच्छा न होती, तो अब तक कितने ही नये नये शहर बस गये होते। वास्तव में जो गाँवों के जीवन से परिचित नहीं हैं वे उसे पहचान नहीं सकते। एक छोटी सी मिसाल से यह बात अच्छी तरह साफ़ हो जायेगी। मिस्टर राय अपनी एक पुस्तक* में लिखते हैं कि, "जब कोई योरप निवासी हिन्दोस्तान की यात्रा करने के लिये प्रस्थान करता है तो उसे चन्द बातें पहले से ही दिमाग़ में बैठा दी गई रहती हैं। लड़कपन से ही विदेशियों को इस बात की शिक्षा दी जाती है कि हिन्दोस्तान के रहने वाले असभ्य होते हैं। उनके शरीर पर ठीक तरह की पोशाक नहीं होती और वे हर समय जूते तथा दस्ताने नहीं पहने रहते। उनकी रहन सहन निम्न श्रेणी की है। वे नंगे बदन किसी से भी मिल सकते हैं और हर समय एक ही पोशाक में रहने के आदी होते हैं।" इसका परिणाम यह होता है कि जब कोई विदेशी इस देश में आता है तो वह उसी प्रकार का नक़शा यहाँ देखता है। उसके मन में तुरन्त यह बात बैठ जाती है कि सचमुच हिन्दोस्तानी असभ्य हैं। परन्तु सच तो यह है कि विदेशी भारतीय सभ्यता की गहराई को नहीं जानते। उनकी सभ्यता की नाप दस्ताने और रूमाल तक ही सीमित है। ठीक यही दशा हिन्दोस्तानी शहरों की है। शहर के लोग ग्रामीण जीवन को पिछड़ा हुआ समझते हैं। नई सभ्यता की रोशनी में गाँवों का प्राचीन जीवन उन्हें नीरस मालूम पड़ता है। कोई भारतीय शहर ऐसा न होगा जिसकी आधी जनसंख्या गाँवों से घनिष्ठ सम्बन्ध न रखती हो। नौकरी अथवा व्यापार की सुविधा के लिये लोग शहरों में रहते हैं, परन्तु उनका असली घर तथा कुटुम्ब गाँव में ही होता है।

---

*The Spirit of Indian civilization.

यह कहना बड़ा कठिन है कि गाँव की ठीक ठीक सीमा क्या है, उनमें कितने कुटुम्ब होते हैं उनकी जनसंख्या कितनी है। हमारे देश में ७ लाख से अधिक गाँव हैं। प्रत्येक का क्षेत्रफल और जनसंख्या भिन्न भिन्न है। बौद्धायन और गौतम गाँवों की परिभाषा करते हुये लिखते हैं, "वह स्थान जहाँ सच्चे और पवित्र आदमी निवास करें गाँव कहलाता है।" बौद्धायन के कथनानुसार, "कोई भी सत्पुरुष गाँव में ही रहना चाहेगा क्योंकि वहाँ खान-पान की चीज़ें बहुतायत से मिलती हैं। प्रत्येक गाँव चोर-डाकुओं से सुरक्षित होता है। छोटे छोटे राजनीतिक परिवर्तनों का असर वहाँ नहीं पड़ता। वहाँ के निवासियों का जीवन शान्त और सुखमय होता है।" कौटिल्य के शब्दों में "गाँव वह स्थान है जिसमें १०० से ५०० तक कुटुम्ब निवास करते हों। सबका घर सुरक्षित हो और उनका जीवन सम्मिलित तथा सहयोगी हो।" गाँवों में जनसंख्या की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। ५००० से ऊपर मनुष्य जब एक जगह निवास करते हों तो वह कस्बा कहलाता है। इससे कम जनसंख्या वाले स्थान गाँवों की कोटि में गिने जाते हैं। कुछ ऐसे भी गाँव हैं जिनमें १०० या २०० आदमी निवास करते हैं और उनमें केवल ४० या ५० घर हैं। लेकिन कुछ गाँव क़स्बों का बराबरी करते हैं। हिन्दी साहित्य में ग्राम सम्बन्धी साहित्य की अभी कमी है। जो सभ्यता हमारे गाँवों में छिपी हुई है उसका आभास तक अभी पढ़े-लिखे लोगों को नहीं है। ऊपर से वे इसकी सराहना भले ही करें, परन्तु भीतर से वे नहीं जानते कि गाँवों की विशेषता क्या है?

गाँव की परिभाषा अत्यन्त रोचक और सरल है। आजकल कुछ विशेष कारणों से हमें इसमें सन्देह हो सकता है, लेकिन इसकी असलियत वही है जो हिन्दू काल से लेकर अभी तक मौजूद है। पेड़ों तथा बागीचों से घिरे हुये वे स्थान जहाँ शोरोगुल का नाम भी न हो गाँव कहलाते हैं। प्रत्येक गाँव में आमतौर से १०० या २०० घर होते हैं। इसके चारों ओर खेत और बागीचे होते हैं। यहाँ के निवासियों का मुख्य पेशा खेती और गोपालन है। इनका जीवन अत्यन्त सरल और पवित्र होता है। ये चोरी और दग़ाबाज़ी का नाम नहीं जानते। स्वभाव से ही ये परिश्रम-शील और संयमी होते हैं। अपनी सभी आवश्यकताओं के लिये ये अपने गाँव पर ही निर्भर करते हैं। प्रत्येक गाँव स्वतन्त्र और स्वावलम्बी होता है। यहाँ के लोग अपनी आवश्यकतानुसार सभी चीज़ें पैदा कर लेते हैं। गाँव ही ऐसी जगह है जहाँ बिना रुपये-पैसे के भी आदमी सुख से रह सकता है। शहरों की तरह यहाँ बीमारी और गन्दगी का बाज़ार नहीं रहता है। सब लोग एक दूसरे का विश्वास करते

हैं। जिसे हम भारतीय सभ्यता कहते हैं, और जिसके ऊपर अब भी हमें गर्व है, वह गाँवों की चीज़ है। आज भी वह उसी जगह दिखलाई पड़ेगी। बृटिश राज के अन्दर गाँवों की दशा में महान् परिवर्तन हुआ है। उनकी ग़रीबी और बेकारी की समस्या ने देश को चिन्ता की जाल में बाँध रक्खा है। इतने पर भी हमारे गाँव स्वर्ग की तुलना करते हैं।

गाँव और भारतीय शासन

यदि गाँवों की चर्चा छोड़कर भारतीय शासन-प्रबन्ध पर विचार किया जाय तो यह बात वैसी ही बेतुकी है जैसे प्राण को छोड़कर शरीर का अध्ययन। शरीर में जो प्राण का स्थान है वह भारतीय राजनीतिक प्रबन्ध में गाँवों का। इस देश में कोई शासन-विधान तब तक कारगर नहीं हो सकता जब तक इसकी जड़ गाँवों में न डाली जाय। बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और सुधारक राजनीतिक अधिकारों की उधेड़-बुन में इस बात को भूल जाते हैं कि जब तक गाँवों को पूरी आज़ादी हासिल न होगी, तब तक प्रान्तीय स्वराज और संघ-शासन की कोई उपयोगिता नहीं हो सकती। जिन गाँवों की बदौलत ४० करोड़ हिन्दोस्तानियों का भरण-पोषण होता है, और जिनकी उन्नति-अवनति पर हमारी सभ्यता की दीवाल खड़ी की गई है, उन्हें हम कैसे ठुकरा सकते हैं? काँग्रेस की तमाम राजनीतिक माँगों की आड़ में गाँवों का उद्धार इतनी पोशीदगी के साथ छिपा हुआ है, कि हम उसे वर्तमान वातावरण में नहीं पहचान सकते। जिन ग्राम पंचायतों का नक़शा काँग्रेस के दिमाग़ में बैठा हुआ है उसके महत्व को पश्चिमी प्रजातंत्रवाद की आँधी में हम नहीं देख सकते। केवल केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कर्मचारियों के अधिकारों तथा चन्द कौंसिलों की बनावट से शासन-विधान का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

हिन्दोस्तान गाँवों का देश है। यहाँ की ९० फीसदी जनता गाँवों में रहती है। उसका मुख्य व्यवसाय खेती है। जब तक शासन-विधान के अन्दर ग्राम-संगठन की व्यवस्था न की जायगी, वह सर्वथा अधूरा सिद्ध होगा। "हरेक शासन की मुख्य आवश्यकता इसीलिये होती है कि प्रजा के जन-धन की रक्षा और उन्नति होती रहे। जो शासन इन दोनों बातों में असफल हुआ, नैतिक रीति से उसने अपने को नष्ट कर दिया।" * अनादि काल से गाँव शासन की जड़ समझे जाते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों कालों में इनकी स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन में बाधा नहीं पड़ी। हिन्दोस्तान के

---

* हमारे गाँवों का सुधार और संगठन, अध्याय २७, पृष्ठ, ३००

अन्दर बड़े बड़े राजनीतिक परिवर्तन हुये, कितने ही विदेशियों ने इस देश पर हमला किया, परन्तु ग्राम अपनी पंचायतों द्वारा स्वतन्त्र रूप से काम करते रहे। उन्हें इन तमाम परिवर्तनों का पता भी न चला। इन गाँवों का संगठन इतना दृढ़ और स्थायी था कि छोटे-मोटे राजनीतिक परिवर्तनों अथवा सामाजिक क्रान्तियों के कारण उसकी दीवाल नहीं हिल सकती थी। यूरोप अपने प्रजातन्त्रवाद की डींग मारता है। बृटेन आज भी हमें इस बात का आश्वासन दिलाता है कि हमारे देश में सच्चे प्रजातन्त्रवाद की स्थापना होने जा रही है। पाश्चात्य प्रजातन्त्रवाद की जड़ में जो खोखलापन मौजूद है उसका उदाहरण हमें साफ़ दिखाई पड़ता है। हमारे देश में जिस प्रजातन्त्र-वाद की आवश्यकता है उसका सम्बन्ध गाँवों से है। पहले प्रत्येक गाँव को स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना होगा। जब ७ लाख गाँवों को सभी प्रकार की स्वतन्त्रता हासिल हो जायगी तो प्रजातन्त्रवाद अपने आप स्थापित हो जायगा। इस देश में शासन-विधान की उपयोगिता तभी है जब वह गाँवों के जीवन के अनुकूल हो। जिस शासन-विधान का निर्माण विदेशी अथवा थोड़े से शहरी लोग सभा भवन में बैठकर करेंगे उसकी उपयोगिता में हमें सन्देह है। गाँवों के प्राचीन संगठन पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि शासन-विधान में इसका कितना महत्व था।

ग्राम संगठन

प्राचीन काल में गाँवों के संगठन की सराहना सभी विदेशियों ने मुक्त-कंठ से की है। सर चार्ल्स मेटकाफ़ लिखते हैं, "ग्राम पंचायतों के अन्दर प्रजातन्त्रवाद की सभी अच्छाइयाँ मौजूद हैं। प्रत्येक गाँव एक छोटा सा स्वतन्त्र देश है। बाहरी सम्बन्ध की इसे कोई ज़रूरत नहीं है। जिन चीज़ों की रक्षा की कहीं सम्भावना नहीं है उनकी रक्षा इन गाँवों ने की है। ग्राम पंचायतों के इस संगठन से प्रत्येक गाँव एक स्वतन्त्र राष्ट्र के मानिन्द है। उनकी स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन तथा प्रसन्नता के ऊँचे पैमाने को देखते हुये पंचायतों के महत्व को हम भली भाँति समझ सकते हैं।"* आज भी गाँवों का संगठन

---

* The village communities are little republics having nearly every thing they want within themselves ; and almost independant of foreign relations. They seem to last where nothing else losts. This union of the village communities, each one forming a separate little state in itself······is in a high degree conducive to their

सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है। कितनी ही बातें वहाँ ऐसी दिखाई पड़ेंगी जिन्हें सब लोग मिलकर करते हैं। खेती के काम में सब लोग एक दूसरे की सहायता करते हैं। तालाब, कुयें, नहर आदि बनाने के लिये वे एक साथ अपने घरों से निकलते हैं। यदि किसी के ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति पड़ जाय तो सभी अपनी पूरी ताक़त से उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। गाँवों के तीन चौथाई झगड़े आज भी ग्राम पंचायतों में फ़ैसल होते हैं। बृटिश सरकार के अन्दर ग्राम पंचायतों का कोई महत्व नहीं रहा है। इसीलिये इनकी उपयोगिता कम दिखाई पड़ती है। कुछ लोग तो इन्हें कहानी मात्र समझते हैं।

ग्राम संगठन का स्वरूप भिन्न-भिन्न समयों में अलग-अलग रहा है। ऐतिहासिक प्रमाण न मिलने से हम इसका क्रमिक विवरण नहीं दे सकते। हिन्दू काल में गाँवों का संगठन पंचायत के आधार पर किया जाता था। गाँव ही शासन की सबसे छोटी इकाई माने जाते थे। प्रत्येक गाँव का प्रबन्ध वहाँ की पंचायतें करती थीं। १० गाँवों को मिलाकर एक दूसरी पञ्चायत बनाई जाती थी। इस संगठन को संग्रहण कहा जाता था। फिर २०० गाँवों का एक दूसरा संगठन होता था, जिसे खरवालिका कहा जाता था। इसके ऊपर ४०० गाँवों का एक संगठन बनाया जाता था, जिसका नाम द्रोणमुख था। अन्त में ८०० गाँवों का एक संगठन होता था जो स्थानीय कहलाता था। मानव धर्म-शास्त्र में गाँवों का संगठन कुछ और बतलाया गया है। उसके कथनानुसार गाँवों का संगठन एक, दस, बीस, सौ, एक हज़ार के बीच में दो सौ, तीन सौ और पाँच सौ गाँवों का अलग अलग संगठन था। इस संगठन को मनु ने गुल्म कहा है।

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में इस देश का शासन गाँवों से आरम्भ होता था। श्रेणीबद्ध फिर तरीक़े पर इनका संगठन किया जाता था। संहिता के रचयिता ने कहा है कि देश शब्द का अर्थ है एक हज़ार गाँवों का संगठन। हर गाँव का क्षेत्रफल सामान्य रूप से २ वर्ग मील होता था। इसमें अलग अलग मार्ग होते थे। इनका नाम पद्म-वीथी, मार्ग तथा राजमार्ग था। इनकी चौड़ाई क्रमशः ३, ५, १० और १५ फ़ीट होती थी। राजमार्ग की चौड़ाई १५ से ३० फ़ीट तक होती थी। प्रत्येक गाँव में एक चौपाल (Rest house) होती थी। यात्रियों के ठहरने तथा

---

happiness, and to the enjoyment of a great portion of freedom and independence.

खाने का इसमें पूरा प्रबन्ध रहता था। शुक्राचार्य ने गाँवों का संगठन एक से दस हज़ार गाँवों तक माना है। प्रत्येक श्रेणी का संगठन सुदृढ़ और स्वावलम्बी था। ग्राम पञ्चायतें गाँवों का शासन करती थीं। परन्तु केन्द्रीय सरकार की ओर से भी उनकी देख-रेख का प्रबन्ध था। हर गाँव में एक सरकारी कर्मचारी रहता था, जो गोप कहलाता था। गाथा सप्तसती में इसका नाम ग्रामणी कहा गया है। एक से दस गाँव तक की ज़िम्मेवारी इसे दी गई थी। प्रति वर्ष गाँवों की जनसंख्या की गणना की जाती थी। सरकारी कर्मचारी पञ्चायत द्वारा इस कार्य को करते थे और केन्द्रीय सरकार को इसकी सूचना देते थे। जनसंख्या के समय हर गाँव में घरों की संख्या, आदमियों तथा पशुओं की संख्या, उनकी जाति तथा आयु आदि भी दिखाये जाते थे। गोप या गाँव का मुखिया हिसाब-किताब का ब्यौरा रखता था। गाँव की जितनी आमदनी सरकार को देनी होती थी उसे वही वसूल करके भेजता था। शुक्र-नीतिसार के अनुसार गोप या मुखिया ब्राह्मण जाति के होते थे।

गाँव की किस्में

शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से गाँवों में कोई भेद नहीं है। जो संगठन किसी छोटे गाँव में बना हुआ है वही बड़े में भी है। हिन्दू काल में कुछ गाँवों की आमदनी मन्दिरों तथा पाठशालाओं को दे दी जाती थी। परन्तु उनके शासन-प्रबन्ध में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। गाँव का हिसाब-किताब रखने वाला उसकी आमदनी सरकारी ख़ज़ाने में न भेज कर किसी संस्था को भेज देता था। प्रजा के अधिकारों में कोई कमी नहीं पड़ती थी। चन्द विद्वानों को कुछ गाँव माफ़ी में दे दिये जाते थे। सरकार उसकी आमदनी से कोई मतलब नहीं रखती थी। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो जितना चाहे गाँवों से वसूल कर ले। एक निश्चित आय से अधिक लेने का अधिकार किसी को तब तक नहीं था जब तक ग्राम पञ्चायत अथवा केन्द्रीय सरकार इसकी आज्ञा न दे दे। गाँव की आमदनी चाहे जिस मद में ख़र्च की जाय, उसके राजनीतिक प्रबन्ध में कोई फ़रक नहीं पड़ता था। मुसलमानी ज़माने में कुछ लोगों को जागीरें दी जाती थीं। कितने ही कर्मचारियों को वेतन के बदले दो एक गाँव दे दिये जाते थे। परन्तु शासन-प्रबन्ध में वे कोई उलट-फेर नहीं कर सकते थे। जब तक गाँवों के लोग एक निश्चित रक़म सरकारी ख़ज़ाने में भेजते रहते थे तब तक बादशाह तक उनके कामों में दख़ल नहीं दे सकता था।* किसी सरकारी अथवा ग़ैर सरकारी कर्मचारी को प्रजा

* It is fairly clear that during the period of Moham-

से एक पाई भी अधिक वसूल करने का अधिकार न था। १०५४ ई० के एक शिलालेख से यह पता चलता है कि सरकार प्रजा के धन को उसकी एक सुरक्षित सम्पत्ति समझती थी। जिस प्रकार माली बगीचे से फल-फूल चुन लेता है परन्तु बगीचे की सुन्दरता और हरियाली में कोई अन्तर नहीं पड़ता, उसी तरह सरकार प्रजा की आय का एक छोटा सा हिस्सा वसूल करती थी। शिलालेख में एक स्त्री की कहानी लिखी गई है। गाँव के किसी कर्मचारी ने किसी स्त्री से कुछ अनुचित रक़म टैक्स के रूप में लेना चाहा। स्त्री ने देने से इनकार कर दिया। कर्मचारी ने उसे कुछ बुरा-भला कहा। स्त्री ज़हर खाकर मर गई। आस-पास के गाँवों में इस विषय पर पञ्चायतें हुईं। १७ ज़िलों के गाँवों की पंचायतों में इस मामले पर विचार किया गया। कर्मचारी अपराधी ठहराया गया और उसे सख्त दंड दिया गया।†

गावों की आमदनी चाहे जिसके पास जाय, उसके शासन-प्रबन्ध में कोई फ़रक नहीं किया जाता था। गाँवों में पंचायतों का स्वरूप एक था। सरकारी टैक्स सबसे एक सा लिया जाता था। गाँवों की रक्षा और शान्ति की चिन्ता सरकार को एक सी करनी पड़ती थी। इतना ज़रूर है कि कुछ गाँवों की ओर सरकार को विशेष ध्यान देना पड़ता था। इसकी वजह यह थी कि वहाँ के निवासियों का पेशा ऐसा होता था जिन्हें उत्साहित करना सरकार अपना कर्तव्य समझती थी। उनके कला-कौशल से सारे राज्य को लाभ पहुँचता था। निम्न लिखित उद्धरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। बौद्ध कालीन जातकों से यह पता चलता है कि गाँव में ५०० आदमी निवास करते थे। सभी बढ़ई का काम करते थे। दूसरा गाँव लुहारों का था। इसमें सिर्फ़ लोहार ही बसते थे। १००० घर लुहारों के थे। इसी प्रकार एक तीसरा गाँव १००० लकड़िहारों का था।* यदि इन्हें हम विभिन्न प्रकार के गाँव कहें तो कोई हानि नहीं है मुमकिन है इसी तरह किसानों, जुलाहों, मज़दूरों तथा सुनारों आदि के गाँव रहे हों। परन्तु

madan rule, the village communities were left more or less to their own resources; and practically no connection was maintained with the King's Government, except the due payment of the taxes.

† Madras Epigraphy. Annual Report, 1906—7.

* जातक, भाग २-४ नं० १५६, १८७, ४६६।

ध्यान रखती है कि जो लगान प्रजा से वसूल हो उसका कुछ हिस्सा ज़मींदार अपने पास रख ले और बाक़ी सरकारी ख़ज़ाने में भेज दे। ज़मींदारी का हिस्सा लगभग $\frac{1}{10}$ माना गया है। लेकिन कार्य रूप में ऐसा नहीं होता। जो मालगुजारी ज़मींदार सरकार को अदा करते हैं उसका दूना और चौगुना प्रजा से वसूल करते हैं। गाँव की पर्ती और जङ्गल आदि उस गाँव के ज़मींदारों की सम्पत्ति समझी जाती है। हर गाँव में एक मुखिया और पंचायत होती है। प्राचीन काल में इनकी शक्ति अधिक थी, परन्तु बृटिश राज की मातहती में इन्हें कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश में इस प्रकार के गाँव पाये जाते हैं। इस तरह के गाँवों की मालगुज़ारी प्रत्येक खेत पर नहीं लगाई जाती। सरकार हर गाँव से एक सम्मिलित रक़म वसूल करती है। सारा गाँव मिलकर इसके लिये ज़िम्मेवार होता है।

ग्राम पंचायत

अनादि काल से हिन्दोस्तान में गाँव ही शासन की इकाई माने गये हैं। शासन-प्रबन्ध के लिये प्रत्येक गाँव में कई पंचायतें होती थीं। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार के जो जो विभाग आज हम देखतें हैं, उनके लिये अलग अलग पंचायतें थीं। शिक्षा पंचायत, रक्षा पंचायत, सेवा पंचायत, सफ़ाई पंचायत इत्यादि इत्यादि पंचायतें गाँवों का प्रबन्ध करती थीं। जब कोई नया गाँव बसाया जाता था तो ये सभी प्रकार की पंचायतें वहाँ बना दी जाती थीं। गाँव बसाने का अधिकार केवल राजा को होता था। तेरहवीं शताब्दी के शिला-लेखों से पता चलता है कि जब कोई गाँव बसाना होता था तो यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता था कि उसका क्षेत्रफल क्या होगा और उसमें किस किस वर्ण के लोग कितनी कितनी संख्या में बसाये जायेंगे। प्रत्येक गाँव में कुछ जमीन पर्ती रक्खी जाती थी। इसे कोई जोत नहीं सकता था। इस पर सभी लोग अपने जानवर चरा सकते थे। गाँव से बाहर जङ्गल होता था। लकड़ी आदि के लिये इससे सुविधा होती थी। गाँव के सभी लोग मिलकर एक या दो तालाब खोदते थे। बरसात के दिनों में इनमें पानी भरा जाता था। साल भर लोग इसमें स्नान करते थे और सिंचाई का काम चलाते थे। जो ज़मीन गाँवों के लिये चुनी जाती थी उसमें सुन्दर सुन्दर रास्ते चारों ओर जाने के लिये बना दिये जाते थे। हावेल लिखता है, "चन्द्रगुप्त मौर्य के ज़माने में शिल्पशास्त्र के नियमानुसार सैकड़ों गाँव बसाये गये थे।" बृटिश सरकार ने पंजाब में कितनी ही बंजर ज़मीनों को आबाद कराया है। 'कनाल उपनिवेश' इसी का परिणाम है। चर्च मिशनरी सोसाइटी ने भी

संयुक्त प्रान्त और बंगाल में इस तरह के कितने ही गाँव बसाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि इनका उद्देश्य इसाई धर्म का प्रचार करना है, फिर भी कितनी ही बंजर और उजाड़ भूमि उपजाऊ बनाई गई है। पूर्वी बंगाल में इन्होंने जो सन्थाल नामक उपनिवेश बसाया है उसका क्षेत्रफल १४ वर्ग मील है। इसके अन्दर १० गाँव हैं और प्रत्येक का मुखिया होता है। पूरे उपनिवेश के प्रबन्ध के लिये इन्हीं ग्राम निवासियों की कौंसिल बनाई गई है। आज वहाँ २५०० इसाई निवास करते हैं। यदि कोई बाहरी आदमी वहाँ रहना चाहता है तो उसे उपनिवेश की सभी शर्तें माननी पड़ती हैं*।

ऊपर कहा गया है कि प्राचीन काल में गाँवों का प्रबन्ध पञ्चायतों द्वारा होता था। हर गाँव में एक सर्वप्रधान पञ्चायत होती थी। कुछ अँग्रेज़ लेखकों ने इन पञ्चायतों को जाती पञ्चायतें कहा है। लेकिन यह उनकी सरासर भूल है। इस देश में पञ्चायतें हमेशा से दो उद्देश्यों से बनाई जाती रही हैं। या तो शासन-प्रबन्ध के लिये अथवा पेशे की निगरानी के लिये। गाँव के सभी तजुरबेकार आदमियों की एक बड़ी पञ्चायत होती थी। मुखिया इसका प्रधान होता था। कार्य की सुविधा के लिये यह पञ्चायत अपनी ओर से कई कमीटियों को बनाती थी। सफ़ाई, रक्षा, शिक्षा, आदि के लिये अलग अलग कमीटियाँ होती थीं। कमीटी अथवा पञ्चायत के बनाने में जातीय अथवा पेशे के कारण कोई आदमी अछूत नहीं समझा जाता था। चारों वर्णों का विधान केवल पेशे के लिये बनाया गया था।† लोहार, बढ़ई, जुलाहे, कुम्हार तथा सोनार समाज में इज्ज़त की नज़र से देखे जाते थे।‡ आनंद रंगा पिलाई, जो डूपले का एजेन्ट था, अपनी दिनचर्या में लिखता है, "एक गाँव में किसी मन्दिर के झगड़े का निपटारा करने के लिये पंचायत की बैठक बुलाई गई। इसमें ब्राह्मण से लेकर चंडाल तक शामिल थे।"§

---

* Those who are not Christians sign a pledge to abstain from intoxicating drink and heathen sacrifices and to abide by the rules of the colony.

† The four-fold division of the people in itself is one according to profession.

‡ Hindu Administrative institution page 366.

§ The private diary of Anandaranga Pillay, page 332—3.

पञ्चायत शब्द के दो अर्थ लगाये जाते हैं। वह सभा जिसमें ५ आदमी काम करें पञ्चायत कहलाती है। अथवा गाँव के शासन-प्रबन्ध के लिये सभी अनुभवशील व्यक्तियों की मंडली पञ्चायत कहलाती है। वास्तव में पञ्चायत और ५ का कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। यह हो सकता है कि गाँव की बड़ी पञ्चायत किसी मामले का अन्तिम निर्णय करने के लिये ५ आदमियों की एक छोटी कमीटी बना देती रही हो। इस तरह की कितनी ही कमीटियाँ आजकल बनाई जाती हैं। मनु के ग्रन्थों से यह पता चलता है कि हर गाँव में शासन की पूरी ज़िम्मेवारी पञ्चायत को दे दी जाती थी। कुछ लेखकों ने इस तरह की पञ्चायतों का मुक़ाबिला ट्यूटन जाति के संगठनों से किया है। लेकिन इससे उनकी अदूरदर्शिता का परिचय मिलता है। ट्यूटन जाति में संगठन बनाये गये थे उनका उद्देश्य लूट-मार करना था। इसके विपरीत ग्राम पञ्चायतें शासन-प्रबन्ध करने तथा शान्ति की रक्षा के लिये बनाई गई थीं। पञ्चायतों का काम अत्याचार को दबाना था। इसके सदस्य चतुर और अनुभवशील होते थे। पञ्चायत की आज्ञा सबको माननी पड़ती थी। गाँव की सभी घटनायें इनमें पेश की जाती थीं। बारहवीं शताब्दी की एक घटना का उल्लेख मदरास की एक सरकारी रिपोर्ट में किया गया है। एक गाँव में किसी आदमी ने अपने पड़ोसी को जान से मार डाला। ज़िले भर की पञ्चायतों ने यह फ़ैसला किया कि अपराधी की इच्छा प्राण लेने की न थी, अतएव इसे फाँसी का दंड नहीं मिलना चाहिये। अन्त में उसे यह सज़ा दी गई कि वह गाँव के मन्दिर में दीपक जलाये।*

छोटी छोटी बातों का फ़ैसला पेशे की पञ्चायतों में किया जाता था। गाँव की बड़ी पञ्चायत के अलावे हर पेशे वालों की एक अलग पञ्चायत होती थी। नाई, धोबी, दर्जी, कुम्हार, लोहार, सोनार आदि पेशे वाले अलग अलग पञ्चायतें रखते थे, इन्हीं पेशे की पञ्चायतों को विदेशियों ने जाती पञ्चायत कह कर पुकारा है। जब कोई झगड़ा वा मतभेद उत्पन्न होता तो दोनों पार्टियाँ अपनी पेशे वाली पञ्चायतों को सूचित करती थीं। उन्हें यह अधिकार न था कि वे सबसे पहले सरकारी दफ़्तर में इसकी सूचना दें। यदि जाती पञ्चायत अथवा ग्राम की बड़ी पञ्चायत की अवहेलना करके वें सरकारी दफ़्तर की शरण लेतीं तो दोहरे अपराध की भागी ठहराई जाती थीं। तामील जिले में एक ग्राम पञ्चायत के सामने चोरी का मामला पेश

* Madras Epigraphy, Annual Report, 1899-1900, p. 11.

हुआ। एक महीना पहिले किसी ब्राह्मण के घर में चोरी हुई थी। ब्राह्मण ने तुरन्त पुलीस को इसकी इत्तला दे दी थी। पुलीस को जब चोरी का कुछ पता न चला तो उसने यह कहकर इस मामले से हाथ खींच लिया कि चोरी का मामला झूठा है। जब यह बात ग्राम पञ्चायत के सामने पेश की गई तो पञ्चायत ने उस ब्राह्मण को २० रुपया इसलिये जुर्माना किया कि पञ्चायत की अवहेलना करके उसने पुलीस को इत्तला दी थी। यह रुपया ग्राम के सार्वजनिक कामों में ख़र्च किया गया। इसके बाद चोरी की जाँच-पड़ताल शुरू हुई। चार प्रधान व्यक्तियों को यह कार्य सौंपा गया कि वे चोरी का पता लगावें और चाहे जैसे हो ब्राह्मण को ३०० रुपये का ज़ेवर वापिस करें। इसी तरह की घटना का वर्णन रूस की एक ग्राम पञ्चायत में भी मिलता है।

ग्राम पञ्चायत के अतिरिक्त शासन प्रबन्ध के लिये कुछ और भी कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। गाँव का मुखिया इनका प्रधान होता था। सरकार और ग्राम पञ्चायत के बीच में इसका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जब कोई सरकारी फ़रमान जारी होता तो उसकी सूचना इसी को दी जाती थी। किसी अफ़सर को गाँव के मामले में इसकी आज्ञा के विरुद्ध दख़ल देने का अधिकार न था। सरकारी टैक्स वसूल करने का अधिकार इसी को दिया गया था। एक दूसरा कर्मचारी गाँव का हिसाब किताब रखता था। इसका काम खेतों का नाप पड़ताल तथा और हर कुटुम्ब की आय का हिसाब रखना था। गाँव के प्रत्येक घर से सालाना कुछ अन्न इसे वेतन के रूप में दिया जाता था। यही कर्मचारी आजकल पटवारी कहलाता है। गाँव का तीसरा कर्मचारी चौकीदार कहलाता था। चौकीदार दो होते थे। एक का काम अपराधियों का पता लगाना था। गाँव में जब कोई नया व्यक्ति आता तो उसकी जाँच पड़ताल के लिये यह तैयार रहता था। इससे बाहरी चोर-डाकू गाँव में प्रवेश न कर सकते थे। दूसरे चौकीदार का काम रात में पहरा देना था। वह खेती आदि की रक्षा करता था। पहले प्रकार के चौकीदार का दर्जा ऊँचा समझा जाता था। ये चौकीदार शूद्र जातियों में से नियुक्त किये जाते थे। इनकी यह ज़िम्मेवारी थी कि वे गाँव के प्रत्येक निवासी की रहन-सहन से परिचित हों। जब कोई चोरी आदि होती तो उन्हें अपराधी का पता लगाना पड़ता था। प्रत्येक घर से सालाना अन्न उसे वेतन के रूप में दिया जाता था। जब तक चोरी का पता नहीं लग जाता तब तक उसकी ज़िम्मेवारी ख़तम नहीं होती थी। ये गाँव से बाहर रहते थे और इनका पद पैत्रिक था।

गाँव का चौथा कर्मचारी अमीन कहलाता था। इसका काम गाँव की सीमा ठीक करना था। यदि एक गाँव के रहने वाले किसी पड़ोसी गाँव की कुछ ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेते तो दोनों गाँव के अमीन इसका निपटारा करते थे। जब कभी दो व्यक्तियों में अपने खेतों की सीमा के लिये झगड़े पैदा हो जाते तो अमीन उसका फ़ैसला करता था। इनके अतिरिक्त गाँव का अध्यापक, पुजारी, ज्योतिषी तथा तालाब और पानी का निरीक्षक आदि कर्मचारी गाँव की देख-रेख के लिये रक्खे गये थे। इन्हें वेतन नहीं दिया जाता था। या तो इन्हें गाँव की कुछ ज़मीन बिना लगान के दे दी जाती थी अथवा हर साल प्रत्येक घर से कुछ अन्न दिया जाता था। बढ़ई, कुम्हार, लोहार, धोबी, नाई, ग्वाला, वैद्य, गायक, कवि, नर्तक, भाँड़ आदि कर्मचारियों को सालाना अन्न दिया जाता था। ये अपने-अपने पेशे द्वारा गाँव की सेवा करते थे। किसी का दर्जा एक दूसरे से कम नहीं समझा जाता था। इन सब की अलग-अलग पञ्चायतें थीं। सभी पेशे वालों के अनुभवशील व्यक्ति ग्राम की बड़ी पञ्चायत में शामिल किये जाते थे। इन पेशे वालों को देखते हुये यह स्पष्ट है कि प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं के लिये स्वावलम्बी था। फिर भी आस-पास के गाँवों में एकता स्थापित करने के लिये पञ्चायतें बनाई गई थीं। राजराजा चोला प्रथम (६८५-१०१३ ई०) के एक शिला-लेख से पता चलता है कि ४० गाँवों की एक पञ्चायत थी जो इन सब पर शासन-प्रबन्ध करती थी।* एक अंगरेज़ विद्वान लिखता है, "गाँव का प्रबन्ध करने के लिये निम्नलिखित ६ कमीटियाँ होती थीं, ये सब प्रधान पञ्चायत की मातहती में अपना कार्य करती थीं :—

१—वार्षिक कमीटी २ बाटिका कमीटी ३—तालाब कमीटी ४—स्वर्ण कमीटी ५—न्याय कमीटी ६—पञ्चवार कमीटी (यह अन्य कमीटियों की देख-रेख करती थी)।"

ग्राम पंचायतों का चुनाव

वर्तमान प्रजातन्त्रवाद के अन्दर वोट लेने की जो प्रथा प्रचलित है वह नई नहीं है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से यह पता चलता है कि ग्राम पञ्चायतों में वोट लेने की प्रथा प्रचलित थी। सभी व्यक्ति इनके सदस्य नहीं बन सकते थे। इसके लिये आयु, शिक्षा, तथा सम्पत्ति की शर्त लगाई गई थी। जिसके पास अपना मकान होता, जो निश्चित मात्रा में सरकारी टैक्स देता, जो मन्त्रों का ज्ञान रखता, और कम से कम एक धर्मशास्त्र की पूरी

*Archæological Survey of India, 1904—5, p. 130.

जानकारी रखता, वह पञ्चायत का सदस्य बन सकता था। जिसे एक वेद का पूरा ज्ञान रहता वह भी पञ्चायत का सदस्य बनने का अधिकारी समझा जाता था। इसके अतिरिक्त चरित्र और आयु का भी बन्धन लगाया गया था। ३५ वर्ष से कम और ७५ वर्ष से ऊपर की आयु का कोई व्यक्ति पञ्चायत का सदस्य नहीं बन सकता था। निम्नलिखित व्यक्ति सदस्य बनने से सर्वथा अयोग्य ठहराये गये थे :—

१—जो सदस्य किसी कारणवश एक बार अपराधी क़रार दिया जाता था उसके सम्बन्धी पञ्चायत का सदस्य नहीं बन सकते थे। उसके भाई, बहिन, माता, पिता आदि को पञ्चायत में स्थान नहीं दिया जाता था।

२—ब्रह्म-हत्या करने वाला, शराबी, सोने की चोरी करने वाला, अथवा व्यभिचारी पञ्चायत का सदस्य नहीं बन सकता था। अर्थात् पञ्च महापातकी इस पद से वंचित किये गये थे।

३—चोर तथा डाकू, नीचों की संगति में रहने वाले, और उतावले पञ्चायत में शामिल नहीं हो सकते थे।

४—चरित्रहीन व्यक्तियों के लिये पञ्चायत में कोई स्थान न था।

५—त्याज्य भोजन करने वालों को पञ्चायत में स्थान नहीं दिया जाता था।

६—जालसाज़ी करने वाले तथा गदहे पर चढ़े हुये व्यक्तियों को पञ्चायत में शरीक नहीं किया जाता था।

चुनें हुये व्यक्तियों में से सबसे चतुर तथा अनुभवशील १२ सदस्यों की एक कमीटी अन्य कमीटियों की देख-रेख के लिये बना दी जाती थी। इसे वार्षिक कमीटी कहा जाता था। दूसरे १२ सदस्यों की एक कमीटी बगीचों की देख-रेख के लिए और इन दोनों के अतिरिक्त ६ सदस्यों की एक तीसरी कमीटी तालाबों की देख-रेख के लिए बनाई जाती थी। इन कमीटियों का यदि कोई सदस्य किसी अपराध में पकड़ा जाता तो वह अपने पद से हटा दिया जाता था। इनके अतिरिक्त जो बाकी कमीटियाँ गाँव की देख-रेख के लिये बनाई जाती थीं उनका चुनाव फिर से होता था।

इन ३० सदस्यों का चुनाव इस वैज्ञानिक ढंग से किया जाता था कि किसी को इसमें आपत्ति की गुंजाइश न होती थी। गाँव को ३० बराबर हिस्सों में बाँट दिया जाता था। प्रत्येक हिस्से में रहने वाले योग्य व्यक्तियों को एक एक टिकट दिया जाता था। वे इस पर अपना नाम लिखकर किसी एक जगह रखते थे। तीसों मुहल्लों की तीस ढेरियाँ लग जाती थीं। हर ढेरी पर

मुहल्ले का नाम लिखा रहता था। फिर हर ढेरी के टिकट अच्छी तरह रस्सी से बाँध दिये जाते थे। यह सारा काम गाँव की सबसे बड़ी सभा के सामने, जिसमें गाँव के लगभग सभी लोग शरीक रहते थे, होता था। गाँव के छोटे बड़े सभी पुजारी मौजूद रहते थे। सबसे बड़ा पुजारी तीसों ढेरियों की अलग अलग बँधी हुई गठरियों को एक मिट्टी के बर्तन में रखता था। इसके पश्चात् वह दोनों हाथों से बर्तन को उठाकर आँख ऊपर किये किसी बच्चे को बुलाता था। बच्चे को यह मालूम नहीं था कि मिट्टी के बर्तन में क्या रक्खा हुआ है। बच्चा बर्तन से एक गठरी निकाल लेता था। इसके बाद पुजारी उस गठरी के तमाम टिकटों को इधर उधर फेर कर किसी दूसरे बर्तन में रख देता था। फिर वह बच्चा इनमें से एक टिकट निकालता था। टिकट को लेने के लिये एक मध्यस्थ पहले से ही नियुक्त रहता था। यह कोई सरकारी अफ़सर होता था। मध्यस्थ दाहिना हाथ अच्छी तरह खोलकर पाँचों उंगलियों को फैलाकर इस टिकट को बच्चे से ले लेता था। जिस व्यक्ति का नाम इस टिकट पर लिखा रहता था वह पञ्चायत का एक सदस्य घोषित कर दिया जाता था। इसी तरह बारी बारी से तीसों सदस्यों का चुनाव होता था। स्त्रियाँ भी पञ्चायत अथवा कमीटियों की सदस्या बन सकती थीं।*

गाँव और राजा

मुसलमानी ज़माने में बादशाहों को गाँवों के मामलों में हाथ डालने की ज़रूरत कम पड़ती थी। जब तक उन्हें कर आसानी से मिल जाता तब तक वे गाँवों की चिन्ता से सर्वथा निर्द्वन्द थे। ग्राम पञ्चायत तथा कमीटियों का वे इतना आदर करते थे कि किसी सरकारी कर्मचारी को उसमें हाथ डालने की सख्त मुमानियत थी। परन्तु हिन्दू काल में यह बात न थी।† राजा ग्राम पञ्चायतों का आदर करते हुये भी गाँव के प्रबन्ध का ध्यान रखता था। वह इसे अपने राज्य का एक अंग समझता था। राजा की ओर से अनेक कर्मचारी गाँवों की देख-रेख के लिये नियुक्त किये जाते थे। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि गाँव और केन्द्रीय सरकार के बीच में एक तीसरी राजनीतिक संस्था थी। गाँवों का

---

*Madras Epigraphy, Annual Report, 1909-10, p. 98.

† For Metcalfe's famous description of the Indian Village Community see Baden-Powell Land System of British India, Vol. 1, p. 170.

सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार से था। हितोपदेश में एक स्थान पर कहा गया है कि :—

> त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
> ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

अर्थात् कुटुम्ब की भलाई के लिये व्यक्ति को, ग्राम की भलाई के लिये कुटुम्ब को, राष्ट्र की भलाई के लिये गाँव को और अपनी भलाई के लिये व्यक्ति इस पृथ्वी को छोड़ने के लिये सर्वथा तैयार रहे।

मनु के कथनानुसार गाँव और राजा का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ था। गाँव का मुखिया वही नियुक्त करता था।* कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में इस विषय के अनेक वर्णन मिलते हैं कि राजा गाँवों के मामलों में सीधा हाथ डाल सकता था।† शुक्रनीति में राजा के अनेक कर्तव्यों में एक यह भी बात आवश्यक ठहराई गई है कि वह वर्ष में एक बार हर गाँव का भ्रमण करे। उसका यह भी कर्तव्य है कि वह प्रजा की तकलीफ़ों को स्वयं सुने, और यदि कोई सरकारी कर्मचारी उस पर अत्याचार करता है तो उसे दंड देने की व्यवस्था करे। दक्षिणी भारत के शिला-लेखों से पता चलता है कि ग्राम पञ्चायतों और राजाओं में घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। गाँव की एक सभा ने ग्राम-वासियों का कुछ रुपया खा डाला। यह रक़म किसी मन्दिर के लिये रक्खी गई थी। मन्दिर के कर्मचारियों ने राजा से इसकी फ़रियाद की। राजा ने दोनों पार्टियों को बुला भेजा और सभा को दोषी साबित किया। सभा को जुर्माना किया गया और यह रक़म मन्दिर को दे दी गई।‡ ११९१ ई० में एक ग्राम की पञ्चायत ने राजा से यह फ़रियाद की कि अमुक ब्राह्मण चरित्रहीन है और एक विधवा स्त्री रक्खे हुये है। इस मामले में राजा का क्या फ़ैसला रहा इसका ज़िक्र नहीं किया गया है।§ इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि हिन्दू काल में राजा स्वयं गाँवों में जाते थे और प्रजा की हालत जानने की कोशिश करते थे। कुछ राजा तो वेष बदल कर गाँवों में घूमते थे ताकि प्रजा की ठीक ठीक दशा का ज्ञान हो। रात में राजा लोग प्रजा की दशा जानने के लिये गाँवों का चक्कर करते थे। लेकिन जब उन्हें गाँव के मामलों में हाथ डालना होता तो वे ग्राम पञ्चायतों द्वारा ऐसा कर सकते थे।

---

* मानव धर्मशास्त्र, अ० ८

† मैसूर पत्रिका, फरवी १९०८

‡ Madras Epigraphy Annual Report, 1906-7 p. 71.

§ Madras Epigraphy Annual Report, 1908-9, p. 83.

स्थानीय शासन की व्यवस्था का अपहरण होने से ग्राम पञ्चायतों का महत्व जाता रहा। गाँव के मुखिया, चौकीदार, पटवारी, अमीन सबके अधिकार छीन लिये गये। इनमें से कुछ तो सरकारी कर्मचारी क़रार दिये गये और कुछ सर्वथा शक्तिहीन कर दिये गये। मुखिया आज भी है, लेकिन उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। इसका परिणाम इतना भयंकर हुआ है कि गाँव असंगठित तथा अशिक्षित होते गये हैं। जिन गाँवों को तमाम-झगड़े पञ्चायतों द्वारा फ़ैसल किये जाते थे वे ही आज थानों और कचहरियों का मुँह ताकते हैं। छोटे छोटे झगड़ों तक की रिपोर्ट पुलीस को दी जाती है। सरकारी कर्मचारियों की ओर से जब उनके ऊपर बेजा दबाव डाले जाते हैं तो उनकी सुनाई सरकारी महकमें में कम होती है। ज़िले का कलक्टर और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस की रक्षा के लिये ग्रामवासियों की कोई फ़रियाद नहीं सुनते। पुलीस के भय के कारण कोई गवाही तक करने के लिये तैयार नहीं होता। यदि गाँवों का जीवन संगठित होता, और सरकारी कर्मचारियों को अपनी बेजा हरक़तों के लिये पञ्चायत का डर रहता, तो वे निहत्थे ग्रामवासियों पर अनाचार और अत्याचार न करते। स्थानीय स्वराज की वृद्धि के साथ पञ्चायतों का फिर से श्रीगणेश किया गया है। कांग्रेस की अनेक माँगों में ग्राम पञ्चायतों की भी माँग है। लेकिन इसका तात्पर्य केवल ऊपरी ढाँचे से नहीं है, बल्कि ग्राम पञ्चायतों को वे सारे अधिकार प्राप्त होने चाहिये जो उन्हें हिन्दू और मुसलमानी ज़माने में दिये गये थे।

वृटिश राज्य में ग्राम पंचायतें

वर्तमान समय में पञ्चायतों की स्थापना फिर से की गई है। दक्षिणी हिन्दोस्तान में पञ्चायतों ने अधिक सफलता दिखलाई है। इसकी वजह यह है कि ज़मींदारी प्रथा न होने से प्रजा की कार्रवाइयों में कोई बेजा हाथ डालने की हिम्मत नहीं रखता। उत्तरी हिन्दोस्तान में पञ्चायतों की स्थापना के लिये विभिन्न सूबों में कितने ही क़ानून पास किये गये हैं। १६२० ई० में संयुक्तप्रान्त में एक ग्राम पञ्चायत ऐक्ट पास किया गया। बिहार और पंजाब में भी इसी प्रकार के पञ्चायत ऐक्ट पास किये गये। १६१६ ई० में बंगाल में एक ग्राम स्वराज ऐक्ट पास किया गया, तदनुसार बहुत से यूनियन बोर्ड की स्थापना की गई। १६२० ई० में संयुक्तप्रान्त में जो पञ्चायत ऐक्ट पास किया गया उसके अनुसार ज़िले के कलेक्टर को यह अधिकार दिया गया है कि वह ग्रामों में पञ्चायतें बना सके। गाँवों में पञ्चों को नियुक्त करने का अधिकार उसे दिया गया है। पञ्चों की संख्या कम से कम ५ और अधिक से अधिक ७ हो सकती है। यह पञ्चायत या तो प्रत्येक गाँवों में हो सकती है

अथवा ४-६ गाँवों के बीच में एक ही पञ्चायत बनाई जा सकती है। मौजूदा समय में ग्राम समूहों की पञ्चायतें स्थापित की गई हैं। सभी पञ्चों के लिये यह आवश्यक है कि वे उन्हीं ग्रामों के निवासी हों जिनके लिये वह पञ्चायत बनाई गई है। पञ्चों में से एक व्यक्ति इसका प्रधान होता है। इसे सरपञ्च कहते हैं। कलेक्टर इसकी नियुक्ति करता है।

पञ्चायत को दीवानी और फ़ौज़दारी दोनों तरह के अधिकार दिये गये हैं। २५ रुपये तक के दीवानी के मुक़दमें फ़ैसल करने का अधिकार इसे दिया गया है। यदि किसी ने जान बूझ कर किसी की मवेशी पकड़ ली है अथवा ग्रामनिवासियों की सफ़ाई में बट्टा पहुँचाया है तो उसका मुक़दमा पञ्चायत फ़ैसल करती है। जिसने १० रुपये तक की चोरी की है या किसी भी तरह से १० रुपये तक का नुक़सान पहुँचाया है तो उसका मुक़दमा पञ्चायत को सुपुर्द किया जाता है। मामूली मारपीट अथवा अपमान करने वाले फ़ौज़दारी के मुक़दमें पञ्चायत में पेश किये जाते हैं। वह फ़ौज़दारी के मामलों में १० रुपये तक, मवेशियों के मामलों में ५ रुपये तक, और स्वास्थ्य सम्बन्धी मामलों में १ रुपये तक जुर्माना कर सकती है। जिन व्यक्तियों को नम्बर १० करार दिया गया है उनके मुक़दमों की सुनाई पञ्चायत में नहीं हो सकती। सरकारी कर्मचारियों के मुक़दमें पञ्चायत में पेश नहीं किये जा सकते। पञ्चायत न तो किसी को जेल भेज सकती है और न १० रुपये से अधिक जुर्माना कर सकती है। इसका मुख्य काम गाँव की सफ़ाई करवाना, कुएँ और तालाबों की सफाई का प्रबन्ध करना तथा शिक्षा, खेल-तमाशे, रोशनी, बगीचे आदि की व्यवस्था करना है। पंचायतों को कुछ और अधिकार दे दिये जायँ और सरकार पैसे से इनकी मदद करे तो इनसे दो बहुत बड़े लाभ हो सकते हैं। एक तो सरकारी कचहरियों को छोटे छोटे मामलों से फ़ुरसत मिल जायेगी, और दूसरे गाँवों की उन्नति का रास्ता साफ़ हो जायेगा। स्थानीय संस्थाओं की हैसियत से पंचायतें जल्दी और सचाई के साथ फ़ैसला कर सकती हैं।

पाँचवाँ खंड

विभिन्न विषय
(MISCELLANEOUS)

अध्याय १६

भारतीय रियासतें

रियासतों की संख्या और इनका विभाजन

राजनीतिक दृष्टि से हिन्दोस्तान ४ भागों में विभाजित किया गया है— बृटिश प्रान्त, देशी रियासतें, फ़्रांसीसियों के अधिकार और पुर्तगीज़ों की भूमि। बृटिश प्रान्तों का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है; फ़्रांसीसी और पुर्तगीज़ों के अधिकार में हिन्दोस्तान में कुल १८३४ वर्ग मील भूमि और लगभग ६ लाख व्यक्ति हैं। बटलर कमीटी की रिपोर्ट के अनुसार रियासतों की संख्या ५६२ है। परन्तु ज्वायंट पार्लियामेंटरी कमीटी की रिपोर्ट से इनकी संख्या लगभग ६०० ठहराई गई है। इनमें १०६ बड़ी रियासतें हैं और इनमें शासकों को नरेन्द्र मंडल (Chamber of Princes) में स्थान दिया गया है। १२६ रियासतों को केवल १२ सदस्य नरेन्द्र मंडल में भेजने का अधिकार है। ३०० रियासतें जागीरदारों और तालुक़ेदारों की हैं। सम्पूर्ण रियासतों का क्षेत्रफल ७१२५०८ वर्ग मील और इनकी जन-संख्या ८१३१०८४५ है। ४५४ रियासतों का क्षेत्रफल १००० वर्ग मील से कम है। ३७६ रियासतें ऐसी हैं जिनकी सालाना औसत वसूली एक लाख से भी कम है। राजपुताने की कुछ रियासतों का क्षेत्रफल ११ वर्ग मील से भी कम है। १५ रियासतें ऐसी हैं जिनका क्षेत्रफल एक वर्ग मील भी नहीं है। २७ रियासतों का क्षेत्रफल एक वर्ग मील है। कुछ रियासतों की जनसंख्या १०० से भी कम है और उनकी सालाना वसूली १०० रुपये के लगभग है। एक रियासत का क्षेत्रफल केवल ३० एकड़ है। लेकिन चन्द रियासतें ऐसी हैं जो योरप के बड़े बड़े स्वतन्त्र देशों से भी लम्बी चौड़ी हैं। हैदराबाद का क्षेत्रफल इटली के बराबर है और इसकी जन-संख्या १ करोड़ ४० लाख से ऊपर है, अर्थात् जापान से इसका

क्षेत्रफल केवल ८००० वर्ग मील कम है। काश्मीर का क्षेत्रफल ग्रेट बृटेन से कुछ ही कम है। मैसूर का क्षेत्रफल डेनमार्क के दूने के लगभग है।

रियासतें कई समूहों में विभक्त की जा सकती हैं। भौगोलिक, राजनीतिक और शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से इनमें अन्तर दिखाई पड़ेगा। जम्बू और काश्मीर की रियासत हिन्दोस्तान के उत्तर में स्वर्ग के मानिन्द इतनी सुन्दर और विशाल है कि इसे स्वयं एक समूह में रक्खा जा सकता है। पंजाब की ३४ रियासतें एक समूह में रक्खी जा सकती हैं। संयुक्तप्रान्त में केवल ३ रियासतें हैं। ये एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं। बिहार और उड़ीसा में २६ रियासतों का एक अलग समूह है। बंगाल में २ और आसाम में केवल मनीपुर की रियासत है। २०६ रियासतों का एक दूसरा समूह वेस्टर्न इन्डियन स्टेट्स एजेन्सी के नाम से प्रसिद्ध है। राजपुताने में २१ रियासतों का एक अलग समूह है। मध्य भारतीय रियासतों (Central Indian States) में ९० रियासतें हैं। मध्यप्रान्त में कुछ रियासतें हैं। बम्बई में १५१ रियासतों का एक दूसरा समूह है। दक्षिण में हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी रियासत हैदराबाद है। इसके बाद मैसूर की दूसरी बड़ी रियासत है। सुदूर दक्षिण में कोचीन और ट्रावनकोर की रियासतें हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह विभाजन रियासतों की जलवायु समझने में कुछ सहायक हो सकता है परन्तु राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं है।

भारतीय रियासतें इतने प्रकार की हैं कि इनका विभाजन किसी वैज्ञानिक आधार पर होना चाहिये। इनका क्षेत्रफल, जनसंख्या, शासन-प्रबन्ध और बृटिश सरकार से सम्बन्ध—ये बातें इनमें अलग अलग पाई जाती हैं। पद के अनुसार ये रियासतें तीन श्रेणियों में रक्खी गई हैं:—

१—वे रियासतें जो नरेन्द्र मंडल की सदस्य हैं। इनकी संख्या १०८ है। इन सबका क्षेत्रफल ५१४८८६ वर्ग मील और जनसंख्या ६ करोड़ के लगभग है। इन सबकी सालाना वसूली ४३ करोड़ रुपये के लगभग है। इन्हें 'सलामी वाली' (Salute States) रियासतें भी कहते हैं। इनके अतिरिक्त ८ अन्य रियासतों को भी सलामी का अधिकार दिया गया है, परन्तु वे नरेन्द्र मंडल (Chamber of Princes) की सदस्य नहीं हैं।

२—वे रियासतें जिन्हें केवल १२ सदस्य नरेन्द्र मंडल में भेजने का अधिकार है। इनकी संख्या १२७ है। इनका क्षेत्रफल ७६८४१ वर्ग मील और जनसंख्या ८० लाख से कुछ अधिक है। उनकी सालाना वसूली ३ करोड़ रुपये हैं।

३—वे रियासतें जो नरेन्द्र मंडल में अपना प्रतिनिधि नहीं भेज सकतीं। इनके शासक एक प्रकार के जागीरदार अथवा ताल्लुकेदार हैं। इनकी संख्या ३२७ और क्षेत्रफल ६४०६ वर्ग मील है। जनसंख्या ८ लाख से कुछ ऊपर और सालाना वसूली ७५ लाख रुपये के लगभग है। ये रियासतें बहुत ही छोटी और नाममात्र के लिये क़ायम हैं।

रियासतों का यह विभाजन बहुतों को पसन्द नहीं है। सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने इनका विभाजन 'स्वतन्त्र' और 'परतन्त्र' दो प्रकार से किया था। प्रत्येक रियासत के साथ बृटिश सरकार ने एक सुलहनामा किया है। हर एक राजा को अधिकारों और कर्तव्यों की एक सनद दी गई है। इसमें यह सूचित किया गया है कि कौन रियासत किस दर्जे तक स्वतन्त्र है। कुछ ऐसी भी रियासतें हैं जो सरकार को कर अथवा नज़र नहीं देतीं। इसके अलावे कुछ रियासतों को प्रति वर्ष कुछ घोड़े, सिपाही और एक निश्चित रक़म देनी पड़ती है। काश्मीर के राजा को प्रति वर्ष १ घोड़ा, १२ बकरियाँ और ३ ऊनी शाल देने पड़ते हैं। लार्ड डलहौज़ी ने भी इस विभाजन को स्वीकार कर लगभग सभी परतन्त्र रियासतों को बृटिश-राज्य में शामिल कर लिया था। ग़दर के बाद यह विभाजन दूर कर दिया गया। उनके साथ नये तरह के सुलहनामें किये गये और उनके दर्जों में अनेक परिवर्तन हुये। कुछ भारतीय लेखकों तथा राजनीतिज्ञों ने रियासतों का बहुत ही सरल विभाजन किया है। उनका कहना है कि जो रियासतें क्षेत्रफल, जनसंख्या, वसूली तथा रुतबे में बड़ी हैं उन्हें एक कोटि में रक्खा जाय और बाक़ी को दूसरी कोटि में।

सरदार डी० के० सेन ने रियासतों को ७ श्रेणियों में बाँटा है। राजसत्ता के आधार पर उन्होंने यह विभाजन किया है। जो रियासतें जहाँ तक शासन-प्रबन्ध में आज़ाद हैं उसी हिसाब से उनको एक कोटि में रक्खा गया है। रियासतों में इतनी विषमतायें हैं कि उनके विभाजन के लिये कोई निश्चित सिद्धान्त बनाना कठिन है। ३० रियासतों में धारा सभायें स्थापित की गई हैं; ४० रियासतें अपनी स्वतन्त्र हाईकोर्ट रखती हैं; ३४ रियासतों ने अपने राज्य में न्याय और कार्य-कारिणी विभाग को एक दूसरे से अलग कर रक्खा है; ५४ रियासतों ने पेंशन देने का नियम बनाया है; ४६ रियासतों में सरकारी पदाधिकारियों का वेतन और उनका कार्यकाल बृटिश प्रान्तों की तरह है; ५६ रियासतों में राजा को एक निश्चित रक़म उसके निजी ख़र्च के लिये दी जाती है; २१२ रियासतें बृटिश सरकार को कर देती हैं। इस प्रकार इनके आन्तरिक और वाह्य सम्बन्ध में बड़ा ही अन्तर है। शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से रियासतों को दो भागों में बाँटा गया है :—

१—वे रियासतें जो आधुनिक प्रजातन्त्रवाद के आधार पर अपना राजनीतिक प्रबन्ध करती हैं। इनमें निर्वाचन की प्रथा प्रचलित है और लोकमत का आदर किया जाता है। दक्षिण की कुछ बड़ी-बड़ी रियासतें और उत्तर और मध्य की लगभग एक दर्जन रियासतें इस कोटि में गिनी जाती हैं।

२—वे रियासतें जिनमें अभी पुरानी दकियानूसी जारी है। सारे अधिकार राजा को प्राप्त हैं और प्रजा उनके हाथ की कठपुतली है। राजपुताना की कुछ रियासतें और हिन्दोस्तान की शेष रियासतें इसी कोटि में रक्खी जा सकती हैं।

रियासतों की विषमतायें यहीं समाप्त नहीं हो जाती। हिन्दोस्तान में कुल १८ विश्वविद्यालय हैं, इनमें केवल २ रियासतों में हैं। केवल काश्मीर में अपना स्वतन्त्र तारघर है। ट्रावनकोर, हैदराबाद और कोचीन में डाकघर हैं। हैदराबाद, उदयपुर, ट्रावनकोर और कुछ राजपुताने की रियासतों में अपने निजी सिक्के चलते हैं। किसी भी रियासत को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी अंगरेज़ कर्मचारी के वेतन पर इनकमटैक्स लगा सके। कुछ रियासतों की प्रजा को बृटिश प्रान्तों की बराबरी में रक्खा गया है, परन्तु बाक़ी की जनता छोटे-छोटे अधिकारों के लिये तरसती है। शिक्षा और उद्योग-धन्धों की दृष्टि से इन रियासतों में कोई समता नहीं है। क्षेत्रफल में जम्बू और काश्मीर की रियासत हिन्दोस्तान में सबसे बड़ी है। परन्तु जन-संख्या में हैदराभाद का नम्बर सर्वप्रथम है। ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ रियासतें बहुत ही प्राचीन हैं। कुछ का निर्माण अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में किया गया है। मैसूर का निर्माण १७६६ ई० में किया गया था। १८८१ ई० में इसकी सीमा में कुछ परिवर्तन किया गया। टोंक, राजपिपला, झालावाड़, गढ़वाल, बनारस, कोल्हापुर आदि रियासतें बृटिश राज्य दृढ़ हो जाने के बाद बनाई गई हैं। कुछ रियासतों में राष्ट्रीय भावनायें बृटिश प्रान्तों की तरह फैली हुई हैं, परन्तु बाकी की जनता योरप के मध्ययुग की तरह कूपमंडूक है। इन्हीं सब कारणों से कुछ राजनीतिज्ञों ने रियासतों को ११ भागों में विभाजित किया है।

चाहे जिस तरह से रियासतों का विभाजन किया जाय कोई न कोई कमी ज़रूर रह जायेगी। इसलिये अच्छा होगा कि उपरोक्त विभाजनों में से किसी को भी मानकर अपना काम चला लिया जाय। लार्ड इरविन ने भी इसे स्वीकार किया था कि रियासतों का विभाजन ठीक नहीं है। यदि सभी रियासतें दो श्रेणियों में बाँटी जायँ तो कोई बुरा न होगा।

१—वे रियासतें जो सरकार को कर (Tribute) देती हैं।

२—वे रियासतें जो कर से मुक्त हैं।

नरेन्द्र-मंडल (Chamber of Princes)

१९१९ ई० में भारतीय शासन-विधान की जो नई योजना बनाई गई उसमें इस बात की सिफ़ारिस की गई थी कि देशी नरेश अपना एक संगठन बनावें। ८ फ़रवरी १९२१ ई० को राजाओं के इस संगठन का उद्घाटन किया गया। इसी का नाम नरेन्द्र-मंडल (Chamber of Princes) पड़ा। तब से बराबर यह मंडल रियासतों की भलाई और अधिकारों पर विचार करता रहता है। वाइसराय इस मंडल का सभापति होता है। सभी रियासतें नरेन्द्र-मंडल का सदस्य नहीं बन सकतीं। ३२७ रियासतों का मंडल से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। केवल उन्हीं रियासतों को इसका सदस्य बनने का अधिकार है जिन्हें सलामी दी जाती है। नरेन्द्र-मंडल में कुल १२१ सदस्य होते हैं। १०९ रियासतों के, जो सबसे बड़ी गिनी जाती हैं, यहाँ के राजा और शेष १२७ रियासतों में केवल १२ रियासतों के राजा इस मंडल में आते हैं। राजा लोग स्वयं मंडल के पदाधिकारियों को नियुक्त करते हैं। चान्सलर और प्रोचान्सलर इसके सबसे बड़े पदाधिकारी होते हैं।

१९२८ ई० तक मंडल की कार्रवाइयाँ गुप्त रक्खी जाती थीं। इसकी बैठक में बाहरी व्यक्ति शरीक नहीं किये जाते थे। परन्तु १९२९ के फ़रवरी महीने में राजाओं ने यह प्रस्ताव पास किया कि आम जनता इसकी कार्रवाइयाँ सुन सकती है। नरेन्द्र-मंडल का दफ़्तर नई दिल्ली में है। उसमें इतनी जगह नहीं है कि बाहरी आदमी काफ़ी तादाद में वहाँ बैठ सकें। मंडल की बनावट को देखते हुये कोई भी इसे प्रजातन्त्रवादी संस्था नहीं कह सकता। राजा लोग अपने पद के कारण मंडल के सदस्य होते हैं, उनका चुनाव नहीं किया जाता। २३६ रियासतों की ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि मंडल में अपने सदस्य भेज सकें। आधी से अधिक रियासतें इस अधिकार से वंचित रक्खी गई हैं। जब यह संस्था हिन्दोस्तान भी सभी रियासतों की भलाई और बेहतरी के लिये बनाई गई है तो इतनी अधिक रियासतों को अलग रखने में कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ता। यद्यपि वे रियासतें छोटी हैं फिर भी इन्हें संघ से एकदम अलग नहीं किया जा सकता।

वैसे तो मंडल का कार्य रियासतों और बृटिश सरकार के सम्बन्ध को ठीक बनाये रखना है, परन्तु जबसे इसकी स्थापना हुई तभी से इसका ध्यान संघ-शासन की ओर आकर्षित हुआ। कई बार इस समस्या पर विचार किया

गया। रियासतों की यह अभिलाषा थी कि बृटिश प्रान्तों के साथ उनका सम्पर्क हो जाय, लेकिन साथ ही वे यह भी चाहती थीं कि उनकी स्वतन्त्रता में कोई बाधा न पड़ने पाये। गोलमेज़ सभा में इस पर विचार किया गया। राजाओं की इस पर दो रायें थीं। कुछ लोग संघ-शासन के पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में। बड़ी रियासतें मंडल में हमेशा से अपना अधिक हाथ रखती रही हैं। संघ-शासन के प्रश्न पर जब छोटी रियासतों के साथ उनका मतभेद हुआ तो उन्हें झुकना पड़ा। कारण यह है कि मंडल में छोटी रियासतों के राजाओं की संख्या अधिक है, इसलिये उनका सदैव ही बहुमत रहता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये यह चर्चा चलाई गई कि मंडल का संगठन नये सिरे से किया जाय। इसके लिये एक कमीटी बना दी गई है, परन्तु अभी तक इसका संगठन पहिले जैसा ही है।

नरेन्द्र-मंडल के अधिकार बहुत ही सीमित हैं। किसी रियासत के आन्तरिक प्रबन्ध के विषय में उसे विचार करने का अधिकार नहीं है। बृटिश सरकार के साथ जो उनकी सन्धियाँ हुई हैं उन पर भी सदस्यगण वाद विवाद नहीं कर सकते। मंडल इस विषय का कोई प्रस्ताव पास नहीं कर सकता कि बृटिश सरकार और रियासतों का सम्बन्ध बदल दिया जाय। यह संस्था एक प्रकार की सलाहकारिणी है। रियासतों के छोटे-मोटे प्रबन्ध के लिये यह सलाह देती रहती है। जब कोई ऐसा राजनीतिक प्रश्न उठ खड़ा होता है जिसका प्रभाव सब पर पड़ता है तो इस विषय में यह वाइसराय को सलाहें दे सकती है। कुछ रियासतें नरेन्द्र-मंडल को बेकार समझती हैं। काश्मीर, ट्रावनकोर, मैसूर, और हैदराबाद, जिनकी गणना सबसे बड़ी रियासतों में की जाती है, नरेन्द्र-मंडल के सदस्य नहीं हैं।

रियासतों में ज़िम्मेदार शासन

हिन्दोस्तान की २४ प्रतिशत जनता देशी रियासतों में रहती है। यदि बृटिश प्रान्तों को आज़ादी दे दी जाय, और रियासतों में कोई परिवर्तन न किया जाय, तो यह मुल्क आज़ाद नहीं कहा जा सकता। वर्तमान परिस्थिति में देशवासियों की नज़र रियासतों की ओर भले ही न जाय, परन्तु समय किसी आन्दोलन का इन्तज़ार नहीं करता। रियासतों में रहने वाले लोग यह नहीं जानते हैं कि राजनीतिक अधिकार क्या है। जिस प्रकार एकतन्त्रवाद का ज़िक्र प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है उसी का जीता जागता उदाहरण रियासतों में मौजूद है। राजा के शब्द ही कानून कहलाते हैं। दो चार इनी-गिनी को छोड़कर किसी में भी प्रतिनिधि सभा नहीं पाई जाती। राजा स्वयं क़ानून बनाते, फ़ैसला करते और उन्हें कार्यान्वित

करते हैं। जनता को यह अधिकार नहीं है कि वह स्वतन्त्रता-पूर्वक कोई संगठन बनाये और सभायें करे। ऐसे कितने ही उदाहरण मौजूद हैं जब कि मीटिंगों और भरी सभाओं में कर्मचारियों की ओर से गोलियाँ चलाई गई हैं। रियासतों में लेखन और भाषण की भी स्वतन्त्रता नहीं है। सरकारी कर्मचारी प्रजा को भेंड़ और बकरी समझते हैं। नियमित कर से अधिक कर वसूल करना उनके लिये मामूली सी बात है। प्रजा अपनी तकलीफ़ों को राजदरबार तक नहीं पहुँचा सकती। अगर किसी ने हिम्मत भी की तो उसे या तो रियासत से बाहर निकाल दिया जाता है अथवा तरह-तरह की तकलीफें दी जाती हैं। कहा जाता है कि बृटिश प्रान्तों में तो कोई न कोई क़ानून बर्ते जाते हैं, परन्तु रियासतों में कोई क़ानून नहीं है। अपराधी महीनों बन्द कोठरियों में पड़े रहते हैं, उनके मुक़दमें की सुनाई नहीं होती।

एकतन्त्रवाद में जितनी बुराइयाँ हो सकती हैं वे सब देशी रियासतों में पाई जाती हैं। राजाओं को अपने पद और अधिकारों का इतना गर्व होता है कि वे अपनी एक भी बात टाल नहीं सकते। उनका लालन-पालन ऐसे वातावरण में होता है और उनकी शिक्षा इतनी एकांगी होती है कि प्रजा के प्रति सद्भावना की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। या तो वे महलों में बैठे चन्द चापलुसों की जी हुज़ूरी सुनते हैं, अथवा योरप की सैर करते हैं। सारा कार्य दीवान और चन्द कर्मचारियों को सौंप दिया जाता है। वे जितना फ़ायदा उठा सकते हैं, उसमें कोई कसर बाक़ी नहीं रखते। कर्मचारियों को यह भली भाँति मालूम है कि न जाने किस समय राजा उन्हें निकाल बाहर कर दें। इसलिये अपने कार्य-काल में वे प्रजा से अधिक अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं। रियासतों में जनता की राय सरीखी कोई चीज़ नहीं है। काश्मीर हिन्दोस्तान की बड़ी रियासतों में है। वहाँ के नायब दारोग़ा को यह अधिकार है कि वह जिसे चाहे गिरफ़्तार करके एक महीना जेल में बन्द रक्खे। अपराधी को यह भी अधिकार नहीं है कि वह अपने निरपराध होने का सबूत पेश कर सके। फ़्रांस के बादशाह चौदहवें लुई की तरह राजा लोग रियासत को अपनी सम्पत्ति समझते हैं। यदि रियासतों की आय और व्यय पर नज़र डाली जाय तो आधे से अधिक ख़र्च राजा का निजी ख़र्च कहलाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सार्वजनिक कामों पर कम से कम व्यय किया जाता है।

काँग्रेस आन्दोलन का प्रभाव देशी रियासतों पर भी गहरा पड़ा है। यद्यपि रियासतों में काँग्रेस सीधे हाथ नहीं डालती, फिर भी इसके सिद्धान्त अधिकतर रियासतों को मान्य हैं। वहाँ की प्रजा यह हृदय से चाहती है कि

उन्हें भी आज़ादी हासिल हो जाय। बृटिश प्रान्तों में प्रजा पर केवल बृटिश सरकार का भार है, परन्तु रियासतों में सरकार और राजा दोनों का है। इसीलिये वहाँ के लोग अधिक दब्बू और जाहिल हैं। प्रान्तों की देखा-देखी उनके अन्दर कुछ उत्साह पैदा हुआ है, लेकिन अभी तक उनका भार हल्का नहीं हुआ। एक ज़िम्मेवार शासन के लिये जो जो बातें ज़रूरी हैं, उनकी माँग वे वर्षों से पेश कर रहे हैं, परन्तु अभी तक उनकी पूर्ति नहीं हुई। चन्द प्रगतिशील रियासतों ने इस दिशा में कुछ करने का वचन दिया है। रियासती प्रजा की माँगों में निम्नलिखित माँगें सबसे महत्वपूर्ण हैं :—

१—राजा को सलाह देने के लिसे एक मन्त्रि-मंडल की स्थापना की जाय, जो प्रजा द्वारा निर्वाचित हो।

२—क़ानून आदि बनाने के लिये धारा सभायें स्थापित की जायँ। सभी बालिग़ व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार हो।

३—रियासत की आमदनी और ख़र्च धारा-सभा के हाथों में रक्खी जाय।

४—सरकारी कर्मचारियों की बेजा हरकतों को दूर करने के लिये उन्हें उचित वेतन दिया जाय, और उनका कार्य-काल निश्चित कर दिया जाय।

५—प्रजा को लेखन और भाषण की स्वतन्त्रता दी जाय।

६—अपराधियों को बिना उन्हें उचित कारण बतलाये गिरफ़्तार न किया जाय। उनका मुक़दमा जल्दी से जल्दी फ़ैसल किया जाय।

७—क़ानून में किसी के साथ पक्षपात न किया जाय।

८—उचित व्यक्तियों को राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जायँ।

कितनी ही रियासतों में "प्रजा-मंडल" स्थापित किये गये हैं। इनका उद्देश्य रियासतों में ज़िम्मेवार शासन की स्थापना करना है। कुछ राजाओं ने इन्हें ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया है। मंडल के सदस्यों पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। सारांश यह है कि रियासतों में अभी तक ज़िम्मेवार शासन की स्थापना नहीं हुई है। राजाओं के दिलों में अभी यह भाव उत्पन्न नहीं हुआ है कि वे प्रजा के प्रतिनिधि हैं और उन्हें सारी सुविधायें उसी से प्राप्त हुई हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि समय बड़े ज़ोरों से बदल रहा है। वे इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। प्रजातन्त्रवाद की लपट सब जगह एक-सी फैल रही है। यदि राजा लोग इस गुर को समझ जायँ तो उन्हें अधिक सुख और शान्ति मिल सकती है। प्रजा की भलाई को यदि वे अपना कर्तव्य मान लें तो निर्भय होकर अकंटक राज्य कर सकते हैं। हिन्दोस्तान की एक चौथाई जनता की क़िस्मत उनके हाथों में है। उनकी शिक्षा

तथा सभी प्रकार की उन्नति की ज़िम्मेवारी लेकर वे अपने मुल्क की अधिक भलाई कर सकते हैं।

रियासतों के अधिकार

रियासतों को मनमाना अधिकार प्राप्त नहीं हैं। कुछ तो बृटिश सरकार से सुलह के कारण और कुछ उसकी नीति से वे बँधी हुई हैं। किसी भी राजा को अपनी रियासत में क़िले बनवाने का अधिकार नहीं है। बृटिश सरकार को यह भय है कि इससे उनकी शक्ति बढ़ सकती है। यदि किसी पुराने क़िले की मरम्मत करानी है तो सरकार से इसकी आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि बृटिश सरकार किसी रियासत से होकर रेल की लाइन ले जाना चाहती है, अथवा तार या फ़ौज के लिये ज़मीन चाहती है, तो रियासतों को बिना मूल्य उसे देना होगा। अपनी फ़ौज और हथियारों की संख्या कोई भी रियासत नही बढ़ा सकती। कुछ रियासतों को योरपीय निवासियों पर मुक़दमें चलाने का अधिकार नहीं है। हैदाराबाद, मैसूर और बड़ौदा आदि बड़ी बड़ी रियासतों तक को किसी अँगरेज़ अथवा अमेरिकन को फाँसी की सज़ा देने का अधिकार नहीं है। छोटी-छोटी रियासतों में बृटिश रेज़ीडेन्ट कलेक्टर और जज दोनों होता है। किसी रियासत को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने राज्य का कोई भाग किसी दूसरी रियासत को बदले में दे सके। थोड़ी ही रियासतें अपना निजी सिक्का चला सकती हैं।

१८५७ ई० में बृटिश सरकार ने यह क़ानून पास किया कि रियासतें आयात और निर्यात कर नहीं बढ़ा सकतीं। इस पर सम्राट् का दैवी अधिकार माना गया है। बृटिश सरकार की आज्ञा के बिना किसी रियासत को गोद लेने का अधिकार नहीं है। जब सम्राट् इस गोद को स्वीकार करता है तो रियासत को कुछ रकम उसे भेंट करनी पड़ती है। किसी विशेष कारण से यह रक़म माफ़ भी कर दी जाती है। यदि किसी रियासत का निवासी हिन्दोस्तान से बाहर जाना चाहे तो उसे बृटिश सरकार से पासपोर्ट लेना होगा। भारत-सरकार का राजनीतिक विभाग (Political Department) जब चाहे इन रियासतों में दख़ल दे सकता है। ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं जब कि राजा को रियासत से बाहर निकाल दिया गया है। दीवान, प्रधान मन्त्री तथा रियासत के अन्य कर्मचारी राजनीतिक विभाग द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। बड़ी से बड़ी रियासत को किसी दूसरी रियासत से लड़ाई की घोषणा करने का अधिकार नहीं है। यदि कोई राजा अपनी प्राज पर मनमाना अत्याचार करे तो बृटिश सरकार उसे ऐसा नहीं करने देगी।

रियासतों को केवल इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त है कि वे बृटिश सरकार की सन्धि के अनुसार चलती रहें और आन्तरिक प्रबन्ध को ठीक रक्खें।

सर्वोच्च अधिकार Paramount power

यह विषय बहुत ही विवादग्रस्त है कि रियासतों को स्वतन्त्र कहा जाय अथवा नहीं। यह तो स्पष्ट है कि बाह्य और आन्तरिक दोनों विषयों में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है। किसी बाहरी देशों से एक स्वतन्त्र राष्ट्र की तरह वे सन्धि नहीं कर सकतीं। आन्तरिक मामलों में भी बृटिश सरकार अनेक कारणों से दख़ल दे सकती है। इस दृष्टि से उन्हें स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का कहना है कि रियासतों की बाह्य राजसत्ता बृटिश सरकार के हाथ में और आन्तरिक राजसत्ता राजाओं के हाथ में है, इसलिये इन्हें अर्द्धराष्ट्र कहा जा सकता है। जान आस्टिन, जो राजसत्ता पर एक प्रमाण माना जाता है, राजसत्ता को अखंडित और अदेय बतलाता है। अर्थात् इसका विभाजन नहीं किया जा सकता। अतएव यह कहना ग़लत है कि रियासतों को राजसत्ता का कोई अंश प्राप्त है।

रियासतों के राजा अपने आपको किसी स्वतन्त्र बादशाह से कम नहीं मानते। किसी अंश तक अपने आन्तरिक प्रबन्ध के लिये वे स्वतन्त्र ज़रूर हैं, लेकिन उन्हें वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो एक स्वतन्त्र शासक को होने चाहिये। रियासतें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी स्वतन्त्र नहीं कही जा सकतीं। एक स्वतन्त्र राष्ट्र किसी भी सुलहनामे को जब चाहे तोड़ सकता है। रियासतें ऐसा नहीं कर सकतीं। उनके ऊपर इतनी शर्तें हैं कि उनके सामने उन्हें आज़ाद होने का स्वप्न नहीं देखना चाहिये। जो रियासतें बृटिश सरकार को कर देती हैं, और जिनकी फ़ौज तथा हथियारों की संख्या निश्चित है, वे राजसत्ता की अधिकारिणी नहीं कहला सकतीं। इनकी वास्तविक स्थिति का ठीक-ठीक वर्णन करने में कुछ लेखकों ने इतनी गोलमाल की बातें लिखी हैं कि उनसे कुछ समझ में नहीं आता। लेज़ली स्काट (Sir Leslie Scott) लिखता है, "आरम्भ में हर एक रियासत स्वतन्त्र थी। यह स्वतन्त्रता अभी तक क़ायम है। इसकी थोड़ी सी कमी का कारण यह है कि इनकी कुछ स्वतन्त्रता बृटिश सम्राट् को दे दी गई।"* जिस राष्ट्र की स्थिति किसी

---

* As each state was originally independent, so each remains independent except to the extent to which any part of the ruler's sovereignty has been transferred to the Crown.

दूसरे राष्ट्र की मर्ज़ी पर क़ायम रहे वह अपने आपको पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं कह सकता। भारतीय रियासतों का वर्तमान स्थान बृटिश सम्राट् द्वारा निश्चित किया गया है। रियासतों की परिभाषा में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि सम्राट् ही उन्हें बना और बिगाड़ सकता है।*

रियासतों की राजसत्ता बृटिश सम्राट् के हाथों में दी गई है। इसी को सर्वोच्च अधिकार (Paramount Power) कहते हैं। यह अधिकार स्पष्ट नहीं किया गया है। किस-किस दशा में सम्राट् इस अधिकार का प्रयोग कर सकता है, इसकी कोई सीमा निर्धारित नहीं है। कहा जाता है कि तीन कारणों से सम्राट् अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। राजा की भलाई, रियासत के लाभ, और सम्पूर्ण भारत की रक्षा तथा उन्नति का प्रश्न उपस्थित होने पर वह रियासतों में हाथ डाल सकता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सर्वोच्च शक्ति (Paramount Power) ने अनायास और निष्प्रयोजन रियासतों में दख़ल दिया है। सर्वोच्च शक्ति इस बात का दावा करती है कि उसी के कारण राजाओं के अधिकार और इनकी मर्यादा सुरक्षित है। सम्राट् ने अपने इस सर्वोच्च अधिकार को वाइसराय को दे रक्खा है। आवश्यकता पड़ने पर वाइसराय रियासतों में दख़ल दे सकता है।

"सर्वोच्च अधिकार (Paramountcy) एक तरह की ईजाद है जो बृटिश सरकार ने बड़े अनुभव से किया है।"† सच्ची बात तो यह है कि रियासतों को किसी तरह एक सूत्र में बाँधना था। इसीलिये बृटिश सम्राट् को यह अधिकार दिया गया है कि वह इनकी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध की जिम्मेवारी अपने हाथों में ले ले। बृटिश भारत को एक सूत्र में बाँधकर सरकार बिखरी हुई रियासतों को स्वतन्त्र कैसे रख सकती है। यह कहना ठीक है कि सम्राट् की सर्वोच्च शक्ति की व्याख्या नहीं की जा सकती। इसका प्रयोग छोटी और बड़ी सभी रियासतों में एक सा किया जा सकता है। जो अधिकार राजाओं को दिये गये हैं वे सर्वोच्च अधिकार की बराबरी नहीं कर सकते। १९२६ ई० के लार्ड रीडिंग के एक पत्र से, जो उन्होंने हैदराबाद के

---

* Indian states means any territory, not being part of British India, which His Majesty recognises as being such a state, whether descrived as a state, an estate, a Jagir or otherwise.

† The idea of Paramountcy is an original political idea forged by the British in the factory of experience.

निजाम को लिखा था, यह बात और भी साफ़ हो जाती है।* सम्राट् उन सुलहनामों से बाध्य नहीं है जो रियासतों के साथ समय-समय पर किये गये हैं। इसी सर्वोच्च शक्ति द्वारा रियासतों और बृटिश सम्राट् के बीच में एकता स्थापित की गई है। दोनों का सम्बन्ध शासक और शासित का सा है। सम्राट् रियासतों का संरक्षक है। छोटी-छोटी बातों में वह दख़ल देता रहता है। भूपाल राज्य में एक क़तल हुआ। बृटिश सरकार को यह शक हुआ कि इसमें राजा का भी हाथ है। वह तुरन्त गिरफ़्तार कर लिया गया। उसे जेल की सज़ा दी गई और एक बृटिश भारत के जेल में उसे रख दिया गया। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि राजाओं को कहाँ तक स्वतन्त्रता दी गई है। गत वर्ष महाराजा रीवा को वहिष्कृत कर इस अधिकार को और भी स्पष्ट कर दिया गया है।

रियासतें और संघ-शासन

शासन-विधान का उपयोग जनता की इच्छा पर है। बुरे से बुरे शासन-विधान को अच्छी तरह कार्यान्वित करके कोई भी राष्ट्र अपना कल्याण कर सकता है। इतना ज़रूर है कि उन्हें आपस में मिलने का अवसर प्राप्त होना चाहिये। अभी तक हिन्दोस्तान ही ऐसे राजनीतिक टुकड़ों में बँटा हुआ था कि एक के निवासी दूसरे से कोई सम्पर्क नहीं रखते थे। इस देश में संघ-शासन की उपयोगिता बहुत पहले से स्वीकार की गई है। १९३५ ई० में यह योजना पूरी की गई और देशी रियासतों तथा बृटिश प्रान्तों को एकत्र होने का अवसर दिया गया। यद्यपि यह संघ शासन-विधान वैसा नहीं है जिसकी हमें आशा थी, फिर भी कार्यान्वित होने पर शायद इससे कुछ लाभ पहुँचता। परन्तु योरोप की लड़ाई के कारण इसकी अवधि अनिश्चित काल तक टाल दी गई। कुछ बुराइयों के कारण, जिनका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है, यह संघ-शासन-विधान सर्वथा दोषपूर्ण ठहराया गया है। कांग्रेस ने खुले आम इसका विरोध किया है। वह नहीं चाहती कि शासन की शकल ऐसी ही बनी रहे। विधान-सम्मेलन

---

* The sovereignty of the British Crown is supreme in India, and therefore no ruler of an Indian State can justifiably claim to negotiate with the British Government on an equal footing. Its supremacy is not based only upon treaties and engagements, but exists independently of them. (27th March 1926).

में वह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी कि इस संघ-शासन की क्या उपयोगिता है।

१६३० ई० में जब लंदन में पहली गोलमेज़ सभा बुलाई गई थी तो राजाओं ने यह फ़ैसला किया कि संघ-शासन की योजना पर वे गहराई के साथ विचार करेंगे। राजाओं को अभी तक यह भय है कि कांग्रेस हिन्दोस्तान में समाजवाद की स्थापना करना चाहती है। इसीलिये वे बृटिश सरकार की छत्रछाया से बाहर निकलने में भयभीत होते हैं। संघ-शासन में उन्हें बराबरी की हैसियत से बर्ता जायेगा। यह बात उन्हें पसन्द नहीं है। इस शंका को दूर करने के लिये १६२६ ई० में लार्ड इरविन ने उन्हें यह आश्वासन दिलाया कि प्रत्येक दशा में उनके अधिकारों की रक्षा की जायेगी। १६३१—३२ में जो दूसरी और तीसरी गोलमेज़ सभायें हुईं उनमें राजाओं ने पूरा-पूरा भाग लिया। इतने आश्वासन दिलाने पर भी उन्होंने निम्नलिखित शर्तों के साथ संघ-शासन की योजना में शामिल होने का वादा किया :—

१—संघ-सरकार की शक्ति किसी भी तरह कमज़ोर न हो। उसे सभी वास्तविक शक्तियाँ (Real Powers) प्रदान की जायँ।

२—बृटिश सरकार के साथ जो उनके सुलहनामें हुये हैं उनमें कोई कमी न पड़ने पाये। संघ-सरकार इन मामलों में तब तक दख़ल न दे जब तक रियासतें अपनी इच्छा से इन्हें छोड़ न दें।

३—संघ में शरीक होने और न होने का अधिकार राजाओं की मर्ज़ी पर छोड़ दिया जाय।

४—संघ को रियासतों के आन्तरिक प्रबन्ध में हाथ डालने का अधिकार न हो।

५—जिन विषयों का सम्बन्ध सीधे बृटिश सम्राट् से है उनमें संघ को हाथ डालने का अधिकार न हो।

जब संघ-शासन-विधान बनाया गया तो बृटिश पार्लियामेंट ने इन बातों का ध्यान रक्खा, ताकि राजाओं को बिना किसी असुविधा के इसमें शरीक होने का अवसर मिले। अनुपात से अधिक उन्हें धारा-सभाओं में स्थान दिये गये हैं। बृटिश प्रान्तों को संघ-शासन में शामिल होना अनिवार्य ठहराया गया है, परन्तु रियासतों को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वे जब चाहें इसमें शरीक हों और इच्छा न होने पर वे इससे अलग भी रह सकती हैं। रियासतों को संघ-सरकार के कर्मचारियों से सर्वथा स्वतन्त्र रक्खा गया है। उन्हें यह अधिकार है कि संघ-सरकार से अपना सम्बन्ध वे स्वयं निश्चित करलें। संघ की स्थापना के बाद भी बृटिश सम्राट् के सुलहनामें वैसे ही बने रहेंगे।

आबादी के हिसाब से संघ धारा-सभा में उन्हें अधिक से अधिक २५ प्रतिशत स्थान मिलने चाहिये, परन्तु ४० प्रतिशत स्थान उन्हें दिये गये हैं। संघ-सरकार की ६० प्रतिशत आमदनी बृटिश प्रान्तों से होगी और रियासतें केवल १० प्रतिशत देंगी। शासन-विधान में यहाँ तक कहा गया है कि जब तक सम्पूर्ण रियासतों की जनसंख्या की आधी से सम्बन्ध रखने वाली रियासतें संघ में शरीक न होंगी तब तक शासन-विधान कार्यान्वित नहीं किया जायगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि रियासतें चाहें तो बने बनाये संघ-शासन को बेकार साबित कर सकती हैं।

संघ में प्रवेश करते समय रियासतें एक प्रकार का शर्तनामा करेंगी जिसके अनुसार वे अपने चन्द विषय संघ-सरकार की मातहती में देंगी। यह शर्तनामा (Instrument of Accession) सभी रियासतों के साथ एक सा नहीं होगा। इससे संघ-सरकार का प्रभाव रियासतों पर भिन्न-भिन्न पड़ेगा। इस शर्तनामे को बृटिश सम्राट् स्वीकार करेगा। संसार के किसी देश में इस प्रकार का संघ-शासन नहीं पाया जाता। सब जगह शासन की इकाइयाँ एक सा अधिकार रखती हैं। उनके स्थान भी समान रूप से दिये जाते हैं। परन्तु भारतीय संघ-शासन-विधान में रियासतें अपवाद स्वरूप हैं। संघ-धारा-सभा के सदस्य दो प्रकार के होंगे। प्रान्तों के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे यद्यपि यह निर्वाचन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से होगा। परन्तु देशी रियासतों के सदस्य राजाओं द्वारा नामजद किये जायेंगे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में संघ-सरकार की बड़ी धारा-सभा (Senate) में सभी रियासतों को बराबर स्थान दिया गया है। प्रत्येक रियासत, छोटी हो अथवा बड़ी, दो सदस्य भेजती है। छोटी धारा-सभा (House of Representatives) में स्थानों का वितरण रियासतों की आबादी के हिसाब से किया गया है। भारतीय संघ-शासन-विधान में ऐसा नहीं है। बड़ी धारा-सभा में रियासतों और सूबों को बराबर स्थान प्राप्त नहीं हैं। छोटी धारा-सभा में आबादी के हिसाब से रियासतों को केवल $\frac{1}{4}$ स्थान मिलने चाहिये, परन्तु उन्हें $\frac{1}{3}$ स्थान दिया गया है।

संघ-शासन-विधान में रियासतों और बृटिश प्रान्तों को कोई समानता नहीं है। ऐसा दो कारणों से नहीं किया गया है। बृटिश सरकार रियासतों के सुलहनामें को बदलना नहीं चाहती। दूसरे राजा स्वयं यह नहीं चाहते कि उनके व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ में बट्टा लगे। इन्हीं रियासतों के कारण संघ की शकल टेढ़ी-मेढ़ी हो गई है। एक ओर तो प्रजातन्त्रवाद का गिरोह है और दूसरी ओर एकतन्त्रवादी रियासतें हैं। इन दोनों का मेल

नहीं खा सकता। यदि संघ को सचमुच सफल बनाना है तो रियासतों में पहले ज़िम्मेवार शासन की स्थापना की जाय। संघ-सरकार के अन्दर उनका वही स्थान हो जो बृटिश प्रान्तों का। राजाओं के साथ किसी भी प्रकार का पक्षपात न किया जाय और न उनसे शर्तनामें लिखवाये जायँ। संघ में शरीक होना सबके लिये अनिवार्य ठहराया जाय। संघ-सरकार के क़ानून प्रान्तों और रियासतों में एक से बर्ते जायँ। रियासतों के सदस्य राजाओं द्वारा नामज़द न होकर प्रजा के प्रतिनिधि हों।

रियासतों का भविष्य

हिन्दोस्तान की वर्तमान राष्ट्रीय प्रगति को देखते हुये यह भली भाँति स्पष्ट है कि इसका कोना कोना प्रजातन्त्रवादी संस्थाओं (Democratic Institutions) से ओतप्रोत होगा। रियासतों में जो धाँधली चल रही है वह चन्दरोज़ा है। बृटिश प्रान्तों की आज़ादी को देखकर उनके पड़ोसी कूपमंडूक नहीं रह सकते। वह दिन अब दूर नहीं है जब कि रियासतों में ज़िम्मेवार शासन की स्थापना के लिये राजाओं को बाध्य होना पड़ेगा। बृटिश सरकार को स्वयं इस मामले में प्रजा की मदद करनी होगी। एक समय ऐसा भी आयेगा जब कि रियासतों और प्रान्तों की प्रजा एक प्लेटफ़ार्म पर मिलेगी। जितनी तेज़ी के साथ संसार की काया पलट हुई है उससे हिन्दोस्तान की २४ प्रतिशत जनता किस प्रकार वंचित रही है, यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है। परन्तु प्रजा-मंडलों की वृद्धि, उनकी माँगें और राष्ट्रीय भावनाओं से उनके सहयोग को देखते हुये यह अनुमान किया जा सकता है कि कितनी तेज़ी के साथ हिन्दोस्तान की राष्ट्रीयता बढ़ रही है। इस चतुर्मुखी लहर से रियासतें क्योंकर अपने को अलग रख सकती हैं। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि किसी छोटे से देश की विजय का प्रभाव सारे महाद्वीप पर पड़ता है। जब जापान ने रूस को शिकस्त दी तो सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप को इसका गर्व हुआ था। उन्हें यह विश्वास हुआ कि पूर्व भी पश्चिम को हरा सकता है। अपनी सेवा और त्याग के कारण बृटिश प्रान्तों को जो आज़ादी मिलती जा रही है उसका प्रभाव रियासतों पर पड़े बिना नहीं रह सकता।

अध्याय २०

स्वास्थ्य और सफ़ाई

किसी सभ्य जाति की पहली पहचान उसकी बाहरी सफ़ाई है। इसके पश्चात् उसकी बुद्धि और कला-कौशल की परीक्षा की जाती है। जो जाति गन्दे तरीक़े पर रहती है और जिसको रहन-सहन में पवित्रता की भावना कम है वह आगे को नहीं बढ़ सकती। उसका साहित्य और जीवन दूसरों को आकर्षित नहीं कर सकता। पाश्चात्य सभ्यता की तमाम कमज़ोरियों के बावजूद, यह बात निर्विवाद है कि योरप निवासी बाहरी सफ़ाई पर अधिक ध्यान देते हैं। जब तक हमारे कपड़े गन्दे हैं और शरीर पर धूल और मैल है तब तक हमारी बुद्धि कोई साफ़ चीज़ नहीं पैदा कर सकती। संसार का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि गन्दी और बुरी तरह रहने वाली जातियाँ हमेशा गुलाम रही हैं। आज भी भारतीय समाज में जो वर्ग गन्दा जीवन व्यतीत कर रहा है उसकी आर्थिक और सामाजिक हालत बड़ी ही शोचनीय है। इसका बहुत कुछ कारण उसकी अशिक्षा और ग़रीबी है, फिर भी जो जाति अपने आपको किसी हद तक उठाने की सामर्थ्य नहीं रखती वह गुलामी की जंज़ीर से मुक्त नहीं हो सकती। ज्यों-ज्यों मनुष्य की रहन-सहन बदलती गई है, और वह जंगलों तथा पहाड़ों के कन्दरों से निकल कर हवादार मकानों और नगरों में रहने लगा है, त्यों-त्यों उसकी सभ्यता ऊपर को उठती गई है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि पाश्चात्य सभ्यता में ऊपरी सफ़ाई पर जितना ज़ोर दिया जाता है उतना अन्य मानसिक प्रवृत्तियों पर नहीं। किसी ख़ास दृष्टिकोण से यह बात ठीक हो सकती है, परन्तु विज्ञान और वर्तमान भौतिक उन्नति को देखते हुये हम उन्हें पिछड़ा हुआ नहीं कह सकते।

सभ्यता की पहचान

मनुष्य का यह पहला कर्तव्य है कि वह अपने शरीर पर ध्यान रक्खे। स्वास्थ्य और सफ़ाई का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसे साफ़ रहने की आदत है

उसे बीमारियाँ कम होंगी और दवा की आवश्यकता उसे नहीं पड़ सकती ; उसका स्वास्थ्य हर समय ठीक रहेगा। स्वस्थ भोजन और पौष्टिक पदार्थों से बढ़कर साफ़ हवा और परवाह की आवश्यकता है। स्वास्थ्य के लिये सबसे ज़रूरी चीज़ हवा और पानी है। इसके बाद भोजन और कसरत आदि का दर्जा आता है। शहरों में अच्छा-से-अच्छा भोजन करके लोग स्वस्थ और निरोग नहीं रह पाते। गन्दी गलियों और कारख़ानों के धुयें के सामने बादाम और हरे फलों के रस कुछ काम नहीं करते। गाँवों में इतनी ग़रीबी होते हुये भी लोग स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं। जैसे भी हो स्वास्थ्य को ठीक रखना निहायत ज़रूरी है। इसी से मनुष्य के विचार पुष्ट होते हैं। राष्ट्र की उन्नति का एक वह भी लक्षण है कि अधिक से अधिक व्यक्ति निरोग और हृष्ट-पुष्ट हों। कमज़ोर और बीमार व्यक्ति समाज को खोखला करते हैं। प्राचीन काल में स्पार्टा नगर में किसी कमज़ोर व्यक्ति को रहने की इजाज़त न थी। जब लड़के पैदा होते तो उनकी परीक्षा की जाती थी। यदि वे कमज़ोर होते तो उन्हें मार डाला जाता था। वहाँ की सरकार का यह सख्त हुक्म था कि राज्य में कोई दुबला-पतला अथवा बीमार न रहे। सबको बच्चे से बूढ़े तक, चाहे वे स्त्री हों अथवा पुरुष, फ़ौजी शिक्षा दी जाती थी। सरकारी कर्मचारी विशेष रूप से स्वस्थ रक्खे जाते थे।

ज्यों-ज्यों समय बदल रहा है, सफ़ाई और स्वास्थ्य की ओर लोगों का ध्यान अधिक दिलाया जाता है। मशीनों के कारण स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा है, लेकिन जैसा युग होता है वैसी ही व्यवस्था बनानी पड़ती है। फ़ैक्ट्रियों तथा मिलों के अन्दर मज़दूरों का स्वास्थ्य ख़राब होना अनिवार्य है। रोज़ी के कारण वे अपना काम बन्द नहीं कर सकते। सरकार का यह फ़र्ज़ है कि यह इन मिलों में इस तरह के सुधार करे जिससे मज़दूरों का स्वास्थ्य अधिक से अधिक अच्छा रहे। जब उनसे १२ या १४ घटे किसी बन्द कमरे के अन्दर काम लिया जायगा और उनके रहने के लिये गन्दे-से-गन्दे मकान दिये जायेंगे तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। तरह तरह की बीमारियाँ फैलेंगी और दूसरों को भी उनका शिकार बनना पड़ेगा। इसीलिये सरकार क़ानून द्वारा हवादार कमरे तथा खुले हुये मकान की व्यवस्था करती है। इतने पर भी बिचारे मज़दूर ग़रीबी के कारण एक एक कमरे में दर्जनों गुज़र करते हैं। मशीनों के कारण मज़दूरों की दशा और भी बिगड़ती गई है। पहले गाँवों में लोग खुली हवा में काम करते थे। उनके घर भी खुले मैदान में होते थे। अधिक परिश्रम करने पर भी उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था। इसलिये पहले लोगों की आयु अधिक होती थी।

आजकल ६० वर्ष में लोग बूढ़े हो जाते हैं, लेकिन पहले ८० या १०० वर्ष तक हट्टे-कट्टे रहते थे। उनका शरीर भी आजकल से भिन्न होता था। वर्तमान सभ्यता जितना ध्यान सफ़ाई पर देती है उतना स्वास्थ्य पर नहीं है। शहरों की संख्या बढ़ने तथा कल-कारख़ानों की वृद्धि के कारण स्वास्थ्य की समस्या बड़ी ही विकट हो गई है। स्थानीय संस्थायें इसे सुलझाने की कोशिश करती हैं लेकिन जब तक लोगों का आकर्षण गाँवों की ओर न होगा तब तक हमारे देशवासियों का स्वास्थ्य नहीं सुधर सकता।

गाँव और शहर

हिन्दोस्तान गाँवों का देश है। इने-गिने शहर आज भी यहाँ मौजूद हैं फिर भी अधिकतर जनता गाँवों में निवास करती है। बृटिश सरकार की कृपा-दृष्टि गाँवों की अपेक्षा शहरों पर अधिक रहती है। म्युनिसिपल बोर्ड, इम्प्रूभमेंट ट्रस्ट तथा सरकारी अस्पताल शहरों की सफ़ाई और वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य पर ध्यान रखते हैं। कोई ऐसा शहर नहीं जिसमें दो चार अस्पताल और इतने ही औषधालय सरकार की ओर से न खोले गये हों। इनके अलावे अनेक धनीमानी लोग जनता की सेवा के लिये दवाइयों का प्रबन्ध करते हैं। कितने ही वैद्य और डाक्टर अपनी निजी दुकाने शहरों में चलाते हैं। इस प्रकार दवाइयों का प्रबन्ध शहरों में काफी रहता है। सफ़ाई के लिये भी शहरों में विशेष इन्तज़ाम रहता है। सरकारी कर्मचारी इसकी देख-रेख के लिये गलियों-गलियों में घूमते रहते हैं। कूड़े तथा सड़ीगली चीज़ों को फेंकने के लिये जगह जगह स्थान बने रहते हैं। लेकिन गाँवों में औषधि और सफ़ाई पर कम ध्यान दिया जाता है। बड़े-से-बड़े ज़िले के गाँवों में मुश्किल से १० या १५ मील की दूरी पर एक छोटा अस्पताल मिलेगा। छोटी-छोटी बीमारियों के लिये भी लोगों को शहरों की शरण लेनी पड़ती है। जहाँ तक सफ़ाई की बात है, गाँवों की अशिक्षित और अनभिज्ञ जनता को कोई यह भी बतलाने वाला नहीं है कि घर के कूड़े तक कहाँ रखना चाहिये। दरवाज़ों के सामने ही लोग घूर और कूड़े का ढेर लगाते हैं। हैज़े और प्लेग ऐसी भयंकर बीमारियों के लिये उनके पास घर छोड़कर किसी आस पास के बगीचे में निकल जाने के अतिरिक्त कोई दूसरी दवा नहीं है।

गाँवों में लोग अपना घर बनाते समय हवा और रोशनी का ध्यान कम रखते हैं। लगभग सबके घर बिना खिड़की और ऊँची सीढ़ियों के होते हैं। कुछ तो ग़रीबी के कारण और कुछ कूपमंडूकतावश घरों की दीवारें छोटी बनाई जाती हैं। दरवाज़े भी इतने छोटे होते हैं कि कोई आदमी सीधे किसी कमरे में प्रवेश नहीं कर सकता। पुराने रसम-रवाज़ों के कारण स्त्रियों को

पर्दे में रखने के लिये रोशनी की परवाह नहीं की जाती। घर के आसपास हफ्ते में शायद ही कभी झाड़ू लग जाता है। यदि गाँवों के पास कोई जंगल हुआ तो लोग उसे इतना गन्दा रखते हैं कि सुबह-शाम उधर से कोई गुज़र भी नहीं सकता। गाँवों के तालाब गन्दगी के घर होते हैं। उसी में जानवर पानी पीते हैं, स्नान करते हैं और वहाँ के रहने वाले भी उसी में नहाते हैं। सड़ीगली चीज़ें उसमें पड़ी रहती हैं। इसीलिये कुछ लोगों को बीमारी का शिकार बनना पड़ता है। यदि गाँवों की हवा और पानी शुद्ध न होता तो इतनी लापरवाही पर वहाँ के निवासियों का स्वास्थ्य शहर वालों से भी बदतर रहता। परन्तु फिर भी गाँवों में दवा की आवश्यकता कम पड़ती है। आवश्यकता केवल इसी बात की है कि उन्हें सफ़ाई की मोटी-मोटी बातें बतला दी जायँ।

लापरवाही के कारण हमारे देश-वासियों को काफ़ी हानि उठानी पड़ती है। यहाँ की मृत्यु-संख्या की औसत इंगलैंड से दूनी है। जितने आदमी हमारे देश में मरते हैं उतने संसार के किसी सभ्य देशों में नहीं मरते। आँकड़ों पर हमें कोई विश्वास नहीं करना चाहिये। कितने ही बच्चे गाँवों में जन्म लेते ही मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं और उनकी कोई गणना नहीं की जाती। हमारे देश-वासियों की औसत आयु अन्य देश-वासियों की अपेक्षा कम है। बिचारी मज़दूर स्त्रियाँ पेट में बच्चे लेकर खेतों और मिलों में काम करती हैं। बच्चा होने के एक हफ्ते पहले तक उन्हें काम से छुट्टी नहीं दी जाती। इस अधः-पतन का कारण देश की विकट ग़रीबी है। एक ओर लोग अपनी रहन-सहन को ऊँचा बनाने के चक्कर में हैं, परन्तु दूसरी ओर अमानुषिक नृत्य रोज़ उनके सामने होते रहते हैं। स्वार्थ और पाप के कारण यदि उनका ध्यान उधर को न जाय तो सेवा और त्याग का सारा ढोंग रत्ती भर भी देश को आगे नहीं बढ़ा सकता। कहा जाता है कि लंदन में १००० बच्चों में ६६ जन्म लेते ही मर जाते हैं, परन्तु बम्बई में १००० में २७४ मृत्यु के ग्रास बनते हैं। कुछ तो सामग्रियों के अभाव के कारण और कुछ अपनी लापरवाही से लोग अपना तथा अपनी सन्तान की आयु आधी कर देते हैं। कितने ही किसान घर की कमी के कारण एक ही बड़े कमरे में अपने तथा जानवरों तक को एक जगह रखते हैं। सभी बीमारियों की दवा पुष्ट भोजन है। लेकिन हमारे देश के ७१ प्रतिशत लोगों को अपने जीवन में कभी दूध नसीब नहीं होता। घी और अन्य पौष्टिक पदार्थों की तो बात ही और है। जिस देश में पत्थर की मूर्तियों तक को दूध से स्नान कराया जाता है वहाँ के जीते-जागते बच्चे दूध का दर्शन तक न करें—इससे बढ़कर हमारे पतन की सीमा और क्या होगी।

स्वास्थ्य और सफ़ाई की प्राचीन व्यवस्थायें

बृटिश राज से पहले अस्पताल और औषधालय नहीं होते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों कालों में वैद्यों का अभाव न था, परन्तु सरकार की ओर से इनसे लाभ उठाने की व्यवस्था कुछ और थी। राज-दरबारों में वैद्य और हकीम रक्खे जाते थे। इन्हें सरकारी ख़ज़ाने से कुछ वेतन, ज़मीन तथा चीज़ों के रूप में दिया जाता था। वास्तव में ये राज-कुटुम्ब की सेवा के लिये रक्खे जाते थे। परन्तु जनता को भी इनसे लाभ पहुँचता था। जिसे औषधि की आवश्यकता पड़ती वह जाकर उनसे ले सकता था। गाँवों में भी तजुरबेकार पंडित और वैद्य रहते थे। दोनों कोई दर्जे पास नहीं रहते थे, लेकिन लोगों को दवाइयाँ देते थे। इनकी कोई फ़ीस न थी। बीमारी अच्छी हो जाने पर अपनी ख़ुशी से जो चाहता कुछ दे देता था। रुपये-पैसे न देकर लोग इन्हें अधिकतर चीज़ें दे दिया करते थे। आज भी गाँवों में इस तरह के वैद्य और हकीम मौजूद हैं जो अपनी फ़ीस नहीं लेते। उनकी दवाइयाँ भी बहुत ही सस्ती और आमफ़हम होती हैं। सफ़ाई के लिये गाँवों और शहरों में कमीटियाँ होती थीं। हर तरह की सफ़ाई का काम इन्हीं को सुपुर्द था। पहले आजकल की सी बीमारियाँ भी नहीं थीं। बीमारी को अच्छा करने से बढ़कर उसे रोकने की व्यवस्था करना है। यदि सरकार लोगों की सफ़ाई और उनके स्वास्थ्य पर उचित ध्यान दे तो उसे इतने अस्पतालों की आवश्यकता शायद ही हो। प्राचीन काल में इसी तरह की व्यवस्था थी। खान-पान की सुविधा के कारण लोगों को बीमारियों का असर कम होता था। आजकल तो हज़ारों ग़रीब आदमी जाड़े में कपड़े की कमी के कारण मर जाते हैं। सरकार जाड़े की दवा क्यों नहीं करती?

किसी प्राचीन ग्रन्थ में एक कहानी का ज़िक्र आता है। एक बुढ़िया किसी राजा के पास गई और फ़रियाद की कि उसका लड़का बीमार है। राजा ने पूछा, "क्या तुम्हारे लड़के को दूध मिलता है?" बुढ़िया ने कहा कि "आजकल इसकी व्यवस्था नहीं है।" राजा ने हुक्म दिया कि सरकारी ख़ज़ाने से उसके बच्चे को तब तक दूध दिया जाय जब तक वह हट्टा-कट्टा न हो जाय। तात्पर्य यह है कि शरीर-रक्षा पर इतना ध्यान दिया जाता था कि दवा की आवश्यकता कम पड़ती थी। जो पैसा सरकार आज दवाइयों पर ख़र्च कर रही है वही पहले लोगों के स्वास्थ्य पर ख़र्च होता था। दोनों का उद्देश्य एक ही है लेकिन प्राचीन व्यवस्था का सिद्धान्त अच्छा है। हम स्वयं किसी का हाथ काट कर फिर डाक्टर को तलाश करें तो इसमें कौन सी

बुद्धिमानी है। आजकल की सरकार प्रजा से अधिक-से-अधिक टैक्स वसूल करती है। लोग ग़रीबी के कारण आधे पेट भोजन भी नहीं पाते। जब वे ही बीमार पड़ते हैं तो सरकार उन्हें अस्पतालों का रास्ता दिखाती है, और इस बात का गर्व करती है कि वह प्रजा की अधिक-से-अधिक सेवा करती है। इस तरह की दिखलावटी संस्थाओं से लाभ के बदले हानि अधिक होती है। इन्हें चलाने तथा इनकी वृद्धि के लिये सरकार को टैक्स की दर बढ़ानी पड़ती है। इससे प्रजा को और भी तकलीफ़ें होती हैं।

स्वास्थ्य सम्बन्धी वर्तमान सरकारी संगठन

स्वास्थ्य और सफ़ाई का काम हमारे देश में तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार और स्थानीय संस्थायें इनकी देख-रेख करती हैं। केन्द्रीय सरकार में स्वास्थ्य-विभाग की देख-रेख के लिए एक अफ़सर (The Director General of the Indian Medical Service) रहता है। अपने कामों के लिये वह केन्द्रीय सरकार के प्रति ज़िम्मेवार होता है। इसके अतिरिक्त एक सफ़ाई अफ़सर (Sanitary Commissioner) भी रहता है। दोनों का काम प्रान्तीय सरकार के स्वास्थ्य और सफ़ाई की व्यवस्था का निरीक्षण करना है। ये दोनों व्यक्ति कभी कभी राष्ट्र-संघ (The League of Nations) की उन मीटिंगों में शरीक़ होते हैं जिनका काम स्वास्थ्य और सफ़ाई पर विचार करना है। राष्ट्र-संघ ने इस विषय में मनुष्यमात्र का काफ़ी कल्याण किया है और कितनी ही भयंकर बीमारियों का कारण खोज निकाला है। हमारे देश को भी इससे लाभ पहुँचा है। उपरोक्त दोनों अफ़सर अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्बन्धी संस्थाओं से हमारे देश को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचाने की कोशिश करते हैं। चूँकि ये दोनों अपने विषयों के विशेषज्ञ होते हैं इसलिये प्रान्तीय सरकारों को इनसे काफ़ी मदद मिलती है। देश के विभिन्न हिस्सों का वे समय-समय पर अध्ययन करते हैं। जिस हिस्से को किसी विशेष बात की परवाह करने की आवश्यकता महसूस होती है उसका प्रबन्ध वे केन्द्रीय सरकार से कराते हैं। ये दोनों पद अभी तक अँग्रेज़ों को ही दिये जाते हैं और इनकी नियुक्ति गृह-सरकार स्वयं करती है। इनके अतिरिक्त स्वास्थ्य विभाग के सभी उच्च पदाधिकारी गृह सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

प्रत्येक प्रान्त में एक स्वास्थ्य और सफ़ाई विभाग रहता है। यह विभाग किसी मन्त्री को सुपुर्द किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह इन विषयों में विशेषज्ञ हो। उसके नीचे प्रान्त में सबसे बड़ा पदाधिकारी, जो इस

विभाग की देख-रेख करता है, इन्सपेक्टर जनरल आफ़ सिविल अस्पताल (Inspector General of Civil Hospitals) कहलाता है। बम्बई, मदरास और बंगाल अहातों में इसे सरजन जनरल (Sergeon General) कहते हैं। कुछ सूबों में सफ़ाई कमिश्नर और स्वास्थ्य निरीक्षक भी नियुक्त किये गये हैं। प्रान्त के सभी अस्पताल और औषधालय इनकी अध्यक्षता में अपना कार्य करते हैं। इसके नीचे प्रत्येक ज़िले में एक सिविल सर्जन होता है। अधिकतर ज़िलों में हेल्थ अफ़सर और सफ़ाई-इन्सपेक्टर भी होते हैं। ज़िला तथा म्युनिसिपल बोर्ड इन्हीं की सहायता से अस्पताल और सफ़ाई आदि का प्रबन्ध करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार का स्वास्थ्य और सफ़ाई विभाग बहुत ही सरल तरीक़े पर संगठित किया गया है। इस विभाग में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या बहुत थोड़ी है। इनका वेतन काफ़ी लम्बा होता है।

अस्पताल और औषधालय

ऊपर कहा गया है कि शहरों में दवाइयों और सफ़ाई का प्रबन्ध काफ़ी अच्छा होता है, परन्तु गाँवों में इनका प्रबन्ध नहीं के बराबर है। प्रत्येक शहर में सरकार की ओर से दो चार अस्पताल खोले गये हैं। कुछ लोग सेवा के निमित्त भी दवाइयों का वितरण करते हैं। गाँवों में अभी तक सरकार का ध्यान कम गया था। जब कांग्रेस सरकार प्रान्तो में स्थापित हुई तो उसने गाँवों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। पहले ४० या ५० गाँव के बीच में एक अस्पताल हुआ करता था। कांग्रेस सरकार ने यह निश्चित किया कि ग्राम-पंचायतों को सरकार की ओर से कुछ दवाइयाँ दी जायँ और लोग उनसे फ़ायदा उठावें। इसी के फलस्वरूप प्रत्येक प्रान्त में सैकड़ों वैद्य और हकीम नियुक्त किये गये। सरकार का यह भी ख़याल हुआ कि भारतीय वातावरण में अंगरेज़ी दवाइयाँ बहुत लाभ नहीं पहुँचा सकतीं। औषधालयों और सफ़ाख़ानों पर अधिक ज़ोर दिया गया। हर ४ या ५ गाँव के बीच में एक वैद्य रक्खे गये हैं। इन गाँवों के लोग वहाँ से हर समय दवाइयाँ ले सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर लोग इन्हें अपने घर भी ले जा सकते हैं। वैद्यों को निजी व्यापार करने की आज्ञा नहीं है। प्रति मास इन्हें दवाइयाँ दी जाती हैं और कोई भी इनसे लभा उठा सकता है।

औषधालयों के अतिरिक्त प्रत्येक ज़िले में एक सरकारी अस्पताल होता है। किसी-किसी ज़िले में इसकी संख्या ३ या ४ तक है। स्थानीय संस्थायें भी अपनी ओर से अस्पतालों की व्यवस्था करती हैं। सफ़ाई के लिये प्रत्येक ज़िले में एक इन्सपेक्टर होता है। यह शहरों और गाँवों में घूम-घूम कर

लोगों की रहन-सहन की जाँच करता है। जब से ग्राम-उद्योग-विभाग खोला गया है तब से सफ़ाई का और भी ध्यान दिया जाता है। हर ४ या ५ गाँव के बीच में एक व्यक्ति (Organiser) नियुक्त किया गया है। इसके कार्य निम्नलिखित हैं :—

१—गाँवों में कुओं की सफ़ाई कराना।

२—गाँवों के रास्तों को साफ़-सुथरा रखना।

३—घरों की नालियों को साफ़ रखने की तरकीबें बताना।

४—हवादार और रोशनी वाले घरों का नक़शा बनाकर लोगों को देना।

५—लोगों के दरवाज़ों की सफ़ाई कराना और घूरे आदि को गाँव से बाहर रखवाना।

६—समय-समय पर सफ़ाई और स्वास्थ्य पर व्याख्यान देना तथा इससे सम्बन्ध रखने वाली पुस्तिकाओं का प्रचार करना।

इन ग्रामीण संस्थाओं के अतिरिक्त ज़िले के अन्य कर्मचारी भी समय-समय पर लोगों की सफ़ाई और उनकी बीमारी आदि की जाँच-पड़ताल करते रहते हैं। हैज़े, प्लेग, चेचक आदि बीमारियों को रोकने के लिये टीके लगाये जाते हैं। कुओं में ज़हरीले कीड़ों को मारने के लिये दवाइयाँ छोड़ी जाती हैं। गाँव के पटवारी से कोई भी पोटाश लेकर अपने कुएँ में डाल सकता है। कभी-कभी चौकीदारों को यह हिदायत कर दी जाती है कि वे अपने हल्के के सभी कुओं में पोटाश छोड़ दें। मलेरिया एक बहुत ही भयंकर बीमारी है। लगभग ५० लाख आदमी प्रति वर्ष हमारे देश में इसके शिकार बनते हैं। इसे रोकने के लिये सरकार ने कुनैन की गोली का प्रबन्ध किया है। किसी भी डाकख़ाने में यह गोली मोल ली जा सकती है। जहाँ कहीं बीमारी का सदमा होता है वहाँ के ज़िले के कर्मचारी तुरन्त ध्यान देते हैं और कई युक्तियों से लोगों की रक्षा करते हैं। विशेष प्रकार से लेक्चर और तसवीरों का प्रबन्ध करके लोगों को इस बात की शिक्षा दी जाती है कि विभिन्न बीमारियों से किस प्रकार बचना चाहिये।

स्कूल और कालेजों में स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रबन्ध

कुछ वर्षों से सरकार का ध्यान स्कूलों के बच्चों की सफ़ाई और उनके स्वास्थ्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। १९३४ ई० से आगरा, इलाहाबाद, कानपुर तथा बनारस में विद्यार्थियों के लिये अलग अस्पताल खोले गये हैं। समय-समय पर प्रत्येक विद्यार्थी की परीक्षा ली जाती है कि कहीं उसे कोई छूत की बीमारी तो नहीं है। प्रत्येक विद्यार्थी से एक आना इस कार्य के

लिये फ़ीस ली जाती है। अकसर उनका वज़न किया जाता है और डाक्टर प्रत्येक विद्यार्थी की एक फ़ाइल रखता है। जब किसी स्कूल का विद्यार्थी बीमार पड़ता है तो डाक्टर तुरन्त उसकी देख-भाल करता है। अस्पताल की ओर से ग़रीब विद्यार्थियों के लिये भोजन और चश्में का भी प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार के अस्पताल केवल विद्यार्थियों के लिये हैं। किसी बाहरी आदमी को इनमें दवा नहीं मिल सकती। विद्यार्थियों को साधारण स्वास्थ्य का ज्ञान कराया जाता है। कक्षा ८ तक प्रत्येक विद्यार्थी के लिये स्वास्थ्य और सफ़ाई विषय का अध्ययन अनिवार्य ठहराया गया है। छोटी-मोटी बीमारियों को कैसे अच्छा किया जा सकता है, इसकी शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी को दी जाती है। कुछ प्राइवेट परीक्षाओं का भी विधान बनाया गया है। जो विद्यार्थी इन्हें पास करते हैं उन्हें सर्टिफ़िकेट दी जाती है। स्वास्थ्य-विभाग की ओर से ज़हरीले कीड़ों और उनसे बचने के इलाज सम्बन्धी नकशे और चार्ट स्कूलों में दिये जाते हैं। छूत की बीमारियों को रोकने के लियें टीके लगाये जाते हैं।

गोरखपुर ज़िले के सभी स्कूलों के विद्यार्थियों ने अपना एक अलग संगठन बनाया है। प्रत्येक विद्यार्थी से दो पैसे फ़ीस ली जाती है और इससे उनकी दवा का प्रबन्ध किया जाता है। विद्यार्थी स्वयं इसका सारा प्रबन्ध करते हैं। शहर के डाक्टरों से सहायता लेकर वे इस संगठन द्वारा विद्यार्थियों की काफ़ी सेवायें कर रहे हैं। यदि विद्यार्थियों को सफ़ाई और स्वास्थ्य के साधारण पाठ अच्छी तरह बता दिये जायँ तो सरकार की बहुत-सी परीशानियाँ कम हो सकती हैं। उचित शिक्षा प्राप्त कर ये अपने घरों को साफ़-सुथरा रक्खेंगे और गाँवों को भी गन्दगी से बचायेंगे। आने वाली सन्तान को छोटी-छोटी बातें अपने आप मालूम होती रहेंगी। स्कूलों में यह विषय निहायत ज़रूरी है। सरकार को सफाई और स्वास्थ्य के लिये हाई स्कूल तक एक उचित पाठ्य क्रम बनाना चाहिये। इसकी शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अनिवार्य होनी चाहिये।

स्त्रियों की चिकित्सा

जितनी आवश्यकता बच्चों की सफ़ाई और उनके स्वास्थ्य की है उससे अधिक उनकी माताओं का ध्यान रखना आवश्यक है। यदि स्त्रियाँ स्वस्थ और निरोग हों तो उनकी सन्तान भी बीमारियों का शिकार नहीं बन सकती। हमारे देश में ग़रीबी के कारण कितनी ही स्त्रियाँ बीमारी और कमज़ोरी की हालत में भी काम करती रहती हैं। इससे उनका स्वास्थ्य तो ख़राब होता ही है, उनकी सन्तान को भी अपने स्वास्थ्य से हाथ

धोना पड़ता है। ४८ प्रतिशत बच्चे जन्म के समय ही मृत्यु के ग्रास होते हैं। ६ महीने के अन्दर २६ प्रतिशत बच्चे अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं। इसका एकमात्र कारण उनकी माताओं का स्वास्थ्य है। कल-कारख़ानों में कितनी ही स्त्रियाँ अपने भरण-पोषण के लिये गर्भाधान समय में भी काम करती रहती हैं। उनकी रहन-सहन इतनी गन्दी होती है कि वे स्वस्थ सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकतीं। बच्चों का स्वास्थ्य माता पिता के स्वास्थ्य पर बहुत कुछ निर्भर करता है। जो जाति एक बार अस्वस्थ और रोगी हो जाती है, उसकी आने वाली सन्तान वीर और पुरुषार्थी नहीं बन सकती। राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से स्त्रियों के स्वास्थ्य और उनकी सफ़ाई पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

कुछ प्राचीन कुप्रथाओं के कारण भारतीय स्त्रियों के स्वास्थ्य-सुधार में अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर्दे तथा अशिक्षा के कारण उनका ध्यान उन बातों की ओर नहीं दिलाया जा सकता जिनसे उन्हें लाभ पहुँचे। राष्ट्रीय तथा धार्मिक आन्दोलनों से इसमें बहुत कुछ सुधार हुआ है। बड़े-बड़े शहरों में उनके लिये अस्पतालों की अलग व्यवस्था की गई है। हिन्दोस्तान के वाइसराय लार्ड डफ़रिन की स्त्री ने इस ओर काफ़ी ध्यान दिया था। १८८५ ई० में उनके सतत परिश्रम से स्त्रियों की दवा के लिये एक संघ की स्थापना की गई। वह संघ अभी तक अपना कार्य कर रहा है। व्यक्तिगत सहायता के अतिरिक्त सरकार भी धन से इसकी मदद करती है। संघ के धन से जगह-जगह पर स्त्रियों के लिये अस्पताल खोले गये हैं। लेडी हार्डिंज की याद में दिल्ली में स्त्रियों के लिये एक मेडिकल कालेज खोला गया है। इसमें केवल स्त्रियों की चिकित्सा की शिक्षा दी जाती है। स्त्रियों की विशेष चिकित्सा के लिये इलाहाबाद में एक कमला नेहरू अस्पताल खोला गया है। इसकी इमारत बनवाने में लगभग ६ लाख रुपये ख़र्च किये गये हैं। यह अस्पताल ग्रामीण स्त्रियों की अधिक सेवा कर रहा है।

ग़ैर सरकारी संस्थायें

स्वास्थ्य और सफ़ाई के लिये सरकारी विभाग से अलग कुछ ग़ैर सरकारी संस्थायें भी हैं। सरकार इन्हें थोड़ी बहुत मदद ज़रूर देती है लेकिन इनका अधिकतर कार्य दान और चन्दों से चलता है। अखिल भारतीय सेवासमिति ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। इस संस्था की ओर से शहरों तथा गाँवों में अनेक अस्पताल और औषधालय खोले गये हैं। तीर्थ-स्थानों, मेलों तथा सार्वजनिक सभाओं में सेवासमिति बड़ी तत्परता के साथ सेवा का कार्य करती है। रेडक्रास सोसाइटी एक दूसरी ग़ैर सरकारी

संस्था है। यह भी स्वास्थ्य और सफ़ाई के लिये बहुत कुछ कर रही है। सेन्ट जॉन एम्बुलैंस एसोसिएशन और कुछ छोटी-मोटी संस्थायें भी इस ओर विशेष कार्य कर रही हैं। कितने ही ईसाई मिशनरी अन्धों, बहरों, लूलों तथा कोढ़ियों की सेवा के लिये जगह-जगह पर अस्पताल खोले हुए हैं। दवा के साथ-साथ वे बीमारों की शिक्षा का भी प्रबन्ध करते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना है। इस विशालकाय देश में स्वास्थ्य और सफ़ाई पर ध्यान देने के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र खाली है। यह कहना ग़लत है कि पैसे की कमी के कारण हमारे देश में सार्वजनिक कामों की गुंजाइश कम है। व्यर्थ के दान के रूप में धन का जो अपव्यय हमारे देश में हो रहा है वह किसी और देश में दिखाई नहीं पड़ेगा। तीर्थस्थानों में पंडे-पुजारियों को जो रुपये दान में दिये जाते हैं, यदि उनका संगठन ठीक तरीक़े पर किया जाय तो इस देश के सेवक ईसाई मिशनरियों की तरह विदेशों में जाकर अपनी सेवा और त्याग का परिचय दे सकते हैं।

अन्वेषण कार्य

आँख मूँद कर दवाइयों के चक्कर में पड़े रहने से उतना लाभ नहीं हो सकता जितना बीमारियों को समूल नष्ट करने से। सरकार के विशेषज्ञों द्वारा इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि भयंकर बीमारियाँ कैसे हटाई जा सकती हैं। इसके लिये अध्ययन और खोज की ज़रूरत है। जगह-जगह पर अन्वेषण कार्यालय (Research Institutes) खोले जायँ और विशेष डाक्टरों को इस बात का अवसर दिया जाय कि अपनी बुद्धि से बीमारियों के मूल कारण खोज निकालें। १८९६ ई० के पहले हमारे देश में प्लेग की बीमारी नहीं थी। इस बात का पता लगाया जा सकता है कि इसका आरम्भ कैसे हुआ और उन कारणों को दूर करने का क्या इलाज है। इस दिशा में कुछ कार्य किया जा रहा है। कसौली में एक सेन्ट्रल रीसर्च इन्सटीट्यूट स्थापित किया गया है। कलकत्ते में अखिल भारतीय स्वास्थ्य और हाईजीन नामक संस्था की स्थापना की गई है। मदरास और बम्बई में अन्वेषण के लिये जो संस्थायें हैं उनमें हैजा, प्लेग, चेचक, मलेरिया आदि बीमारियों का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता है। कोढ़ की बीमारियों का कारण जानने की कोशिश की जा रही है। तपेदिक़ की बीमारियों के लिये हिन्दोस्तान के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो की स्त्री ने एक कोष इकट्ठा किया है। इससे एक ऐसे अस्पताल खोलने की योजना बनाई गई है जहाँ तपेदिक़ के सभी मरीज़ रह कर अपने को अच्छा कर सकें। इनके अलावा मेडिकल कालेजों में भी

तरह तरह की खोजें होती रहती हैं। आशा है कुछ दिनों में बहुत-सी भयंकर बीमारियों को रोकने का ठीक-ठीक प्रबन्ध किया जा सकेगा।

बीमारियों के लिये दवा से बढ़कर कोई दूसरा निदान नहीं हो सकता।

नवीन योजनायें

लेकिन कुछ बातों से यह अनुभव प्राप्त किया जा सकता है कि सरकार अस्पतालों और औषधालयों के मदों को कम करके वही पैसा दूसरे तरीक़ों पर ख़र्च करके जनता की कहाँ तक अधिक सेवा कर सकती है। अंगरेज़ी में एक कहावत है कि संयम सभी दवाइयों से बढ़कर है (Prevention is better than cure)। यदि लोग स्वस्थ और साफ़ रक्खे जायँ और उनका जीवन नियमित हो, तो शायद उन्हें दवा की ज़रूरत कम होगी। कुछ नई योजनाओं को सरकार काम में लावे। जगह-जगह पर खेल-कूद के स्थान तथा व्यायाम-शालायें खोली जायँ। इस प्रकार की संस्थायें ज़िले में दस-बीस ज़रूर हों। यहाँ पर लोगों को कसरत, खेल-कूद आदि की शिक्षा दी जाय। त्यौहारों तथा उत्सवों पर पारितोषिक बाँटे जायँ। समय-समय पर दंगल कराये जायँ। ज़िले के दस-बीस चुने हुये आदर्श स्वस्थ व्यक्तियों को सरकार इनाम देने का प्रबन्ध करे। गाँवों में इस प्रकार की योजना अधिक सफल हो सकती है। हर ज़िले में वयस्क लोगों की नुमाइश लगाई जाय। जो सबसे स्वस्थ और वज़नदार हों उन्हें पारितोषिक दिया जाय। ज़िले में हर साल ५ इनाम इसलिये रक्खे जायँ कि जो ५ गाँव सबसे साफ़ होंगे उन्हें ये इनाम दिये जायेंगे। सरकार अपने ख़र्च से हर ज़िले में दो चार आदर्श गाँव बसाने की व्यवस्था करे। गाँव के होनहार नवयुवकों को सफ़ाई और स्वास्थ्य के लिये उत्साहित किया जाय। गाँवों में ट्रेन्ड दाइयाँ रक्खी जायँ जो बच्चे होने वाली स्त्रियों की ठीक-ठीक देख-भाल करें। साल में प्रतिवर्ष एक 'सफ़ाई सप्ताह' हर ज़िले में मनाया जाय। इन तरीक़ों से लोगों की सफ़ाई और उनके स्वास्थ्य में अधिक-से-अधिक उन्नति की जा सकती है। हमारा अनुमान है कि इससे अस्पतालों और औषधालयों की बहुत बड़ी संख्या कम हो जायेगी।

अध्याय २१

न्यायालय

(JUDICIARY)

धारा-सभा और कार्यकारिणी विभाग का कार्य क़ानून को बनाना और उन्हें कार्यान्वित करना है। इनके अन्दर इस बात की योग्यता नहीं होती कि इन्हें कार्यान्वित करने में कहाँ तक न्याय बर्ता जा सकता है। इसीलिये सरकार का न्याय-विभाग बनाया गया है कि वह राज्य में न्याय की रक्षा करे। राज्य के तमाम उद्देश्य तब तक सिद्ध नहीं हो सकते जब तक वहाँ सब कामों में न्याय की बू नहीं है। अफ़लातून के कथनानुसार न्याय राज्य का अन्तिम उद्देश्य है। (Justice is the end of the State)। यदि धारा-सभा किसी कार्य के लिये एक लाख रुपये मंजूर करे, और कार्यकारिणी विभाग केवल १० हज़ार ख़र्च करके बाक़ी अपनी जेब में रक्खे, तो इसकी देख-रेख के लिये एक ऐसा विभाग आवश्यक है जो उसे उचित दंड दे। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अच्छाई और बुराई का पारितोषिक और दंड मिलना चाहिये। जितने लोग कारागार की यातनायें भोग रहे हैं उनके साथ भी सरकार ने न्याय किया है। सचाई को असत्य से अलग करना इसी का कार्य है। जो सरकार अपने राज्य में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, धनी-ग़रीब, का विचार कर कार्य करती है वह पक्षपाती और दोषी कहलाती है। इन्हीं कमज़ोरियों को दूर करने के लिये न्याय विभाग बनाया जाता है। कचहरियों का उद्देश्य केवल आँख मूँद कर क़ानून को बर्तना नहीं है, बल्कि उनके उचित प्रयोग से लोगों को इस बात की चेतावनी देना है कि सच्ची स्वतन्त्रता क़ानूनों के पालन में है।

न्यायालय का महत्व

नागरिकों के अधिकार, उनकी सुविधायें, उनकी स्वतन्त्रता तथा उनके उच्च जीवन की रक्षा न्यायालयों में होती है। यदि न्याय-विभाग द्वारा दंड प्रयोग न किया जाय तो कमज़ोर की रक्षा बलवान से नहीं हो सकती। इस विभाग की प्रधानता के कारण सरकार का बड़ा-से-बड़ा कर्मचारी अपने कर्तव्यों में सतर्क रहता है। न्याय का स्थान राज्य में जितना ही ऊँचा होता है उसी परिमाण में वहाँ सुख और शान्ति विराजती है। परन्तु न्यायालयों

में कार्य करने वाले पदाधिकारी योग्य और निष्पक्ष होने चाहिये। न्यायाधीश को अपने समय और परिस्थिति की पूरी जानकारी होनी चाहिये। उतावलेपन में आकर वह न्याय के बदले अन्याय कर सकता है। न्याय बर्तने में उसे निर्भय और निःसंकोच होना चाहिये, तभी वह क़ानून के वास्तविक अर्थ को समझ सकता है। सरकार को स्वयं ऐसे व्यक्तियों को तलाश करना चाहिये और उन्हें अपने कर्तव्य-पालन का एक समुचित वातावरण तैयार करना चाहिये। न्याय के लिये समानता और समता का होना आवश्यक है। न्यायाधीश को शान्त, निष्पक्ष, निर्भय और प्रभाव से ऊपर होकर अपनी ज़िम्मेवारी निबाहनी होगी। वकीलों के तर्क-वितर्क को समझने के लिये उसमें पूरी योग्यता हो और मनुष्य तथा संसार दोनों का उसे अधिक-से-अधिक अनुभव हो। पद और पैसे के लोभी व्यक्ति न्याय-विभाग को गन्दा किये बिना नहीं रह सकते।

न्याय की प्राचीन व्यवस्था

बृटिश-राज्य से पहले आजकल की-सी कचहरियाँ न थीं। हिन्दू ज़माने में हमारे देश में छोटे-छोटे एकतन्त्र राज्यों का वर्णन मिलता है। इनमें कुछ तो वर्तमान नाज़ीवाद से भी बदतर थे, परन्तु अधिकतर प्रजातन्त्रवादी थे। राजा लोग प्रजा की अनुमति का आदर करते थे। लोकमत की अवहेलना करने में उन्हें संकोच होता था। न्याय-विभाग यद्यपि अलग नहीं था, परन्तु इसके कर्मचारी स्थान-स्थान पर नियुक्त किये गये थे। बड़े-बड़े मामलों की फ़रियाद राजा स्वयं सुनता था। अपराधियों को कारावास का दंड आजकल की तरह नहीं दिया जाता था। दंड की व्यवस्था समय-समय पर बदलती रहती थी। किसी काल में कड़े दंड का विधान था और किसी समय अपराधी को समझा-बुझाकर अथवा आध्यात्मिक दंड देकर छोड़ दिया जाता था। कभी-कभी तो लोगों के हाथ-पैर तक काट लिये जाते थे। मुक़दमों का फ़ैसला पंचायतों द्वारा होता था। लोगों को कचहरियों की आवश्यकता नहीं होती थी। सरकार की ओर से जो कर्मचारी न्याय के लिये नियुक्त किये जाते थे वे धार्मिक और सात्विक विचारों के होते थे। मुसलमानी ज़माने में सूबों के गवर्नर मुक़दमों का फ़ैसला करते थे। क़ाज़ी और पंडित जिन मामलों को नहीं सुलझा पाते थे उनका फ़ैसला गवर्नर करता था।

प्राचीन काल की न्याय-पद्धति का पूरा वर्णन हमारे विषय से बाहर की चीज़ है। इसकी चर्चा इसलिये की गई है कि प्राचीन न्याय-संस्थायें थोड़ी थीं। उनका संगठन आजकल की तरह जटिल नहीं था। स्थानीय संस्थायें

स्वयं अपना फ़ैसला भी कर सकती थीं। गाँव का मुखिया जज का भी काम करता था। लोगों को धर्म का इतना अधिक भय था कि वे झूठ बोलने तथा धोखा देने में भयभीत होते थे। उन्हें यह डर था कि किसी को धोखा देकर हम ईश्वर के सामने अपराध से नहीं बच सकते। धर्म-ग्रन्थों में यह भलीभाँति स्पष्ट किया गया है कि परलोक की यातनायें इस लोक से कहीं सख्त हैं। इसी भय के कारण लोग अपने अपराधों को छिपाने का प्रयत्न कम करते थे। गंगा का पानी अथवा कोई धर्म-ग्रन्थ ज्योंही उनके सामने रक्खा जाता त्योंही वे साफ़ साफ़ बातों को कह देते थे। ऊपरी वातावरण भी ऐसा था कि लोग अपने कर्तव्यों का फल भोगने में अपना गौरव समझते थे। किसी अपराधी की रक्षा करना पाप समझा जाता था। यही वजह है कि कोई भी साधारण व्यक्ति अपराधियों को पहचान सकता था। कभी-कभी तो अपराध करने वाले स्वयं पंडितों और क़ाज़ियों के पास चले आते और अपना उचित दंड चाहते थे। न्याय-ग्रन्थों में इस प्रकार के भी दंड पाये जाते हैं जब कि अपराधी अपने आप किसी पेड़ के खोखले में, अथवा पर्वत की गुफ़ाओं में बिना अन्नजल के महीनों बैठकर प्राण त्याग देते थे। कुछ अपराधी अपने आप अग्नि में जला लेते थे। दान और पुण्य का दंड अधिक दिया जाता था। ऐसे उच्च वातावरण में न्याय करने में सुविधा होती थी।

बृटिश राज्य में न्यायालयों का विकाश

वैज्ञानिक युग के आरम्भ होते ही विश्वास की भावना जाती रही। लोगों को धर्म का भय एक ढोंग मालूम पड़ने लगा। विश्वास का स्थान तर्क ने ले लिया। लोग अपने अपराध को छिपाने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखते। इसीलिये न्याय-विभाग का संगठन नये सिरे से करना पड़ा। जो मशीन आज दिखाई पड़ रही है वह अधिक से अधिक १५० वर्ष पुरानी है। न्याय का मुहकमा नीचे से ऊपर तक जिस शकल में आज काम कर रहा है वह सब बृटिश सरकार की देन है। जब तक ईस्ट इंडिया कम्पनी केवल व्यापार करती थी तब तक उसे न्याय करने का अधिकार नहीं था। परन्तु जब उसका व्यापार बढ़ने लगा और उसकी मातहती में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या काफ़ी बढ़ गई तो उसे इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि अपने क्षेत्र में छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा वह स्वयं करे। मुग़ल राज्य में न्याय की व्यवस्था कम न थी। कम्पनी को यह अधिकार आसानी से नहीं मिल सकता था। उसके कर्मचारी मुग़ल राज्य की प्रजा थे। अतएव उनका फ़ैसला नव्वाबों और क़ाज़ियों के हाथ से अलग कम्पनी को कैसे दिया जा सकता था।

एलिज़बेथ के समय में कम्पनी को जो आज्ञा-पत्र मिला उसमें उसे यह अधिकार दिया गया था कि वह कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये अपने अधीन कर्मचारियों को दंड दे सकती है। इसका अर्थ यह नहीं था कि कम्पनी को न्यायालय बनाने की आज्ञा मिल गई, बल्कि अपने व्यापार की सुविधा के लिये उसे कुछ साधारण अधिकार दिये गये थे। १६६१ ई० में फ़ैक्ट्री के गवर्नरों को यह अधिकार दिया गया कि इंगलैंड के क़ानून के अनुसार वे अपने कर्मचारियों को दीवानी और फ़ौजदारी दोनों प्रकार का दंड दे सकते हैं। १६६९ ई० में जब बम्बई कम्पनी को सुपुर्द किया गया तो कुछ समय के लिये वहाँ दो अदालतें बनाई गईं। छोटी कचहरी में एक अंगरेज़ और दो हिन्दुस्तानी जज रक्खे गये। बड़ी कचहरी का नाम सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) था, इसमें डिप्टी गवर्नर और एक कौंसिल मुक़दमों का फ़ैसला करते थे। इसका फैसला अन्तिम माना जाता था। १६८७ ई० में जेम्स द्वितीय के समय में मदरास में एक म्युनिसिपल बोर्ड की स्थापना की गई। इसके अध्यक्ष मेयर तथा उसकी समिति (Aldermen) को दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुक़दमें फैसल करने का अधिकार दिया गया। १७२६ ई० में इसी तरह की अदालतें कलकत्ता और बम्बई में भी स्थापित की गईं। इन मुक़दमों की अपील सुप्रीम कोर्ट में की जाती थी। ४०० रुपये से ऊपर के मुक़दमों की अपील सम्राट् की कौंसिल में होती थी।

१७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार बंगाल में एक प्रधान न्यायालय (Supreme Court of Judicature) की स्थापना की गई। १८६२ ई० तक इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया। प्रधान न्यायाधीश के अतिरिक्त इसमें ४ सहायक न्यायाधीश रक्खे गये। इन सबकी नियुक्ति स्वयं सम्राट् द्वारा की गई थी। इसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। बंगाल की प्रजा और कम्पनी के कर्मचारियों पर इस न्यायालय का अधिकार था। वारेन हेस्टिंग्ज़ और प्रधान न्यायालय में मतभेद आरम्भ हुआ। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि गवर्नर-जनरल और प्रधान न्यायालय इन दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा है। न्यायालय के अधिकार स्पष्ट नहीं किये गये थे। अन्त में पार्लियामेंट ने एक कानून पास करके इसका निपटारा किया। १७८१ ई० में यह बात स्वीकार कर ली गई की गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल का दर्जा प्रधान न्यायालय से ऊँचा है। किसानों, ज़मींदारों और पेंशन-आफ़्ता कर्मचारियों पर न्यायालय का कोई अधिकार नहीं ठहराया गया। इनका फैसला मुग़ल राज्य के न्यायालयों में किया जाता था। कम्पनी की मातहती में हिन्दू और मुसलमान अपराधियों का फैसला दोनों के नियमों के

अनुसार क्रमशः किया जाता था। रसम-रवाज़ों तथा धार्मिक वसूलों का ध्यान रक्खा जाता था।

१७६५ ई० में जब कम्पनी को बंगाल और बिहार प्रान्त को दीवानी मिली तो उसे मुक़दमें फैसल करने का भी अधिकार मुग़ल राज्य की ओर से दिया गया। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने मुग़ल राज्य के न्यायालयों के आधार पर कचहरियों का निर्माण किया। टैक्स वसूल करने तथा मुक़दमों को फ़ैसल करने का कुल अधिकार अंगरेज़ कर्मचारियों को दे दिया गया। हर ज़िले में एक अंगरेज़ कलेक्टर और एक हिन्दुस्तानी दीवान रक्खे गये। इन दोनों के मेल से दीवानी अदालत बनाई गई। इसके अतिरिक्त हर ज़िले में एक फ़ौजदारी अदालत बनाई गई। इस अदालत में एक काज़ी, एक मुफ़्ती और दो मौलवी रक्खे गये। कलेक्टर भी इनके साथ बैठता था, लेकिन वह चुपचाप इनकी कार्रवाइयों को देखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता था। दीवानी अदालत की अपील सदर दीवानी अदालत में होती थी। यह अदालत कलकत्ते में थी। गवर्नर और उसकी कौंसिल और कुछ हिन्दुस्तानी अफ़सर मुक़दमों का फैसला करते थे। फ़ौजदारी के मुक़दमों की अपील सदर निज़ामत अदालत में की जाती थी। एक दारोग़ा, एक मुफ़्ती, एक काज़ी और एक मौलवी इसके जज होते थे। पहले यह अदालत कलकत्ते में थी, परन्तु बाद में यह मुर्शिदाबाद में कर दी गई। कचहरियों का कायक्रम वारेन हेस्टिंग्ज़ ने स्वयं निश्चित किया। यह पहला अवसर था जब कि अंगरेज़ी तरीक़े के न्यायालय हमारे मुल्क में स्थापित हुए।

१७७४ ई० में न्याय और मालगुज़ारी के मुदक़में एक दूसरे से अलग कर दिये गये। दोनों विभागों के कर्मचारी अलग-अलग नियुक्त किये गये। दीवानी मुक़दमों का फैसला करने के लिये हिन्दुस्तानी अमीन नियुक्त किये गये। १७८० ई० में १६ दीवानी अदालतें बनाई गई। हर अदालत का प्रधान सुपरिन्टेन्डेन्ट कहलाता था। हमें यह याद रखना चाहिये कि न्याय विभाग के नये-नये तजुर्बे और विभिन्न न्यायालय बंगाल प्रान्त से आरम्भ होते थे। कम्पनी की जड़ पहले इसी प्रान्त में जमी थी। जब कार्नवालिस हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हुआ तो न्यायालयों के संगठन में अनेक परिवर्तन किये गये। १७९० ई० में सदर निज़ामत अदालत मुर्शिदाबाद से फिर कलकत्ता बुला ली गई। छोटे-मोटे फ़ौजदारी के मुक़दमों को फैसल करने के लिये १७९३ ई० में ४ नई कचहरियाँ और स्थापित की गईं। इन्हें सरकुट कोर्ट (Court of Circuit) कहते हैं। कार्नवालिस ने कलेक्टर को फिर फ़ौजदारी के मुक़दमों का अधिकार दे दिया। इसी की देख-रेख के लिये

४ सरकुट कोर्ट स्थापित की गई थीं। कलकत्ते में एक सबसे बड़ी फ़ौजदारी की अदालत (Sadar Nizamat Adalat) खोली गई। गवर्नर-जनरल स्वयं इसका सभापति होता था। दीवानी के मुक़दमें विशेष जजों को दिये गये। इन्हें फौजदारी मुक़दमें भी फ़ैसल करने का अधिकार था। इनकी अपील प्रान्तीय कचहरियों में होती थी। इन प्रान्तीय कचहरियों की संख्या ४ थीं। दीवानी मुक़दमों के अपील की सबसे बड़ी अदालत, सदर दीवानी अदालत, स्थापित की गई। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल इसके जज नियुक्त किये गये।

लार्ड वेलेज़ली के समय में दोनों अपील की कचहरियों (Sadar Diwani and Nizamat Adalat) में १८०१ में कुछ संशोधन किये गये। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के अतिरिक्त ३ या इससे कुछ अधिक जज इनमें नियुक्त किये जा सकते थे। लार्ड विलियम वेंटिंग ने प्रान्तीय कचहरियों को बर्ख़ास्त कर दिया और उनका कार्य जजों को सुपुर्द किया गया। कलेक्टर को फिर मजिस्ट्रेट के सारे अधिकार दे दिये गये। तब से आज तक कलेक्टर को ये दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। एक ओर तो वह अपने ज़िले में कार्यकारिणी विभाग का प्रधान है और दूसरी ओर मुकदमों का फैसला भी करता है। इसे अलग-अलग करने की चर्चा बहुत दिनों से चल रही है, परन्तु अभी तक इस दिशा में कुछ किया नहीं गया। इन कचहरियों के अलावे कुछ और भी छोटी-छोटी अदालतें बनाई गई थीं।

१८६१ ई० में महारानी विक्टोरिया को यह अधिकार दिया गया कि वह कलकत्ता, बम्बई और मदरास में हाईकोर्ट की स्थापना करे। सुप्रिम कोर्ट और अदालत कोर्ट बर्ख़ास्त कर दी गई। इस हाईकोर्ट ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक हाईकोर्ट में एक प्रधान जज और अधिक से अधिक १५ सहायक जज नियुक्त किये जा सकते थे। इनमें कम-से-कम एक-तिहाई जज बैरिस्टर हो और एक तिहाई इन्डियन सिविल सर्विस के सदस्य हों। १८६६ ई० में इलाहाबाद हाईकोर्ट की स्थापना की गई और इसी साल लाहौर में एक चीफ़कोर्ट खोली गई। १६११ ई० में एक दूसरा हाईकोर्ट ऐक्ट पास किया गया। इसके अनुसार जजों की संख्या १५ से २० तक कर दी गई। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी प्रान्त में हाईकोर्ट की स्थापना की जा सकती है। इसी ऐक्ट के अनुसार पटना, लाहौर और रंगून में हाईकोर्ट की स्थापना की गई। अवध में एक चीफ़कोर्ट खोली गई। मध्यप्रान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश और सिन्ध में जुडीशियल कमिश्नर कोर्ट की स्थापना की गई। यहीं पर न्यायालयों का ऐतिहासिक विकास समाप्त हो जाता है। अब यह देखना है

कि वर्तमान समय में इसका संगठन कैसा है और इनके क्या क्या अधिकार हैं

भारतीय न्यायालयों का विभाजन तीन श्रेणियों में किया जा सकता है। इनके अधिकार और कार्यक्षेत्र का ध्यान रखते हुये यह विभाजन वैज्ञानिक कहा जा सकता है। इनके अलावे इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल भी हमारे देश के न्याय-विभाग से सम्बन्ध रखती है। यदि इसे हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी अपील की अदालत कहा जाय तो कोई ग़लती नहीं है। अतएव भारतीय न्यायालयों की श्रेणियाँ ३ के बदले ४ होंगी। ये श्रेणियाँ निम्नलिखित हैं:—

न्यायालयों का वर्तमान संगठन

१—प्रिवी कौंसिल २—संघ-न्यायलय (Federal Court)

३—हाई कोर्ट ४—ज़िला कोर्ट

प्रिवी कौंसिल

प्रिवी कौंसिल हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी अदालत है। हाई कोर्ट तथा संघ-न्यायालय द्वारा फ़ैसल किये गये मुक़दमें इस कौंसिल में अपील किये जा सकते हैं। इनके संगठन आदि का वर्णन गृह-सरकार नामक खंड में किया जा चुका है। फ़ौजदारी के मुकदमें किसी विशेष परिस्थिति में ही इसमें अपील किये जा सकते हैं। दीवानी मुक़दमें भी तभी अपील किये जा सकते हैं जब इनका मूल्य किसी ख़ास रक़म से ऊपर हो ; १०,००० रुपये से कम क़ीमत का कोई भी मुक़दमा कौंसिल में अपील नहीं किया जा सकता। दोनों प्रकार की अपीलों की आज्ञा हाई कोर्ट से प्राप्त करनी पड़ती है। अपील के अलावे किसी नये मुक़दमें की उत्पत्ति प्रिवी कौंसिल में नहीं हो सकती। १९३५ के शासन-विधान के अनुसार जो संघ-न्यायालय स्थापित किया गया है वह क़ानून न प्रिवी कौंसिल से छोटा है। संघ-न्यायालय में फैसल किये गये मुक़दमों की अपील प्रिवी-कौंसिल में नहीं हो सकती। लोगों का यह ख्याल ग़लत है कि संघ न्यायालय हिन्दोस्तान की सबसे बड़ी अदालत है। यदि प्रिवी कौंसिल का उपरोक्त अधिकार कम कर दिया जाता और सभी मुक़दमें संघ-न्यायालय में ही समाप्त हो जाते तो यह कथन ठीक हो सकता था।

संघ न्यायालय और इसकी आवश्यकता

प्रत्येक संघ शासन-विधान में संघ-न्यायालय का होना अनिवार्य है। संघ-शासन का निर्माण कई रियासतों अथवा सूबों के मेल से होता है। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त प्रत्येक इकाई अपनी स्थानीय सरकार रखती है। संघ-शासन की योजना इन इकाइयों को संगठित कर इनकी शक्ति को और दृढ़ करने के लिये बनाई जाती है। केन्द्रीय

सरकार, जिसे संघ-सरकार भी कहते हैं, स्थानीय सरकारों को किसी भी तरह दबाने की अधिकारिणी नहीं है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये संघ और स्थानीय सरकारों विषय अलग-अलग बाँट दिये जाते हैं। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। रियासतों या सूबों के घनिष्ठ सम्पर्क के कारण संघ की स्थापना होती है। किसी हद तक इनकी सहानुभूति और सहकारिता पहुँच जाने के बाद संघ का निर्माण किया जाता है। इतने पर भी दो प्रकार के भय सदैव बने रहते हैं। किन्हीं भी दो सूबों में मतभेद उत्पन्न हो सकता है। विषयों के विभाजन में संघ और स्थानीय सरकार को कोई-न-कोई कठिनाई उत्पन्न हो सकती हैं। यह भी सम्भव है कि शासन-विधान की किसी धारा के दो अर्थ निकाल लिये जायँ। जब इस प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं तो एक ऐसी संस्था आवश्यक है जो इन्हें सुलझाने की योग्यता रखती हो। संघ-न्यायालय की स्थापना इसीलिये की जाती है। कोई भी संघ-शासन एक प्रधान न्यायालय के बिना नहीं चल सकता।

संघ-न्यायालय संघ-शासन-विधान का संरक्षक होता है।* इसमें काम करने वाले न्यायाधीशों के सूबों और संघ दोनों को एक दृष्टि से देखना पड़ता है। जिस प्रकार साधारण कचहरियाँ दो व्यक्तियों अथवा दो दलों में निष्पक्ष भाव से फ़ैसला करती हैं, उसी प्रकार संघ-न्यायालय को संघ और प्रान्तीय सरकार दोनों के बीच में फ़ैसला करना पड़ता है। संघ शासन-विधान की बारीकियों से इन्हें भली-भाँति परिचित रहने की आवश्यकता है। संघ-न्यायालय और अखिल भारतीय न्यायालय में कुछ अन्तर है। एक का कार्य शासन-प्रबन्ध में वैधानिक कठिनाइयों को सुलझाना है और दूसरे का कार्य हिन्दोस्तान में सभी प्रकार के मुक़दमों का अन्तिम फ़ैसला करना है। १९२५ ई० में भारतीय असेम्बली में इस विषय का एक प्रस्ताव पेश किया गया था कि एक अखिल भारतीय न्यायालय की स्थापना की जाय। सरकार के विरोध करने पर यह प्रस्ताव पास न हो सका। प्रिवि कौंसिल के रहते हुए इस तरह के न्यायालय बनाने में सरकार को कोई लाभ नहीं जान पड़ा। जब

---

* "A Federal Court is an essential element in a Federal Constitution. It is at once the interpreter and guardian of the Constitution and a tribunal for the determination of disputes between the constituent units of the Federation.

१९३५ के संघ-शासन-विधान की कार्रवाइयाँ आरम्भ हुई तो फिर इस प्रकार की माँग पेश की गई कि अखिल भारतीय न्यायालय स्थापित किया जाय। सफ़ेद पत्र (White Paper) में संघ न्यायालय और अखिल भारतीय न्यायालय दोनों की सिफ़ारिश की गई थी। संयुक्त पार्लियामेंटरी कमीटी ने इसे मंजूर किया और अखिल भारतीय न्यायालय निरर्थक साबित किया गया।

संघ न्यायालय का संगठन

१९३५ के संघ-शासन-विधान के अनुसार १ नवम्बर सन् १९३७ ई० को संघ-न्यायालय की स्थापना की गई। शासन-विधान में भली भाँति स्पष्ट किया गया है कि संघ-न्यायालय में अधिक से अधिक ७ जज रह सकते हैं। यदि इससे अधिक जजों की आवश्यकता होगी तो संघ-धारा-सभा गवर्नर-जनरल के सामने इस आशय का प्रस्ताव रक्खेगी और अन्त में बृटिश सम्राट् से इसकी अन्तिम अनुमति ली जायगी। जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है। चूँकि अभी संघ-शासन-विधान पूरी तरह कार्यान्वित नहीं किया गया है इसलिये संघ-न्यायालय में केवल ३ जज रक्खे गये हैं। प्रधान जज एक अँग्रेज़ है और बाक़ी दो जजों में एक हिन्दू और एक मुसलमान हैं। संघ-न्यायालय के जज ६५ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते हैं, परन्तु इसके बीच में चरित्र अथवा शारीरिक अंगभंग के कारण अपने पद से हटाये जा सकते हैं। अपने पद से वे किसी भी समय त्याग-पत्र दे सकते हैं। इस संगठन से यह भलीं भाँति स्पष्ट है कि संघ-न्यायालय पर भारतीयों का कोई अधिकार नहीं है। जजों को नियुक्त करने और उन्हें हटाने का अधिकार केवल सम्राट् को है। अर्थात् कार्य रूप में भारत-मन्त्री इसका सर्वेसर्वा रक्खा गया है। देश का सबसे बड़ा न्यायालय एक विदेशी सरकार के कब्जे में रहे, वह न्याय की दृष्टि से संगत नहीं है। लोगों का यह विचार था कि इस न्यायालय को संघ-धारा-सभा और गवर्नर-जनरल के कब्ज़े में रक्खा जाय, जजों की भर्ती करने और हटाने का अधिकार इन्हीं को दिया जाय, परन्तु पार्लियामेंट के सामने उनकी एक न चली।

संघ-न्यायालय में ३ से कम जज नहीं रक्खे जाते। आजकल इनकी संख्या इतनी ही रक्खी गई है। प्रधान जज को छोड़कर बाक़ी जजों की योग्यतायें एक रक्खी गई है। जज के लिये निम्नलिखित योग्यता का रखना आवश्यक है :—

१—बृटिश भारत अथवा देशी रियासत की किसी हाईकोर्ट में कम से कम ५ वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो। अथवा

२—इंगलैंड या उत्तरी आयरलैंड में १० वर्ष तक बैरिस्टर रहा हो। अथवा

३—स्काटलैंड में १० वर्ष तक ऐडवोकेट रहा हो। अथवा

४—हिन्दोस्तान की किसी हाईकोर्ट में १० वर्ष तक वकील रहा हो।

प्रधान जज को इन योग्यताओं के अतिरिक्त दो और भी बातें पूरी करनी होंगी :—

१—उपरोक्त दो और तीन नम्बर के अनुसार उसे १५ वर्ष का अनुभव होनी चाहिये।

२—नियुक्ति के समय उसे इंगलैंड या उत्तरी आयलैंड का बैरिस्टर, या स्काटलैंड का एडवोकेट या भारतवर्ष का वकील होना चाहिये।

प्रधान जज को ७००० रुपया और बाक़ी जजों को ५५०० रुपया महीना वेतन दिया जाता है। ६५ वर्ष की आयु होने पर जजों को पेंशन देने का विधान बनाया गया है। यह पेंशन अधिक-से-अधिक ३०००० रुपये सालाना तक दी जा सकती है। प्रधान न्यायाधीश का स्थान ख़ाली हो जाय तो गवर्नर-जनरल को यह अधिकार होगा कि वह सहायक जजों में से कुछ समय के लिये किसी को प्रधान न्यायाधीश बना दे। परन्तु किसी भी दशा में उसे सहायक जजों को भर्ती करने का अधिकार नहीं दिया गया है। संघ-न्यायालय का स्थान दिल्ली है, परन्तु प्रधान न्यायाधीश गवर्नर-जनरल की अनुमति से इसका स्थान तब्दील कर सकता है। संघ-न्यायालय का सब ख़र्च भारतीय ख़ज़ाने से दिया जाता है, परन्तु संघ-धारा-सभा (अभी इसका निर्माण नहीं हुआ है) को जजों का वेतन घटाने-बढ़ाने का अधिकार नहीं है। वह केवल उसपर विचार कर सकती है। न्यायालय का पूरा ख़र्च गवर्नर-जनरल के निजी अधिकार में रक्खा गया है। इसकी फ़ीस आदि की आमदनी संघ-सरकार की आमदनी समझी जाती है।

संघ-न्यायालय का सब काम अंगरेजी भाषा में होता है।

संघ न्यायालय के अधिकार और कर्तव्य

इसके कर्तव्य दो प्रकार के हैं :—

१—संघ शासन की वैधानिक कठिनाइयों को सुलझाना।

२—प्रान्तीय हाईकोर्ट से दीवनी मुक़दमों की अपील सुनना।

संघ-न्यायालय में नये और अपील दोनों प्रकार के मुक़दमें आयेंगे। जब कभी किसी प्रान्त और केन्द्रीय सरकार में कोई मतभेद होगा तो इसका निपटारा संघ-न्यायालय में किया जायगा। यदि दो प्रान्तीय सरकारें आपस में लड़ बैठें तो उनका फ़ैसला संघ-न्यायालय करेगा। जो रियासतें संघ-शासन में शरीक होंगी उनके बीच में यदि किसी प्रकार का वैधानिक संकट उत्पन्न होगा तो न्यायालय इसका फ़ैसला करेगा। तात्पर्य यह है कि नये मुक़दमें व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले न होकर सरकार से सम्बन्ध रक्खेंगे। अर्थात् संघ-शासन के अन्दर केन्द्रीय अथवा स्थानीय जितनी भी सरकारें होंगी उनके आपसी झगड़े संघ-न्यायालय में फैसल होंगे। इसलिये यह व्यक्तियों का न्यायालय न होकर सरकारों का न्यायालय होगा। संघ न्यायालय जहाँ कहीं भी स्थापित किये गये हैं उनका मुख्य काम वैधानिक उलझनों को सुलझाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस न्यायालय का पद शासन-विधान से ऊपर माना जाता है। शासन की प्रधानता होते हुये भी इसे स्पष्ट करने का अधिकार इसी न्यायालय को दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रधान न्यायालय (Supreme Court) को जो स्थान प्राप्त है वह भारतीय संघ-न्यायालय को नहीं दिया गया है। अमेरिका की सभी रियासतों पर प्रधान न्यायालय का एक सा अधिकार है, परन्तु भारतीय संघ-न्यायालय रियासतों और बृटिश प्रान्तों पर समान अधिकार नहीं रक्खेगा। प्रान्तों पर तो उसके अधिकार एक से होंगे, परन्तु रियासतों पर वे कुछ शर्तों के साथ लागू होंगे।

उपरोक्त वैधानिक मुक़दमों के अतिरिक्त संघ-न्यायालय में कुछ मुक़दमों की अपील भी की जाती है। जो मुक़दमें प्रान्तों अथवा रियासतों की हाईकोर्ट में फ़ैसल होंगे उनकी अपील संघ न्यायालय में होगी. परन्तु इसकी आज्ञा हाईकोर्ट दे सकेगी। सभी मुक़दमों की अपील की आज्ञा नहीं दी जा सकती। जिन मुक़दमों में कोई क़ानूनी दाँव-पेच है अथवा किसी ऐक्ट के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है, उन्हीं की अपील संघ-न्यायालय में होगी। जहाँ ऐसे प्रश्न उपस्थित होंगे वहाँ हाईकोर्ट दोनों पार्टियों को एक सार्टिफिकेट देगी कि इनमें कोई भी पार्टी संघ-न्यायालय में इसकी अपील कर सकती है। इस तरह के मुक़दमों की अपील संघ-न्यायालय को छोड़कर और कहीं नहीं की जा सकती। प्रिवी कौंसिल में ऐसे मुकदमें हाईकोर्ट से सीधे नहीं जा सकते। उन्हें संघ-न्यायालय से होकर गुज़रना होगा। यदि संघ-न्यायालय इस प्रकार के किसी मुक़दमें की अपील हाईकोर्ट से प्रिवी कौंसिल में करने की विशेष आज्ञा दे तब भी प्रिवी कौंसिल इनकी अपील नहीं सुन सकती।

क़ानूनी मामलों के अतिरिक्त कुछ मुक़दमों की अपील हाईकोर्ट से संघ-न्यायालय में की जाती है। परन्तु इसकी आज्ञा केवल संघ-धारा-सभा गवर्नर-जनरल की अनुमति से देगी। यदि संघ-धारा-सभा इस प्रकार की अपीलों का विधान बनाना चाहती है तो वह गवर्नर-जनरल की सलाह से संघ-न्यायालय के अधिकार को बढ़ा सकती है। ऐसी दशा में दीवानी के कुछ मुक़दमें हाईकोर्ट से प्रिवी कौंसिल में न जाकर संघ-न्यायालय में अपील किये जायेंगे। इनके लिये हाईकोर्ट के सर्टिफिकेट की ज़रूरत न होगी। परन्तु इसमें एक बहुत बड़ी शर्त यह है कि आरम्भ में वह मुक़दमा कम कम से ५०००० रुपये का और अपील के समय कम से कम १५००० रुपये का हो। इससे कम क़ीमत के माल के मुक़दमें संघ-न्यायालय में तभी अपील किये जा सकते हैं जब संघ-न्यायालय इसकी विशेष आज्ञा दे। इस प्रकार की अपीलों को कार्यान्वित करने के पहिले संघ-धारा-सभा को एक क़ानून द्वारा इस बात का एलान कर देना होगा कि अमुक-अमुक प्रकार के मुक़दमें हाईकोर्ट से सीधे प्रिवी कौंसिल में अपील न किये जायँ। ऐसा करने से प्रिवी कौंसिल के अधिकार कुछ कम ज़रूर हो जायेंगे, परन्तु हिन्दोस्तान से उसका नाता एकदम तोड़ा नहीं जा सकता। जो रियासतें संघ-शासन में शरीक होंगी उन्हें भी संघ-न्यायालय में क़ानूनी मुक़दमें अपील करने का अधिकार होगा। ये अपीलें दो प्रकार की होंगी :—

१—रियासतों की हाईकोर्ट स्वयं किसी मामले को संघ-न्यायालय में सलाह के लिये भेज सकेंगी।

२—संघ-न्यायालय इस बात की आज्ञा जारी कर सकता है कि अमुक मामला उसके सामने पेश किया जाय।

कुछ लोगों ने संघ-न्यायालय के कर्तव्य को ३ भागों में बाँटा है :—

१—नये मुक़दमों (Original Cases) को सुनना।

२—अपील के मुक़दमों को सुनना।

३—गवर्नर-जनरल को क़ानून सम्बन्धी मामलों में सलाह देना।

पहले दो प्रकार के कर्तव्यों का वर्णन ऊपर किया गया है। तीसरे प्रकार का कर्तव्य गवर्नर-जनरल की इच्छा पर निर्भर है। यदि उसकी राय में कोई वैधानिक संकट उपस्थित हो, अथवा भविष्य में उसके उपस्थित होने की सम्भावना हो, तो वह इसे संघ-न्यायालय के सामने पेश कर सकता है। जजों का यह कर्तव्य है कि वे अपना बहुमत उसे दे दे। परन्तु यदि किसी जज को बहुमत पसन्द नहीं है तो वह अपना स्वतन्त्र निर्णय दे सकता है। संघ-न्यायालय की यह राय मुक़दमों के फैसले की भाँति गवर्नर-जनरल पर

लागू न होगी। वह चाहे तो इससे लाभ उठा सकता है, वरन् इसका कोई मूल्य नहीं है। इससे एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि थोड़े ही परिश्रम से कितनी ही शासन सम्बन्धी अड़चनें दूर होती रहेंगी। परन्तु गवर्नर-जनरल को छोड़कर और किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह संघ-न्यायालय से किसी प्रकार की क़ानूनी राय ले सके। यदि यह अधिकार प्रान्तीय कर्मचारियों को दे दिया जाता तो शासन-विधान का रास्ता और भी साफ़ हो जाता। लेकिन ऐसा नहीं किया गया है। जब कभी प्रान्तीय सरकारों को सलाह की आवश्यकता होगी तो वे गवर्नर-जनरल की आज्ञा द्वारा संघ-न्यायालय से इसे प्राप्त कर सकेंगी।

संघ-न्यायालय की कमज़ोरियाँ

भारतीय संघ-न्यायालय के कर्तव्यों को देखते हुये यह भली भाँति स्पष्ट है कि इसके कार्य केवल वैधानिक नहीं हैं। यह वैधानिक न्यायालय कहलाने का अधिकारी नहीं कहा जा सकता। दीवानी के मुक़दमों की अपीलें भी इसमें नहीं होतीं। संसार के अन्य संघ-शासन-विधानों के अन्दर संघ-न्यायालय प्रधान माने गये हैं। उनके फैसले की अपील किसी दूसरी अदालत में नहीं की जा सकती। परन्तु भारतीय संघ-न्यायालय द्वारा फैसल किये गये मुक़दमों की अपील प्रिवी कौंसिल में होती है। ऐसी हालत में संघ-न्यायालय को संघ-शासन-विधान का संरक्षक कहना निरा भ्रम है। यह शासन-विधान पार्लियामेंट की ही संरक्षता में कार्य करेगा। इसीलिये यह कहा गया है कि, "संघ-न्यायालय अपील की आख़ीरी अदालत नहीं है। न तो इसका दीवानी के मुक़दमों पर ही अन्तिम अधिकार है और न शासन-विधान की संरक्षता ही इसे प्राप्त है।"* बम्बई के गवर्नर ने इसे 'महँगी विलासिता' कहा है। इन तमाम कमज़ोरियों के बावजूद भी लोगों को संघ-न्यायालय से बड़ी-बड़ी आशायें हैं। उनका विचार है कि देशी रियासतों और बृटिश प्रान्तों में नैयायिक एकता स्थापित करने में यह सहायक सिद्ध होगा।

हाईकोर्ट

प्रान्त में सबसे बड़ी कचहरी हाईकोर्ट कहलाती है। १९३५ के शासन-विधान के अनुसार हिन्दोस्तान में ७ हाईकोर्ट हैं—कलकत्ता, मदरास, बम्बई, इलाहाबाद, लाहौर, पटना और नागपुर। इनके अतिरिक्त अवध के लिये लखनऊ में एक चीफ़ कोर्ट स्थापित की गई

* It is not the final appellate authority—the last authoritative judicial interpreter of the constitution, or the ultimate declarer of the civil law of the land.

है। मध्य प्रान्त और बरार, पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा सिन्ध में जुडीशियल कमिश्नर कोर्ट स्थापित की गई है। सम्राट् को यह अधिकार है कि वह किसी भी प्रान्त में हाईकोर्ट की स्थापना कर सके। हाईकोर्ट में जजों की संख्या अधिक से अधिक बीस रक्खी गई है। इनकी नियुक्ति सम्राट् स्वयं करता है। गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि आवश्यकता पड़ने पर अपनी कौंसिल की सलाह से वह सहायक जज नियुक्त कर सके। परन्तु इसकी अवधि अधिक-से-अधिक दो वर्ष हो सकती है। प्रधान न्यायाधीश का स्थान यदि किसी कारणवश ख़ाली हो जाय तो गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकार से सहायक जजों में से किसी को भी थोड़े समय के लिये उस स्थान पर नियुक्त कर सकता है। ६० वर्ष की आयु तक प्रत्येक जज कार्य कर सकता है। इसके पहले यदि वह इस्तीफ़ा देना चाहता है तो वह गवर्नर को त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकता है। अपने चरित्र अथवा शारीरिक कमज़ोरियों के कारण वह हटाया भी जा सकता है।

हाईकोर्ट के न्यायाधीश के लिये कुछ योग्यताओं का रखना आवश्यक है। या तो वह इंगलैंड अथवा उत्तरी आयरलैण्ड में कम से कम दस वर्ष बैरिस्टर रहा हो ; या इतनी ही अवधि तक स्काटलैंड में ऐडवोकेट रहा हो ; या कम से कम दस वर्ष तक इन्डियन सिविल सर्विस का सदस्य रहा हो, और साथ ही कम से कम तीन वर्ष तक डिस्ट्रिक्ट जज रहा हो, या पाँच वर्ष तक बृटिश भारत में किसी कचहरी में जज रहा हो, या दस वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का वकील रहा हो। प्रधान न्यायाधीश के लिये इनके अतिरिक्त कुछ और भी शर्तें रक्खी गई हैं। उसे कम से कम तीन वर्ष तक किसी हाईकोर्ट का जज होना आवश्यक है। नियुक्ति के समय उसे बैरिस्टर अथवा ऐडवोकेट होना चाहिये। नये शासन-विधान के पहले यह आवश्यक था कि कम से कम एक तिहाई जज इन्डियन सिविल सर्विस के सदस्य हों और एक तिहाई इंगलैंड, स्काटलैंड या आयरलैंड के वकील या बैरिस्टर हों, परन्तु अब यह बन्धन दूर कर दिया गया है। इससे जजों को तलाश करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थीं। नियुक्ति के समय जजों को गवर्नर के सामने एक प्रकार की शपथ लेनी पड़ती है।

जजों का वेतन, भत्ता, तथा इनकी पेन्शन आदि निश्चित करने का अधिकार ब्रिटिश सम्राट् को है। इनका वेतन इनके कार्यकाल में घटाया बढ़ाया नहीं जा सकता।

१६३७ ई० में भारत-सरकार ने होईकोर्ट के जजों का जो वेतन निश्चित किया है उसका ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है :—

संख्या	स्थान	सालाना वेतन
१	कलकत्ता हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश	...७२००० रु०
२	मदरास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश	...६०००० रु०
३	नागपुर हाईकोर्ट का प्रधान न्यायाधीश	...५०००० रु०
४	कलकत्ता, मदरास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर के न्यायाधीश ; और अवध कोर्ट का चीफ़ जज	...४८००० रु०
५	अवध चीफ कोर्ट के जज ; सिन्ध का जुडीशियल कमिश्नर	...४२००० रु०
६	नागपुर हाईकोर्ट का जज	...४०००० रु०
७	पश्चिमोत्तर प्रदेश का जुडीशियल कमिश्नर	...३१००० रु०
८	सिन्ध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश के सहायक जुडीशियल कमिश्नर।	...३६००० रु०

हाईकोर्ट के जजों का वेतन तथा सभी प्रकार के ख़र्चे प्रान्तीय ख़ज़ाने से दिये जाते हैं। लेकिन प्रान्तीय धारा-सभा को इसे घटाने-बढ़ाने का अधिकार नहीं है। हाईकोर्ट के ख़र्चे की रक़म प्रान्तीय गवर्नरों के निजी अधिकार में रक्खी गई है। प्रान्तीय स्वराज की दृष्टि से ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। जिस प्रकार मंत्रियों के अधिकार अन्य विभागों पर रक्खे गये हैं उसी तरह हाईकोर्ट भी उनकी शक्ति से बाहर नहीं होनी चाहिये।

हाईकोर्ट के अधिकार

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के हाईकोर्ट को अपील तथा नये दोनों प्रकार के मुक़दमें सुनने का अधिकार है। अन्य हाईकोर्टों में अधिकतर अपील के मुक़दमें फैसल किये जाते हैं। दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुक़दमें इसमें अपील किये जाते हैं। प्रान्त में सभी अदालतें हाईकोर्ट की मातहती में काम करती हैं। हाईकोर्ट को यह अधिकार है कि अपने प्रान्त के अन्दर किसी मुक़दमें को एक कचहरी से दूसरी में भेज सके। यदि किसी छोटी कचहरी में संघ अथवा प्रान्त से सम्बन्ध रखने वाला कोई ऐक्ट सम्बन्धी मुक़दमा पेश है तो संघ अथवा प्रान्त के ऐडवोकेट-जनरल की आज्ञा पाने पर हाईकोर्ट उसे अपने पास तब्दील कर सकती है। छोटी

कचहरियों का कार्यक्रम यही बनाती है। कचहरियों के कर्मचारियों का वेतन, मुक़दमों की फीस तथा हिसाब-किताब रखने का तरीक़ा निश्चित करने का अधिकार इसी को दिया गया है। टैक्स से सम्बन्ध रखने वाले मुक़दमें हाईकोर्ट में आरम्भ नहीं किये जा सकते।

सम्राट् की आज्ञा से हाईकोर्ट-कार्यक्षेत्र बढ़ाया जा सकता है। कुछ विषयों में इसके अधिकार सीमित रक्खे गये हैं। इसकी सारी कार्रवाइयाँ अंगरेज़ी भाषा में ही हो सकती हैं। गवर्नर-जनरल, सम्राट् तथा देशी रियासतों का सम्बन्ध, गवर्नर तथा भारत मंत्री—इनके विरुद्ध हाईकोर्ट में किसी तरह का विचार नहीं किया जा सकता। फौजदारी के सभी मुक़दमें अधिक-से-अधिक हाईकोर्ट तक आ सकते हैं। फाँसी और कालेपानी का अन्तिम निर्णय देने का अधिकार हाईकोर्ट को दिया गया है। परन्तु गवर्नर, जनरल को यह अधिकार है कि वह किसी फाँसी के अपराधी को माफ कर दे। १६१६ के शासन-विधान के अनुसार कलकत्ता हाईकोर्ट को छोड़ कर बाकी हाईकोर्ट प्रान्तीय सरकारों से सीधा सम्बन्ध रखते थे। अर्थात् प्रान्तीय सरकारें उनके ख़र्चे आदि के लिये ज़िम्मेवार थीं। नये शासन-विधान के अनुसार न्याय विभाग प्रान्तीय विषयों की सूची में रख दिया गया है। लेकिन साथ ही संघ-सरकार का भी इसमें हाथ होगा। हाईकोर्ट न तो पूरी तरह प्रान्तीय हैं और न संघीय।

हाईकोर्ट से नीचे दीवनी और फौज़दारी की अदालतें अलग-अलग हैं।

ज़िला कोर्ट

प्रत्येक ज़िले में ये दोनों प्रकार की अदालतें पाई जाती हैं। ज़िले में फौज़दारी के मुक़दमें की सबसे बड़ी अदालत सेशन कोर्ट कहलाती है। इसका न्यायाधीश सेशन जज कहलाता है। आवश्यकता पड़ने पर एक से अधिक जज इसमें नियुक्त किये जा सकते हैं। फौजदारी के सभी मुक़दमें इसमें फैसल किये जाते हैं। यह अदालत किसी अपराधी को फाँसी की सज़ा दे सकती है, परन्तु इसका अन्तिम निर्णय हाईकोर्ट में किया जाता है। मजिस्ट्रेट की कचहरी से फ़ैसल किये गये मुक़दमों की अपील सेशन कोर्ट में की जाती है। सेशन कोर्ट से नीचे फौजदारी की दूसरी अदालत मजिस्ट्रेट कोर्ट है। ये मजिस्ट्रेट ३ प्रकार के होते हैं। अव्वल दर्ज़े के मजिस्ट्रेट को २ वर्ष सख्त् जेल की सजा और १००० रुपया जुर्माना, दोयम दरजे के मजिस्ट्रेट को ६ महीने सख्त जेल की सज़ा और २०० रुपये जुर्माना, और तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट को १ महीने की सज़ा और ५० रुपये जुर्माना करने का अधिकार है। इन मजिस्ट्रेटों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग बटे होते हैं। ज़िले का

कलेक्टर अव्वल दर्जे का मजिस्ट्रेट होता है। फौजदारी के जो मुक़दमें इनके अधिकार से बाहर होते हैं, उन्हें ये सेशन कोर्ट में भेज देते हैं।

ऊपर कहा गया है कि ज़िले का कलेक्टर अव्वल दर्जे का मजिस्ट्रेट होता है। ज़िले के और मजिस्ट्रेट उसकी देख-रेख में अपना कार्य करते हैं। प्रत्येक ज़िले की हर तहसील में एक डिप्टी कलेक्टर होता है। अपने क्षेत्र में इसे भी फ़ौजदारी के मुक़दमें फ़ैसल करने का अधिकार होता है। कलेक्टर इनका कार्य वितरण करता है और इनकी देख-रेख रखता है। बड़े शहरों में सिटी-मजिस्ट्रेट नियुक्त किये जाते हैं। शहर के फ़ौजदारी के मुक़दमें इनकी कचहरियों में फ़ैसल होते हैं। इनके अतिरिक्त हर ज़िले तथा शहर में कुछ अवैतनिक मजिस्ट्रेट भी रक्खे जाते हैं। इनके अधिकार उपरोक्त मजिस्ट्रेटों की तरह अव्वल, दोयम और सोयम ३ दर्जों में बँटे हुए हैं। प्रान्तीय सरकार इन्हें नियुक्त करती है। ज़िले के प्रतिष्ठित अनुभवशील व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किये जाते हैं। फ़ौजदारी के छोटे-मोटे मुक़दमें इनकी कचहरियों में फैसल होते हैं।

हाईकोर्ट के नीचे प्रत्येक ज़िले में दीवानी की सब से बड़ी अदालत डिस्ट्रिक्ट जजेज़कोर्ट कहलाती है। बंगाल, आगरा तथा आसाम प्रान्त के हर ज़िले में दीवानी अदालतें ३ श्रेणियों में विभक्त की गई हैं—डिस्ट्रिक्ट कोर्ट, सब जज कोर्ट तथा मुन्सिफ़ कोर्ट। अन्य प्रान्तों में इसकी श्रेणियों में कुछ भेद भाव किया गया है। डिस्ट्रिक्ट कोर्ट का न्यायाधीश डिस्ट्रिक्ट जज कहलाता है। ज़िले की तमाम दीवानी अदालतें इसकी मातहती में काम करती हैं। नाबालिग़ और पागल की जायदाद की रक्षा के लिये संरक्षक यही नियुक्त करती है। दीवानी की छोटी कचहरियों द्वारा फ़ैसल किये गये मुक़दमें इसमें अपील किये जाते हैं। ५००० रुपये से अधिक से सम्बन्ध रखने वाले किसी मुक़दमें की अपील डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में नहीं की जा सकती। डिस्ट्रिक्ट जजेज़ कोर्ट के नीचे की दीवानी अदालत सिविल जज कोर्ट कहलाती है। इसके अतिरिक्त हर ज़िले में एक मुनसफ़ कोर्ट होती है। इन दोनों कचहरियों का दर्जा लगभग बराबर सा है, अन्तर केवल इतना ही है कि मुनसफ़ कोर्ट में केवल २००० रुपये तक के दीवानी मुक़दमें पेश किये जा सकते हैं। इन दोनों सहायक कचहरियों के फ़ैसल किये गये मुक़दमों की अपील डिस्ट्रिक्ट जजेज़ कोर्ट में होती है। परन्तु यदि कोई मुक़दमा ५००० रुपये से अधिक क़ीमत का है तो उसकी अपील सीधे हाईकोर्ट में होती है, डिस्ट्रिक्ट जजेज़ कोर्ट में नहीं। नक़द रुपये के मुक़दमें ५०० रुपये तक स्माल काज़ कोर्ट में

फ़ैसल होते हैं। इनके फैसल किये गये मुक़दमें कहीं अपील नहीं किये जा सकते। यह कचहरी केवल बड़े ज़िले में होती है।

योरपनिवासियों को आरम्भ से ही कुछ विशेष सुविधायें दी जाती हैं। यद्यपि धारा सभाएँ सम्पूर्ण देशवासियों के लिये क़ानून बनाती हैं और कचहरियों का अधिकार सब पर एक सा है, फिर भी योरप निवासियों के साथ इस विषय में कुछ पक्षपात किया गया है। १६वीं सदी के मध्य में यह प्रश्न उठाया गया था कि अन्य लोगों की तरह इनके भी मुक़दमें स्थानीय कचहरियों में फैसल किये जायँ, परन्तु इसका कोई परिणाम न हुआ। प्रेसीडेन्सी शहरों में सुप्रीम कोर्ट में उनके फ़ौजदारी के मुक़दमें फैसल किये जाते थे। जब इंडियन सिविल सर्विस का दर्वाज़ा हिन्दोस्तानियों के लिये खोल दिया गया तो यह प्रश्न उठा कि क्या उन्हें योरपनिवासियों के मुक़दमें फैसल करने का अधिकार दिया जाय अथवा नहीं। अब तक जज और कलेक्टर के पद पर केवल अँगरेज़ होते थे परन्तु सिविल सर्विस का दर्वाज़ा खुल जाने से हिन्दोस्तानी भी इन पदों पर नियुक्त किये जाने लगे। एक ही पद पर कार्य करने वाले पदाधिकारियों के अधिकार दो तरह के नहीं रक्खे जा सकते थे। गवर्नमेंट ने १८८३ ई० में इल्बर्ट बिल पास करना चाहा। इसका आशय यह था कि हिन्दोस्तानी जजों तथा कलेक्टरों को योरप निवासियों के मुक़दमें फैसल करने का अधिकार दिया जाय। हिन्दोस्तान में रहने वाले योरप निवासियों ने इसका ख़ूब विरोध किया। उन्हें यह बात खटकने लगी कि हिन्दोस्तानी और गोरे एक नज़र से देखे जायेंगे। अन्त में सरकार को विवश होकर उनके सामने झुकना पड़ा।

योरप निवासियों के मुक़दमें

१८८४ ई० में सुलह का एक मार्ग निकाला गया। हिन्दोस्तानी जजों और कलेक्टरों को योरप निवासियों के मुक़दमें फ़ैसल करने का अधिकार इस शर्त पर दिया गया कि एक जुरी की मदद से उनका मुक़दमा फ़ैसल किया जाय। जुरी के कम से कम आधे व्यक्ति योरोपियन हों। आज भी संघ तथा प्रान्तीय धारा-सभाओं में गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना कोई ऐसा बिल पेश नहीं किया जा सकता जिसका प्रभाव योरप निवासियों के फ़ौजदारी के मुक़दमों की कार्रवाइयों पर पड़ता हो। जातीय भेद-भाव कमीटी (Racial Distinction Committee) ने इस मसले पर विचार किया था कि योरोपियन तथा भारतीयों का मुक़दमा हिन्दोस्तानी कचहरियों में किस तरह फ़ैसल किया जाय। कमीटी ने इस बात की सिफ़ारिश की कि पुराने भेद-भावों को बहुत कुछ दूर कर देना चाहिये। तब से हिन्दोस्तानी और

योरोपियन दोनों को समान रूप से यह अधिकार दे दिया गया कि उनके मुक़दमें मिश्रित जुरी द्वारा फ़ैसल किये जायँ। जुरी के आधे सदस्य उस राष्ट्र के निवासी हों जिसकी प्रजा अपराधी ठहराई गई है।

अध्याय २२

सरकारी नौकरियाँ

सरकारी कर्मचारियों का प्रभाव

किसी देश का शासन-प्रबन्ध वहाँ के सरकारी कर्मचारियों की योग्यता पर निर्भर करता है। जनता के साथ जैसा अच्छा या बुरा व्यवहार होगा, शासन-प्रबन्ध की महत्ता उसी मात्रा में अच्छी या बुरी समझी जायगी। यदि सरकारी कर्मचारी योग्य और सुशिक्षित हैं तो यह स्वाभाविक है कि वे शासन की मशीन को और अच्छी तरह चला सकेंगे। जब हम यह सुनते हैं कि अमुक देश में घूसखोरी अधिक चलती है और अत्याचार बहुत होते हैं तो हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि वहाँ के सरकारी कर्मचारी अपने कर्तव्यों का ठीक ठीक पालन नहीं करते। प्रत्येक देश की सरकार इस बात के लिये बदनाम है कि वह अपने कर्मचारियों को अधिक-से-अधिक वेतन और सुविधायें देती है। जिस काम के लिये व्यक्तिगत नौकरियों में पचास रुपये वेतन है उसी के लिये सरकार सौ रुपये ख़र्च करती है। इसके अतिरिक्त वह पेन्शन तथा कुछ और तरह की सुविधायें भी देती है। सरकार के ऐसा करने में एक बहुत बड़ा कारण है। प्रजा के धन का वह दुरुपयोग नहीं करना चाहती। लम्बी-लम्बी तनख़ाहें वह इसीलिये देती है कि कर्मचारी बेजा तरीके से प्रजा से धन वसूल करने की ख़ाहिश न रक्खें। जिस कर्मचारी को आवश्यकता से कम पैसे मिलेंगे वह ईमानदारी से काम नहीं कर सकता। पैसे के लोभ से तथा सुविधाओं के कारण सरकारी कर्मचारी अधिक तत्परता और भय से कार्य करते हैं। कर्मचारियों से अलग सरकार कोई दूसरी चीज़ नहीं है। उनकी योग्यता, कार्य-कुशलता, सचाई तथा तत्परता का प्रभाव जनता के ऊपर गहरा पड़ता है।

कर्मचारियों को नियुक्त करते समय सरकार को कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। उनकी योग्यता के अतिरिक्त उसे सभी वर्गों की ओर एक नज़र रखनी पड़ती है। यदि किसी देश में एक ही वर्ग के लोग सरकारी नौकरियों में लिये जायँ तो अन्य वर्ग इस पक्षपात को सहन नहीं कर सकते। कर्मचारियों

की नियुक्ति के लिए ऐसे तरीक़े बनाने पड़ते हैं जिसमें सभी लोगों का शरीक होने का अवसर मिल सके। इसीलिये प्रजातन्त्रवादी देशों में बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों के लिये परीक्षाओं का विधान बनाया गया है। रूप, रंग, जाति, अथवा धन के कारण किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जाता। परीक्षाओं में जिन्हें सबसे अधिक नम्बर मिलते हैं वे सरकारी विभाग में लिये जाते हैं। इससे दो प्रकार के लाभ हैं। एक तो योग्य व्यक्ति सरकारी नौकरियों में चले आते हैं। दूसरे प्रजा को यह कहने का मौक़ा नहीं मिलता कि उनकी सरकार किसी वर्ग विशेष के साथ पक्षपात करती है। जिस विभाग में देश के योग्य से योग्य व्यक्ति काम करेंगे उसका प्रभाव साधारण जनता पर पड़े बिना नहीं रह सकता। कुछ तो अपने पद के कारण और कुछ अपने चरित्र अथवा व्यक्तित्व के कारण सरकारी कर्मचारी लोगों को प्रभावित करते हैं। व्यक्तिगत योग्यतायें हर जगह काम करती हैं। जिनके अन्दर योग्यता का आभास अधिक है और जो अपने व्यवहार से दूसरों को आकर्षित कर सकते हैं वे सरकारी विभाग में रहते हुये सार्वजनिक कामों को और अधिक उन्नत कर सकते हैं। शासन की मशीन अच्छी होने पर भी अयोग्य कर्मचारी इसे दूषित कर सकते हैं। स्थानीय संस्थायें अपने उद्देश्य में जो थोड़ी-बहुत असफल हुई हैं इसका मुख्य कारण उचित कर्मचारियों का अभाव है। सरकारी विभाग में कार्य करने वाले व्यक्ति अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक पालन कर अपने देश की सभी प्रकार उन्नति कर सकते हैं।

भारतीय सरकारी नौकरियों का इतिहास

जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हमारे देश में हुई तो उसे अनेक कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ी। व्यापार से बढ़ते-बढ़ते जब कम्पनी राजनीति में भाग लेने लगी तो कर्मचारियों की आवश्यकता और भी बढ़ने लगी। व्यापार कार्य गौण होता गया। शासन-प्रबन्ध को चलाने के लिये नये नये पदों का निर्माण करना पड़ा। कम्पनी को अपने सारे काम अंगरेज़ी भाषा में करने पड़ते थे। हमारे देश में अंगरेजी पढ़े-लिखे लोगों का सर्वथा अभाव था। यदि कम्पनी अपने कर्मचारियों को योरप से बुलाती तो उसे एक का तीन देना पड़ता। कम्पनी को अपना फ़ौजी विभाग बहुत ही मज़बूत रखना था। जीते हुए देशों की रक्षा के लिये तथा नये-नये देशों को बृटिश राज में शामिल करने के लिये उसे अपने सेना विभाग पर सबसे अधिक ध्यान देना पड़ता था। कुछ समय तक कम्पनी के कर्मचारी बोर्ड आफ़ डाइरेक्टर्स द्वारा नियुक्त किये जाते थे। परन्तु जब कार्य अधिक बढ़ा तो गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल

को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे आवश्यकतानुसार कर्मचारियों को स्वयं भर्ती कर लें। कम्पनी के कर्मचारियों के कारनामें भारतीय इतिहास में अच्छी तरह वर्णन किये गये हैं। बृटेन निवासी कुछ दिनों के लिये हिन्दोस्तान में कम्पनी की नौकरी करने के लिए आते और कुछ ही दिनों में मालामाल होकर अपने देश को लौट जाते थे। कहा जाता है कि १७५८ से १८१५ ई० तक यानी ५८ वर्ष के भीतर कम्पनी के कर्मचारी पचीस करोड़ रुपया तनख़ाह के रूप में अपने देश को ले गये। ब्रुक्स ऐडम्स के कथनानुसार इन्हीं रकमों ने इंगलिस्तान की नई ईजादों को फलने का अवसर दिया।

जब लार्ड कार्नवालिस हिन्दोस्तान का गवर्नर-जनरल हुआ तो उसका ध्यान बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियों की शुद्धि की ओर आकर्षित हुआ। उसका कहना था कि बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियाँ हिन्दुस्तानियों को नहीं मिलनी चाहिये। कलकत्ता में सरकारी नौकरियों की ट्रेनिंग तथा पूर्वी भाषाओं की जानकारी के लिये एक कालेज की स्थापना की गई। १८०६ ई० में हेलस बरी नाम का एक दूसरा कालेज इंगलैंड में खोला गया। यहाँ के उत्तीर्ण विद्यार्थी हिन्दोस्तान में कम्पनी की नौकरी में भेजे जाते थे। कम्पनी की बड़ी-बड़ी नौकरियाँ हिन्दोस्तानियों को नहीं मिल सकती थीं। वे केवल चपरासी और क्लर्क बन सकते थे। १८५३ ई० के चार्टर ऐक्ट के अनुसार सरकारी पदाधिकारियों की नामज़दगी का अधिकार डाइरेक्टरों से छीन लिया गया। बड़ी-बड़ी नौकरियों का दरवाज़ा अंगरेज़ और हिन्दोस्तानी दोनों के लिये एक समान खोल दिया गया। यह निश्चित किया गया कि इंगलैंड में बड़ी-बड़ी नौकरियों के उम्मीदवारों की परीक्षायें ली जायँगी। हिन्दोस्तानी उम्मीदवार भी इसमें हिस्सा ले सकते थे।

इंडियन सिविल सर्विस का दरवाज़ा हिन्दोस्तानियों के लिये खोल तो दिया गया परन्तु इसमें तरह-तरह की कठिनाइयाँ रख छोड़ी थीं। बहुत-थोड़े से धनीमानी उम्मीदवार हिन्दोस्तान से ६००० मील की दूरी पर जाकर एक नये वातावरण में रह सकते थे। इसके अतिरिक्त परीक्षा के लिये कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये थे जिनकी पूर्ति दो प्रतिशत भी उम्मीदवार नहीं कर सकते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के भाई सत्येन्द्रनाथ टैगोर पहले हिन्दोस्तानी थे जिन्होंने लंदन में इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की थी। इनके बाद दो चार और हिन्दोस्तानियों ने परीक्षा में सफल होकर अपनी बुद्धि का परिचय दिया। बृटिश सरकार को यह बात खटकने लगी। अब तक उसे यह उम्मीद न थी कि हिन्दोस्तानी भी इंडियन सिविल सर्विस में अंगरेज़ों का मुक़ाबिला कर सकते हैं। जब उसकी आशाओं के विरुद्ध कुछ लोगों को

सफलता प्राप्त हुई और भविष्य के लिये हिन्दोस्तानियों को कुछ उत्साह मिला तो उनकी उमर की क़ैद २१ वर्ष से घटाकर १६ वर्ष कर दी गई। अर्थात् प्रत्येक हिन्दोस्तानी उम्मीदवार को १६ वर्ष से अधिक आयु का नहीं होना चाहिये। इसने भारतीय उम्मीदवारों का दरवाज़ा बिल्कुल बन्द कर दिया। भारत-मन्त्री को अपने एक पत्र में लार्ड लिटन ने यह लिखा कि "जिन बातों को सुनकर हिन्दोस्तानियों को कुछ तसल्ली हुई थी उन्हें इनकार कर हम लोगों ने उनकी कमर तोड़ दी।"* अर्थात् सिविल सर्विस में उत्तीर्ण होने की उनकी आशायें मिट्टी में मिल गईं।

१८७० ई० में एक ऐक्ट द्वारा हिन्दोस्तानी उम्मीदारों को सिविल सर्विस की नौकरियाँ कुछ आसान कर दी गईं। परन्तु बहुत थोड़ी जगहें इस ऐक्ट के अनुसार इन्हें दी गईं। १८७९ ई० में इंडियन सिविल सर्विस के नियमों पर पुनः विचार किया गया। ख़ानदान और रुतबे वाले नवयुवकों को विशेष सुविधायें प्रदान की गईं। सरकार द्वारा इस बात के लिये कमीशन नियुक्त किया गया कि वह कोई ऐसा रास्ता निकाले जिससे हिन्दोस्तानियों को बड़ी-बड़ी नौकरियां मिल सकें। १८८७ ई० में कमीशन ने अपनी रिपोर्ट भारत-सरकार को दी। इसमें कुछ आवश्यक सिफ़ारिशें की गई थीं। इसके फल-स्वरूप सरकारी नौकरियाँ तीन श्रेणियों में विभाजित कर दी गईं:—

१—इंडियन सिविल सर्विस (Indian Civil Service.)
२—प्रान्तीय सिविल सर्विस (Provincial Civil Service.)
३—छोटी सिविल सर्विस (Subordinate Civil Service.)

कार्यकारिणी तथा न्याय विभाग की बड़ी-बड़ी नौकरियाँ प्रान्तीय सिविल सर्विस के सदस्यों को दी जाती थीं। इनमें प्रवेश करने के नियम तथा उप-नियम प्रान्तीय सरकार द्वारा बनाये जाते थे और भारत-सरकार से इनकी मंजूरी लेनी पड़ती थी। इन पदों के लिये नामज़दगी, परीक्षायें तथा छोटी नौकरियों से तरक्कियाँ—इन तीनों का विधान बनाया गया था। इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य तथा सभी विभागों के अखिल भारतीय पदाधिकारी लन्दन में ही चुने जाते थे। अन्य दोनों प्रकार की नौकरियाँ हिन्दोस्तान में दी जाती थीं। इससे प्रान्तीय सरकार की बड़ी-बड़ी नौकरियाँ भारतनिवासियों को कुछ आसानी से मिल सकती थीं। १९१२ ई० में इलिंगटन कमीशन इस बात के लिये नियुक्त किया गया कि वह बड़े-बड़े सरकारी पदों पर

---

* We have broken to the heart the hopes held out to the ear.

हिन्दोस्तानियों को नियुक्त करने की समस्या पर विचार करे। १९१४ ई० में जर्मनी की बड़ी लड़ाई के कारण १९१७ ई० तक कमीशन की रिपोर्ट पर कुछ भी विचार नहीं किया गया। इसी बीच में १९१७ ई० के अगस्त महीने में भारतमन्त्री ने इस बात की घोषणा की कि बृटिश सरकार की नीति भारतीय शासन में हिन्दोस्तानियों का अधिक-से-अधिक सहयोग प्राप्त करना है। मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड-रिपोर्ट में इस बात की सिफ़ारिश की गई थी कि लन्दन के अतिरिक्त हिन्दोस्तान में भी सिविल सर्विस के उम्मीदवार भर्ती किये जायँ।

१९१९ ई० का शासन-सुधार और सरकारी नौकरियाँ

१९१९ ई० के शासन-सुधार से सरकारी मशीन का ढाँचा बहुत कुछ बदल दिया गया। भारतीय नौकरियों पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। हिन्दोस्तानियों की ओर से बहुत दिनों से इस बात की माँग पेश की गई थी कि बड़ी-बड़ी नौकरियाँ कसरत से उन्हें दी जायँ। अँगरेज़ कर्मचारी इस बात को सहन नहीं कर सकते थे कि वे हिन्दोस्तानी अफ़सरों के हुकुम की तामील करें। चेम्स-फ़ोर्ड रिपोर्ट में यह सलाह दी गई थी कि इंडियन सिविल सर्विस में ३३ प्रतिशत पदाधिकारी हिन्दोस्तानी हों। इनकी संख्या प्रतिवर्ष डेढ़ प्रतिशत बढ़ाई जाय। कुछ जातीय भेद-भावों को भी दूर करने की सिफ़ारिश की गई थी। इसी रपोर्ट के आधार पर इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा १९२१ ई० से हिन्दोस्तान में ली जाने लगी। दिल्ली इसका केन्द्र माना गया। इससे भारतीय उम्मीदवारों को अपनी प्रतिभा दिखलाने का अवसर मिला।

यद्यपि सिविल सर्विस की परीक्षा हिन्दोस्तान में आरम्भ की गई, परन्तु वेतन तथा नौकरी के नियम उपनियमों में अनेक सुधारों की आवश्यकता थी। योरपनिवासियों को जो सुविधायें इन नौकरियों में पहले से दी जाती थीं वे थोड़ी भी कम न की गईं। १९१९ के शासन-विधान में नौकरियों पर अलग विचार किया गया था। इसके अनुसार सिविल सर्विस के सदस्य तब तक अपने पद पर कार्य कर सकते थे जब तक सम्राट् की इच्छा हो। जिस व्यक्ति को उन्हें भर्ती करने का अधिकार दिया गया था वही उन्हें निकाल भी सकता था। यद्यपि ये कर्मचारी विभिन्न प्रान्तों में कार्य करते थे, फिर भी इनकी जिम्मेवारी भारतमत्री के प्रति थी। वह जिसे चाहता तरक्क़ी या तनज्ज़ुली देता। ऊपर कहा गया है कि सिविल सर्विस के अँगरेज़-कर्मचारियों को हिन्दोस्तानी अफ़सरों की बराबरी में एतराज़ था। साथ ही छोटे कर्मचारी हिन्दोस्तानियों की मातहती में काम करना पसन्द नहीं करते थे।

१९१९ के शासन-सुधार के अनुसार कुछ प्रान्तीय विभागों का प्रबन्ध भारतीय मंत्रियों को सौंप दिया गया। इसलिये यह लाज़िमी था कि उन विभागों के बड़े-से-बड़े कर्मचारी मंत्रियों की देख-रेख में काम करें। सिविल सर्विस के अंगरेज़ सदस्यों ने भारतमंत्री से इस बात की माँग पेश की कि उनके लिये जल्दी-से-जल्दी अपने पद से छुट्टी मिल जाने की कोई योजना बनाई जानी चाहिये।

भारतमन्त्री ने कुछ ऐसे नियम बनाये जिनसे पहली जनवरी सन् १९२० ई० के पहले नियुक्त किये गये भारतीय सिविल सर्विस के अंगरेज़ पदाधिकारियों को अपने पद से छुट्टी प्राप्त करने की विशेष सुविधायें दे दी गई। वे अपनी अवधि पूरी होने के पहले ही नौकरी से छुट्टी लेकर पूरी पेन्शन के हक़दार बन सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि १९२४ ई० के लगभग क़रीब ३४५ भारतीय सिविल सर्विस के अँगरेज़ सदस्य अपने पद से अलग हो गये। यद्यपि इन पदाधिकारियों के चले जाने से हिन्दोस्तान को कुछ हानि हुई परन्तु इसके लिये कोई दूसरा रास्ता न था। जिस सिद्धान्त से ये पदाधिकारी अपने सूबों में काम करते थे वे नये शासन-विधान में पुराने क़रार दिये गये। प्रान्तीय धारा-सभायें इन कर्मचारियों की टीका-टिप्पणी करने लगीं। राष्ट्रीय भावनाओं की वृद्धि के कारण भारतीय जनता पुरानी नौकरशाही की कड़ी आवाज़ नहीं सह सकती थी। १९२२ के राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण विदेशी कर्मचारियों की असुविधायें और भी बढ़ गईं। इधर लड़ाई के कारण इंगलैंड में चीज़ों का भाव बढ़ जाने से अंगरेज़ उम्मीदवार भारतीय सिविल सर्विस के लिये कम लालायित होने लगे। इस उदासीनता को देखकर बृटिश सरकार बहुत ही चिन्तित हुई। वह किसी भी प्रकार से भारतीय सिविल सर्विस में अंगरेज़ीपन को कम करने के पक्ष में न थी। दूसरी ओर अंगरेज उम्मीदवार हिन्दोस्तान में पैर रखना ख़तरे से ख़ाली नहीं समझते थे।

लार्ड मैकडालन की अध्यक्षता में एक कमीटी इस बात की जाँच के लिये नियुक्त की गई कि वह भारतीय सिविल सर्विस में अंगरेज़ उम्मीदवारों की उदासीनता का कारण खोज निकाले। बृटिश सरकार इतने ही से सन्तुष्ट न हुई। १९२३ ई० में लार्ड ली की अध्यक्षता में एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया गया। भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली ने इस कमीशन का विरोध किया और इस पर एक पाई भी ख़र्च करने से इन्कार कर दिया। उसकी समझ में कमीशन बिल्कुल बेकार था और इस पर ख़र्च करने की कोई ज़रूरत न थी। परन्तु वाइसराय ने अपने अधिकार से कमीशन के ख़र्चे की रक़म भारतीय ख़ज़ाने से मन्जूर की। १९२४ ई० में ली कमीशन ने अपनी रिपोर्ट

दे दी। रिपोर्ट काफ़ी विस्तार के साथ की गई थी और इसकी बहुत सी सिफ़ारिशों को भारत-सरकार ने स्वीकार कर लिया। पहली बात जिसकी कमीशन ने सिफ़ारिश की वह यह थी कि भारतीय सिविल सर्विस, भारतीय पुलीस सर्विस, भारतीय जङ्गल सर्विस तथा सिंचाई विभाग की भारतीय इन्जीनियरिंग सर्विस भारतमन्त्री के हाथ में रक्खी जायँ। भारतीय शिक्षा सर्विस, भारतीय कृषि सर्विस, भारतीय इन्जीनियरिङ्ग सर्विस, भारतीय पशु चिकित्सा सर्विस तथा भारतीय औषधि सर्विस प्रान्तीय सरकार की मातहती में दे दी जायँ। इन कर्मचारियों को नियुक्त करने तथा हटाने का अधिकार केवल प्रान्तीय सरकार को हो।

ली कमीशन की दूसरी सिफ़ारिश भारतीय सिविल सर्विस में हिन्दोस्तानियों को अधिक-से-अधिक संख्या में शरीक करने की थी। कमीशन की राय थी कि प्रान्तीय सिविल सर्विस के सभी पद भारतवासियों को दिये जायँ। उनके ऊपर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सर्विस की बात थी उसमें कमीशन ने कुछ प्रतिशत हिन्दोस्तानियों के लिये निश्चित कर दिया। भारतीय सिविल सर्विस में बीस प्रतिशत स्थान हिंदोस्तानियों के लिये निश्चित किये गये। कमीशन ने भारतीयकरण पर ज़ोर देते हुये यह कहा कि १९३९ ई० तक भारतीय सिविल सर्विस और १९४९ तक भारतीय पुलीस सर्विस में हिन्दोस्तानी और अँगरेज़ दोनों की संख्या बराबर हो जानी चाहिये। कमीशन की राय में सिविल सर्विस में अँगरेज़ पदाधिकारियों का होना आवश्यक ठहराया गया। भारतीय जङ्गल सर्विस में ७५ फ़ी सदी स्थान हिन्दोस्तानियों के लिये और २५ फ़ी सदी अँगरेज़ों के लिये उचित ठहराये गये।

अँगरेज़ उम्मीदवारों को भारतीय सिविल सर्विस में आकर्षित करने के लिये कुछ सुविधाओं की सलाह दी गई। उन्हें कुछ आर्थिक भत्ते आदि की सिफ़ारिश की गई। कमीशन का कहना था कि उनका वेतन बढ़ा दिया जाय तथा उनका कार्यकाल कुछ और सुरक्षित कर दिया जाय; अपने कार्य-काल में इंगलैंड आने-जाने के लिये चार बार छुट्टियाँ दी जायँ। उनकी पेन्शन बढ़ाने की भी सिफ़ारिश की गई। यदि सिविल सर्विस का कोई अँगरेज पदाधिकारी हिन्दोस्तान में मर जाय तो उसके कुटुम्ब के लिये कुछ विशेष सुविधाओं की सिफ़रिश की गई थी। कमीशन की रिपोर्ट में अखिल भारतीय सिविल सर्विस की रक्षा के लिये एक पब्लिक सर्विस कमीशन की सिफ़ारिश की गई।

१९१९ ई० के भारतीय ऐक्ट में इस बात का विधान बनाया गया कि पाँच सदस्यों का पब्लिक सर्विस कमीशन बनाया जाय। इसका सभापति भारतमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाय। यह कमीशन सरकारी पदाधिकारियों को नियुक्त करने के लिये बनाया गया था। इसका कार्य-विधान बनाने का अधिकार भारतमंत्री और उसकी कौन्सिल को दिया गया था। तदनुसार १९२५ ई० में पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना की गई। प्रान्तीय धारा-सभा के एक ऐक्ट के अनुसार १९२९ ई० में मद्रास प्रान्त में भी एक पब्लिक सर्विस कमीशन स्थापित किया गया।

१९३५ का शासन-विधान और सरकारी नौकरियाँ

काँग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण भारतीय जनता की दृष्टि बदलने लगी। सरकारी पदाधिकारी जनता के सेवक समझे जाने लगे। लोग इस बात की माँग पेश करने लगे कि भारत-सरकार के अन्दर छोटी और बड़ी सभी प्रकार की नौकरियाँ लोगों को इस दृष्टि से दी जायँ कि वे भारतीय जनता की अधिक-से-अधिक भलाई कर सकें। लम्बी-लम्बी तनख़्वाहें लेकर बाबू बनने का युग पुराना ठहराया गया। लोगों का कहना था कि जब ये कर्मचारी भारतीय ख़ज़ाने से अपना वेतन लेते हैं तो इनकी ज़िम्मेवारी भी हिन्दोस्तानियों के प्रति होनी चाहिये। इस बात की कड़े शब्दों में आलोचना की जाने लगी कि हमारे देश के बड़े-बड़े कर्मचारी भारतीय वातावरण से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। वे अपने आपको सेवक के बदले जनता का स्वामी समझते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि जो प्रजा उनका भरण-पोषण करे और जिनकी गाढ़ी कमाई से वे लम्बी-लम्बी तनख़्वाहें लें, उन्हीं के ऊपर वे धौंस जमायें। ये बातें लोगों के दिमाग़ में बहुत जोरों से खटकने लगीं। प्रजातन्त्रवाद की स्थापना करने की घोषणा के कारण नौकरियों का मसला और भी ज़ोर पकड़ने लगा। संघ शासन-विधान के लिये जब साइमन कमीशन की नियुक्ति की गई उस समय भारतीय नौकरियों का भी प्रश्न उसके सामने रक्खा गया था। कमीशन ने नौकरियों के भारतीयकरण के सम्बन्ध में उसी तरह की सिफ़ारिश की जैसी ली कमीशन ने की थी। प्रत्येक प्रान्त में एक पब्लिक सर्विस कमीशन स्थापित करने की सिफ़ारिश की गई थी।

नये संघ-शासन-विधान के अनुसार भारतीय नौकरियाँ दो भागों में विभाजित की गई हैं :—

१— रक्षा सम्बन्धी नौकरियाँ (Defence Services)

२—सिविल सर्विस ।

सिविल सर्विस फिर तीन भागों में विभाजित की गई है :—

अ—वे अखिल भारतीय नौकरियाँ जो भारतमंत्री के हाथों में रक्खी गई हैं ।

ब—संघ-शासन के अन्दर वे नौकरियाँ जो गवर्नर-जनरल के हाथों में रक्खी गई हैं ।

स—प्रान्तीय नौकरियाँ जो गवर्नर के अधिकार में रक्खी गई हैं ।

रक्षा सम्बन्धी नौकरियाँ

संघ-शासन-विधान में रक्षा का विषय सुरक्षित विभाग है । यह एकमात्र गवर्नर-जनरल के अधिकार में रक्खा गया है । भारतीय मंत्रियों का इस पर कोई अधिकार नहीं है । इसीलिये इस विभाग में कार्य करने वाले पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिये कुछ विशेष नियम बनाये गये हैं । इस विभाग का सबसे बड़ा पदाधिकारी कमान्डर-इन-चीफ़ कहलाता है । इसका वेतन और भत्ता सब कुछ भारतमंत्री और उसकी कौंसिल के हाथ में रक्खे गये हैं । इस विभाग के सभी बड़े कर्मचारी भारत-मंत्री और उसकी कौंसिल द्वारा नियुक्त किये जायेंगे । इससे सम्राट् के दैवी अधिकार पहले की तरह सुरक्षित रक्खे गये हैं । फौजी मुहकमें के सभी बड़े कर्मचारी भारतीय ख़ज़ाने से वेतन लेते हुये भी बृटिश सम्राट् के प्रति ज़िम्मेवार होंगे । यद्यपि सम्राट् को यह अधिकार है कि वह संघ-मंत्रि मंडल को कुछ पदाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार दे दे, किन्तु कार्य रूप में इसकी सम्भावना कम है । हवाई, जहाज़ी और स्थल हर प्रकार की सेना के बड़े कर्मचारी भारत-मन्त्री के इशारे पर काम करेंगे । अर्थात् गवर्नर-जनरल द्वारा वह इन कर्मचारियों पर अधिकार रक्खेगा ।

फ़ौजी मुहकमें में कुछ भारत निवासियों को भी बड़े-बड़े पद दिये जायेंगे । इसके लिये गवर्नर-जनरल भारतीय मन्त्रियों की सलाह से कार्य कर सकता है । इस विभाग के अन्दर कार्य करने वाले किसी कर्मचारी को यदि किसी तरह की फ़रियाद करनी है तो वह सीधे भारतमन्त्री से कर सकता है । भारत-सरकार की फ़ौज बृटिश सम्राट् की सेना समझी जाती है । फ़ौज का पूरा ख़र्च भारतीय संघ सरकार बर्दाश्त करेगी । परन्तु संघ धारा-सभा का इस ख़र्च में कोई हाथ न होगा । वह इस विभाग के किसी भी कर्मचारी के वेतन आदि पर विचार नहीं कर सकती । गवर्नर-जनरल अपने विशेष अधिकारों से इस विभाग की कार्रवाइयों को देखेगा । तात्पर्य यह है कि जो विभाग हिन्दोस्तान की रक्षा के लिये बनाया गया है और जिस पर प्रजा

का सबसे अधिक धन ख़र्च किया जाता है वही जनता के हाथ से एकदम बाहर रक्खा गया है। इस विभाग की थोड़ी-बहुत नौकरियाँ, जो चन्द हिन्दोस्तानियों को दी जाती हैं, दाल में नमक के बराबर हैं। मालूम नहीं क्यों जहाँ विभागों में भारतीयकरण की नीति बर्ती गई है वहाँ यह विभाग अपवाद में रक्खा गया है।

सिविल सर्विस

किसी देश के शासन-प्रबन्ध में सिविल सर्विस के कर्मचारियों का क्या महत्व है इसका वर्णन इस अध्याय के आरम्भ में ही किया गया है। उसे सामने रखते हुये यह भली भाँति स्पष्ट है कि इस विभाग के कर्मचारियों को नियुक्त करने और उन्हें हटाने की व्यवस्था बहुत ही ठीक होनी चाहिये। इनका कार्य-क्रम और वेतन आदि निश्चित करने का अधिकार भारतीय प्रतिनिधियों को मिलना चाहिए। नये शासन-विधान में इनका कर्तव्य पहले से कहीं अधिक बढ़ा दिया गया है। सिविल सर्विस के कुछ सदस्य भारत-मन्त्री द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। इन्डियन सिविल सर्विस, इन्डियन औषधि सर्विस तथा इन्डियन पुलीस सर्विस—इस प्रकार के कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार भारतमन्त्री को होगा। वह बृटिश पब्लिक सर्विस कमीशन तथा फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन की सिफ़ारिश से इन्हें नियुक्त करेगा। ये दोनों कमीशन उम्मीदवारों की परीक्षा लेंगे तथा उचित व्यक्तियों को चुनकर भारतमंत्री के पास भेजेंगे। १६३६ ई० से इन्डियन सिविल सर्विस में अँगरेज़ सदस्यों की नियुक्ति नामज़दगी द्वारा इस शर्त पर की जाती है कि वे किसी बृटिश यूनिवर्सिटी की आनर्स परीक्षा पास हो। सिविल सर्विस के जिन कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार भारत-मन्त्री को दिया गया है उसकी संख्या वह अपनी इच्छानुसार घटा-बढ़ा सकता है। इसका पूरा ब्यौरा वह कामन सभा के सामने प्रति वर्ष पेश करेगा। इस तरह की नई जगहों की आवश्यकता पड़ने पर गवर्नर-जनरल का यह पहला कर्तव्य है कि वह भारत-मन्त्री को तुरन्त सूचना दे।

भारत-मन्त्री के इस अधिकार की कड़े शब्दों में आलोचना की गई थी। हिन्दोस्तान के किसी भी वर्ग को यह बात पसन्द न थी कि किसी भारतीय सरकारी कर्मचारी को उसे नियुक्त करने का अधिकार दिया जाय। यह बात प्रजातन्त्रवाद के बिलकुल विरुद्ध ठहराई गई। इसके बदले यह वसूल बनाया जा सकता था कि अखिल भारतीय पदाधिकारियों को नियुक्त करने का अधिकार भारत-सरकार को दिया जाय; और छोटे और बड़े सभी कर्मचारी प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जायँ। कोई भी विदेशी हमारी

आवश्यकताओं को उतना नहीं समझ सकता जितना हम स्वयं समझ सकते हैं। संघ-शासन-विधान में अन्य त्रुटियों की सूची में इसे भी शामिल किया जा सकता है।

भारत-मन्त्री के अलावे सिविल सर्विस के अन्य कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार संघ तथा प्रान्तीय सरकारों को दिया है। अखिल भारतीय सिविल सर्विस के सदस्यों की नियुक्ति, उनका वेतन तथा कार्य-काल आदि निश्चित करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को दिया है। इसी प्रकार प्रान्तीय सिविल सर्विस के कर्मचारी गवर्नरों के संरक्षण में रक्खे गये हैं। इन पदाधिकारियों को जो व्यक्ति नियुक्त करेंगे उन्हें छोड़कर किसी और को इन्हें हटाने का अधिकार नहीं है। धारा सभायें इनके वेतन आदि में हाथ नहीं डाल सकतीं। एक निश्चित सीमा के अन्दर इन्हें अपने मातहत कर्मचारियों की टीका-टिप्पणी करने का अधिकार ज़रूर दिया गया है, परन्तु यदि इन कर्मचारियों के कामों में किसी तरह की अड़चन डाली जाय तो इन्हें अधिकार है कि वे गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल से सीधे फ़रियाद कर सकें। यदि इन पर किसी तरह का मुक़दमा चलाया जाय या इनके विरुद्ध कोई कारवाई की जाय तो वे गवर्नर और गवर्नर-जनरल से अपनी रक्षा करा सकते हैं।

१६२४ ई० में जब ली कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी तो उसमें यह बात भली भाँति स्पष्ट की गई थी कि भारतीय सिविल सर्विस में भारतीयकरण इस प्रकार किया जाय कि १६३६ ई० तक इसमें आधे हिन्दोस्तानी और आधे अँगरेज़ हो जायँ। भारतीय उम्मीदवार हिन्दोस्तान और इंगलैंड दोनों जगहों से सिविल सर्विस में आते रहे। परिणाम यह हुआ कि इन्डियन सिविल सर्विस में अँगरेज़ कर्मचारियों की संख्या घटने लगी। इसी कमी को पूरा करने के लिये यह विधान बनाया गया कि भारत-मन्त्री कुछ व्यक्तियों को बिना परीक्षा के ही इन्डियन सिविल सर्विस में नामजद कर सकता है। इतने से भी भारतीय उम्मीदवारों की संख्या कम न हुई और वे लन्दन में जाकर मुकाबिले के इम्तहान में सिविल सर्विस के पद को प्राप्त करते रहे। इसे रोकने के लिये जो नियम बनाये गये उनसे भारतीय उम्मीदवारों की संख्या कम होती गई। जो विद्यार्थी बृटिश युनीवर्सिटी की आनर्स परीक्षा पास हों वे ही लन्दन में इन्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठ सकते हैं। यह नियम भारतीय दृष्टि से बहुत ही असंगत है। किसी देश के शिक्षित नवयुवकों को सरकारी विभाग द्वारा अपने देश की सेवा करने का अवसर न देना घोर अन्याय नहीं तो और क्या है?

संघ-शासन-विधान में पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना का नियम

बनाया गया है। अखिल भारतीय नौकर संघ-पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा और प्रान्तीय विभाग के सरकारी कर्मचारी प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा नियुक्त किये जायें। संघ-पब्लिक सर्विस कमीशन के अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में एक पब्लिक सर्विस कमीशन होगा। पहले की स्थापना गवर्नर-जनरल द्वारा और दूसरे की गवर्नर द्वारा की जायेगी। ये दोनों पदाधिकारी अपने विशेष अधिकार से इनके सदस्यों को नियुक्त करेंगे। इनकी संख्या, वेतन, कार्यपद्धति तथा काल आदि निश्चित करने का एकमात्र अधिकार उन्हीं को दिया गया है। कमीशन के सदस्यों में कम-से-कम आधे व्यक्ति ऐसे होने चाहिये जो १० या १० से अधिक साल तक सम्राट् की मातहती में हिन्दोस्तान में नौकरी कर चुके हों। धारा-सभायें इनके ख़र्च पर विचार नहीं कर सकतीं। यह भी विधान बनाया गया है कि यदि दो प्रान्त चाहें तो एक ही पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा काम चला सकते हैं। संघ तथा प्रान्तों में इन कमीशनों की स्थापना कर दी गई है। बम्बई और सिन्ध प्रान्त के लिये एक ही पब्लिक सर्विस कमीशन बनाया गया है।

सिविल सर्विस के कर्मचारी इन्हीं पब्लिक सर्विस कमीशनों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। ये कमीशन परीक्षाओं तथा मौखिक चुनाव द्वारा उम्मीदवारों को चुनते हैं। कमीशन की यह योजना अत्यन्त सराहनीय है। लेकिन इनकी बनावट में कुछ ऐसी कमी है जिससे ये अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकते। अच्छा होता कि इन्हें भारतीय मन्त्रियों की मातहती में रक्खा जाता। प्रजा के प्रतिनिधि इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि देश में किस प्रकार के कर्मचारियों की आवश्यकता है, उनके अन्दर कौन-कौन से गुण होने चाहिये। गवर्नर और गवर्नर-जनरल को इनका ज्ञान नहीं हो सकता। उनकी दृष्टि तो दिमाग़ी लोगों पर जायेगी अथवा धनीमानी लोगों की रक्षा पर। यही कारण है कि हमारे देश की सिविल सर्विस में बहुत कम ऐसे पदाधिकारी मिलेंगे जो राष्ट्र की आवश्यकताओं को महसूस कर अपनी पूरी ताक़त उनमें लगायें।

सरकारी नौकरियों में सुधार

हमारे देश की सरकारी नौकरियों में कुछ ऐसी कमज़ोरियाँ हैं जिन्हें दूर किये बग़ैर हमारा राजनीतिक वातावरण साफ़ नहीं हो सकता। पहिले हम पाठकों का ध्यान उन चन्द बातों की ओर दिलाना चाहते हैं जिन्हें जाने बग़ैर सुधार की योजना समझ में नहीं आ सकती। यह तो सभी जानते हैं कि हिन्दोस्तान दुनियाँ के सबसे ग़रीब मुल्कों में है। यहाँ के निवासियों की ग़रीबी इतनी भयंकर है कि लाखों

आदमियों को एक समय भी भरपेट खाना नहीं मिलता। ऐसी दशा में कोई भी सरकार आँख मूँद कर अपने कर्मचारियों को मिट्टी की तरह चाँदी नहीं बाँट सकती। लेकिन हमारे देश में ऐसा ही हो रहा है। बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारियों को इतनी लम्बी लम्बी तनख़ाहें दी जाती हैं कि दुनिया के धनी-से-धनी मुल्क उसका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। जितना वेतन हमारे यहाँ गवर्नर-जनरल को दिया जाता है उतना संसार के सबसे धनी देश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रेसीडेन्ट तथा सबसे बड़े साम्राज्य (ब्रिटिश साम्राज्य) के प्रधान मन्त्री को भी नहीं दिया जाता। सरकारी विभाग के बड़े-बड़े कर्मचारी इतनी तनख़ाहें पाते हैं कि मुल्क की ग़रीबी सामने रखते हुये फ़ज़ूलख़र्ची की मिसाल कोई दूसरी दिखाई नहीं पड़ती। इसलिये सरकारी नौकरियों में पहला सुधार पैसे का होना चाहिये। कांग्रेस ने ५०० रुपये महीने का जो नियम बनाया है वह बिलकुल ठीक है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति में किसी भी कर्मचारी को ५०० रुपये से अधिक वेतन नहीं मिलना चाहिये।

सरकारी नौकरियों की दूसरी कमी विदेशीपन है। इस राष्ट्रीय उद्गार के युग में भी बड़े बड़े पदों पर अँगरेज़ और ईसाई दिखाई पड़ते हैं। मालूम पड़ता है मानों बड़ी बड़ी नौकरियाँ उनके लिये हमेशा के लिये सुरक्षित कर दी गई हैं। बड़े-बड़े शहरों में जो पोर्ट विभाग की नौकरियाँ हैं उनमें हिसाब लगाने से पता चला है कि १००० और २००० रुपये मासिक की नौकरियों में हर १०४ आदमी में केवल १२ हिन्दोस्तानी हैं। बाक़ी स्थान अँगरेज़ों को दिये गये हैं। २००० रुपये से ऊपर पाने वाले कर्मचारियों में केवल एक प्रतिशत हिन्दोस्तानी हैं। इसी तरह फौज, जंगल तथा कुछ अन्य विभागों में भी अधिक-से-अधिक कर्मचारी अँगरेज़ दिखाई पड़ेंगे। सूबों के गवर्नर लगभग सभी अँगरेज़ होते हैं। मुश्किल से १० प्रतिशत कलेक्टर हिन्दोस्तानी दिखाई पड़ेंगे। भारत-सरकार के अन्दर गवर्नर-जनरल के सलाहकार आदि अधिकतर अंगरेज़ होते हैं। इन विदेशी कर्मचारियों से दोहरी हानि उठानी पड़ती है। एक तो हमारे देश के योग्य से योग्य व्यक्ति बेकार रहते हैं, दूसरे विदेशी कर्मचारी अपनी सारी आमदनी अपने देश में ख़र्च करते हैं। जब तक वे हिन्दोस्तान में रहते हैं तब तक अधिक-से-अधिक पैसे बनाकर अपने देश को भेजते हैं। पेंशन हो जाने पर उनकी तनख़्वाह की एक पाई भी हमारे देश में नहीं ख़र्च होती। यदि मुग़ल-राज्य में कर्मचारियों का वेतन लम्बा था तो वह सब कुछ अपने ही देश में ख़र्च किया जाता था। अरब और फ़ारस में उसे भेजने की इजाज़त न थी। परन्तु आज जो प्रतिवर्ष पेंशन की एक लम्बी रक़म इंगलैंड को भेजी जाती है। वह हमारे ऊपर मानों

सदियों का ऋण लदा हुआ है। अतएव नौकरियों में दूसरा सुधार भारतीय-करण का होना चाहिये। हर विभाग में अधिक-से-अधिक कर्मचारी हिन्दोस्तानी रक्खे जायँ।

धन और संख्या से बढ़कर हमें एक और भी सुधार करना चाहिये। आजकल के बड़े-बड़े कर्मचारी अपने आपको जनता का स्वामी समझते हैं। उनके दिलों में प्रजा के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। थोड़े से धनी मानी लोगों से परिचय प्राप्त कर लेने तथा दावतों और क्लबों में शरीक होने के अलावे वे ग़रीबों से मिलने में अपनी मानहानि समझते हैं। अपने भाइयों के बीच में रहते हुए भी उनकी रहन-सहन विदेशी होती है। दुखिये और मुसीबत जिदह लोग उनके बँगलों के अन्दर क़दम नहीं रख सकते। एक समय वह था जब कि अशोक ने अपने राज्य में इस बात का एलान कर रक्खा था कि शौचालय तक में उसे राज्य की ख़बर की जा सकती थी, और हर समय कोई भी आदमी उससे मिल सकता था। जहाँगीर ने अपने दरबार में एक सोने की जंजीर बाँध रक्खी थी, जिसे कोई भी खींच कर बादशाह से मिल सकता था। परन्तु आज वह दिन सामने दिखाई पड़ता है जब कि कलेक्टर और कमिश्नर के बँगलों के अन्दर साधारण आदमियों को जाने की इजाज़त नहीं मिलती। गवर्नर और वाइसराय की तो बात ही और है। इसकी वजह समय की कमी नहीं, बल्कि दिल की कमी है। कर्मचारियों को इस बात का हौसला नहीं है कि वे दीन-दुखियों की फ़रियाद सुनें और उन्हें दूर करने की कोशिश करें। जिस परिस्थिति में हिन्दोस्तानियों के दिन कट रहे हैं उसमें बड़ी-बड़ी दावतों और नफ़ासत की गुंजाइश कम है। इसलिये कर्मचारियों को एक ऐसी ट्रेनिंग की ज़रूरत है जिसमें उनके अन्दर देश के ग़रीबों और दुखियों की कहानी कूट-कूट कर बैठा दी जाय ताकि वे अपने भाइयों की असली हालत से मुँह न मोड़ें। उनकी ट्रेनिंग एक सच्चे सेवक बनने की होनी चाहिये।

इन तामाम सुधारों के बावजूद यदि हमारे बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी जनता के प्रतिनिधियों के अधिकार से बाहर रहें तो इनसे भलाई की आशा बहुत कम करनी चाहिये। यह सीधी सी बात है कि जो जिसका नमक खाये वह उसकी शरीयत दे। भारत-सरकार के अन्दर सभी कर्मचारियों का वेतन भारतीय ख़जाने से दिया जाता है। यही हालत प्रान्तीय नौकरियों की भी है। यह सारा धन प्रजा का है। इसलिये प्रजा को यह अधिकार होना चाहिये कि वह अपने कर्मचारियों को स्वयं नियुक्त करे और जब चाहे निकाल सके। अर्थात् सभी सरकारी कर्मचारियों को धारा-सभा की मातहती

में रहना चाहिये। भारत-मन्त्री, गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर के विशेषाधिकारों से जो कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं वे प्रजा के हितैषी क्योंकर हो सकते हैं। उनकी नौकरी की शर्तें उन्हीं के हाथों में रक्खी गई है, उनकी ज़िम्मेवारी भी उन्हीं के प्रति है। इस तरह की व्यवस्था से एक ज़िम्मेवार शासन की स्थापना नहीं हो सकती। सभी कर्मचारियों को नियुक्त करने और उन्हें निकालने का अधिकार धारा सभा को मिलना चाहिये। तभी वह प्रजा की आवश्यकतानुसार उनसे काम लेने में समर्थ हो सकती है।

अध्याय २३

शिक्षा

शिक्षा की आवश्यकता

मनुष्य अपने जीवन को अधिक-से-अधिक सुखमय बनाने की चिन्ता में निमग्न रहता है। इसके लिये वह समाज को अपना साधन बनाता है। उससे अलग होकर वह सांसारिक सुख का अनुभव नहीं कर सकता। जब यही आवश्यकता सम्पूर्ण समाज की है तो उसके कार्यों तथा विचारों में एक प्रकार की समता लानी होगी। इसी के आधार पर मानव-समाज एकत्र होकर अपने सुख-दुःख का अनुभव कर सकता है। इसी उद्देश्य से जो वस्तु सम्पूर्ण समाज को एक सूत्र में बाँधती है उसे शिक्षा कहते हैं। हम कुत्ते, बिल्ली तथा चिड़ियों आदि की विचार-धारा से परिचित न होकर उनके सुख-दुःख का अनुभव नहीं कर सकते। उनकी उन्नति-अवनति की प्रगति हमारी बुद्धि से बाहर की चीज़ है। यदि हमारे और उनके बीच में विचारों के आदान-प्रदान का कोई साधन होता तो मानव-समाज से बृहत् एक प्राणी समाज की स्थापना हुई होती। शिक्षा के कारण मनुष्य अपने आपको मानव-समाज का एक अंग समझता है। समाज में रहने तथा लोगों के साथ व्यवहार करने की सामग्री उसे प्रचलित शिक्षा से प्राप्त होती है। अपनी उन्नति के साथ वह समाज की प्रगति को जानने में अपने को समर्थ पाता है। शिक्षा उसकी मस्तिष्क शक्ति को इतनी व्यापक बना देती है जिससे एकान्त में बैठे हुए भी वह मानव-समाज को देखता रहता है। शिक्षित मनुष्य के नेत्र दूर तक देखते हैं; उसके कान उड़ते हुए शब्दों को भी सुन सकते हैं और उसकी बुद्धि अदृश्य पर भी विचार कर सकती है।

शिक्षा मनुष्य के जीवन को सफल बनाने की एक कुंजी है। डेविडसन

लिखता है, " शिक्षा द्वारा मनुष्य अपने अन्दर एक ऐसे संसार की रचना करता है जो उसे वाह्य संसार में रहने के योग्य बनाता है " ।* शिक्षा द्वारा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ वाह्य जगत को भली भाँति पहिचानने लगती हैं । समय प्रतिक्षण बदलता रहता है । जिसे इसका ज्ञान न होगा और जो समयानुकूल अपने विचारों को बनाने में समर्थ न होगा वह दुःख और कठिनाइयों के जाल से नहीं निकल सकता । शिक्षा समय के परिवर्तन का ठीक-ठीक ज्ञान कराती है । किस समय हमें कैसे विचार रखने चाहिये, किन चीज़ों को प्राचीन समझ कर छोड़ देना चाहिये तथा किन पुरातन वस्तुओं को पुनः अपनाना चाहिये—इन सब का ज्ञान प्रचलित काल की शिक्षा द्वारा होता है । विचारों में पीछे रह कर जैसे कोई व्यक्ति अपनी और समाज किसी की भी भलाई नहीं कर सकता, उसी तरह कोई राष्ट्र अशिक्षित तथा कूप-मंडूक रह कर दुनिया के सामने अपना सिर ऊँचा नहीं कर सकता । जो देश अपने आपको उन्नत करना चाहता है वह उचित शिक्षा को ग्रहण करे । मनुष्य स्वभाव से ही रूढ़िवादी है । जिन वस्तुओं को वह एक बार ग्रहण करता है उन्हें वह छोड़ नहीं सकता । शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो उसे प्रतिक्षण नवीनताओं का पाठ पढ़ाती रहती है । यह एक साधारण कहावत है कि "जिस जाति को जैसा बनाना है उसे उसी प्रकार की शिक्षा दी जाय ।"

शिक्षा द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को भली भाँति पहचान सकता है । इसी से स्वावलम्बन तथा स्वाभिमान की उत्पत्ति होती है । उसके अन्दर एक ऐसी शक्ति पैदा होती है जो उसके जीवन को आगे बढ़ाती है । जिस युग में हम रहते हैं उसे समझने के लिये भूत और भविष्य की थोड़ी जानकारी आवश्यक है । शिक्षा द्वारा हम अपने आपको पहिचान सकते हैं कि सृष्टि के आरम्भ से हम कितनी दूर पर खड़े हैं । शरीर को सुडौल बनाने के लिये व्यायाम की आवश्यकता पड़ती है । हमारे मस्तिष्क में कुछ ऐसी शक्तियाँ मौजूद हैं जिनका विकास शारीरिक अवयवों से कम आवश्यक नहीं है । वाह्य पदार्थ हमें जितना सुख और आनन्द दे सकते हैं उससे कहीं बढ़कर सुख हमारे आन्तरिक विचार देते हैं । इन आन्तरिक शक्तियों को बढ़ाने का एकमात्र साधन शिक्षा है । आत्मबल के सामने शारीरिक बल एक तुच्छ सी चीज़ है । अतएव हमारा ध्यान आन्तरिक विकास की ओर सबसे अधिक होना चाहिये । जीवन के आरम्भ में हमें जिस प्रकार की ट्रेनिंग मिलेगी उसी

*Education consists in building up an inner world that fits into the outer world.

प्रकार के कार्य हम करते रहेंगे। इसीलिए शिक्षा में सब से अधिक छानबीन की आवश्यकता है।

उचित शिक्षा

जिस शिक्षा में इतने अधिक गुण हैं और जिसे हमारी उन्नति-अवनति का मापदण्ड होने का श्रेय प्राप्त है उसकी बुराई से हमें बचना होगा। जिस प्रकार शरीर पर जलवायु का प्रभाव पड़ता है और हमारी सारी रहन-सहन अपनी भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार बन जाती है, उसी प्रकार शिक्षा का प्रभाव हमारे जीवन पर बहुत ही गहरा पड़ता है। उल्टी और बुरी शिक्षा किसी देश को अवनति के गड्ढे में डाल सकती है। इसके विपरीत आवश्यकता और अनुभव के आधार पर बनाई गई शिक्षा किसी पिछड़े हुए देश को उन्नतिशील बना सकती है। यह कहना असम्भव है कि उचित शिक्षा का ठीक-ठीक स्वरूप क्या है। प्रत्येक देश या समाज को विभिन्न प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है। एक ही समाज में व्यक्तियों की आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न होती हैं। सबके विचार अलग-अलग होते हैं। इसी के अनुसार उचित शिक्षा का निर्माण किया जा सकता है। एक ही शिक्षा किसी समय उचित और किसी समय अनुचित हो सकती है। जैसे-जैसे हमारा विकास होता है उसी प्रकार शिक्षा में भी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है।

उचित शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। हमें यह मालुम नहीं कि किन-किन घटनाओं का प्रभाव हमारे जीवन पर किस प्रकार पड़ेगा, किस प्रकार की परिस्थिति का मुक़ाबिला हमें समय-समय पर करना होगा। हो सकता है कि किसी असाधारण परिस्थिति में पड़ कर हमारे देशवासी काहिल और निरुद्यमी हो जायँ और उनके अन्दर आशा और उत्साह लेशमात्र भी बाक़ी न रहे। उस अवसर पर हमारी शिक्षा का ढाँचा आजकल से भिन्न होगा। वर्तमान समय में हमारे देश की शिक्षा कोरी किताबी है। इसे प्राप्त कर लोगों के अन्दर रचनात्मक बुद्धि का विकास नहीं होता। देश के शिक्षित नवयुवक तथा नवयुवतियाँ बेकारी का शिकार बनती हैं। इसीलिये वर्तमान शिक्षा-प्रणाली पर टिप्पणियों के बौछार उड़ाये जाते हैं। यह बात सर्वसम्मति से मान ली गई है कि हिन्दोस्तान की मौजूदा शिक्षा-प्रणाली समय के अनुकूल नहीं है। इस समय हमारे देश को एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो हमारे हाथों को चलता कर दे अर्थात् हमारी बुद्धि किताबी न होकर व्यावसायिक और रचनात्मक हो। उचित शिक्षा वह है जो व्यक्ति की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करे। एकाङ्गी शिक्षा उचित शिक्षा नहीं कही जा सकती।

उचित शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को किसी और पर निर्भर करने की आवश्यकता नहीं है। जो शिक्षा समाज की आवश्यकताओं से परे होती है वह नवयुवकों के अन्दर एक प्रकार का विकार पैदा करती है। जब शिक्षा का तात्पर्य समाज को सुखी और सम्पन्न बनाना है तो इसका विधान समय और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिये। उचित शिक्षा समयानुकूल बदलती रहती है। बाह्य तथा आन्तरिक कारणों से कभी-कभी सामाजिक संगठन ढीला पड़ जाता है। उसे ठीक रास्ते पर लाने के लिये शिक्षा की प्रणाली बदलनी पड़ती है। उचित शिक्षा प्रतिबन्धों से रहित होती है। जो शिक्षा केवल थोड़े से लोगों के लिये ग्राह्य है उसकी उपयोगिता उतनी नहीं है जितनी उस शिक्षा की जिसका दरवाजा छोटे और बड़े सब के लिए एक-सा खुला हुआ है। उदाहरण के लिए हम अँगरेज़ी शिक्षा की ओर नज़र उठाकर देखें। यह शिक्षा केवल थोड़े से धनीमानी लोगों के लिये किसी विशेष उद्देश्य से बनाई गई है। इसके वर्तमान ढाँचे को देखते हुये यह निश्चित है कि ६० प्रतिशत हिन्दोस्तानी इसको ग्रहण नहीं कर सकते। अतएव यह शिक्षा-प्रणाली उचित नहीं कही जा सकती। जो शिक्षा सबको इस बात का अवसर दे कि वे इसे प्राप्त कर अपने जीवन की समस्याओं को हल करें वही उचित शिक्षा कहलाने की अधिकारिणी है। जब हम किसी देश की समस्याओं को विकट देखें और उन्हें सुलझाने का कोई मार्ग दिखलाई न पड़े तो इसका निष्कर्ष यही निकाला जा सकता है कि वहाँ उचित शिक्षा का अभाव है। जीवन के प्रश्न बड़े ही गम्भीर होते हैं। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किस वस्तु से और किन तरीक़ों से हमारा जीवन सुखी बन सकता है। इस प्रश्न को सुलझाने में शिक्षा सबसे अधिक सहायक होती है। परन्तु उसका आकार बहुत ही तजुर्बे के साथ बनना चाहिये।

भारत में शिक्षा का इतिहास

हमारे देश में शिक्षा के इतिहास को देखते हुये यह पता चलता है कि इसमें परिवर्तनों की कोई गणना नहीं की जा सकती। एक ऐसा भी समय था जब कि यहाँ की शिक्षा बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी; उसका दरवाज़ा सबके लिये खुला हुआ था; राजा-महाराजा विद्वानों का आदर करते थे; शिक्षित वर्ग अपने आपको समाज का सेवक समझता था। परन्तु एक ऐसा भी समय आया जब पुस्तकालय जलाये गये; पुरानी पाठशालाओं का नामनिशान जाता रहा। किसी समय हमारे देश का एक-एक घर स्कूल था, प्रत्येक मन्दिर तथा मसजिद शिक्षा के केन्द्र थे, लेकिन आज वह दिन भी हमें देखने पड़ रहे हैं जब कि हमारे देश में केवल दस

प्रतिशत आदमी लिख और पढ़ सकते हैं। कभी तो हमारी शिक्षा धर्म से मिली हुई थी और कभी उससे अलग। कभी हमारे देश के शिक्षित व्यक्ति समाज के सेवक रहे और कभी उन्हीं के अत्याचार से आम जनता को तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। कभी शिक्षित व्यक्तियों का आचरण आदर्श माना जाता था और समाज में उन्हें हर तरह की सुविधायें प्राप्त थीं, लेकिन एक ऐसा भी दिन आया जब पढ़े लिखे लोग चरित्रहीन, निरुद्यमी और भार-स्वरूप समझे जाने लगे। किसी समय हमारे देश के पढ़े-लिखे लोगों को भारतीय सभ्यता पर नाज़ था लेकिन आज वह दिन भी हमें देखने पड़ते हैं जब कि शिक्षित वर्ग अपनी सभ्यता की जड़ अपने ही हाथों से काट रहा है। किसी समय ऋषि-महर्षियों के आश्रम विद्या के केन्द्र कहलाते थे और किसी समय कालेज और विश्वविद्यालयों की बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें बनवाई गईं। इतना परिवर्तन किसी सभ्य देश के इतिहास में शायद ही मिलेगा।

प्राचीन भारत में शिक्षा

(अ) जिस हिन्दोस्तान की चर्चा विदेशों में की जाती है उसका नक़शा आजकल से भिन्न है। यहाँ की सभ्यता की प्रशंसा विदेशियों ने मुक्तकण्ठ से की है। यह तो सभी जानते हैं कि किसी देश को सभ्य बनाने का मूल कारण वहाँ की शिक्षा है। हिन्दूकाल की शिक्षा प्रणाली में कुछ ऐसी विशेषतायें पाई जाती हैं जो दुनिया के किसी भी देश में दिखाई नहीं पड़तीं। व्यक्ति का संपूर्ण जीवन चार भागों में बाँट दिया गया था। आरम्भ के पहिले २५ वर्ष केवल शिक्षा प्राप्त करने के लिये रक्खे गये थे। ६ वर्ष की आयु में ही माता-पिता बच्चे को किसी गुरु के पास छोड़ देते थे। गुरु का स्थान ही गुरुकुल कहलाता था। यह प्रणाली ब्राह्मणकाल में प्रचलित थी। २५ वर्ष की आयु तक बच्चे को गुरु के पास रह कर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। बौद्धकाल में इसका स्वरूप कुछ बदल गया। शिक्षा के लिये बड़े-बड़े केन्द्र स्थापित किये गये। इन्हें विहार अथवा महाविहार कहते थे। इनमें किसी विशेष आयु तक लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। प्रयाग में भारद्वाज ऋषि का आश्रम आजकल के किसी विश्व-विद्यालय से कम न था। विहारों में गुरु के अतिरिक्त शिक्षित संन्यासी भी रहते थे। वे घूम घूम कर आस-पास के गाँवों में लोगों को शिक्षा देते थे। नालन्द महाविहार में १०,००० विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे। उपरोक्त दोनों प्रणालियों में विद्यार्थी की रहन-सहन पर कड़ी दृष्टि रक्खी जाती थी।

विशेष शिक्षा दी जाती थी। इसी विश्वविद्यालय ने पाणिनी और कौटिल्य जैसे विद्वानों को पैदा किया था। कण्व विश्वविद्यालय में वेदों की विशेष शिक्षा दी जाती थी। उज्जैन में ज्योतिष की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था।

मध्ययुग की शिक्षा-प्रणाली

(ब) मुसलमानी ज़माने में शिक्षा-प्रणाली हिन्दूकाल से कुछ भिन्न थी। शिक्षा के मुख्य दो प्रकार के केन्द्र थे। एक को मक़तब और दूसरे को मदरसा कहते थे। हर मसज़िद में एक मक़तब होता था। लगभग दस वर्ष की आयु तक हर एक मुसलमान का बच्चा इसमें शिक्षा ग्रहण करता था। यह शिक्षा अधिकतर धार्मिक होती थी। क़ुरान की आयतें सबको कण्ठस्थ करा दी जाती थीं। इसके अतिरिक्त गणित, भूगोल और इतिहास का भी साधारण ज्ञान करा दिया जाता था। इन मक़तबों का ख़र्च कुछ तो व्यक्तिगत चन्दे और दान से चलता था और कुछ सरकार देती थी। मुसलमानी ज़माने में धर्म के नाते मसज़िदों को सरकार की ओर से इमदाद दी जाती थी। इसी इमदाद से मक़तब का ख़र्च चलाया जाता था। मक़तब के अलावे जगह-जगह पर मदरसे खोले गये थे। इनमें उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता था। सरकार इन्हें इमदाद देती थी। बदायूँ, आगरा, जौनपुर, दिल्ली, मुल्तान आदि शहरों में मदरसे खोले गये थे। इनमें केवल मुसलमान विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। हिन्दुओं की शिक्षा के लिये अलग संस्थायें क़ायम की गई थीं। सरकार की ओर से इमदाद नहीं दी जाती थी। सेठ-साहुकारों की इमदाद से इनका ख़र्च चलता था। पण्डित लोग अपने घर पर विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। संस्कृत-शिक्षा की उन्नति के लिये सरकार की ओर से कोई उत्साह नहीं दिया जाता था। केवल थोड़े से इनेगिने बादशाहों को छोड़ कर हिन्दुओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किसी के ज़माने में भी नहीं किया गया था।

मध्ययुग में मुग़ल बादशाह शिक्षा तथा कला कौशल के विशेष प्रेमी थे। हुमायूँ बादशाह के पास बहुमूल्य पुस्तकों का भण्डार था। अकबर स्वयं विद्वानों की मण्डली में बैठकर विद्या की चर्चा करता था। औरंगज़ेब कवियों का सम्मान करता था। हुमायूँ की बहिन को लिखने का बड़ा शौक था। हुमायूँनामा ग्रन्थ उसी का लिखा हुआ है। कला-कौशल में इन मुग़ल बादशाहों ने भारतीय इतिहास में जो स्थान प्राप्त किया है उसका मुक़ाबिला दुनिया की कोई भी बादशाहत नहीं कर सकती। जीवन के सभी क्षेत्रों में इन बादशाहों की अमर कीर्तियाँ देश के कोने-कोने में पाई जाती हैं। इन

उद्धरणों से हमारा तात्पर्य केवल इतना ही है कि भारतीय इतिहास का मध्यकाल योरप के मध्ययुग की तरह अशान्ति और कुव्यवस्था का युग नहीं था। देश में शिक्षा का प्रचार था। फ़ारसी और अरबी के अच्छे-अच्छे विद्वान् इस काल में मौजूद थे। समाज में विद्वानों का आदर था। विद्या के क्षेत्र में मुग़ल बादशाह जाति पक्षपात कम करते थे। हिन्दी के धुरन्धर विद्वान् इसी काल में पैदा हुये। मुसलमान सूफ़ियों ने हिन्दू और मुस्लिम सभ्यता को मिलाने का जो सराहनीय प्रयत्न किया उसका प्रभाव आज भी दिखाई पड़ता है। मुसलमान युग की शिक्षा हिन्दू काल से अलग होते हुए भी एकता और समानता की विरोधी न थी। दोनों के सम्पर्क से एक नई सभ्यता का जन्म हुआ। अरबी और फ़ारसी के गूढ़ रहस्य हिन्दुओं को और संस्कृत की गम्भीर बातें मुसलमानों को मालूम हुई।

आधुनिक शिक्षा का विकास

(स) ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के बाद हिन्दोस्तान की राजनीतिक परिस्थिति डाँवाडोल होने लगी। इसका प्रभाव शिक्षा संस्थाओं पर बड़ा ही गहरा पड़ा। जब कम्पनी की हालत कुछ मज़बूत हुई तो उसे शिक्षा की तरफ़ ध्यान देना पड़ा। कम्पनी की पहली आवश्यकता कर्मचारियों की थी। गोदाम और कारख़ानों में काम करने के लिये वह इंगलैंड से कर्मचारी नहीं बुला सकती थी। उसके पास इतना रुपया नहीं था कि वह छोटी-छोटी जगहों पर लम्बी-लम्बी तनख़ाहों वाले अँगरेज़ों को रखती। वारेन हेस्टिंग का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। १७८१ ई० में उसने कलकत्ता-मदरसा नामक एक स्कूल खोला। इसमें विद्यार्थियों को फ़ारसी की शिक्षा दी जाती थी। यह स्कूल केवल मुसलमानों के लिये था। १७९१ ई० में लार्ड कार्नवालिस ने बनारस में एक संस्कृत कालेज की स्थापना की। इसमें केवल हिन्दू विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती थी। इन शिक्षा संस्थाओं से कम्पनी को दो प्रकार के लाभ पहुँचते थे। एक तो कम-से-कम वेतन पर हिन्दोस्तानी क्लर्क मिल जाते, दूसरे पश्चात्य निवासियों को पूर्वीय विचारों को समझने में आसानी होती। कम्पनी के अधिकारी इन्हीं शिक्षालयों द्वारा हिन्दोस्तान के रसम-रिवाजों की जानकारी हासिल करते थे। इनके निकले हुये विद्यार्थी कम्पनी के न्यायालयों में मुक़दमा फ़ैसल करने में उनकी मदद करते थे।

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त ईसाई मिशनरी भी शिक्षा का प्रचार करते थे। उनका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान दोनों को ईसाई बनाना था। हिन्दू समाज में इन मिशनरियों को किसी हद तक सफलता प्राप्त हुई। पैसे

तथा पद के लोभ के कारण कितने ही व्यक्ति ईसाई होने लगे। परन्तु मुसलमानों ने अपने को इनसे अलग रक्खा। १८१३ ई० में पार्लियामेंट ने कम्पनी को एक चार्टर में यह आदेश दिया कि वह हिन्दोस्तान की बेहतरी के लिये कम-से-कम एक लाख रुपया शिक्षा पर ख़र्च करे। अब तक जो शिक्षा कम्पनी की ओर से लोगों को दी जाती थी उसका माध्यम संस्कृत या फ़ारसी था। परन्तु अब यह प्रश्न उठा कि शिक्षा का माध्यम क्या हो। लार्ड मेकाले ने (१८३५ ई०) अपना विचार प्रकट करते हुये यह कहा कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी होना चाहिये। कुछ ईसाई मिशनरियों ने भी इसकी ताईद की। राजा राममोहनराय ने भी इसका समर्थन किया। अन्त में लार्ड विलियम वेन्टिक के समय में यह फ़ैसला किया गया कि शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी होगा। इससे कम्पनी को शासन-प्रबन्ध में अनेक सुविधायें प्राप्त हुईं। साथ ही कम्पनी ने यह भी घोषित किया कि धार्मिक मामलों में उसकी नीति निष्पक्ष रहेगी।

१८१६ ई० में कलकत्ते में एक हिन्दू कालेज की स्थापना की गई। राजा राममोहनराय तथा डेविड हेयर के उद्योग से इसकी नींव डाली गई थी। १८१८ ई० में बंगाल में सिरामपुर नामक स्थान में पहिला मिशनरी कालेज खोला गया। १८५२ ई० में सर चार्ल्स उड की अध्यक्षता में पार्लियामेंट ने एक कमीटी इस बात के लिये नियुक्त की जो भारतीय शिक्षा की जाँच करे। कमीटी ने अपनी रिपोर्ट में प्रारम्भिक, माध्यमिक और यूनिवर्सिटी शिक्षा को अलग-अलग करने की सलाह दी। सर चार्ल्स उड का कहना था कि सरकार केवल अपने ही बनाये हुये कालेजों पर रुपया ख़र्च न करे। छोटे-छोटे स्कूलों तथा कालेजों को सहायता देने का भी नियम बनाया जाय। रिपोर्ट का यह परिणाम हुआ कि शिक्षा का एक अलग विभाग (Department of Public Instruction) बनाया गया। साथ ही अँगरेज़ी भाषा के मुक़ाबिले में देशी भाषाओं को पढ़ने-पढ़ाने की सलाह दी गई। इसी के फल-स्वरूप १८५७ ई० में कलकत्ता, मदरास और बम्बई नामक स्थानों पर तीन विश्वविद्यालय खोले गये। १८७१ ई० में भारत-सरकार ने शिक्षा का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को दे दिया। परन्तु इसका ख़र्च केन्द्रीय सरकार से प्राप्त होता था। १८८२ ई० में हन्टर कमीशन की नियुक्ति की गई। इसने प्रारम्भिक शिक्षा की वृद्धि पर बहुत ही ज़ोर दिया। लार्ड रिपन के समय में जब स्थानीय स्वराज की व्यवस्था बनाई गई तो प्रारम्भिक शिक्षा का भार म्यूनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को सौंप दिया गया।

१६०२ ई० में लार्ड कर्ज़न के समय में यूनिवर्सिटी कमीशन नियुक्त किया गया। इसकी रिपोर्ट के आधार पर १६०४ ई० में यूनिवर्सिटी ऐक्ट पास किया गया। इससे सरकार का अधिकार यूनिवर्सिटियों के ऊपर और कड़ा कर दिया गया। साथ ही इनका क्षेत्र निश्चित करके स्कूल तथा कालेज़ों पर इन्हें पूरा अधिकार दे दिया गया। १६१० ई० में भारत-सरकार ने शिक्षा विभाग का मुहकमा बना कर इसका भार शिक्षा मेम्बर को सौंप दिया। तब से बराबर यह मेम्बर वाइसराय की कार्यकारिणी सभा का एक सदस्य होता है। इसका उद्देश्य प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा में सलाह देना है। १६१७ ई० में भारत-सरकार ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन की नियुक्ति की। इसकी रिपोर्ट में यूनिवर्सिटी शिक्षा को फिर से संगठित करने का अच्छा विवरण दिया गया है। १६१६ ई० में भारतीय राजनीतिक सुधार के अनुसार शिक्षा का विषय पूर्णतया प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया। केन्द्रीय सरकार इसमें किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। प्रान्तों में भारतीय मंत्रियों को यह विषय सौंप कर उन्हें इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपनी आवश्यकतानुसार शिक्षा संस्थाओं में सुधार करें। १६२७-२८ ई० में एक कमीशन की नियुक्ति की गई। सरफिलिप हरटाग इसके सभापति नियत किये गये। इसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा की जाँच करना था। कमीटी की रिपोर्ट में जो मार्के की बात कही गई हैं उनसे हम काफ़ी लाभ उठा सकते हैं।

१६३७ में जब प्रान्तीय स्वराज की स्थापना हुई तो कांग्रेस का ध्यान शिक्षा-सुधार की ओर आकर्षित हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा में अनेक सुधार किये गये। प्रौढ़ तथा रात्रि पाठशालायें खोली गईं। जगह-जगह पर पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित किये गये। शिक्षा के प्रचार के लिये शिक्षा-सप्ताह मनाने की योजना बनाई गई। माध्यमिक शिक्षा-सुधार करने पर अभी विचार किया जा रहा था कि कांग्रेस सरकरों को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। फिर भी कितने ही प्रान्तों में हाई स्कूल तक की शिक्षा का माध्यम हिन्दी करार दिया गया। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने तो एफ़० ए० में भी शिक्षा का माध्यम हिन्दी घोषित कर दिया। विद्यार्थियों को यह सुविधा दी गई कि वे प्रश्नों का उत्तर हिन्दी या उर्दू में भी दे सकते हैं। यूनिवर्सिटी शिक्षा पर भी कांग्रेस का ध्यान गया था। संयुक्तप्रान्त में एक कमीटी इस पर विचार करने के लिये बनाई गई थी। इन सुधारों के अतिरिक्त कांग्रेस का ध्यान बुनियादी शिक्षा की ओर दिलाया गया था। तब से यह नई योजना कितने ही प्रान्तों में काम में लाई जा रही है। यदि इस योजना में सफलता मिली और

उपरोक्त सुधारों को कार्य रूप में परिणत किया गया तो शिक्षा में एक महान् क्रान्ति की सम्भावना है।

अभी तक शिक्षा की प्रगति का वह इतिहास वर्णन किया गया है जिसका सम्बन्ध एकमात्र सरकार से है, परन्तु इसके अलावा हमारे देश में अनेक सार्वजनिक संस्थायें शिक्षा के प्रचार में लगी हैं। इनका प्रयत्न सरकार की योजनाओं से कम महत्व नहीं रखता। प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च श्रेणी की शिक्षा का प्रबन्ध करने में इन संस्थाओं ने सरकार को भी मात कर दिया है। कुछ तो साम्प्रदायिक भावनाओं के कारण और कुछ सेवा की लगन से आज कितनी ही शिक्षा-संस्थायें हरी-भरी दिखलाई पड़ रही हैं। हज़ारों लड़के और लड़कियाँ इनमें शिक्षा प्राप्त करती हैं। आर्य समाज ने शिक्षा को फैलाने में जो सफलता प्राप्त की है उसका मुक़ाबिला किसी देश की सरकार भी नहीं कर सकती। शायद ही कोई ज़िला या शहर बाकी हो जिसमें डी० ए० वी० स्कूल न हों। मुसलमानों के प्रयत्न से अलीगढ़ यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई। ईसाई मिशनरियों के कितने ही स्कूल आज चल रहे हैं। सिख और हिन्दुओं की कितनी ही शिक्षा.संस्थायें काम कर रही हैं। पण्डित मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई है। इनके अतिरिक्त संस्कृत की हजारों पाठशालायें और मुसलमानों के मक़तब विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे हैं। अभी तक शिक्षा का जो विकास हमारे देश में हुआ है, उसका संक्षिप्त इतिहास यहीं सामप्त किया जाता है। वर्त्तमान शिक्षा किन-किन श्रेणियों में विभाजित की गई है और उसका प्रबन्ध किस प्रकार किया जाता है। इसका वर्णन नीचे किया जाता है।

वर्तमान शिक्षा-संगठन

ऊपर कहा गया है कि १६१६ ई० में शिक्षा का पूरा प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया। प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल में शिक्षा मंत्री इसका प्रधान होता है। इसका विभाग शिक्षा-विभाग कहलाता है। यह मंत्री अपने कार्यों के लिये प्रान्त की धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार होता है। शिक्षा-मन्त्री के नीचे प्रान्त में एक डाइरेक्टर होता है जिसे 'डाइरेक्टर आव पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' कहते हैं। इसका कार्य प्रान्त के शिक्षा-विभाग के कर्मचारियों की देख-रेख करना तथा शिक्षा-मन्त्री को उचित सलाहें देना है। प्रत्येक प्रान्त कुछ विभागों में बाँट दिया जाता है। हर विभाग का प्रधान इन्सपेक्टर कहलाता है। इसकी सहायता के लिये असिस्टैंट इन्स-पेक्टर तथा डिप्टी इन्सपेक्टर होते हैं। प्रत्येक ज़िले में एक डिप्टी इन्सपेक्टर होता है। उसके नीचे सब-डिप्टी इन्सपेक्टर्स होते हैं। यूरोपियन स्कूलों की

देख-रेख तथा संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षण के लिये अलग इन्सपेक्टर होते हैं। जो संस्थायें किसी विशेष दस्तकारी अथवा कृषि आदि की शिक्षा देती है उसकी देख-रेख शिक्षा-विभाग से अलग उनसे सम्बन्ध रखने वाले विभागों द्वारा की जाती है। सरकार शिक्षा-संस्थाओं को कई प्रकार से सहायता देती है। कुछ को तो वह स्वयं चलाती है और कुछ को इमदाद देती है।

वर्तमान शिक्षा तीन श्रेणियों में विभाजित की गई है:—प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा यूनीवर्सिटी। माध्यमिक शिक्षा का तात्पर्य दो प्रकार की संस्थाओं से है, हिन्दी और अँगरेज़ी। मिडिल तक की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा कहते हैं। अँगरेज़ी में हाई स्कूल तक की शिक्षा भी माध्यमिक शिक्षा कहलाती है। इन तीनों श्रेणियों का वर्णन अलग-अलग किया जायेगा।

प्रारम्भिक शिक्षा

हमारे देश में प्राइमरी शिक्षा का प्रायः अभाव है। यदि जड़ ठीक कर दी जाय तो सरकार का बहुत-सा धन व्यर्थ न होगा। साथ ही प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद लोग अपने अध्ययन से कुछ लाभ भी उठा सकेंगे। प्राइमरी शिक्षा का प्रबन्ध डिस्ट्रिक्ट तथा म्यूनिसिपल बोर्ड करते हैं। कुछ तो अपनी आय से और कुछ प्रान्तीय सरकार की इमदाद से इनका ख़र्च चलता है। प्राइमरी शिक्षा कक्षा चार तक होती है। १९११ ई० में लेजिस्लेटिव कौंसिल में गोखले ने भाषण देते हुये कहा कि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। अनिवार्य शिक्षा का विधान तभी सफल हो सकता है जब यह निःशुल्क करार दी जाय। पैसे की कमी के कारण सरकार ने इसे इन्कार कर दिया था। मदरास प्रान्त में ६ और १० वर्ष की आयु तक कुछ विशेष जगहों में शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क की गई है। संयुक्तप्रान्त और बम्बई में भी इसका तजुर्बा किया जा रहा है। कहीं-कहीं पर यह नियम लड़के और लड़कियों के लिये एक सा बर्त्ता जाता है।

प्रारम्भिक शिक्षा का निरीक्षण प्रान्तीय सरकार के कर्मचारी करते हैं। प्रान्तीय शिक्षा-विभाग द्वारा कोर्स की किताबें आदि निश्चित की जाती हैं। कहा जाता है कि प्रारम्भिक शिक्षा की बहुत-सी रक़म बेकार चली जाती है। हिसाब लगाने से पता चला है कि केवल १५ फ़ी सदी लड़के प्राइमरी शिक्षा को समाप्त कर पाते हैं। अर्थात् ८५ प्रतिशत लड़कों पर जो रुपया ख़र्च किया जाता है वह बिल्कुल बेकार चला जाता है। कारण यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा से कम दरजे पास करने पर विद्यार्थी को कोई लाभ नहीं पहुँचता। यहाँ तक कि इसे समाप्त करने पर भी इतनी कुशलता नहीं आती

कि विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में कुछ सफलता प्राप्त कर सकें। इस शिक्षा का आधार कोई-न-कोई व्यवसाय होना चाहिये। परन्तु अभी तक बच्चों को केवल किताबी ज्ञान कराया जाता है। बुनियादी शिक्षा में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि आरम्भ से ही बच्चों को हाथ के काम सिखाये जायँ। प्रारम्भिक शिक्षा में कृषि एक अनिवार्य विषय होना चाहिये। इस कक्षा तक उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त करना चाहिये जो बालविज्ञान से कुछ परिचित हों। लेकिन आज-कल ऐसा देखा जाता है कि कम-से-कम पैसे देकर अयोग्य अध्यापक प्रारम्भिक स्कूलों में रक्खे जाते हैं। लोग यह भूल जाते हैं कि एक स्कूल खोलने के मानी एक जेल बन्द करना है। प्रारम्भिक शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या बृटिश भारत में १ करोड़ के लगभग है। १६३४ ई० में प्रारम्भिक स्कूलों की कुल संख्या २ लाख से कुछ ऊपर थी।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा दो प्रकार की है। ४ से ७ तक जो हिन्दी की श्रेणियाँ हैं वे माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत गिनी जाती हैं। इनका प्रबन्ध स्थानीय संस्थायें करती हैं। हाई स्कूल तक की शिक्षा को भी माध्यमिक शिक्षा कहते हैं। इनका प्रबन्ध विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग तरीक़े पर किया जाता है। कुछ प्रान्तों में ये स्कूल यूनिवर्सिटियों के अधिकार में रक्खे गये हैं। कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति तथा इनका कोर्स आदि सब कुछ ये ही बनाती हैं। कुछ प्रान्तों में इनका प्रबन्ध एक बोर्ड द्वारा किया जाता है। संयुक्तप्रान्त में हाई स्कूल तथा इन्टरमीजियट के लिये एक अलग बोर्ड की स्थापना की गई है। यूनिवर्सिटियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये हाई स्कूल दो प्रकार के होते हैं। कुछ को गवर्नमेंट स्वयं चलाती है और बाक़ी जनता द्वारा चलाए जाते हैं। परन्तु इनकी मंजूरी प्रान्तीय सरकार के शिक्षा-विभाग से लेनी पड़ती है। सरकार इन्हें कुछ इमदाद भी देती है। इन स्कूलों का निरीक्षण इन्सपेक्टर तथा असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर द्वारा किया जाता है। कुछ हाई स्कूल उन्नति करते-करते इन्टरमीजियट कालेज भी हो सकते हैं। परन्तु इसकी मंजूरी बोर्ड से लेनी पड़ती है।

लगभग प्रत्येक ज़िले में एक गवर्नमेंट हाई स्कूल होता है। कहीं-कहीं पर इसे इन्टरमीजियट कालेज भी बना दिया गया है। माध्यमिक शिक्षा का माध्यम वर्नाक्यूलर है। इस शिक्षा के विषय में लोगों की अनेक रायें हैं। कुछ लोगों का कहना है कि माध्यमिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थी के अन्दर सभी व्यावहारिक बातें बैठा दे। संसार के अन्य सभी देशों में इस श्रेणी तक के विद्यार्थी अपने आपको पूर्ण समझते हैं। हमारे देश में

हाई स्कूल पास लड़कों को छोटी-छोटी बातों का भी ज्ञान नहीं कराया जाता। किताबी ज्ञान पर सबसे अधिक ज़ोर दिया जाता है। जब तक शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी था इन स्कूलों से निकले हुये विद्यार्थी भारतीय वातावरण के सर्वथा अयोग्य होते थे। परन्तु इधर थोड़े दिनों से कुछ सुधार के कारण इसमें थोड़ी उन्नति दिखाई पड़ती है। फिर भी इसका स्वरूप सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। माध्यमिक शिक्षा प्रारम्भ करने वाले ७५ प्रतिशत विद्यार्थी इसी श्रेणी तक चल पाते हैं। इतनी बड़ी तायदाद को देखते हुये यह नितान्त आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा बहुत ही सुलझी हुई होनी चाहिए। इसके बाद ही देश के अधिकतर नवयुवक अपने जीवन में प्रवेश करते हैं। सुधार की जितनी आवश्यकता यूनिवर्सिटी-शिक्षा में है उससे कहीं अधिक आवश्यकता माध्यमिक शिक्षा के सुधार की है।

यूनिवर्सिटी-शिक्षा

शिक्षा की सबसे ऊँची चोटी यूनिवर्सिटी कहलाती है। इस समय समूचे हिन्दोस्तान में कुल १८ यूनिवर्सिटियाँ हैं। इनमें दो देशी रियासतों में और एक बर्मा में है। अर्थात् बृटिश भारत में केवल १५ यूनिवर्सिटियाँ हैं। पाठकगण यह भी याद रक्खें कि समूचे जापान में जिसकी जनसंख्या बंगाल से कुछ ही अधिक है, ४६ यूनिवर्सिटियाँ हैं। केवल टोकियो शहर में १८ यूनिवर्सिटियाँ हैं। १८५७ ई० में पहले-पहल कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में ३ यूनिवर्सिटियाँ बनाई गईं। इसके बाद १८८२ में पंजाब यूनिवर्सिटी, १८८७ में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९१६ में बनारस तथा मैसूर यूनिवर्सिटी, १९१७ में पटना यूनिवर्सिटी, १९१८ में उस्मानिया यूनिवर्सिटी, १९२० में रंगून, अलीगढ़ और लखनऊ यूनिवर्सिटी, १९२१ में ढाका यूनिवर्सिटी, १९२२ में दिल्ली यूनिवर्सिटी, १९२३ में नागपुर यूनिवर्सिटी, १९२६ में आन्ध्र यूनिवर्सिटी, १९२७ में आगरा यूनिवर्सिटी और १९२९ में अनामली यूनिवर्सिटी की नींव पड़ी।

यूनिवर्सिटियाँ अपने प्रबन्ध के लिए सभी प्रकार से स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक यूनिवर्सिटी का प्रधान चान्सलर कहलाता है। यह आमतौर से सूबे का गवर्नर होता है। इसके नीचे वाइसचान्सलर होता है। यह पदाधिकारी यूनिवर्सिटी की कार्यकारिणी द्वारा चुना जाता है। सारा प्रबन्ध सिनेट द्वारा किया जाता है। ये यूनिवर्सिटियाँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ तो केवल परीक्षायें लेती हैं। उनमें पढ़ाई नहीं होती। बाक़ी यूनीवर्सिटियाँ पढ़ाई का भी प्रबन्ध करती हैं। कुछ वर्षों से यूनिवर्सिटी-शिक्षा विलासिता की एक कुंजी समझी जाने लगी है। जिसके पास पैसे हैं वे अपना समय व्यतीत

करने के लिये वर्षों उसमें पड़े रहते हैं। विद्यार्थी और अध्यापक पढ़ने-पढ़ाने पर उतना ध्यान नहीं देते जितना टाई और बूट पर। ऊँची शिक्षा का उद्देश्य जहाँ सरलता और चरित्र संगठन ठहराया गया था वहीं आज विलासिता की सारी सामग्रियाँ इकट्ठी हो गई हैं। सारा वातावरण नौकरियों की चर्चा से ओत-प्रोत रहता है। सबकी इच्छा सरकारी विभाग में कोई-न-कोई पद प्राप्त करने की रहती है।

औद्योगिक शिक्षा

प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा यूनिवर्सिटी शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थियों को कुछ दस्तकारी आदि के काम सिखलाने के लिये भी स्कूल खोले गये हैं। कृषि की शिक्षा देने के लिये सभी प्रान्तों में स्कूल तथा कालेज स्थापित किये गये हैं। अन्धों, गूंगों और बहरों के लिये भी स्कूलों का प्रबन्ध किया गया है। बड़े-बड़े शहरों में संगीतालय खोले गये हैं। डाक्टरी, इंजिनियरिंग तथा जङ्गल विभाग की शिक्षा देने के लिये अलग स्कूल और कालेज खोले गये हैं। हवाई जहाज़ तथा मशीनों की विशेष जानकारी के लिये अभी हाल में प्रबन्ध किया गया है। हमारे देश में औद्योगिक शिक्षा की जितनी आवश्यकता है उनके सामने इन स्कूलों तथा कालेजों की संख्या कोई महत्त्व नहीं रखती। इन कालेजों से निकले हुए विद्यार्थी नौकरी के अतिरिक्त दस्तकारी आदि के कामों से परहेज़ करते हैं।

विदेशों में भारतीय विद्यार्थी

कुछ भारतीय विद्यार्थी विदेशों में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। १९३०-३१ में उनकी संख्या २१०६ थी। परन्तु १९३२-३३ में वह घट कर १६०० के लगभग हो गई। शिक्षा ग्रहण करने के लिये विदेशों में जाना कोई बुरा नहीं है परन्तु जिस उद्देश्य से भारतीय विद्यार्थी विदेशों में जाते हैं वह एक-मात्र नौकरी है। अधिकतर विद्यार्थी इंगलैंड में जाते हैं। कहा जाता है कि विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों में भारतीय विद्यार्थी सबसे अधिक पाये जाते हैं। इनका उद्देश्य यह होता है कि वे इंगलैंड से कोई सनद लेकर जल्दी-से-जल्दी अपने देश को लौटें और किसी सरकारी मुहकमें में नौकरी करें। १५०० से अधिक विद्यार्थी इंगलैंड में अध्ययन करते हैं। यदि प्रत्येक विद्यार्थी का ख़र्च २५०० रुपये साल रख लिया जाय तो ३८ लाख के लगभग रक़म प्रति वर्ष इन पर ख़र्च की जाती है। हम यह न समझ बैठें कि अपने विषयों में विशेष अध्ययन करने के लिये ये विद्यार्थी विदेशों में जाने का कष्ट करते हैं। जिन विषयों का प्रबन्ध हमारे देश में हो सकता है उन्हें भी

वे विदेशों में जाकर सीखते हैं। यदि इनके साथ विदेशियों का व्यवहार अच्छा होता तो भी ग़नीमत थी परन्तु विदेशों की कितनी ही शिक्षा संस्थायें इन्हें प्रवेश तक की आज्ञा नहीं देतीं। उनमें रूप, रंग तथा जाति का भेद-भाव किया जाता है। भारतीय विद्यार्थी जिन दर्जों को यहाँ से पास करके इंगलैंड में जाते हैं उन्हीं में उनका प्रवेश किया जाता है कुछ वर्षों से विदेशों में जाने की प्रथा कम हो चली है। यह भी हमारे देश का एक सौभाग्य है।

बुनियादी शिक्षा

अंगरेज़ी शिक्षा की बेकारी को देखते हुए हमारे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान शिक्षा-सुधार की ओर आकर्षित हुआ। लोगों को यह मालूम पड़ने लगा कि शिक्षित लोगों की संख्या आवश्यकता से अधिक हो गई है। परन्तु दूसरी ओर जब अशिक्षितों की संख्या पर ध्यान दिया गया तो पता चला कि ९० प्रतिशत आदमी अशिक्षित हैं। केवल २½ प्रतिशत आदमी अँगरेज़ी पढ़ सकते हैं। यह बात लोगों को और भी खटकने लगी कि पढ़े-लिखे लोगों की संख्या दाल में नमक के बराबर होते हुये भी शिक्षित लोगों में इतनी बेकारी क्यों कर है। अन्त में यह बात निश्चित ठहराई गई कि जो शिक्षा हमारे देशवासियों को दी जा रही है उसकी हमें क़तई ज़रूरत नहीं है। वह हमें ग़ुलाम और अकर्मण्य बनाती है। ज़ाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक कमीटी इस पर विचार करने के लिये बनाई गई। इसकी रिपोर्ट में यह बात ज़ाहिर की गई कि हमारी शिक्षा में उद्योग-धन्धों का कोई स्थान नहीं है। सिद्धान्त की बड़ी-बड़ी बातें पढ़ कर लड़कों के दिमाग़ तो बढ़ जाते हैं, परन्तु उनके मस्तिष्क से क्रियात्मक शक्ति निकल जाती है। हाथ और पैर दोनों से वे बेकार हो जाते हैं। अतएव कमीटी ने बुनियादी शिक्षा को प्रारम्भ करने की सिफ़ारिश की।

बुनियादी शिक्षा का तात्पर्य व्यावहारिक ज्ञान से है। हमें जितनी आवश्यकता अपने दिमाग़ को बढ़ाने की है उससे बढ़कर आवश्यकता अपने रोटी और कपड़े की है। वह शिक्षा बेकार है जो हमारी साधारण आवश्यकता की भी पूर्ति नहीं कर सकती। बुनियादी शिक्षा में शरीर के सम्पूर्ण अवयवों की उन्नति पर ज़ोर दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक विद्यार्थी को शरीर और दिमाग़ दोनों से काम लेना चाहिए। जब हम ३ घंटे अपने दिमाग़ से काम लेते हैं तो कम-से-कम ४ घंटे हमें शारीरिक परिश्रम भी करना चाहिये। प्रत्येक विषय का ज्ञान किसी व्यवसाय द्वारा कराना चाहिए। शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। बुनियादी शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी

अपने पैर पर खड़ा हो सकता है। सारांश यह है कि उस ज्ञान से हमें कोई लाभ नहीं जिसे हम कार्य रूप में परिणत नहीं कर सकते। बुनियादी शिक्षा का तजुरबा किया जा रहा है। कांग्रेस सरकारों ने इसकी सफलता पर काफ़ी ज़ोर दिया था और आज भी यह योजना कार्यान्वित की जा रही है। भविष्य में इसे कहाँ तक सफलता प्राप्त होगी यह हम नहीं कह सकते।

स्त्री-शिक्षा

हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का कभी भी अभाव नहीं रहा है। इतना ज़रूर है कि उनकी शिक्षा पुरुषों से भिन्न रही है। इधर कुछ वर्षों से स्त्रियाँ भी कालेजों और यूनिवर्सिटियों में जाने लगी हैं और उनकी संख्या काफ़ी बढ़ रही है। बड़े-बड़े शहरों में महिला-विद्यापीठ, सेवा-सदन, शिल्प-भवन आदि खोले गये हैं। अखिल भारतीय महिला-शिक्षा परिषद् स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही है? डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्ड भी लड़कियों की शिक्षा पर ज़ोर देने लगे हैं। आर्य समाज ने स्त्रियों की शिक्षा के लिये कन्या-गुरुकुल आदि स्थापित किया है। इतना प्रयत्न करने पर भी अभी तक स्त्रियाँ केवल दो प्रतिशत पढ़ी-लिखी हैं। कुछ तो पर्दे के कारण और कुछ धनाभाव से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों से कहीं आवश्यक है, परन्तु दोनों की शिक्षा में अन्तर होना चाहिये। दोनों की आवश्यकतायें अलग-अलग हैं। समाज के दोनों दो अंग हैं। एक का क्षेत्र लड़ाई का मैदान है और दूसरे का कुटुम्ब को सुखमय बनाना। इसलिये दोनों को एक प्रकार की शिक्षा से समाज को हानि के बदले कोई लाभ नहीं हो सकता। अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार से हमारे घरों की नींव कमज़ोर होती जा रही है यह सभी महसूस करते हैं। स्त्रियों की शिक्षा का सम्बन्ध गृह-प्रबन्ध और पुत्र-पालन से होना चाहिये। कोरा किताबी ज्ञान उन्हें पुरुषों से अधिक हानि पहुँचायेगा। पाश्चात्य सभ्यता की नक़ल से हमें काफ़ी नुक़सान उठाने पड़े हैं। शिक्षा हमारे जीवन का आधार है। इसके सभी पाये अपनी भौगोलिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं पर टिकने चाहिये। हमारी मौजूदा आवश्यकता उद्यमी और कार्यशील बनने की है। अँगरेज़ी शिक्षा हमें काहिल और निष्क्रिय बनाती है। यदि समाज का एक अंग इसे पूरी तरह अपना ले तो हमारी संस्कृति का लेशमात्र भी बाक़ी नहीं रह सकता। स्त्रियाँ इस गुर को समझने की कोशिश करें।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली केवल दिमाग़ी है। शरीर को खोकर मस्तिष्क

शिक्षा में सुधार की आवश्यकता

को बढ़ाया जाता है। इसमें पहिला सुधार यह होना चाहिये कि शारीरिक परिश्रम को स्थान दिया जाय। इससे कार्य का महत्व बढ़ेगा और बेकारी भी दूर होगी। उद्योग-धंधों से सम्बन्ध रखने वाले तरह-तरह के स्कूल और कालेज खोले जायँ। इनमें विद्यार्थियों को ऐसी व्यावहारिक शिक्षा दी जाय जिसके द्वारा वे अपनी रोज़ी आसानी से कमा सकें। ऊँची शिक्षा पर जो रक़म ख़र्च की जा रही है उसे कम किया जाय। वह धन गाँवों में छोटे-मोटे कारोबार की वृद्धि में लगाया जाय। जितनी शिक्षा-संस्थायें आज शहरों में खुली हुई हैं उनसे रुपये और समय की हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। शिक्षा-विभाग को चाहिये कि अधिकतर स्कूल गाँवों में खोले और कृषि उनमें एक अनिवार्य विषय हो। सरकार हाथ के कामों का मूल्य उतना ही समझे जितना दिमाग़ी कामों का। हमारे समाज में यह कमी है कि एक हाई स्कूल पास क्लर्क १०० रुपये मासिक पाये और दिन भर दौड़ने वाले चपरासी को भर पेट भोजन भी न मिले। यदि शिक्षा में परिश्रम को स्थान दिया जाय तो यह अन्तर नहीं रह सकता।

शिक्षा लोगों की आवश्यकतानुसार मिलनी चाहिये। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुये 'शिक्षा ज्ञान के लिये' वाला सिद्धान्त नहीं चल सकता। शिक्षित वर्ग की भयंकर बेकारी इस बात का एलान कर रही है कि शिक्षा में एक महान् क्रान्ति की आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकारों को जनता की आवश्यकतायें जाननी चाहिये और उनकी संतान को वही शिक्षा देनी चाहिये जो उन्हें मौजूदा संकट से निकाल सके। किसी भी विद्यार्थी को तब तक सनद न दी जाय जब तक उसे कम-से-कम एक दस्तकारी का पूरा ज्ञान न हो। सूत कातने से लेकर महल बनाने तक का काम उसे सिखाया जा सकता है। लेकिन ये तमाम सुधार एक से नहीं होने चाहिये। लड़के और लड़कियों की शिक्षा के पाठ्यक्रम अलग-अलग हों। दोनों को दो प्रकार की शिक्षा दी जाय। प्रचलित विषयों का साधारण ज्ञान दोनों को कराया जाय, परन्तु इनकी आवश्यकताओं और ज़िम्मेवारियों को देखते हुये इनके स्कूल एक दूसरे से अलग हों और उनमें भारतीय वातावरण की पुट हो।

अध्याय २४

सरकारी आय-व्यय

(INDIAN FINANCE)

सरकार की आर्थिक आवश्यकतायें

अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिये सरकार को प्रजा से धन वसूल करना पड़ता है। परन्तु ये सारे कर्तव्य प्रजा के ही प्रति होते हैं। जो सरकार अपनी प्रजा का धन व्यर्थ ख़र्च करती है, अथवा निष्प्रयोजन विदेशों में भेज देती है, वह अपने कर्तव्यों को पूरा नहीं करती। सार्वजनिक कामों को एक व्यक्ति नहीं कर सकता। सरकार की स्थापना इसीलिये की गई है कि वह व्यक्तिगत चिन्ता से ऊपर सम्पूर्ण समाज की भलाई सोचे। हर आदमी स्कूल और कालेज नहीं खोल सकता और न १०-२० आदमी रेल और तार का संगठन कर सकते हैं। दो-चार गाँव पूरे राष्ट्र की रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते। इस तरह के कामों को सरकार कर सकती है। उसकी शक्ति अनन्त है। यद्यपि यह शक्ति उसे जनता से ही मिली है, लेकिन वह इसे वापिस नहीं ले सकती। समाज में हम जिन-जिन चीज़ों से लाभ उठाते हैं उन पर करोड़ों रुपये ख़र्च किये गये हैं। इस धन का कुछ अंश हमारी जेब से भी लगा हुआ है। तभी अपना अधिकार समझ कर हम उन्हें अपनी चीज़ समझते हैं। अगर इन चीज़ों पर नज़र डाली जाय तो पता चलेगा कि इन्हें बनाने तथा इनकी रक्षा के लिये जितने रुपये की ज़रूरत है उसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते। पुलीस, अस्पताल, रेल, तार, डाक, सड़क, पुल, जहाज़, रक्षा इत्यादि इत्यादि मदों में जो रुपये लगाये जा रहे हैं उनकी उपयोगिता हमारे लिये कम नहीं है। इन्हीं को सँभालने के लिये सरकार को धन की आवश्यकता पड़ती है। उसे तरह-तरह के टैक्स लगाने पड़ते हैं।

इस रक़म को वसूल करने के लिये सरकार को कुछ नियमों की आवश्यकता पड़ती है। वह जिससे जितना रुपये चाहे वसूल नहीं कर सकती। प्रजा की हैसियत के अनुसार ही वह टैक्स ले सकती है। भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त जो रक़म प्रजा के पास बच जाती है उसका कुछ अंश सरकार लेती है। यह कर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरीक़ों से लिया जाता है। सरकार को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि ग़रीबों पर टैक्स का भार कम-

से-कम पड़े। जो रक़म प्रजा से वसूल की जाती है उसके उचित ख़र्च का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि १० रुपये वसूल करने में १५ रुपये का ख़र्च पड़ता है तो सरकार इस तरह की बेवकूफ़ी नहीं कर सकती। उसकी आवश्यकतायें प्रजा की इच्छानुसार बढ़ती हैं। जब धन की ज़रूरत अधिक होती है तो वह प्रजा की आमदनी को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। इससे प्रजा की भलाई के साथ साथ सरकार को भी टैक्स वसूल करने में आसानी पड़ती है। जिस राज्य में प्रजा की माली हालत अच्छी होती है वहाँ की सरकार भी धनी समझी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर वह अधिक-से-अधिक धन इकट्ठा कर सकती है। जिस प्रकार माली बग़ीचे से फूलों को चुन लेता है और फिर पानी देकर उसे हरा भरा रखता है, उसी तरह सरकार अपनी प्रजा को सुखी और सम्पन्न बना कर उसकी आय का थोड़ा-सा अंश ले लेवे।

भारत सरकार और भारतीय प्रजा

हिन्दोस्तान की विकट ग़रीबी को देखते हुये यह बात समझ में नहीं आती कि किस प्रकार यहाँ की सरकार प्रजा का पेट काटकर टैक्स वसूल करती है। लाखों आदमियों को भर पेट भोजन तक मुयस्सर नहीं होता। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक सर विलियम हंटर लिखता है, "चार करोड़ हिन्दोस्तानी अपर्याप्त भोजन पर अपने दिन काटते हैं।" सर चार्ल्स इलियट का अनुमान है कि "किसान वर्ग में से आधे किसानों की भूख वर्ष के आरम्भ से लेकर अन्त तक कभी भी पेट भर भोजन करके शान्त नहीं हुई।"* १८६१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में यह बात दर्ज है कि "यह निश्चित प्रतीत होता है कि क़रीब-क़रीब ७ करोड़ भारतवासी यह भी नहीं जानते कि दो बार भोजन किसे कहते हैं।" हिन्दोस्तान के क़रीब १० करोड़ आदमी १८ बिस्वे ज़मीन जोतकर अपना दिन काटते हैं। रैम्ज़े मेकडानल अपनी "हिन्दोस्तान की जागृति" नामक पुस्तक में लिखते हैं, "५ करोड़ कुटुम्ब (अर्थात् २५ करोड़ मनुष्य) साढ़े तीन आने की आय पर अपना गुज़ारा करते हैं।" इस तरह के उद्धरणों से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। इतने पर भी सरकार इन ग़रीबों से टैक्स वसूल करने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखती। टैक्स वसूल करना सरकार का फ़र्ज़ है, लेकिन जिसके पास खाने और शरीर ढकने तक का ठिकाना नहीं वह टैक्स कैसे दे सकता है। यदि भारत-सरकार अपनी ज़िम्मेवारी को महसूस करती, और

---

* Industrial Decline in India—*Balkrishna.*

भारतीय प्रजा की लम्बी रक़म वह विदेशों में न भेजती, तो इस भयंकर दरिद्रता का मुक़ाबिला न करना पड़ता।

बृटिश सरकार की टैक्स-सम्बन्धी नीति का इतिहास

१८५८ ई० तक बृटिश सरकार की नीति सभी क्षेत्रों में शक्ति-संचय की थी। आर्थिक मामलों में भी भारत-सरकार को सभी अधिकार दिये गये थे। प्रान्तीय सरकारों को किसी भी प्रकार का टैक्स लगाने अथवा उसे ख़र्च करने का अधिकार न था। वे केन्द्रीय सरकार की एजेन्ट मात्र थीं। उसकी आज्ञानुसार वे टैक्स वसूल करके उसे भेज देतीं और अपने ख़र्च के लिये केन्द्रीय सरकार की इमदाद पर निर्भर रहती थीं। जान स्ट्रेची लिखता है, "यदि प्रान्तीय सरकार को कोई सड़क बनवाने के लिये २० पौंड की भी ज़रूरत पड़ती......तो उसे केन्द्रीय सरकार से इसकी आज्ञा लेनी पड़ती थी।" * प्रान्तीय सरकारों को उनकी आवश्यकतानुसार प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार एक बँधी हुई रक़म देती थी। उसी में इन्हें अपना ख़र्च चलाना पड़ता था। यह रक़म घटती-बढ़ती रहती थी और सभी दृष्टियों से अपर्याप्त थी। केन्द्रीय सरकार में जिसकी जितनी पहुँच थी वह उतनी रक़म मंजूर करा लेती, बाक़ी प्रान्तीय सरकारों को सब करना पड़ता था। उन्हें टैक्स की वसूली में कोई दिलचस्पी न थी और न ख़र्च में ही मितव्ययी बनने का ध्यान था। जब इन दोनों से उन्हें कोई फ़ायदा न था तो वे अनायास कष्ट क्यों करतीं। इस उदासीनता से प्रान्तीय प्रजा को सरासर नुक़सान हुआ। सरकार पैसे की कमी के कारण उनकी भलाई की परवाह नहीं कर सकती थी।

१४ दिसम्बर सन् १८७० को लार्ड मेयो की सरकार द्वारा एक घोषणा-पत्र निकाला गया। इसके अनुसार ख़र्च के कुछ ज़रिये प्रान्तीय सरकारों को चन्द शर्तों के साथ सौंप दिये गये। आर्थिक विषयों में शक्ति वितरण का यह पहला क़दम था। अब तक प्रान्तीय सरकारों को एक पाई भी ख़र्च करने का अधिकार न था। परन्तु लार्ड मेयो की कृपा से उन्हें यह अधिकार मिला कि पुलिस, शिक्षा, सड़कें, रजिस्ट्री, जेल, अस्पताल आदि के ख़र्च वे स्वयं करें। इनके ख़र्च के लिये केन्द्रीय सरकार रुपये देती थी, परन्तु यदि कमी महसूस होती तो स्थानीय करों से वे इसकी पूर्ति कर सकती थीं। १८७७ ई० में लार्ड लिटन के ज़माने में शक्ति-वितरण का दूसरा क़दम उठाया

---

* India : Its administration and progress (Third Edition) pp. 112—13.

गया। केन्द्रीय सरकार की इमदाद के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों को कुछ और भी विषय दे दिये गये। सरकारी आमदनी के कुछ ज़रिये ३ भागों में बाँट दिये गये :—

१—केन्द्रीय विषय
२—प्रान्तीय "
३—सम्मिलित "

इनका तात्पर्य यह था कि केन्द्रीय विषयों की आमदनी और उनका ख़र्च केन्द्रीय सरकार के हाथ में रक्खा गया, प्रान्तीय विषयों की ज़िम्मेवारी प्रान्तीय सरकार को दी गई। इनके अतिरिक्त सम्मिलित विषयों की आमदनी दोनों सरकारों में विभाजित कर दी जाती थी। अफ़ीम, नमक, तार और डाक, देशी रियासतों से कर, तथा रेलवे इत्यादि—इनकी आमदनी केन्द्रीय सरकार के हाथों में रक्खी गई। शेष विभागों की आमदनी प्रान्तीय सरकार को दी गई। भूमिकर तथा इनकम टैक्स की आमदनी दोनों सरकारों में बाँट दी जाती थी। इन रुपयों को ख़र्च करने के लिये प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से कुछ सलाहें लेनी पड़ती थीं। उन्हें कर्ज़ लेने का अधिकार न था और न वे कोई नया कर लगा सकती थीं। यह प्रबन्ध केवल ५ वर्ष के लिये किया गया। हर पाँचवें वर्ष फिर इसे नया करना पड़ता था। १८८२ ई० में लार्ड रिपन के प्रबन्ध के अनुसार केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकारों की इमदाद बन्द कर दी गई। उपरोक्त तीन प्रकार के विषयों का बटवारा फिर नये सिरे से किया गया। १९०४ ई० में लार्ड कर्ज़न ने इस प्रबन्ध को अर्धस्थायी क़रार दिया। हर पाँचवें साल इसे नया करने की ज़रूरत जाती रही। किसी असाधारण परिस्थिति के कारण इसमें तबदीली की जा सकती थी। केन्द्रीय सरकार की इमदाद को फिर से जारी किया गया। १९०८ ई० में इस पर विचार करने के लिये एक कमीशन निर्धारित किया गया, परन्तु उसने किसी प्रकार के परिवर्तन की सलाह न दी।

१९११ ई० में लार्ड हार्डिंज ने उपरोक्त प्रबन्ध को स्थायी क़रार दिया। अर्थात् १९१९ के शासन-सुधार तक सरकारी आमदनी और ख़र्च तीन भागों में बँटे हुये थे। चुंगी, नमक, अफ़ीम, रेलवे, तार और डाक, टकसाल और देशी रियासतों के कर—इनकी आमदनी केन्द्रीय सरकार लेती थी। रजिस्ट्री, पुलीस, शिक्षा, क़ानून और न्याय, अस्पताल तथा छोटी-छोटी सिंचाई के काम इत्यादि—इनका प्रबन्ध प्रान्तीय सरकारों को दिया गया था। इन मदों की आमदनी और ख़र्च प्रान्तीय सरकारें स्वयं करती थीं।

भूमिकर, इनकम टैक्स, आबकारी-कर, इनकी आमदनी दोनों में बाँट दी जाती थी।

१६१६ के शासन-सुधार में सरकारी आय-व्यय के प्रबन्ध में अनेक परिवर्तन किये गये। एक ज़िम्मेवार शासन की स्थापना के लिये यह आवश्यक था कि हिन्दोस्तानियों को आर्थिक क्षेत्र में कुछ और अधिकार दिये जायँ। मान्टेग्यू चेम्सफ़ोर्ड ने इस बात की सिफ़ारिश की थी कि प्रान्तीय स्वराज्य की पहली शर्त आर्थिक ज़िम्मेवारी है। इसका तात्पर्य यह था कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को टैक्स सम्बन्धी और भी ज़रिये दे दे और उन्हें ख़र्च करने की पूरी आज़ादी भी दे दी जाय। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक सार्वजनिक भलाई के कामों में वृद्धि नहीं की जा सकती थी। स्थानीय संस्थायें पहले से ही इस बात के लिये बदनाम थीं कि वे अपने क्षेत्र में कोई नई योजना कार्यान्वित नहीं करतीं। राष्ट्रीय उत्थान के साथ-साथ लोगों की आवश्यकतायें और माँगें बढ़ रही थीं। इधर प्रान्तीय सरकारों के हाथ बँधे हुये थे। न तो उनके पास पैसे के साधन थे और न उन्हें कर्ज़ लेने का अधिकार था। वे सभी प्रकार से अकर्मण्य थीं और स्थानीय जनता की टीका-टिप्पणियों को चुपचाप सुनती रहती थीं। शासन सुधार के समय इन बातों पर विचार किया गया। सम्मिलित आय के मद तोड़ दिये गये। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को आमदनी के स्वतन्त्र ज़रिये अलग-अलग बाँट दिये गये। प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपने क्षेत्र में नये-नये कार्य करें और प्रजा की माँगों की पूर्ति करें।

१६१६ का शासन-सुधार और सरकारी आय-व्यय

शासन को कार्यान्वित हुये अभी दो वर्ष भी व्यतीत न हुये थे कि केन्द्रीय सरकार की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल होने लगी। १६२०-२१ के बजट में उसे ६८३ लाख रुपये की कमी महसूस हुई। इसे पूरा करने की चिन्ता सरकार को ज़रूरी थी। १६२० ई० में लार्ड मेस्टन की अध्यक्षता में एक कमीटी इसकी जाँच के लिये बनाई गई। कमीटी ने जो फ़ैसला किया, उसे मेस्टन अवार्ड (Meston Award) कहते हैं। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि बिहार और उड़ीसा प्रान्त को छोड़कर शेष प्रान्तों से यह कमी पूरी की जाय। १६२१-२२ में निम्नलिखित रक़म प्रान्तों से ली गई:—

मेस्टन अवार्ड

प्रान्त			केन्द्रीय सरकार को दी गई रक़म (लाख की संख्या में)
१—मदरास	...	...	३४८
२—बम्बई	...	...	५६
३—बंगाल	...	...	६३
४—संयुक्तप्रान्त	...	...	२४०
५—पंजाब	...	...	१७५
६—ब्रह्मा	...	...	६४
७—मध्यप्रान्त और बरार		...	२२
८—आसाम	...	...	१५
			कुल जोड ९८३ लाख रुपया

बिहार और उड़ीसा को इसलिये छोड़ दिया गया था कि उसकी आर्थिक स्थिति स्वयं अच्छी न थी। इसीलिये अन्य प्रान्तों से ९८३ लाख की कमी पूरी की गई। पहली किश्त देने के बाद बंगाल प्रान्त की सरकार ने इस बात की मजबूरी जाहिर की कि वह एक पैसा भी देने की क्षमता नहीं रखती। अन्त में केन्द्रीय सरकार ने यह फ़ैसला किया कि १९२२-२३ से बंगाल प्रांत से ६ वर्ष तक कोई किश्त न ली जायेगी। मेस्टन कमीटी ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि केन्द्रीय सरकार आर्थिक मामले में जल्दी से जल्दी स्वतन्त्र हो जांय और प्रान्तों पर निर्भर न करे। प्रान्तीय धारा-सभाओं को नये टैक्स लगाने का अधिकार दे दिया गया। कुछ शर्तों के साथ उन्हें कर्ज़ लेने की भी इजाज़त दे दी गई। केन्द्रीय सरकार का दबाव बहुत कुछ कम कर दिया गया। मेस्टन अवार्ड से कोई भी प्रान्त सन्तुष्ट न था। उसे केन्द्रीय सरकार को जो एक लम्बी रक़म हर साल देनी पड़ती वह उनकी आर्थिक नींव को कमज़ोर कर देती थी।

मेस्टन अवार्ड से किसी को भी लाभ न हुआ। प्रान्तों के असन्तोष के साथ साथ केन्द्रीय सरकार की भी माली हालत बिगड़ती गई। चारों ओर से इस बात की माँगें पेश की जाने लगीं कि प्रान्तों की किश्त बन्द कर दी जाय। १९२६ ई० के लगभग केन्द्रीय सरकार के बजट में कुछ बचत हुई और अन्त में १९२७-२८ ई० में प्रान्तों की किश्त बिलकुल बन्द कर दी गई। नये टैक्स लगाकर केन्द्रीय सरकार ने अपनी कमी पूरी की। प्रान्तों को भी किश्त बन्द हो जाने से कुछ राहत मिली। लेकिन जर्मनी की बड़ी लड़ाई का असर १९२८ के बाद मालूम पड़ने लगा। एक तरफ़ लोगों की आवश्यकतायें

बढ़ती जा रही थीं और दूसरी ओर भारत सरकार कर्ज़ के सूद से दब रही थी। इसी समय संघ-शासन की योजना पर विचार आरम्भ किया गया।

किसी भी संघ-शासन में आर्थिक बटवारा ठीक ठीक नहीं हो सकता।

संघ-शासन और आर्थिक संगठन

कितनी ही सफ़ाई के साथ इसका विभाजन किया जाय, कोई-न-कोई कमी रह जाती है। संसार का कोई भी संघ-शासन इस कमी से वंचित नहीं है। कारण यह है कि इसके अन्दर दो स्वार्थों की पूर्ति करनी पड़ती है। एक तो संघ-सरकार को अपनी जिम्मेवारी निबाहने के लिये पैसे वसूल करने पड़ते हैं और दूसरी ओर स्थानीय सरकारें भी टैक्स लगाकर अपना ख़र्च चलाती हैं। दोनों का साधन एक ही जनता को बनना पड़ता है। यह भी सम्भव है कि आर्थिक बटवारे में दोनों में उलझन पैदा हो जाय। हो सकता है कि दोनों की आवश्यकतायें इस क़दर बढ़ जायँ कि टैक्स की भरमार हो जाय और प्रजा दोनों के बीच में पिस जाय। संघ-शासन के अन्दर जितनी इकाइयाँ रहती हैं उनमें भी समानता बर्तनी पड़ती है। यदि एक से कम और दूसरे से अधिक कर वसूल किया जाय तो न्याय में फ़रक पड़ेगा। केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुये उनकी आय के ज़रिये इस प्रकार अलग करने पड़ते हैं कि किसी को अपने हक़ के लिये एतराज़ न हो। ज्वायंट पार्लियामेन्टरी कमीटी ने भारतीय संघ-शासन में भी इन कठिनाइयों को महसूस किया था। अपनी रिपोर्ट में इसका ज़िक्र करते हुये उसने लिखा है कि, "किसी भी संघ-शासन में आय-व्यय का बटवारा एक कठिन विषय है। कारण यह है कि दो सरकारें एक ही प्रजा से स्वतन्त्रता-पूर्वक टैक्स वसूल करती हैं।"*

आधुनिक शासन-विधान में अनेक परिवर्तनों के कारण सरकारी आय-

भारतीय संघ शासन-विधान और आर्थिक प्रबन्ध

व्यय का नये सिरे से बटवारा किया गया है। ब्रह्मा के अलग हो जाने से केन्द्रीय सरकार की आय में ३ करोड़ रुपये की हानि हुई है। सिन्ध और बिहार दो नये प्रान्तों के बनने से केन्द्रीय सरकार की और भी हानि हुई है। बम्बई अहाते से सिन्ध को अलग कर देने से

---

* In any Federation the problem of the allocation of resources is necessarily one of difficulty, since two different authorities (Federal and Provincial) each with independent powers, are raising money from the same body of tax-payers.

बम्बई को ६० लाख रुपये का घाटा उठाना पड़ा है। इसी प्रकार उड़ीसा के बनाने में मदरास और बिहार प्रान्तों को क्रमशः २० लाख और ८ लाख रुपये प्रतिवर्ष का घाटा पड़ा है। केन्द्रीय सरकार को इन तमाम कमियों को पूरा करना पड़ा है। संघ-शासन को कार्यान्वित करने के लिये १½ करोड़ रुपये की जरूरत और पूरी करनी पड़ी है। बम्बई और बंगाल प्रान्त इस बात की बार-बार माँग पेश कर रहे हैं कि इनकम टैक्स की आमदनी में केन्द्रीय सरकार उन्हें कुछ हिस्सा दे। रियासतें पहले से ही चिल्ला रही हैं कि संघ-सरकार को यह अधिकार न दिया जाय कि वह उनके अन्दर कोई प्रत्यक्ष कर लगा सके। संघ के ख़र्च से वे सभी प्रकार से बँचना चाहती हैं। इसका परिणाम यह है कि उनके संघ-शासन में शरीक होने से केन्द्रीय सरकार को आर्थिक लाभ के बदले हानि होने की सम्भावना है।

आर्थिक बटवारा कुछ विषय ऐसे हैं जिनकी सारी आमदनी केन्द्रीय सरकार अपने लिये ख़र्च करेगी। वह इन टैक्सों को घटा-बढ़ा भी सकेगी। चुंगी, कारपोरेशन टैक्स, इनकम टैक्स पर सर चार्ज आदि मद इस कोटि में रक्खे जा सकते हैं। कुछ विषय ऐसे हैं जिनकी आमदनी वसूल करने का अधिकार संघ सरकार को होगा, परन्तु वह इसे प्रान्तों अथवा रियासतों में बाँट देगी। स्टैम्प कर, चेक, सरख़त, बीमा, रेल की चीज़ों अथवा यात्रियों पर कर इत्यादि मद इस कोटि में रक्खे गये हैं। कुछ मदों की आमदनी संघ-सरकार वसूल करेगी और उसका कुछ हिस्सा वह प्रान्तों अथवा रियासतों को देगी। इनकम टैक्स, जूट निर्यात कर, नमक कर, अफ़ीम, आबकारी, निर्यात कर इत्यादि विषय इस कोटि में रक्खे गये हैं। इनके अतिरिक्त संघ-सरकार की आमदनी के कुछ और भी ज़रिये हैं। रेल, तार और डाक, देशी रियासतों के कर, तथा टकसाल की आमदनी संघ-सरकार की आय समझी जायगी। केन्द्रीय सरकार इस आय को कुछ तो हिन्दोस्तान में और कुछ इंगलैंड में ख़र्च करेगी। जो सूबे अपने पैर पर खड़े नहीं हो सकते उन्हें वह कुछ वार्षिक सहायता देगी, जिसका ब्यौरा निम्नलिखित है :—

१—पश्चिमोत्तर प्रदेश को १०० लाख रुपया सालाना।

२—उड़ीसा प्रान्त को ४७ लाख रुपया सालाना १९४१ तक, ४३ लाख रुपया सालाना ११४२ से १९४६ तक और, ४० लाख रुपया सालाना १९४६ के बाद।

३—आसाम को ३० लाख रुपया सालाना।

४—संयुक्त प्रान्त को २५ लाख रुपया सालाना १९४२ तक।

५—सिन्ध प्रान्त को ५० वर्ष तक संघ सरकार वार्षिक सहायता देती रहेगी :—

१९३७-३८ में ११० लाख रुपया।

१९३९-१९४८ तक १०५ लाख रुपया सालाना।

१९४९-१९६९ तक ८० लाख रुपया सालाना।

१९७०-१९७५ तक ६५ लाख रुपया सालाना।

१९७६-१९८१ तक ६० लाख रुपया सालाना।

१९८२-१९८७ तक ५५ लाख रुपया सालाना।

प्रान्तीय सरकारों को आमदनी के स्वतन्त्र ज़रिये भी दिये गये हैं। केन्द्रीय सरकार जो इनकम टैक्स वसूल करेगी उसका कुछ हिस्सा प्रान्तों को दिया जायगा। भूमिकर, खेतीकर, आबकारी, पेशाकर, जीवकर, तथा अन्य प्रकार के टैक्सों से जो आय होगी, वह प्रान्तीय सरकार की आय समझी जायगी। केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारों को किसी हद तक कर्ज़ लेने का अधिकार दिया है। प्रान्तीय स्वराज की स्थापना होने से प्रान्तों को कुछ नये-नये टैक्स लगाने का भी अधिकार दिया है। संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रान्त में कांग्रेस सरकारों ने कुछ नये टैक्स लगाया है। संघ-सरकार की आज्ञा के बिना प्रान्तीय सरकारों को विदेशों से कर्ज़ लेने का अधिकार नहीं है।

संघ-सरकार और देशी रियासतों का आर्थिक सम्बन्ध

संघ-शासन विधान में रियासतों और संघ-सरकार के आर्थिक सम्बन्ध पर अलग विचार किया गया है। अब तक रियासतें केन्द्रीय सरकार को एक निश्चित रक़म कर (Tribute) के रूप में देती रही हैं। परन्तु संघ में शरीक होने पर वे इन करों से मुक्त कर दी जायेंगी। बृटिश सम्राट् को यह अधिकार दिया है कि वह २० वर्ष के अन्दर धीरे-धीरे इन्हें इस कर से मुक्त कर दे। कहा जाता है कि इस प्रकार की सुविधायें रियासतों को इसलिये प्रदान की गई हैं कि वे अधिक-से-अधिक तादाद में संघ-शासन में शरीक हों। संघ-सरकार रियासतों में कोई प्रत्यक्ष कर नहीं लगा सकती। यदि वे स्वयं चाहें तो यह कर लगाया जा सकता है। संघ-शासन की स्थापना के १० वर्ष बाद उन रियासतों में जिन्होंने संघ-शासन को स्वीकार किया है कारपोरेशन टैक्स लगाया जा सकता है। काश्मीर, मैसूर, बड़ौदा आदि चन्द रियासतों को संघ-शासन में शरीक होने से आर्थिक लाभ होने की विशेष सम्भावना है। इन विषमताओं को देखते हुई भली भाँति स्पष्ट है कि संघ-शासन-विधान में आर्थिक बटवारा ठीक नहीं है। यह कहना ग़लत है कि

" भारतीय संघ-शासन के अन्दर धन का समान और वैज्ञानिक विभाजन नहीं किया जा सकता।"* यदि बृटिश सरकार रियासतों का विशेष सुविधाओं का ख़्याल छोड़ दे, और सूबों तथा उनमें कोई अन्तर न समझे तो आर्थिक कठिनाई का बहाना दूर हो सकता है।

गवर्नर-जनरल तथा गवर्नरों के आर्थिक अधिकार

संघ तथा प्रान्तीय विभाजन से ही आर्थिक कठिनाई का अन्त नहीं हो जाता। सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्रजा के प्रतिनिधियों को इसे कहाँ तक ख़र्च करने का अधिकार दिया गया है। गवर्नर-जनरल के वर्णन में यह बात कही जा चुकी है कि केन्द्रीय सरकार की सारी आमदनी उसी के हाथ में रक्खी गई है। धारा-सभा की इच्छा के विरुद्ध वह कोई रक़म ख़र्च कर सकता है। फ़ौज के ख़र्च को वह जितना चाहे बढ़ा सकता है। इसी तरह गवर्नरों को भी कुछ ऐसे विशेष अधिकार दिये गये हैं जिनसे वे प्रान्तीय आमदनी को मनमाना ख़र्च कर सकते हैं। कुछ पदाधिकारियों के वेतन आदि निश्चित करने का अधिकार उन्हीं को दिया गया है। संघ-सरकार की आमदनी और ख़र्च को जाँचने के लिये एक अफ़सर (Auditor General of India) बृटिश सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जायगा। इसका दर्जा वही रक्खा गया है जो फ़ेडरल कोर्ट के जजों का। इसे ६०,००० रुपया सालाना वेतन दिया जायगा। ५५ वर्ष की आयु तक यह अपने पद पर कार्य कर सकेगा। इस तरह का एक पदाधिकारी प्रत्येक प्रान्त में नियुक्त किया जा सकता है। गवर्नर-जनरल तथा गवर्नर को, अपने-अपने क्षेत्र में हिसाब ठीक रखने के लिये, नियम बनाने का पूरा अधिकार दिया गया है। जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों में इन दोनों पदाधिकारियों को विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं उसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में भी इनका बहुत बड़ा हाथ रक्खा गया है।

प्रजा के धन का अपव्यय

इस बात के अनेक प्रमाण मौजूद हैं कि हमारे देश में प्रजा का धन मिट्टी की तरह बहाया जाता है। दुनिया के मुक़ाबिले में हमारी दशा सबसे हीन और गई गुज़री है। यदि इस ग़रीबी का वर्णन किया जाय तो यह विषय हमारी प्रस्तुत पुस्तक से बाहर चला जायगा। थोड़े से आँकड़ों

---

* The Federal System of Public finance in India cannot be logical and uniform.

से यह बात भली भाँति समझ में आ सकती है कि दुनिया के मुक़ाबिले में हमारी आर्थिक स्थिति कैसी है।

देश	वार्षिक आय प्रति व्यक्ति
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	...१०८० रुपया
ग्रेट बृटेन	...७५० ,,
जर्मनी	...४५० ,,
जापान	...१२० ,,
हिन्दोस्तान	...६० ,,

इतनी भयंकर ग़रीबी में भी प्रजा का धन आँख मूँद कर ख़र्च किया जाता है। देश से प्रतिवर्ष ४० करोड़ रुपया "होम चार्जेज़" के मद में इंगलैंड को जाता है। वहाँ इस लम्बी रक़म से हमारे देश-वासियों को रत्ती भर भी फ़ायदा नहीं पहुँचता। जहाँ तक घरेलू ख़र्च का सम्बन्ध है, इसका भी बटवारा उचित तरीक़े पर नहीं किया गया है। हमारे देश में केवल ६ प्रतिशत लोग लिखना-पढ़ना जानते हैं। बृटेन में ६७ प्रतिशत; जापान में ६० प्रतिशत ; जर्मनी में १०० प्रतिशत ; डेनमार्क में १०० प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं। इसे देखते हुये भारत-सरकार का यह पहला फ़र्ज़ होना चाहिये कि वह शिक्षा पर अधिक-से-अधिक रक़म ख़र्च करे। परन्तु निम्नलिखित आँकड़ों से यह प्रकट है कि हमारी शिक्षा पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता।

देश	शिक्षा पर प्रति व्यक्ति सालाना ख़र्च
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	५५ रुपया
ग्रेट बृटेन	२० ,,
फ़्रांस	१० ,,
हिन्दोस्तान	केवल ६ आने पैसे

कृषि हमारे देश का मुख्य व्यवसाय है। ७० प्रतिशत व्यक्तियों की रोज़ी इसी पर निर्भर है। परन्तु सरकार अपनी आमदनी का केवल १½ प्रतिशत इसकी बेहतरी पर ख़र्च करती है। अस्पताल और औषधालयों की संख्या को देखते हुये कोई भी दाँतों तले उँगली दबा सकता है। समूचे हिन्दोस्तान में कुल ७००० अस्पताल हैं। ५०,००० व्यक्तियों के लिये एक अस्पताल की व्यवस्था की गई है। और १६० मील की दूरी में एक अस्पताल बनाया गया है। उद्योग-धन्धों के ऊपर सरकार केवल ½ प्रतिशत ख़र्च करती है। यही वजह है कि काम की कमी के कारण "१० करोड़ ७० लाख आदमियों को साल भर में कम-से-कम चार महीने बेकार रहना पड़ता है।" इसी

प्रकार अन्य सार्वजनिक कामों पर सरकारी आय का कम-से-कम हिस्सा ख़र्च किया जाता है।

अब सवाल यह है कि जब सार्वजनिक कामों पर बहुत थोड़ी रक़म ख़र्च की जाती है तो बाक़ी रुपया किन मदों में लगाया जाता है। पहली खटकने वाली बात तो सरकारी उच्च पदाधिकारियों की लम्बी-लम्बी तनख़ाहें हैं। अगर दुनियाँ के और मुल्कों से इसकी तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि प्रजा के धन का सरासर दुरुपयोग हो रहा है। हिन्दोस्तान ऐसे ग़रीब मुल्क में इतनी लम्बी-लम्बी तनख़ाहें देना कहाँ तक जायज़ है, पाठक इसे स्वयं समझ सकते हैं। गवर्नर-जनरल के बराबर तनख़ाह पाने वाला पदाधिकारी संसार में कोई दूसरा नहीं है। निम्नलिखित आँकड़ों से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी :—

पदाधिकारी		मासिक वेतन
जापान का प्रधान मन्त्री	...	५२२ रुपया
टर्की का सर्वप्रधान अफ़सर	...	३१८ "
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रेसीडेन्ट	...	१७००० रुपया
इंगलैंड का प्रधान मन्त्री	...	११००० "
हिन्दोस्तान का वाइसराय	...	२१००० " } भत्ता लेकर १८ लाख रुपया सालाना।
जापान के अन्य मन्त्री	...	३७० "
बृटिश प्रान्तों के मन्त्री	...	४००० "
अमेरिका के प्रेसीडेन्ट की कैबिनेट के सदस्य		३५०० "
हिन्दोस्तान के वाइसराय की कौंसिल के सदस्य	...	७००० "

ऊपर के आँकड़ों से यह पता चलता है कि भारत-सरकार अपने कर्मचारियों को अधिक-से-अधिक वेतन देती है। सरकारी नौकरियों को आकर्षित बनाने के लिये यह सबसे अच्छा तारीक़ा है, परन्तु इससे प्रजा को जो हानि पहुँचती है वह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। सरकारी आमदनी का ४० प्रतिशत रुपया केवल शासन-प्रबन्ध (Civil Administration) पर ख़र्च कर दिया जाता है। इसका अधिकतर हिस्सा अफ़सरों की तनख़ाहों और उनके भत्ते पर ख़र्च होता है। २५ प्रतिशत आमदनी फ़ौज पर ख़र्च की जाती है। यदि अँगरेज़ी फ़ौज के बदले हिन्दोस्तानी फ़ौज हमारे देश में कर दी जाय तो ८ करोड़ रुपये सालाना की बचत हो सकती है। एक अँगरेज़ सिपाही का ख़र्च हिन्दोस्तानी सिपाही से चार गुना अधिक पड़ता

है। सरकारी आय का १० फ़ीसदी पुलिस पर ख़र्च किया जाता है। तात्पर्य यह है कि सारा रुपया रक्षा और हथियारों पर ही लगा दिया जाता है। सार्वजनिक कामों के लिये पैसे का सर्वदा अभाव रहता है। कहा जाता है कि बृटिश भारत पर १२०० करोड़ रुपये का कर्ज़ है। प्रतिवर्ष इसकी सूद की लम्बी रक़म देनी पड़ती है। मालूम नहीं हमारे देश में कौन-सा बड़ा कार्य किया गया जिसके लिये इतने रुपये कर्ज़ लेने की ज़रूरत पड़ी। भारतीय राजनीतिज्ञों का कहना है कि बृटिश सरकार ने अपने स्वार्थ के लिये किये गये ख़र्चों को भी हमारे ऊपर लाद दिया है। अफ़ग़ान, फ़ारस, चीन, नैपाल तथा मिश्र आदि लड़ाइयों का ख़र्च हमीं को देना पड़ा। ग़दर में ६० करोड़ रुपये का क़र्ज हमारे देश पर लादा गया। जर्मनी की बड़ी लड़ाई में हिन्दोस्तान के ऊपर ४० अरब रुपये का और कर्ज़ लाद दिया गया। इस प्रकार प्रजा के धन का अपव्यय शायद ही किसी देश में दिखाई पड़ेगा। संयोगवश गत महायुद्ध में वह सब कर्ज़ अदा कर दिया गया और बृटेन को कुछ कर्ज़ भी दे दिया गया।

भारत सरकार के आर्थिक कर्त्तव्य

यदि भारत-सरकार प्रजा के धन का सदुपयोग करना चाहे तो वह निःसंकोच कर सकती है। हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति को देखते हुये किसी भी बड़े से बड़े कर्मचारी को ५०० रुपये मासिक से अधिक वेतन नहीं मिलना चाहिये। कांग्रेस सरकारों ने इसका विधान तो बनाया, परन्तु वे अपने भत्तों को कम न कर सकीं। यदि सरकार इस नियम पर दृढ़ हो जाय तो उसे अपनी आमदनी को ख़र्च करने के लिये नये-नये ज़रिये तलाश करने होंगे। दूसरी विचारणीय बात नौकरियों का भारतीयकरण है। कोई वजह नहीं है कि हमारे देश के शिक्षित नवयुवक बेकार रहें और बाहरी लोग दूनी तनख़ाह पर रक्खे जायँ। यदि सभी विभागों में इस स्वदेशीपन का ध्यान रक्खा जाय तो बेकारी और ग़रीबी दोनों एक साथ हल की जा सकती हैं। रक्षा और शासन का ख़र्च इस क़दर बढ़ा हुआ है कि अन्य विभागों में हमेशा अकाल पड़ा रहता है। भारत-सरकार इन ख़र्चों को भी घटा सकती है। रोज़गार और उद्योग धंधों में हम इतने पिछड़े हुये हैं कि हमें बार-बार अपने पिछले दिनों की याद आती रहती है। सरकार इन कामों को फिर से जागृत करे और हमारे देश-वासियों को वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ उठाने का मौक़ा दे।

अध्याय २५

पुलीस और जेल

(१) पुलीस

पुलीस की उपयोगिता

लोगों की यह धारणा ग़लत है कि पुलीस का काम जनता को डरवाना और परीशान करना है। गाँवों में मातायें अपने बच्चों को 'सिपाही' कह कर डरवाती हैं। 'लाल पगड़ी' देखकर अब भी अशिक्षित ग्रामीण भय खाते हैं। इधर पिछली शताब्दी में पुलीस का व्यवहार इतना बुरा था कि लोग इन्हें मनुष्य कोटि से बाहर गिनने लगे थे। घूसख़ोरी की बीमारी जितनी इस विभाग में चलती रही है उतनी सरकार के किसी भी मुहकमें में नहीं। आज भी' जब कि लोगों में राष्ट्रीय भावना काफ़ी जाग्रत हो गई है, पुलीस निर्दोष और सेवक की दृष्टि से नहीं देखी जाती। जब किसी गाँव में थाने के दारोग़ा या कोई सिपाही पहुँच जाते हैं तो लोगों को यह शक हो जाता है कि देखें किसकी तलाशी होती है और कौन चोरों अथवा बदमाशों की सूची में शरीक कर लिया जाता है। पुलीस का किसी गाँव में जाना अशुभ समझा जाता है। पढ़े-लिखे लोगों की यह दलील है कि इस विभाग में देश के नवयुवक तो भर्ती किये जाते हैं, परन्तु वे इतने जाहिल और संकुचित विचार वाले होते हैं कि इनसे लाभ के बदले हानि होती है। अधिकतर व्यक्ति रुपये कमाने की गरज़ से इसमें भर्ती होते हैं। चूंकि इनका सम्पर्क सीधे जनता से होता है इसलिये वे अपने अधिकारों का बेजा फ़ायदा उठाते हैं।

वास्तव में पुलीस का काम रक्षा करना है। सरकार लोगों के धन-जन की रक्षा इसी विभाग द्वारा करती है। राज्य में अच्छे और बुरे सभी प्रकार के लोग होते हैं। पुलीस का यह फ़र्ज़ है कि वह गुंडे-बदमाशों पर कड़ी नज़र रक्खे। उसकी थोड़ी सी लापरवाही से अशान्ति बढ़ सकती है। यदि यह विभाग इतना तत्पर और सख़्त न हो तो अच्छे और भलेमानुष लोग सुख की नींद नहीं सो सकते। चोरी, व्यभिचार, डाका, फ़ौजदारी अथवा किसी भी प्रकार का गुनाह सबसे पहले पुलीस के सामने आता है। इसी की जाँच पर न्यायालयों में बहस और फ़ैसले किये जाते हैं। यदि इस विभाग के कर्मचारी अपनी ज़िम्मेवारी को महसूस करें तो राज्य में दुष्ट मनुष्यों की

चेता हरकतें जाती रहें। पुलीस हमारे गाँवों और शहरों की रखवाली के लिये बनाई गई है। कम-से-कम वेतन लेकर ८ और १० घंटे तक एक ख़ास पोशाक में इन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। इनकी नियमबद्धता बड़ी ही सख़्त होती है। छिपी-से-छिपी कारवाइयों का इन्हें पता लगाना पड़ता है। बड़ी-बड़ी गिरोहों का सामना करने के लिये इन्हें अपनी जान पर खेल जाना पड़ता है। राज्य के सभी व्यक्ति अपने प्रति किये गये अपराधों की रिपोर्ट पहले थानों में करते हैं। पुलीस इस बात की अधिक-से-अधिक कोशिश करती है कि उसके हल्के में किसी प्रकार के लड़ाई-झगड़े न हों, कोई किसी को तकलीफ़ न पहुँचाये और सब लोग सरकारी नियमों का पालन करें। जब कभी हम अपने पड़ोसी द्वारा ज़ेर किये जाते हैं तो पुलीस हमारी रक्षा करती है। यदि देश के पढ़े-लिखे लोग सेवा का थोड़ा भी भाव लेकर इस मुहकमें में शामिल हों तो उनसे दीन-दुखियों की अधिक सेवा हो सकती है।

अंगरेज़ी राज से पहले

अंगरेज़ों के नये प्रबन्ध के पहले मुसलमानी ज़माने में पुलीस और ज़मींदार का काम एक में शामिल था। अर्थात् जो ज़मींदार होते थे उन्हें अपनी सीमा के अन्दर धन-जन की रक्षा करनी पड़ती थी। छोटे और बड़े सभी प्रकार के ज़मींदारों को यह अधिकार दिया गया था कि वे अपने मातहत काश्तकारों की सभी प्रकार रक्षा करें। जब कहीं चोरी, डाका, अथवा किसी तरह की घटना होती तो ज़मींदार को इसका पता लगाना पड़ता था। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ज़मींदार स्वयं रखवाली करते थे। गाँवों में पंचायतों द्वारा सारा प्रबन्ध होता था। हर गाँव का एक चौकीदार होता था, जो रात में इसकी रखवाली करता था। गाँव के रहने वालों की चाल-चलन से यह वाक़िफ़ रहता था। जब कभी कोई अजनबी आदमी आता तो उसे इसकी जाँच करनी पड़ती थी। गाँव के मुखिये के पास वह छोटी-छोटी बातों की ख़बर पहुँचाता रहता था। यदि इतनी चौकसी करने पर भी किसी का सामान चोरी चला जाता तो चौकीदार और मुखिया को इसका पता लगाना पड़ता था और चोरी वाले की हानि पूरी करनी पड़ती थी। गाँवों की देख-रेख के लिये उपरोक्त तरीक़े के अलावे कोई अलग थाने और चौकियाँ न थीं। शहरों की रखवाली के लिये कोतवाल रक्खे गये थे। हर शहर में एक कोतवाल होता था। उसकी सहायता के लिये चन्द पुलीस भी रक्खे गये थे। इन्हें सरकारी ख़ज़ाने से वेतन मिलता था। जिस प्रकार शासन की मशीन सीधी-सादी थी उसी तरह पुलीस का मुहकमा भी आजकल

की तरह जटिल न था। अधिकतर झगड़े पंचायतों द्वारा फ़ैसल किये जाते थे और लोगों को पुलीस से मदद लेने की कोई ज़रूरत ही न थी। छोटे-छोटे किसानों को अपनी कमाई का एक बहुत बड़ा हिस्सा मुक़दमेबाजी में ख़र्च नहीं करना पड़ता था। लोगों के अन्दर सहन करने का भाव अधिक था। पंचायत, चौकीदार, ज़मींदार, कोतवाल इन्हीं को देश में पुलीस के सारे काम सुपुर्द किये गये थे। इससे सरकार का ख़र्च भी कम पड़ता था और सब की रक्षा भी होती थी।

भारतीय पुलीस का विकास

लार्ड कार्नवालिस पहला गवर्नर-जनरल था जिसने पुलीस विभाग की नींव डाली। इसने ज़मींदारों को रक्षा और रखवाली के भार से मुक्त कर दिया। लेकिन उनके साथ जो इस्तमरारी बन्दोबस्त किया गया उसमें इस विभाग का खर्च जोड़ दिया गया। हर ज़मींदार से मालगुज़ारी के साथ कुछ रक़म वसूल कर पुलीस विभाग को दी जाती थी। कार्नवालिस ने १७९३ ई० में बंगाल प्रान्त के ज़िला-न्यायाधीशों को हुक्म दिया कि वे अपने-अपने ज़िले में हर ४०० मील की दूरी पर एक थाना बनावें। इससे जो अधिकार अब तक ज़मींदारों को मिले हुये थे वे सब ज़िले के कलेक्टर को दे दिये गये। प्रत्येक थाने में थानेदार और कुछ सिपाही रक्खे गये। मुखिया और चौकीदार भी अपना काम करते रहे, परन्तु धीरे-धीरे इनके अधिकार कम होने लगे। कहने के लिये तो आज भी ये दोनों कर्मचारी बने हुये हैं और जब कभी थानेदार को किसी गाँव में आना पड़ता है तो इन दोनों से उसे मदद मिलती है। लेकिन इनकी बातों का वह मूल्य नहीं रहा जो पहले था। विभिन्न प्रान्तों में इसका संगठन एक ही साथ नहीं हुआ। मदरास में थामस मनरो ने १८१६ ई० में इसे संगठित किया। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों कम्पनी का राज्य बढ़ता गया, यह विभाग नये सिरे से संगठित होता गया। १८०१ से १८६० ई० तक सभी प्रान्तों में यह मुहकमा अच्छी तरह संगठित कर दिया गया। १८५७ ई० के ग़दर ने अंगरेजों को चौकन्ना कर दिया। उन्हें फिर इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि इसका नये सिरे से संगठन किया जाय।

१८६० ई० के अगस्त के महीने में भारत-सरकार ने एक कमीशन नियुक्त किया। इसका काम सारे हिन्दोस्तान के पुलीस संगठन का अध्ययन करना था और इस पर अपनी राय ज़ाहिर करनी थी। १८६१ ई० में इसकी रिपोर्ट तैयार हुई और उसी आधार पर एक ऐक्ट बनाया गया जो अभी तक काम में लाया जा रहा है। पुलीस विभाग के संगठन का जो सिद्धान्त

निश्चित किया गया वह आज भी प्रचलित है। कमीशन की रिपोर्ट में सबसे बड़ी मार्के की बात यह थी कि पुलीस का मुहकमा प्रान्तीय बना दिया जाय। इसी के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में एक इन्सपेक्टर-जनरल नियुक्त किया गया। पुलीस विभाग का यह सबसे बड़ा अफ़सर था। इसके नीचे हर ज़िले में एक सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस और सहायक सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस होते थे। ये तीनों पद केवल अँगरेज़ों को दिये जाते थे। थाने पर एक थानेदार और एक सहायक थानेदार रक्खे गये। कुछ पुलीस के सिपाही भी रहते थे। १८०६ के कमीशन ने इस बात की सिफ़ारिश की थी कि हर एक मील के घेरे में एक थाना बनाया जाय। अथवा एक हज़ार जनसंख्या के ऊपर एक थाना हो। सरकार ने इतने थानों की ज़रूरत न समझी और आज २५ या ५० मील तक के घेरे में इसकी संख्या एक रक्खी गई है।

१६०२ ई० में पुलीस विभाग के पुनर्संगठन के लिये एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया गया। इसकी रिपोर्ट में बहुत-सी नई बातों की सलाहें दी गईं थीं। इनमें से चन्द बातें निम्नलिखित थीं:—

१—ख़ुफ़िया पुलीस की व्यवस्था की जाय।

२—हिन्दोस्तानी थानेदार बनाये जायँ।

३—हर ज़िले में सिपाहियों की भर्ती हो और उन्हें उचित ट्रेनिंग दी जाय।

रिपोर्ट की अधिकतर सलाहें मान ली गईं। लगभग सभी प्रान्तों ने इससे लाभ उठाया। वर्तमान पुलीस संगठन इसी के अनुसार काम कर रहा है।

पुलीस का मुहकमा अखिल भारतीय नहीं है। यह विभाग प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिया गया है। प्रान्तों में पुलीस और जेल विभाग की देख-रेख के लिये एक मन्त्री होता है। अपने कामों के लिये वह प्रान्तीय धारा-सभा के प्रति ज़िम्मेवार है। शान्ति और रक्षा (Law and Order) विभाग के मन्त्री को इसकी ज़िम्मेवारी दी जाती है। प्रान्त का सबसे बड़ा पुलीस अफ़सर इन्सपेक्टर-जनरल (I. G.) कहलाता है। इसी की मातहती में इस विभाग के कर्मचारी काम करते हैं। प्रत्येक प्रान्त कई हिस्सों में बाँट दिया जाता है। हर एक हिस्सा रेंज (Range) कहलाता है। रेंज का प्रधान डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल होता है। इन्सपेक्टर जनरल की मातहती में यह कार्य करता है।

वर्तमान पुलीस संगठन

एक रेंज में आमतौर से ८ या १० ज़िले होते हैं। ज़िले में पुलीस विभाग

का प्रधान सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस (D. S. P.) कहलाता है। इसकी सहायता के लिये एक डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस रहता है। इन दोनों कर्मचारियों की जिम्मेवारी दोहरी होती है एक ओर तो ये इन्सपेक्टर-जनरल और डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल के प्रति जिम्मेवार होते हैं और दूसरी ओर जिले के कलेक्टर की मातहती में काम करते हैं। सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस का यह कर्तव्य है कि वह जिले भर की शान्ति सम्बन्धी सूचना कलेक्टर को देता रहे। जहाँ कहीं कलेक्टर को आवश्यकता महसूस हो वह पुलीस की मदद ले सकता है। सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस उसकी आज्ञाओं को टाल नहीं सकता।

प्रत्येक जिला पाँच या सात हिस्सों में विभाजित किया गया है। इन्हें सरकिल कहते हैं। हर सरकिल का प्रधान इन्सपेक्टर कहलाता है। एक सर्किल में ८ या १० थाने होते हैं। थाने का प्रधान सब-इन्सपेक्टर कहलाता है। हर थाने पर एक मुंशी और मुहर्रिर होते हैं। इनका काम अपने हलके की रिपोर्ट लिखना और कागजों को रखना है। इनके अलावे वहाँ १० या १५ पुलीस के सिपाही रहते हैं। चौकीदारों को यह हिदायत रहती है कि वे अपने गाँवों की हफ्तावारी रिपोर्ट थाने में दर्ज करवाते रहें। लगभग १०० वर्ग मील घेरे के लिये एक थाने की व्यवस्था की गई है। जिले पर कुछ सुरक्षित पुलीस भी रक्खी जाती है जिनकी संख्या २०० के आस-पास होती है। इनमें से कुछ सिपाही हर समय हथियार बन्द तैयार रक्खे जाते हैं। जब कहीं कोई आवश्यकता पड़ती है, और थाने की पुलीस काफ़ी नहीं होती, तो यह वहाँ भेजी जाती है। हर जिले पर सरकारी खजाना होता है। जिसकी रक्षा का भार इसी सुरक्षित फौज पर रहता है। पुलीस की भर्ती जिले पर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस द्वारा की जाती है। १६३२ ई० में हिन्दोस्तान में पुलीस की कुल-संख्या २२६५१२ थी। इन पर १३ करोड़ रुपया खर्च पड़ा था।

शहरों में कोतवाल होते हैं। इनकी मातहती में कुछ पुलीस और दस-बीस छोटे-छोटे थाने होते हैं। कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर में पुलीस का प्रधान पुलीस कमिश्नर कहलाता है। यह इन्सपेक्टर-जनरल की मातहती में नहीं होता। इसका सम्बन्ध सीधे सरकार से होता है। रेलवे विभाग अपनी अलग पुलीस रखता है। इनका प्रबन्ध जिले की पुलीस से भिन्न होता है। यद्यपि इन दोनों का सहयोग रहता है, परन्तु इनके अफ़सर अलग-अलग होते हैं। खुफिया पुलीस (C. I. D.) का मुहकमा इन दोनों से अलग होता है। लार्ड कर्ज़न के समय में १६०३ ई० में इसकी व्यवस्था की गई थी। इसके कर्मचारी डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल की मातहती में काम करते हैं। इनका काम छिपी हुई बातों का पता लगाना और गुप्त संगठनों तथा

अपराधों की सूचना देना है। सरकार इस विभाग में काफ़ी विश्वास करती है, इसी लिये इसके कर्मचारी किसी भी व्यक्ति पर मुक़दमें चला सकते हैं। सरकार के इनके द्वारा छोटी-छोटी बातों की ख़बरें मालूम होती रहती हैं। बहुत से अपराध इतनी पोशीदगी से किये जाते हैं कि वर्षों अपराधी का पता नहीं चलता। फिर भी इस विभाग के कर्मचारी तरह-तरह की हिकमतों से इन्हें खोज निकालने में समर्थ होते हैं।

पुलीस की कुछ बेजा हरकतें

जनता की रक्षा और भलाई के लिये सरकार ने पुलीस का जाल-सा फैला रक्खा है। बीहड़ से बीहड़ जगहों में बसे हुये गाँव इससे बाहर नहीं रक्खे गये हैं। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं तथा कचहरियों में कुछ ऐसी बातें देखने में आती हैं जो मनुष्यत्व से बाहर होती हैं। कभी-कभी ते झूठे मुक़दमे चलाकर लोगों को पुलीस परेशान करती है। शारीरिक यातनायें अभी तक लोगों के दी जाती हैं। हमारे देशवासियों की अशिक्षा और सादगी का बेजा फ़ायदा इस विभाग के कर्मचारी भली भाँति उठाते हैं। जब कहीं कोई मामला हुआ ते उसकी जाँच आरम्भ होती है। पुलीस अपनी सफ़ाई के लिये तथा अपनी जिम्मेवारी से बचने के लिये कितने ही बेगुनाह आदमियों को फँसा देती है। इसके सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। मैं यह मानता हूँ कि उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और लोग आसानी से सच्ची बातों को खोल नहीं सकते, लेकिन इस स्वतन्त्रता और समानता के युग में सच्चे और भलेमानुष व्यक्तियों के अपराधी ठहराना सर्वथा अन्याय है। पुलीस के कर्मचारियों को इसे रोकना चाहिये। शिक्षा की वृद्धि से कालेजों और यूनिवर्सिटियों के उत्तीर्ण विद्यार्थी अब इस विभागों में जाने लगे हैं। आशा है वे इन कमज़ोरियों को काफ़ी अंश तक दूर कर सकेंगे।

(२) जेल

जेलों का इतिहास कोई पुराना नहीं है। बृटिश काल में इसकी नींव आज से १०० वर्ष पहले डाली गई थी। उससे पहले भी जेल थे, परन्तु उनका वर्णन करना हमारे विषय से बाहर की चीज है।

जेल का ऐतिहासिक विकास

इतना जरूर ध्यान रखना चाहिये कि ऐतिहासिक युग में कोई भी ऐसा राजनीतिक प्रबन्ध नहीं मिलता जिसमें जेल की व्यवस्था न की गई हो। अपराधियों के दंड की

व्यवस्था भिन्न-भिन्न होते हुये भी जेलों का जिक्र हर समय मिलता है। १८३६ ई० में एक कमीटी जेल-सुधार के लिये बनाई गई। लार्ड मेकाले इसके एक सदस्य थे। १८६४ और १८८८ ई० में दो और कमीटियाँ नियुक्त की गईं। १८९२ ई० में एक चौथी कमीटी फिर नियुक्त की गई। इन सबकी रिपोर्ट के आधार पर १८९४ ई० में एक जेल क़ानून (Prison Act) पास किया गया। इसी के अनुसार आजकल भारतीय जेलों का संगठन किया गया है। पुलीस की तरह यह विभाग भी प्रान्तीय सरकार की मातहती में रक्खा गया है।

वर्तमान संगठन जेल ३ प्रकार के होते हैं :—

१—सेन्ट्रल जेल—इनमें लम्बी-लम्बी सजाओं के अपराधी रक्खे जाते हैं। एक साल से कम के अपराधी इसमें नहीं रक्खे जाते। इस प्रकार के जेलों की मौजूदा संख्या ५१ है।

२—डिस्ट्रिक्ट जेल—प्रत्येक जिले पर एक जेल होता है। इनकी संख्या इस समय १८२ है। हर तरह के अपराधी इसमें रक्खे जाते हैं।

३—हवालात—इन जेलों में अधिकतर वे क़ैदी रक्खे जाते हैं। जिनका मुक़दमा कचहरियों में चलता रहता है। जिन्हें १० या २० दिन की सजा होती है वे भी इनमें रक्खे जाते हैं। इनकी संख्या ६७० है।

इनके अलावे जब कभी क़ैदियों की संख्या बढ़ जाती है तो सरकार कैम्प जेल बना लेती है। प्रान्त में जेल विभाग का सबसे बड़ा अफ़सर इन्स-पेक्टर-जनरल कहलाता है। यह आमतौर से इन्डियन मेडिकल सर्विस का सदस्य होता है। सेन्ट्रल जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट की देख-रेख में रहते हैं। इसके नीचे वार्डर आदि अनेक कर्मचारी होते हैं। डिस्ट्रिक्ट जेल का प्रधान सिविल सर्जन होता है। वह लगभग रोज इसका निरीक्षण करता है। जो कर्मचारी २४ घंटे क़ैदियों की देख-रेख करते हैं उनमें जेलर सर्वप्रधान होता है। उसके नीचे सहायक जेलर, वार्डर तथा अन्य छोटे-छोटे कर्मचारी होते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों से अलग रक्खी जाती हैं। एक ही जेल में इनका बैरेक पुरुषों से अलग होता है। इसकी देख-रेख के लिये स्त्रियाँ वार्डर नियुक्त की जाती हैं। जिन क़ैदियों को लम्बी सजायें दी गई होती है उन्हें अकसर वार्डर वग़ैरह बना दिया जाता है और ३ या ४ रुपया मासिक वेतन भी दिया जाता है।

लोगों की यह आम शिकायत है कि भारतीय जेल दुनियाँ के और मुल्कों के जेलों से बुरे हैं। हमारे यहाँ क़ैदियों को पशु से भी बदतर समझा जाता है। जेल के कर्मचारी इन्हें सुधारने के बदले और बिगाड़ देते हैं। क़ैदी सुविधाओं की कमी के कारण चोरी, व्यभिचार तथा झूठ बोलने की आदतें सीख जाते हैं। जेल का तात्पर्य यह नहीं है कि वहाँ क़ैदियों को जानवरों की तरह कुछ दिन तक बाँध रक्खा जाय और अवधि पूरी होने पर उन्हें छोड़ दिया जाय। हमारे देश में इसका यही तात्पर्य समझा जाता है। यही वजह है कि अधिकतर व्यक्ति बार-बार गुनाह करते हैं और जेल उनका घर हो जाता है। लेकिन सरकार का यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि कुछ लोग इसे धर्मशाला या बैठक समझ लें। जेल केवल सुधार की दृष्टि से बनाये जाते हैं। कुछ लोग अपने कर्तव्यों का पालन करना नहीं जानते। वे अपने जीवन में कुछ ऐसी ग़लतियाँ करते रहते हैं जिनसे उन्हें और दूसरों को हानि होती है। इसी से बचने के लिये उन्हें जेल की सजा दी जाती है। सुधार के अतिरिक्त यहाँ पर एक प्रकार की चेतावनी भी दी जाती है। जेलों का जीवन बहुत ही नियमित होता है। हर काम ठीक समय पर किया जाता है। खाना, सोना, नित्य कर्म, काम करना इत्यादि इत्यादि कामों के लिये ठीक समय निर्धारित होते हैं। उद्योग-धंधों के तरह-तरह के कार्य वहाँ किये जाते हैं। कैदियों को इस बात का मौक़ा दिया जाता है कि वे तरह-तरह के हुनर सीख कर जेलों से बाहर निकलें और यदि चाहें तो उनसे अपनी जीविका कमा सकें। भारतीय जेलों को अभी इतनी सफलता प्राप्त नहीं है।

जेलों का सुधार

राष्ट्रीय आन्दोलन की वृद्धि के कारण सरकार को विवश होकर जेलों के सुधार के ऊपर ध्यान देना पड़ा। जब राजनीतिक क़ैदी जेलों में गये और उन्हें वहाँ की सारी दिक़्क़तें उठानी पड़ीं तो उन्होंने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। १९१९ ई० में एक जेल कमीटी भारत सरकार की ओर से बनाई गई। इसे यह कार्य सौंपा गया कि वह भारतीय जेलों का निरीक्षण करके इस बात की रिपोर्ट दे कि इनमें किस-किस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है। वास्तव में जेल-सुधार की यह पहली कमीटी थी। इसने बड़ी गहराई के साथ जेलों का अध्ययन किया और सरकार को इस बात की सलाह दी कि भारतीय जेलों की दशा बड़ी ही शोचनीय है। रिपोर्ट में कैदियों के सुधार के लिये कुछ नई-नई योजनायें रक्खी गई थीं। इनमें से एक सलाह यह भी थी कि फ़ौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के क़ैदी

अलग-अलग रक्खे जायँ। तनहाई और शारीरिक दण्ड देने की व्यवस्था को दूषित ठहराया गया था। कितने ही प्रान्तों ने इन सलाहों को स्वीकार किया और तदनुसार जेलों में अनेक सुधार किये गये। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारतीय जेलों की समस्यायें हल हो गईं।

हमारे देश के जेल कैदियों का सुधार नहीं करते। उनके अन्दर उन्हें ऐसी शिक्षायें नहीं दी जातीं जिनसे वे अपने जीवन को सुधार सकें। जिस बेरहमी के साथ आँखें बन्द करके उनके साथ व्यवहार किये जाते हैं उन्हें सामने रखते हुये जीवन को सुधारने की अभिलाषा उनके हृदय से जाती रहती है। कर्मचारियों की धौंस इतनी कड़ी होती है कि उनसे कुछ सीखने की बात बिलकुल बेतुकी हो जाती है। छोटी-छोटी भूलों के लिये तनहाई और चक्की का दण्ड दिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकार ने जेलों में कुछ व्यवसाय सिखलाने का प्रबन्ध किया है, परन्तु जेल से निकल कर लोगों के पास इतने पैसे नहीं होते कि वे उन्हें अपना पेशा बना सकें। अपराधी होने के नाते क़ैदियों को हम मनुष्य की कोटि से बाहर नहीं कर सकते। जिस प्रकार हमें मनोरंजन और विश्राम की आवश्यकता है उसी प्रकार क़ैदियों को भी वे मिलने चाहिये। इतनी सुविधायें तो दूर रहीं, गुड़ और मिर्चें के लिये भी भारतीय क़ैदी तरसते रहते हैं। जो तुला हुआ भोजन उन्हें दिया जाता है उसके अन्दर न तो कोई स्वाद है और न पौष्टिकता।

१९३७ ई० में जब काँग्रेस ने मन्त्रिपद ग्रहण किया तो उसका ध्यान जेलों की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। उनकी कठिनाइयों का उन्हें पूरा पूरा अनुभव था। संयुक्त प्रान्त की काँग्रेस सरकार ने एक ऐसी सोसाइटी (Discharged Prisoners Aid Society) प्रत्येक ज़िले में स्थापित की जो छूटे हुये क़ैदियों की हर तरह से मदद करे। सोसाइटी का प्रधान कार्यालय लखनऊ रक्खा गया। इसकी ओर से प्रतिमास एक पत्रिका जेल-सुधारों पर निकाली जाती थी। कुछ विशेषज्ञों की एक कमीटी इस बात के लिये नियुक्त की गई जो कुछ ऐसे तरीक़े खोज निकाले जिनसे जेलों का जीवन एकदम बदल दिया जाय। इसकी कुछ सलाहें तो तुरन्त मान ली गईं, परन्तु बड़ी-बड़ी बातों के लिए एक पंचवर्षीय योजना बनाई गई। कमीटी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि कुछ ऐसे विशेष प्रकार के जेल खोले जायँ जिनमें बार-बार अपराध करने वालों का सुधार किया जाय। जेल के कर्मचारियों की ट्रेनिंग के लिये विशेष प्रबन्ध किया जाय। जेलों में पञ्चायतें क़ायम की जायँ और अपढ़ सयानों को शिक्षा दी जाय। इस प्रकार की रायें इसी बुनियाद पर दी गईं कि जेल एक आध्यात्मिक संस्था होनी चाहिये और उसके चलानेवाले

आध्यात्मिक पुरुष होने चाहिये। अमेरिका, इंगलैंड तथा अन्य देशों में जेलों का उपयोग इसी दृष्टि से किया जाता है। जेलों के सुधारने के लिये तथा कर्मचारियों को ट्रेनिंग देने के लिये संयुक्त प्रान्त की सरकार ने एक बहुत बड़ा कालेज स्थापित करने का विचार किया था। इसके लिये एक जगह चुन ली गई थी। रुपया भी मंजूर कर दिया गया था और यहाँ तक कि उस कालेज के प्रिन्सपल की भी नियुक्ति हो गई थी। परन्तु इसी बीच में सरकार को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा था। कांग्रेस-सरकार फिर इस पर विचार कर रही है।

बच्चों के लिये जेल की अलग व्यवस्था की गई है। मिर्ज़ापुर जिले में बच्चों का एक जेल स्थापित किया गया है। नाबालिग़ व्यक्ति इन्हीं जेलों में रक्खे जाते हैं और उन्हें उचित शिक्षा दी जाती है। राजनीतिक कैदी साधारण कैदियों से अलग रक्खे जाते हैं। इन्हें अ, ब और स तीन श्रेणियों में रक्खा जाता है। पहिली दो श्रेणियों में जो सुविधायें इन्हें दी गई हैं वे काफ़ी अच्छी हैं, परन्तु तीसरी श्रेणी के कैदियों को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं दी गई है। हमारे देश में कुछ लोगों को आजन्म अपराधी करार दिया गया है। यहाँ तक कि इनके लड़के बच्चे जन्म से ही अपराधी गिने जाते हैं। ये लोग एक विशेष प्रकार के जेलों में रक्खे जाते हैं। इन्हें अपराधी जाति (Criminal Tribes) कहते हैं। दिन में ये साधारण लोगों की तरह स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करते हैं, परन्तु रात में जेल के अन्दर इन्हें आ जाना पड़ता है। इन्हें सुधारने के लिये भारत सरकार प्रतिवर्ष एक लम्बी रक़म खर्च करती है। अब तक यह कार्य इसाई मिशनरियों के हाथ में रहा है। उन्होंने न तो इनका सुधार किया है और न कोई ऐसी योजना ही तैयार की है, जिनसे भविष्य में इनका सुधार हो सके। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने मिशनरियों से यह कार्य छीन कर हरिजन-सेवक-संघ को सुपुर्द कर दिया। देखें संघ कहाँ तक इस अपराधी वर्ग को सुधारने में समर्थ होता है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

प्रस्तुत पुस्तक में निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता ली गई है। भारतीय शासन-पद्धति के विस्तृत अध्ययन के लिये ये ग्रन्थ पाठकों को विशेष रूप से सहायक होंगे।

Archbold ...Outlines of Indian Constitutional History.
Anderson, G....Development of Indian Polity.

Anderson, G... Indian Administration.
Arora, F. C.... The New Constitution of India.
Bose, S. M. ... The Working Constitution in India.
Banerji, P. ... Public Administration in Ancient India.
Banerji, D.N.... The Indian Constitution.
Beni Prasad... The Problem of Indian Constitution.
Bhattacharya, K.K... Indian Constitution.
Baden Powell, B.A... Land Systems of British India, 3 vols.
Chintamani, C. Y.... Indian Politics since the Mutiny.
Chudgar ... Indian Provinces Under British Protection.
Campbell, G. ... India as it may be.
Cotton, H. ... New India.
Cumming ... Political India.
Cross, C. M. P. ... The Development of Self-Government in India.
Curtis, L. ... Dyarchy.
Chesney, G. ... Indian Polity.
Dutt, R. C. ... Economic History of India.
Digby, W. ... Prosperous India.
Gwynn ... The Indian Politics.
Gangulee, N. ... The Making of Federal India.
Horne, F. A. ... The Political System of British India.
Hardinge ... A Study in Indian Politics.
Haksar and Panikkar Federal India.
Ilbert ... The New Constitution of India.
Joshi, G. N. ... Indian Administration.
" " " ... The New Constitution of India.
Jathar and Beri ... Indian Economics.
Keral Putra ... The Working of Dyarchy in India.
Kale ... Indian Administration.
Khan, S. A. ... Indian Federation.

Krishnamurti, Y. G....Indian States and Federal Plan.
Kunzru, H. N. ...Public Service in India.
Kaye ...Administration of the East India Company.
Lahiri and Banerjea...The New Constitution of India.
Lathe ...The Problem of Indian States.
Lajpat Rai ...The Political Future of India.
Martineau, H. ...Suggestions towards the future Government of India.
Mazumdar, A. C. ...Indian National Evolution.
Malley, O. ...The Indian Civil Service.
Macdonald R. ...The Government of India.
Munro ...Governments of Europe.
Palande, M. R. ...Indian Administration.
Prasad, R. S. ...India Social and Political.
Phillips ...Our Administration of India.
Paranjpye ...The Crux of Indian problem.
Panikkar, K. M. ...Working of Dyarchy in India.
Pole, D. G. ...India in Transition.
Prichard, J. T. ...Administration of India, 2 Vols.
Ram and Sharma ...Indian Civics and Administration
Ram Murti ...Problem of Indian Polity.
Roy ...The Spirit of Indian Civilization.
Sastri, R. S. ...Evolution of Indian Polity.
Sapre ...The Growth of Indian Constitutional Administration.
Shah, K. T. ...Provincial Autonomy.
" " " ...Federal Structure.
" " " ...Federal Finance.
Singh, G. N. ...Indian States.
Sarkar, J. N. ...Economics of British India.
Share ...Notes on Indian Affairs, 2 vols.
Srivastava ...Indian Constitutional Development.

Sobei Mogi .. ...The Federal India, 2 vols.
Sastri, S. ...Self-Government for India under the British Flag.
Sastri, K. R. R. ...Indian States and Responsible Government.
Stark, H. A. ...India under Company and Crown.
Shelvankar, K. S. ...The Problem of India.
Strachey, J. ...India, Its Administration and Progress.
Venkatarangaye, M...Federalism in Government.
Whyte, F. ...India a Federation.
Wheeler, J. T. ...India Under British Rule.
Reports on the Home Administration of Indian Affairs.
Government of India Act, 1919.
" " " " 1935.
Indian Year Book 1940—41.
Proceedings of the U. P. Legislature 1938—39.
Madras Epigraphy Annual Reports.
कन्हैयालाल वर्मा ...भारतीय राजनीति और शासन पद्धति
वालूभाई मेहता ...खादी मीमांसा
पट्टाभिसीतारामैया ...काँग्रेस का इतिहास
भगवानदास केला ...भारतीय शासन, भारतीय राजस्व
हितोपदेश मानव-धर्मशास्त्र

U. P. INTERMEDIATE EXAMINATION

Civics

SECOND PAPER

(Indian Civics)

Time—Three hours

Attempt five *questions. All questions are of equal value*

1939

1. Describe the composition, mode of appointment, and extent of authority of the Federal Executive under the Government of India Act, 1935.

2. Explain what are the legislative functions and powers of the Governor-General, and how he is required to exercise them under the Act of 1935.

3. In which of the Indian provinces has the Act of 1935 provided a legislature consisting of two chambers ? What are the functions and powers of these chambers ? How does a bill become an Act in the Provinces, and what is the method of removing conflict between the chambers ?

4. Explain how an Indian State becomes a member of the Federation, and describe the effects of federation on the authority of the State.

5. State what are the sources of revenue of a Municipal and a District Board. On which activities are the revenues mainly spent ?

6. Give a brief description of some of the religious movements which have attempted to reform the different communities of India.

7. What are the principal social evils from which Indian society suffers ? What efforts have been made to uproot them and with what results ?

8. Discuss the causes of India's poverty.

9. Narrate briefly the history of the nationalist movement from 1885 to 1919.

10. Discuss the advantages which India derives from its membership of the League of Nations. What duties and rights does this membership involve ?

1940

1. Describe the methods by which the British Parliament exercises control over the Government of India.

2. Briefly mention the Special Responsibilities of the Governor-General under the Government of India Act of 1935.

3. Enumerate the various powers of the Governor in accordance with the Act of 1935.

4. Suppose a Bill has been introduced in the Legislative Assembly of the United Provinces. What are the various stages through which it must pass before it becomes an Act ?

5. Describe the functions of the High Court of Judicature in the United Provinces.

6. Mention some of the Institutions of Local Self Government in your province, and discuss the functions of any one of them.

7. Briefly narrate the programme and policy of the Indian National Congress from 1909 to 1935.

8. What is the Harijan problem ? How should it, in your opinion, be solved ?

9. How do you account for the poverty of peasants in the United Provinces ? Can you suggest any measures for its removal ?

10. Write short notes on *any three* of the following :—

(*a*) Basic Education.

(*b*) Joint v. separate electorates.

(*c*) The Indian Civil Service.

(*d*) The Upper Chamber in the provincial legislature.

(*e*) Prohibition.

(*f*) Famine-relief.

1941

1. Write short notes on *any three* of the following:—
   (*a*) Concurrent Legislative List.
   (*b*) Instrument of Instructions.
   (*c*) Instrument of Accession.
   (*d*) Reserve Bank of India.
   (*e*) Statutory Railway Authority.
   (*f*) Advocate-General for the Federation.

2. In what respect has the position of the Secretary of State for India and his Council been affected by the introduction of the Government of India Act of 1935 ?

3. Enumerate the chief subjects of administration and legislation allotted to (*a*) the Central Government and Provincial Governments, under the Act of 1935 ; and describe the principle of their division.

4. Describe the structure of Federal Legislature as contemplated by the Act of 1935.

5. Discuss the relations between a Provincial Governor and his Ministers under the Act of 1935.

6. Describe the main provisions of the Communal Award. What are the chief points of criticism against it ?

7. What are the causes of Unemployment in India ? What steps in your opinion, should be taken to remove it ?

8. What means have recently been adopted in your Province for the uplift of the rural classes ? How far have they been successful ?

9. Discuss the influence of religious and social reform on the Indian Nationalist Movement.

10. Describe the main features of the educational system in the United Provinces.

1942

1. Write short notes on *any three* of the following:—
   (*a*) Dominion Status.
   (*b*) The Indian Federal Court.
   (*c*) Pakistan.

(*d*) Public Service Commissions.

(*e*) Governor's Acts.

(*f*) The Single Transferable Vote.

2. Give an account of the powers and functions of the Federal Legislature under the Act of 1935.

3. How far has Provincial Autonomy been introduced in British India under the Act of 1935? What are its limitations?

4. Explain the procedure by which an Indian State can become a member of the Indian Federation, and describe the position of such a State in the new system of Government.

5. Describe the powers and functions of the Provincial Governors in India.

6. Discuss the Communal Problem in India. What are, in your opinion, the remedies for its solution?

7. What do you understand by Local Self-Government? Describe the structure and functions of a Municipal Board in these provinces.

8. Give a brief survey of the social and religious movements in modern India, and estimate their influence.

9. Enumerate the chief causes of India's backwardness, and suggest remedies for its removal.

10. Describe the distribution of powers between the Central and the Provincial Governments under the Act of 1935.

1943

1. Describe the composition and functions of the Indian Legislative Assembly.

2. What are the Local-Self-Government bodies which are functioning in your province? How far have they been successful?

3. Describe the judicial system of the United Provinces.

4. Describe the powers and functions of the Provincial

Cabinets under the Act of 1935. How far are they limited by the 'special responsibilities' of the Governor ?

5. Briefly describe the powers and functions of the Secretary of State for India, and discuss his relations with the Indian Government.

6. What are, in your opinion, the defects of the present system of education ? How would you improve it ?

7. What are the social and economic handicaps from which Indian women are suffering at the present time ? What measures of reform would you suggest ?

8. Discuss the aims and objects of the National Movement in India to-day. What are its chief difficulties ?

9. Give the causes of the poverty of the Indian cultivator. How would you improve his condition ?

10. Discuss the position of the Indian States under the Act of 1935. What will be their gain and loss in joining the Indian Federation ?

1944

1. State the financial, legislative, and administrative powers of the Governor-General under the Constitution of 1935.

2. Mention the chief subjects of administration and legislation allotted to the Provincial and Central Governments respectively under the Act of 1935. What is the principle underlying the division ?

3. What safeguards should, in your opinion, be provided in the future constitution of India for the protection of Minorities ?

4. What are the qualifications of electors and candidates in the United Provinces for the Municipal Boards, Provincial Legislative Chambers, and the existing Central Legislative Assembly ?

5. What are the chief benefits, political or economic, that in your opinion are likely to accrue to Indian States and to British India from a Federal Union ?

6. What are the important safeguards provided for the All-India Services in the Constitution Act of 1935 ? How do they affect the working of Responsible Government in the provinces ?

7. Some maintain that social reforms should precede political reforms in India, while others are of opinion that it should be just the contrary. Give your own comments.

8. What and how was the Indian National Congress established ? Discuss its contribution to the political and economic life of the country.

9. What are the functions of the District Officer, the Commissioner, and the District and Sessions Judges in the United Provinces ?

10. Write short notes on *any three* of the following:—

(*a*) Joint *versus* separate electorates.

(*b*) Rural uplift.

(*c*) Instrument of Accession.

(*d*) Labour movement in India.

(*e*) The problem of adult education.

1945

Note—Attempt five questions only, of which at least two must be from each section. All questions carry equal marks.

Section A

1. What were the salient features of Provincial Government according to the Government of India Act of 1919, and how far have the changes introduced by the Act of 1935 improve it in terms of provincial autonomy and popular control ?

2. State the constitution, functions, and powers of the existing Central Legislative Assembly.

3. In what way does the Secretary of State for India exercise his powers of direction and superintendence over the Government of India ?

4. Clearly distinguish between a Federal and a Unitary Constitution. Which will suit India ? Give clear and full reasons to support your views.

5. Describe carefully the main features of the Constitution of the Government of India under the Act of 1935.

Section B

6. Mention the aims, methods and programme of the chief political parties in India during the last ten years.

7. Describe the demands made by the depressed classes and women in India, and show how far they are justified.

8. What is meant by the terms 'paramountcy' and 'suzerainty' ? State the nature of the tie between Indian States and the Crown.

9. What advantages and disadvantages have, in your opinion, resulted from the institution of District Boards as they are at present in the United Provinces ? What are the sources of their income ?

10. Write short notes on any four of the following:—

(a) Bicameral Legislatures. (b) Wardha Scheme and Basic Education in the U. P. (c) League of Nations and its success. (d) Post-war Reconstruction. (e) Industrialization of India. (f) Prohibition.

1946

NOTE.—*Attempt* five *questions only. All questions carry equal marks.*

1. Discuss the position and functions of the Secretary of State for India. Is the retention of the India Office desirable ?

2. When and why was the Federal Court established ? Give an account of its composition, powers, and functions.

3. Give an account of the powers and functions of the Governor-General, his Advisers and Ministers as planned by the Act of 1935.

4. What is the procedure laid down for the appointment of Provincial Ministers? Discuss their constitutional relations with (a) the Governor of the Province, and (b) the Provincial Legislatures.

5. Comment on the statement that the District Officers are 'the real rulers of India.

6. What are the chief defects which you observe in the working of local bodies in the United Provinces? What measures would you suggest for remedying these defects?

7. How far and by what means does the 'Crown Representative' (Viceroy) influence and control the policy of Indian States?

8. What are the main causes of the poverty of the Indian peasant? What measures would you suggest to improve his lot?

9. What are the aims of the Congress Movement? By what methods does it seek to achieve these aims?

10. Discuss the causes which prevent the growth of national unity in India. Do you regard the achievement of such uuity as impossible?

11. Write short notes on *any three* of the following:—

(a) The High Commissioner for India.

(b) The Wavell plan.

(c) *Pakistan.*

(d) Instrument of Accession.

(e) The Village *Patwari.*

(f) Compulsory and Primary Education.

3. Give an account of the powers and functions of the Governor-General, his Advisers and Ministers as planned by the Act of 1935.

4. What is the procedure laid down for the appointment of Provincial Ministers ? Discuss their constitutional relations with (*a*) the Governor of the Province, and (*b*) the Provincial Legislatures.

5. Comment on the statement that the District Officers are 'the real rulers of India.

6. What are the chief defects which you observe in the working of local bodies in the United Provinces ? What measures would you suggest for remedying these defects ?

7. How far and by what means does the 'Crown Representative' (Viceroy) influence and control the policy of Indian States ?

8. What are the main causes of the poverty of the Indian peasant ? What measures would you suggest to improve his lot ?

9. What are the aims of the Congress Movement ? By what methods does it seek to achieve these aims ?

10. Discuss the causes which prevent the growth of national unity in India. Do you regard the achievement of such uuity as impossible ?

11. Write short notes on *any three* of the following:—

(*a*) The High Commissioner for India.

(*b*) The Wavell plan.

(*c*) *Pakistan.*

(*d*) Instrument of Accession.

(*e*) The Village *Patwari*.

(*f*, Compulsory and Primary Education.